कानों सुनी सो झूठ सब
(ओशो द्वारा दरिया-वाणी पर प्रश्नोत्तर सहित दिए गए अपूर्व प्रवचनों
का संकलन)

अनुक्रम

1. सतगुरु किया सुजान...2
2. रंजी सास्तर ग्यान की..22
3. सूर न जाने कायरी..44
4. सुख-दुख से कोई परे परम पद...67
5. अनहद में बिसराम...89
6. शून्य-शिखर में गैब का चांदना...111
7. दरिया लच्छन साध का..134
8. निहकपटी निरसंक रहि...158
9. पारस परसा जानिए...179 10...मीन जायकर समुंद समानी 205

कानों सुनी सो झूठ सब
पहला प्रवचन

सतगुरु किया सुजान

जन दरिया हरि भक्ति की, गुरां बताई बाट।
भूला ऊजड़ जाए था, नरक पड़न के घाट।।
नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुध-बुध ग्यान दे, सत्गुरु किया सुजान।।
सत्गुरु सब्दां मिट गया, दरिया संसय सोग।
औषध दे हरिनाम का तन मन किया निरोग।।
रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सत्गुरु एकहि सब्द से, दीन्हीं तुरत उड़ाय।।
जैसे सत्गुरु तुम करी, मुझसे कछू न होए।
विष-भांडे विष काढ़कर, दिया अमीरस मोए।।
सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेसा मोहि।
सत्गुरु ने किरपा करी, खिड़की दीन्हीं खोहि।।
पान बेल से बीछुड़ै, परदेसां रस देत।
जन दरिया हरिया रहै, उस हरी बेल के हेत।।

अथातो प्रेम जिज्ञासा! अब प्रेम की जिज्ञासा। अब पुनः प्रेम की बात।
दो ही बातें हैं परमात्मा की--ध्यान की या प्रेम की। दो ही मार्ग हैं--या तो शून्य हो जाओ या प्रेम में पूर्ण हो जाओ। या तो मिट जाओ समस्तरूपेण, कोई अस्मिता न रह जाए, कोई विचार न रह जाए, कोई मन न बचे; या रंग लो अपने को सब भांति प्रेम में, रत्ती भी बिना रंगी न रह जाए।
तो या तो शून्य से कोई पहुंचता है सत्य तक, या प्रेम से। संत दरिया प्रेम की बात करेंगे। उन्होंने प्रेम से जाना। इसके पहले कि हम उनके वचनों में उतरें... अनूठे वचन हैं ये। और वचन हैं बिल्कुल गैर-पढ़े लिखे आदमी के। दरिया को शब्द तो आता ही नहीं था; अति गरीब घर में पैदा हुए-- धुनिया थे, मुसलमान थे। लेकिन बचपन से ही एक ही धुन थी कि कैसे प्रभु का रस बरसे, कैसे प्रार्थना पके।
बहुत द्वार खटखटाए, न मालूम कितने मौलवियों, न मालूम कितने पंडितों
के द्वार पर गए लेकिन सबको छूंछे पाया। वहां बात तो बहुत थी, लेकिन दरिया जो खोज रहे थे, उसका कोई भी पता न था। वहां सिद्धांत बहुत थे, शास्त्र बहुत थे, लेकिन दरिया को शास्त्र और सिद्धांत से कुछ लेना न था। वे तो उन आंखों की तलाश में थे जो परमात्मा की बन गई हों। वे तो उस हृदय की खोज में थे, जिसमें परमात्मा का सागर लहराने लगा हो। वे तो उस आदमी की छाया में बैठना चाहते थे जिसके रोएं-रोएं में प्रेम का झरना बह रहा हो। सो, बहुत द्वार खटखटाए लेकिन खाली हाथ लौटे। पर एक जगह गुरु से मिलन हो ही गया।
जो खोजता है वह पा लेता है। देर-अबेर गुरु मिल ही जाता है। जो बैठे रहते हैं उन्हीं को नहीं मिलता है; जो खोज पर निकलते हैं उन्हें मिल ही जाता है। और ख्याल रखो, ठीक द्वार पर आने के पहले बहुत से गलत द्वारों पर खटखटाना ही पड़ता है। ठीक की खोज के पहले गलत के बाजार में भटकना ही पड़ता है। यह भी अनिवार्य चरण है खोज का। जब तुम खोज लोगे तब तुम पाओगे कि जो गलत थे उन्होंने भी सहारा दिया। गलत को गलत की तरह पहचान लेना भी तो ठीक को ठीक की तरह पहचानने का कदम बन जाता है।
तो गए बहुत द्वार-दरवाजों पर। जहां जहां खबर मिली वहां गए। लेकिन बातें तो बहुत पाईं, सिद्धांत बहुत पाए, शास्त्र बहुत पाए; सत्य की कोई झलक न मिली। पर मिली, एक जगह मिली। और जिसके पास मिली, उस आदमी का क्या नाम था यह भी ठीक ठीक पक्का पता नहीं है। उस आदमी के तन-प्राण ऐसे प्रेम में पगे थे कि लोग उन्हें संत प्रेम जी महाराज ही कहने लगे थे। इसलिए उनके ठीक नाम का कोई पता नहीं है। पहुंचते ही बात हो गई।

क्षण भर भी देर नहीं होती। आंख खोजने वाली हो, आंख खोजी की हो तो जहां
भी रोशनी होगी वहां जोड़ बैठ जाएगा, बिठाना नहीं पड़ता; बिठाए बिठाना पड़े तो फिर बैठा ही नहीं। बिठाए बिठाए कभी बैठता ही नहीं।
गुरु का मिलन तो प्रेम जैसा है। जैसे किसी को देखते ही अचानक प्रेम उमड़ आता है। अवश! तुम्हारा कुछ उपाय नहीं है; असहाय हो। कहते हो, बस हो गया प्रेम। ऐसी ही गुरु की भी दृष्टि है। यह आखिरी प्रेम है। और सब प्रेम तो संसार में ले आते हैं; यह प्रेम संसार के बाहर ले जाता है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। और सब प्रेम तो अंततः शरीर पर ही उतार लाते हैं; यह प्रेम शरीर के पार ले जाता है। और सारे प्रेम तो स्थूल हैं; यह प्रेम सूक्ष्म का प्रेम है। इस एक संत को देख कर बात हो गई। एक क्षण में हो गई, बिजली कौंध गई।
यह प्रेम जी महाराज दादू दयाल के शिष्य थे--संत दादू के शिष्य थे। और संत दादू ने अपने मरते समय खाट पर आंखें खोली थीं। सौ साल पहले... दरिया से सौ साल पहले संत दादू हुए। मरते वक्त शिष्य इकट्ठे थे, दादू ने आंखें खोलीं और जो कहा वह बड़ी अजीब सी बात थी, भविष्यवाणी थी। मरते दादू ने कहा थाः
देह पड़न्ता दादू कहे, सौ बरसां एक संत।
रैन नगर में परगटे, तारे जीव अनंत।।
दरिया का जन्म सौ साल बाद हुआ, रैन नगर में हुआ।
संत प्रेम जी महाराज दादू के शिष्य थे। इस बात की पूरी-पूरी संभावना
है कि दादू ने जो घोषणा की थी वह दरिया के संबंध में ही थी। क्योंकि दादू के ही एक प्रेमी से फिर द्वार मिला। दादू-पंथी तो मानते हैं कि दरिया दादू के ही अवतार हैं। एक अर्थ में ठीक भी हैं क्योंकि जो दादू ने कहा, जिस प्रेम की महिमा दादू ने गाई है, उसी महिमा को दरिया ने भी गाया है। एक अर्थ में प्रेम के सभी अवतार एक के ही अवतार हैं। व्यक्तियों के थोड़े ही अवतरण होते हैं, सत्यों के अवतरण होते हैं।
देह पड़न्ता दादू कहे, ... गिरती थी देह, जाती थी देह, आखिरी घड़ी आ गई थी, यमदूत द्वार पर खड़े थे, और दादू ने कहाः देह पड़न्ता दादू कहे, ... ।
गिरती है मेरी देह, मगर गिरते समय एक घोषणा किए जाता हूं--सौ बरसां एक संत। सौ बरस बाद आएगा एक संत। रैन नगर में परगटे, तारे जीव अनंत। बहुत लोगों का उससे उद्धार होगा। रोते हुए शिष्यों को कहा था कि घबड़ाओ मत मेरे जाने से कुछ जाना नहीं हो जाता, कोई और भी आने वाला है, प्रतीक्षा करना। फिर दरिया का आगमन--एक धुनिया के घर में, एक मुसलमान धुनिया। लेकिन बचपन से एक ही रस, एक ही लगाव। न स्कूल गए, न भेजे गए स्कूल, न कुछ पढ़ा, न लिखा। हस्ताक्षर भी कर नहीं सकते थे। जैसा कबीर ने कहा है, मसी कागद छुओ नहीं--कभी कागज छुआ नहीं, स्याही छुई नहीं, ठीक वैसे ही, ठीक कबीर जैसे ही। कहा है दरिया नेः जो धुनिया तो भी मैं राम तुम्हारा। माना कि धुनिया हूं, कुछ पढ़ा-लिखा नहीं, कुछ सूझ-बूझ नहीं है, अज्ञानी हूं--इससे क्या फर्क पड़ता है! जो धुनिया तो भी मैं राम तुम्हारा। लेकिन हूं तो तुम्हारा!
भक्त कहता है, मैं क्या हूं यह तो बात ही व्यर्थ है; तुम्हारी कृपा- दृष्टि मेरी तरफ है, बस सब हो गया। अहंकारी और भक्त का यही भेद है। अहंकारी कहता है मैं कुछ हूं, देखो पढ़ा-लिखा हूं, धनी हूं, पद प्रतिष्ठा है, चरित्रवान हूं, त्यागी हूं, ऐसा हूं, वैसा हूं। अहंकारी दावा करता है। भक्त कहता है, जो धुनिया... मैं तो धुनिया, मैं तो कुछ भी नहीं, मेरी तरफ तो कोई गुणवत्ता नहीं है, तो भी मैं राम तुम्हारा। लेकिन मेरी इतनी गुणवत्ता है, कि मैं तुम्हारा हूं। और यह बड़ी से बड़ी गुणवत्ता है, अब और क्या चाहिए? इससे ज्यादा मांगना भी क्या है, इससे ज्यादा होना भी क्या है? इतना ही हो जाए कि तुम राम की तरफ हो जाओ, तो तुम्हारे अंधेरे में रोशनी आ जाएगी। इतनी धारणा ही बनने से सब क्रांति घट जाती है, सारा पलड़ा बदल जाता है।
देखा प्रेम जी महाराज को और घटना घट गईः खोजते थे...

कोई दिल-सा दर्दआशना चाहता हूं
रहे इश्क में रहनुमा चाहता हूं

प्रेम के रास्ते पर कोई पथ-प्रदर्शक खोजते थे।

कोई दिल-सा दर्दआशना चाहता हूं
रहे इश्क में रहनुमा चाहता हूं

गए बहुत पंडितों के पास, लेकिन प्रेम के मार्ग पर पंडित से क्या रोशनी मिले! थोथे शब्दों का जाल! दीवानगी नहीं, मस्ती नहीं, मदिरा नहीं। और भक्त शराब की बातें करने में उत्सुक नहीं होता, भक्त शराब पीने में उत्सुक होता है। पंडित शराब की बातें करते हैं, विश्लेषण करते हैं, चर्चा करते हैं, पीते इत्यादि कभी नहीं। कंठ को कभी शराब ने छुआ ही नहीं, आंख से कभी आंसू नहीं ढलके और न कभी पैरों में घूंघर बंधे, न कभी नाचे मस्त होकर, न कभी गुनगुनाए, कभी अपने को डुबाया नहीं। सारा पांडित्य अहंकार की सजावट है,शृंगार है।
जैसे ही देखा प्रेम जी महाराज को, कोई कली खिल गई, बंद कली खिल गई।
ऐसा बहुत बार हुआ है मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के इतिहास में। अगर कोई व्यक्ति बुद्ध के चरणों में बैठा हो और बुद्ध से कुछ सीखा हो, कुछ पाठ लिया हो, फिर बुद्ध विदा हो जाएं--तो यह व्यक्ति उस पाठ को अपने भीतर दबाए हुए, अपने अचेतन में सम्हाले हुए भटकता रहेगा, खोजता रहेगा; जब तक इसे फिर कोई बुद्ध जैसा व्यक्ति न मिल जाए, तब तक इसकी चिनगारी दबी रहेगी। बुद्ध जैसे व्यक्ति के पास आते ही लौ प्रकट हो जाएगी। पास आते ही! सन्निकट मात्र--और भभक कर जलने लगेगी रोशनी। कोई व्यक्ति अगर कृष्ण के पास रहा हो तो जन्मों-जन्मों तक वह फिर उन्हीं की तलाश करेगा--जाने-अनजाने, होश में बेहोशी में, जागते-सोते, वह कृष्ण को टटोलेगा। और जब तक कोई कृष्ण जैसा व्यक्ति फिर उसके पास न आ जाए तब तक उसका दिया बुझा रहेगा।
मेरे देखे दरिया दादू के शिष्यों में एक रहे होंगे। मैं ऐसा नहीं कहता कि दादू के ही अवतार हैं, क्योंकि दादू का क्या अवतार होगा! जो जाग गए वो गए, उनका फिर अवतार नहीं। फिर लौटना नहीं होता। तो मैं दादू-पंथियों से कहूंगा कि ऐसा मत कहो कि दादू का अवतार। इतना ही कहो कि उसी प्रेम का अवतार जिसके अवतार दादू थे। लेकिन दादू का ही अवतार मत कहो। क्योंकि दादू तो गए सो गए। गीत वही है, धुन वही है, सुर वही है। फूल ठीक वैसा ही है--वही गंध, वही रंग। लेकिन यह मत कहो कि वही फूल है, वैसा ही है। क्योंकि दादू तो गए।
यह दादू को उस दिन, उनकी मृत्युशय्या पर घेर कर जो शिष्य खड़े होंगे, उनमें से ही कोई है। ये उसी को चेताने के लिए वचन कहे होंगेः
देह पड़न्ता दादू कहे, सौ बरसां एक संत।
रैन नगर में परगटे, तारे जीव अनंत।।
यह बीज-मंत्र उस भीड़ में खड़े हुए किसी शिष्य के लिए कहा होगा।
बहुत बार तुमसे बातें कही गई हैं जो तुमने सुनी नहीं हैं। बहुत बार तुमसे बातें कही गई हैं जो तुमने समझी नहीं हैं। और वे बातें कभी पूरी होती रहेंगी। एक बार भी जो किसी सदगुरु के निकट आ गया, अब जन्मों-जन्मों की सारी यात्रा इसी निकटता में ही चलेगी। सदगुरु रहे कि जाए, देह में रहे कि देह से मुक्त हो जाए, लौटे; कि न लौटे; लेकिन जो एक बार किसी सदगुरु से जुड़ गया, यह नाता कुछ ऐसा है कि जन्म-जन्म का है। यह गांठ बंधती है तो फिर खुलती नहीं। यह गांठ खुलने वाली गांठ नहीं है। जुड़े ही न तो बात अलग लेकिन जुड़ जाए तो फिर जन्मों-जन्मों तक साथ चलता है।
घूमते रहे दरिया, बहुत लोगों के पास गए; लेकिन फिर दादू के ही एक भक्त, जहां दादू जैसी ही रोशनी थी, जहां दादू ही जैसे पुनः प्रकट हो रहे थे, वहां ज्योति जग गई। वहां बुझा दिया एकदम दमक उठा, दीप्ति आ गई।

खिली हो कितनी कोई खिले वीरान में जैसे
निकल आएं नई बालें कुंआरे धान में जैसे

--ऐसे कुछ खिल गया भीतर।

निकल आएं नई बालें कुंआरे धान में जैसे
हां याद है किसी की वो पहली निगाह-ए-लुत्फ
फिर खूं को यूं न देखा रगों में रवां कभी

वह आंख प्रेम जी महाराज की, आंख से जुड़ते ही क्रांति कर गई।

हां याद है किसी को वे पहली निगाह-ए-लुत्फ
फिर खूं को यूं न देखा रगों में रवां कभी

जल गया जो जलना था। मिट गया जो मिटना था। होना था जो हो गया। कभी-कभी
एक क्षण में, एक पल में हो जाती है बात--ठीक-ठीक व्यक्ति से मिलन हो जाए। अध्यात्म की खोज में, सदगुरु की खोज सबसे बड़ी है। परमात्मा से भी महत्वपूर्ण खोज है सदगुरु की खोज, क्योंकि परमात्मा से तो सीधे तुम जुड़ ही न पाओगे। कोई खिड़की, कोई द्वार चाहिए होगा। परमात्मा तो सब तरफ मौजूद है। मौजूद ही है, उसे क्या खोजना है? इसे थोड़ा समझना। परमात्मा तो मौजूद ही है, उसे क्या खोजना है? लेकिन मौजूद है, पर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, तो तुम्हारे लिए तो गैर-मौजूद है। तुम्हारे लिए तो मौजूद तभी होगा, जब तुम परमात्मा जैसे किसी व्यक्ति से मिल बैठोगे। जब दो दिल एक होंगे, किसी ऐसे व्यक्ति से--जिसके लिए परमात्मा मौजूद हो गया है, उस जोड़ में ही तुम्हारे लिए भी मौजूद होगा, उसके पहले नहीं मौजूद होगा। हां, एक बार दिख गया, एक बार खुल गई खिड़की, उठा पर्दा, फिर कोई अड़चन नहीं है। फिर तो गुरु और परमात्मा में भेद ही नहीं रह जाता। फिर तो परमात्मा और गुरु एक के ही दो नाम हो जाते हैं।
कबीर ने कहा हैः
गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताए।।
किसके छुऊं पैर? अब दोनों सामने खड़े हैं। बड़ी दुविधा हो गई। पहले किसके पैर छुऊं? गुरु के छुऊं तो परमात्मा का कहीं असम्मान न हो जाए। परमात्मा के छुऊं यह भी बात जंचती नहीं, क्योंकि जिसके द्वारा परमात्मा तक आए, उसका असम्मान न हो जाए। वचन मधुर हैः किसके पैर छुऊं? लेकिन कहा नहीं कबीर ने कि किसके पैर छुए, तो अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग अर्थ कर लिए। कुछ ने अर्थ किया कि गुरु ने इशारा कर दिया कि शंका मत कर, संदेह में मत पड़, परमात्मा के पैर छू। बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताए। निवारण हो गया शंका का।
ऐसा अधिक लोग अर्थ करते हैं। ऐसा मैं नहीं करता। मैं तो यह अर्थ करता हूं कि कबीर ने गुरु के ही चरण छुए। क्यों? इसलिए गुरु के चरण छुए कि गुरु ने परमात्मा बताया। बलिहारी में ही चरण छुए। वह जो बलिहारी शब्द है, वह खबर दे रहा है कि गुरु के ही चरण छुए हालांकि गुरु ने इशारा कर दिया परमात्मा की तरफ, इसलिए तो गुरु के चरण छुए। गुरु का तो सारा काम ही इशारा है। गुरु तो एक इंगित है।
मील के पत्थर देखे न, जिन पर तीर बना होता है--आगे की तरफ यात्रा की खबर! गुरु तो एक तीर का एक चिह्न है। गुरु तो कहता हैः और आगे और आगे और आगे! गुरु तो तब तक कहता चला जाता है और आगे, जब तक कि परम से मिलन न हो जाए। बलिहारी गुरु आपकी... !
लेकिन फिर कबीर ने पैर किसके छुए? मेरे हिसाब से तो पैर गुरु के ही छुए। यह जो बलिहारी शब्द का उपयोग किया, इसी में ही बात आ गई।
मिलन प्रेम जी महाराज का--जिंदगी बदल गई दरिया की। खोज समाप्त हो गई, जैसे प्यासे को पानी मिल गया! एक छोटी सी नजर ने क्रांति उपस्थित कर दी।

गीत अपने अब नहीं कुंआरे रहे
मीत के स्वर से भंवर कर आ गए

फिर दरिया कुंआरे नहीं रहे, गांठ जुड़ गई, गुरु से मिलन हो गया। वह परम विवाह हो गया, जिसके बाद फिर एक ही मंजिल और रह जाती है--परमात्मा मिलन की।
गुरु द्वार है, परमात्मा मंदिर है।
इन वचनों को, दरिया के, बुद्धि से समझोगे तो चूकोगेे। हृदय से समझना। तरंगित होना इनके साथ। एक गैर-पढ़े लिखे आदमी के, लेकिन बड़े प्यारे वचन हैं। उपनिषद और वेद भी स्पर्धा करें, ऐसे वचन हैं। क्योंकि पढ़े-लिखे होने से क्या संबंध है? हृदय में जब घटना घटती है तो टूटे-फूटे शब्द भी स्वर्णमंडित हो जाते हैं। जिसके पास कहने को कुछ है, वह किन्हीं भी शब्दों में कहे, वे शब्द स्वर्णमंडित हो जाते हैं। और जिसके पास कहने को कुछ भी नहीं है, वह कितने ही सुंदर शब्दों का आयोजन करे, वे सब मुर्दे के ऊपर लगाए गए आभूषण हैं। उनसे थोड़ी ही देर में दुर्गंध आएगी। तुम मुर्दों को कितने ही सुंदर वस्त्र पहना दो, इससे मुर्दे जीवित नहीं होते। और जीवंत तो अगर नग्न भी खड़ा हो तो भी सुंदर होता है।
सुनो इन वचनों को--
जन दरिया हरिभक्ति की, गुरां बताई बाट।
भूला ऊजड़ जाए था, नरक पड़न के घाट।।
जन दरिया हरि भक्ति की गुरां बताई बाट। गुरु ने हरि-प्रेम का रास्ता बता दिया। रास्ता बता दिया--इसका ऐसा अर्थ मत लेना कि गुरु ने बड़ा समझाया। समझाया तो जरा भी नहीं। यह बात समझने-समझाने की नहीं। यह तो गुरु के होने में ही इशारा है। यह तो गुरु के पास बैठने में ही घट जाता है। यह तो छूत की बीमारी है। यह तो सत्संग है। गुरु के पास बैठे कि घटने लगता है। गुरु के पास बैठ कर रोमांच जगने लगता है, रोआं-रोआं तरंगित होने लगता है, कंपित होने लगता है। किसी अदृश्य लोक की हवाएं तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती हैं। कोई वसंत आ जाता है। जो हृदय सूना-सूना पड़ा था, जहां कोई स्वर नहीं उठता था, वहां हजार स्वर उठने लगते हैं। मगर यह बात है छूत की। यह लगने वाली बात है। यह लगने वाली बीमारी है।
इसलिए प्रेम के मार्ग के पर सत्संग का अर्थ है गुरु के पास होना, गुरु
के पास बैठना। कभी कुछ कहे तो सुनना, कभी कुछ न कहे तो सुनना; मगर गुरु को पीना। पीते-पीते ही इशारा साफ होता है।
जन दरिया हरिभक्ति की, गुरां बताई बाट।
गुरु ने इशारा कर दिया, राह पर लगा दिया, नाव में बिठा दिया--हरि-भक्ति की!
दरिया मुसलमान हैं; लेकिन गीत न हिंदू का है न मुसलमान का; गीत न राम
का है न रहीम का; या कि दोनों का है। दरिया जैसे संतों ने ही धर्म को प्रतिष्ठा दी है। जरा भी भेदभाव नहीं है, अब यह प्रेम जी महाराज को देख कर ऐसा नहीं सोचा कि हिंदू है यह आदमी, मैं मुसलमान हूं। यह बात ही न उठी। प्रेम कहीं हिंदू होता, कहीं मुसलमान होता! हरि की भक्ति का क्या लेना कुरान से और क्या लेना गीता से? हरि भक्ति कोई सिद्धांत तो नहीं है, कोई दर्शनशास्त्र तो नहीं है। यह तो डुबकी है एक ऐसे लोक में जहां हम तर्क और विचार और बुद्धि के सब विश्लेषण को छोड़ कर पहुंचते हैं। यह तो अपने ही अंतरतम में निवास है।
जन दरिया हरिभक्ति की, ...
भक्ति प्रेम का परम रूप है। प्रेम के तीन रूप हैं--काम, प्रेम, भक्ति। काम निकृष्टतम रूप है--अधोमुखी; नीचे की तरफ जाता हुआ; शरीर से बंधा हुआ प्रेम। दूसरा रूप है--न ऊपर जाता हुआ, न नीचे जाता हुआ; समतल पर गतिमान; न अधोमुख, न ऊर्ध्वमुख; मध्य में। काम शरीर से बंधा है; प्रेम मन से। भक्ति तीसरा रूप है, आत्यंतिक रूप है--ऊर्ध्वमुखी, ऊपर की तरफ जाता हुआ; न शरीर से बंधा है, न मन से, आत्मा में अवगाहन।
मनुष्य के तीन तल हैं--शरीर, मन, आत्मा। वैसे ही मनुष्य के प्रेम के तीन तल हैं--काम, प्रेम, भक्ति। जब तक तुम्हारा काम प्रेम न बने तब तक तुम सुख न पाओगे। और जब तक तुम्हारा प्रेम भक्ति न बने तब तक तुम आनंद न पाओगे। तुम्हारा काम अगर काम ही बना रहे, तो तुम दुख ही दुख पाओगे। तुम्हारा काम अगर प्रेम बन जाए तो तुम कभी दुख और कभी सुख भी पाओगे। तुम्हारा काम अगर

भक्ति बन जाए तो तुम सदा सुख पाओगे। तुम सुखरूप हो जाओगे। काम से बंधन है; भक्ति में मुक्ति है। प्रेम मध्य में है। इसलिए प्रेम में थोड़ा बंधन भी है और थोड़ी स्वतंत्रता भी। प्रेम समझौता है। इसलिए प्रेम में थोड़ी सी काम की भी छाया पड़ती है और थोड़ी भक्ति की भी। इसलिए तुम जिसे प्रेम करते हो उसमें तुम्हें थोड़ी-थोड़ी कभी-कभी प्रभु की झलक भी दिखाई पड़ती है। तुमने जिसे प्रेम किया है उसमें कभी न कभी प्रभु का आभास भी होता है। कभी-कभी तुम उसके साथ पशु जैसा व्यवहार भी करते हो और कभी-कभी प्रभु जैसा भी। प्रेम मध्य में है।
इसलिए प्रेम में एक तनाव भी है। कामी में ज्यादा तनाव नहीं होता। कामी अपने पशु-स्वभाव से बंधा है। उसके भीतर दुविधा नहीं है। इसलिए तो पशुओं में दुविधा नहीं है। और भक्त भी मुक्त है। उसमें भी दुविधा नहीं है। वह भी पूरा का पूरा परमात्मा से जुड़ा है। और कामी पूरा का पूरा देह में डूबा है। दुविधा होती है प्रेमी में। वह मध्य में खड़ा है। एक हाथ भक्ति की तरफ जा रहा है, एक हाथ काम की तरफ जा रहा है। डांवाडोल है। जैसे कोई रस्सी पर चलता है, ऐसा कंपता है पूरे वक्त।
प्रेम में एक चिंता है, क्योंकि प्रेम उड़ना तो चाहता है आकाश में और पैर उसके जमीन में गड़े हैं। काम तो जड़ों जैसा है और भक्ति पक्षियों जैसी है। और प्रेम बड़ी दुविधा में है, बड़ी अड़चन में है।
इस बात को ख्याल में रखना। भक्ति के मार्ग पर प्रेम का विरोध नहीं है; प्रेम का रूपांतरण है। काम को प्रेम बनाना है, प्रेम को भक्ति बनानी है। विरोध कहीं भी नहीं है। इसलिए तुम जिससे प्रेम करते हो, अगर उसी में तुम परमात्मा को देखना शुरू कर दो तो तुम पाओगे, धीरे-धीरे हरि भक्ति का रस आने लगा। इसलिए तुम जिसके प्रति कामातुर हो उससे प्रेम करो कम से कम, थोड़े- थोड़े बढ़ो। जिसके प्रति कामातुर हो उसे प्रेम करो। जिसके प्रति प्रेम से भरे हो उसके प्रति थोड़ी भक्ति भी लाओ।
लड़ने की कोई जरूरत नहीं है, धीरे-धीरे आहिस्ता-आहिस्ता क्रांति हो जाती है। आहट भी नहीं होती और क्रांति हो जाती है।
जन दरिया हरिभक्ति की, गुरां बताई बाट।
भूला ऊजड़ जाए था, नरक पड़न के घाट।।
मैं तो भूला था। और मैं तो उस तरफ भागा जा रहा था--काम की तरफ, जो कि वस्तुतः ऊजड़ है; जो है तो रेगिस्तान लेकिन दूर-दूर मृग-मरीचिकाएं दिखाई पड़ती हैं। लगता है कि खूब जल के सरोवर हैं, हरे वृक्ष हैं और छायाएं हैं।
और मन भागा जाता है। भागा जा रहा था काम की तरफ।
भूला ऊजड़ जाए था, नरक पड़न के घाट।
कामवासना ही नरक का घाट है। नरक जाना हो तो वही तीर्थ है; वहीं से उतरा जाता है। लेकिन गुरु ने राह बता दी। और बता दी--शब्दों से नहीं, अपने अस्तित्व से। गुरु ने अपने प्रेम के अस्तित्व से खबर दे दी कि जो काम है उसमें बड़ी महिमा छिपी है, उसे मुक्त कर लो।
ऐसा समझो, जलधार बहाओ तो नीचे की तरफ बहती है, अपने आप नीचे की तरफ जाती है। वह जल का स्वभाव है। फिर जल को जमा दो, बरफ बन जाए, तो फिर न नीचे जाता है न ऊपर; जाता ही नहीं, रुक जाता है। वह बरफ का स्वभाव है। फिर जल को वाष्पीभूत कर दो, गरम करो, उड़ा दो, तो जल ऊपर की तरफ जाने लगता है, जब भाप बन जाता है। जल ही है। जब नीचे की तरफ जाता था तब भी जल था; जब बरफ की तरह रुक गया था तब भी जल था, कहीं नहीं जाता था; और अब जब भाप की तरह आकाश की तरफ उठ रहा है, सूर्योन्मुख हो गया है, तब भी जल ही है। जैसे जल की तीन अवस्थाएं हैं ऐसी ही प्रेम की तीन अवस्थाएं हैं। काम में नीचे की तरफ जाता है। प्रेम में नीचे नहीं जाता, ऊपर नहीं जाता, ठहर जाता है। भक्ति में ऊपर की तरफ उठने लगता है। नीचे की तरफ नरक है, ऊपर की तरफ स्वर्ग है। और प्रेमी दोनों के बीच अटका रहता है--स्वर्ग और नरक। एक पैर स्वर्ग में, एक पैर नरक में। प्रेमी दो नावों पर सवार रहता है।
इसलिए दुनिया में प्रेमी या तो एक न एक दिन तय कर लेता है कि कामी हो जाए या तय करना पड़ता है कि भक्त हो जाए। ज्यादा दिन तक प्रेमी प्रेमी नहीं

रह सकता। वह दुविधा की घड़ी है। इसलिए लोग एक ना एक दिन निर्णय ले लेते हैं कि या तो अब कामी हो जाओ और या फिर भक्त हो जाओ।
भौतिकवादी आदमी धीरे-धीरे प्रेम को तो भूल ही जाता है, काम में ही रुक जाता है। अध्यात्म का खोजी धीरे-धीरे प्रेम को तो भूल ही जाता है और भक्ति में डूब जाता है। मगर निर्णय लेना होता है, क्योंकि प्रेम बड़ी दुविधा की दशा है। अगर तुमने निर्णय न लिया तो तुम पीड़ा और बेचैनी में ही रहोगे। इसलिए प्रेमी से ज्यादा तुम और किसी को कष्ट में न पाओगे।
कुछ ना कुछ करना होगा। जीवन में एकरसता लानी होगी। या तो नीचे के तल
पर लाओ एकरसता या ऊपर के तल पर। या तो पशु बन कर एकरस हो जाओ... ।
देखा, पशु एकरस हैं! पशु पागल नहीं होते, विक्षिप्त नहीं होते, बेचैन नहीं होते, आत्मघात नहीं करते। एकरस हैं। जहां हैं वहां पूरी तरह से हैं।
उन्हें पता ही नहीं कि इसके ऊपर होना भी कुछ हो सकता है।
और भक्त भी एकरस है। वह भी भूल गया है कि इससे नीचे भी कुछ हो सकता है।
लेकिन जो दोनों के बीच में खड़ा है, उसका कष्ट बहुत है।
भूला ऊजड़ जाए था, नरक पड़न के घाट।
नहीं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुधबुध ग्यान दे, सत्गुरु किया सुजान।।
नहिं था राम रहीम का, ...
जब तक तुम राम के नहीं हो, रहीम के भी कैसे होओगे? और जब तक रहीम के नहीं हो तब तक राम के भी कैसे होओगे? तो लोग बातें कर रहे हैं राम और रहीम की; न कोई राम का है न कोई रहीम का है। क्योंकि जो एक का भी हो गया, वह सबका हो गया। जो ठीक से मुसलमान हो गया वह हिंदू भी हो गया और जैन भी हो गया और ईसाई भी हो गया। और जो ठीक से हिंदू हो गया वह ठीक से मुसलमान भी हो गया। असल में धार्मिक आदमी होने की बात है; हिंदू-मुसलमान होने की बात ही नहीं है।
नहिं था राम रहीम का, ...
दरिया कहते हैं, न तो राम का था न तो रहीम था, बातचीत थी। मंदिर जाता था
तो भी कुछ अर्थ न था; वहां के राम से मेरी कोई पहचान न थी। और मस्जिद जाता था तो भी व्यर्थ था; वहां के रहीम से मेरी कोई पहचान न थी। अपने भीतर के ही भगवान से पहचान न हो तो मंदिर-मस्जिदों के भगवान से पहचान नहीं हो पाती। पहली पहचान तो आत्म-पहचान है।
जन दरिया हरि भक्ति की, गुरां बताई बाट।
लेकिन गुरु ने राह सुझा दी। गुरु ने आंख खोल दी। गुरु ने बुझी बाती जला दी।
दरिया सुध-बुध ग्यान दे, सत्गुरु किया सुजान।
--मैं तो मतिहीन था।
मन तो सबके पास है, मति बहुत कम लोगों के पास है।
मति का क्या अर्थ होता है? भाषाकोश में तो मति का अर्थ मन ही होता है, लेकिन जीवन के अस्तित्व में सोए हुए मन का नाम मन, जागे हुए मन का नाम मति, सुमति। जो मूर्च्छित है वह मन और जो जाग गया वह मति। यही मन जाग कर सुमति हो जाता है, सन्मति हो जाता है, मति हो जाता है।
नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
बुद्धि तो थी, सोच-विचार था, लेकिन मति नहीं थी। बुद्धि तो थी, लेकिन बुद्धि का भी ठीक उपयोग करने का बोध नहीं था। अधिक लोग बुद्धि का दुरुपयोग कर रहे हैं। अधिक लोग ऐसे हैं जैसे अपने ही हाथ से अपनी ही गरदन काट रहे हों। उनकी बुद्धि ही उनके जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई हो गई है। अपनी बुद्धि से वे इतने ही उपाय करते हैं जिनसे उनका जीवन ऊपर नहीं उठ पाता। तो कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि सरल-चित्त लोग, जिनको तुम बुद्धू कहो, वे भी गतिमान हो जाते हैं ऊर्ध्व दिशा में; और जिनको तुम बुद्धिमान कहते हो--अति बुद्धिमान सोच-विचार से भरे हुए लोग, वे जरा भी गतिमान नहीं हो पाते। वे हजार तर्क करते हैं। और उनके सब तर्क उन्हीं को खंडित करते हैं।
तुम कभी ख्याल करनाः जब तुम ईश्वर के विरोध में कोई तर्क देते हो तो ध्यान रखना, इससे ईश्वर खंडित नहीं होता, सिर्फ तुम्हारा भविष्य खंडित

होता है। ईश्वर क्या खंडित होगा? ईश्वर को क्या फर्क पड़ेगा? तुम मानो न मानो, इससे ईश्वर को तो कुछ भेद नहीं पड़ता; लेकिन न मानने से तुम्हारी संभावना का द्वार बंद हो गया। न मानने से जो बीज अंकुरित हो सकता था, तुमने कह दिया कि नहीं, अंकुरण होता ही नहीं। तो बीज पत्थर की तरह पड़ा रह जाएगा। ईश्वर के विरोध में तुमने अगर कुछ भी कहा हो तो वह तुम्हारे ही विरोध में गया है। तुमने अगर सत्य को झुठलाने के लिए कुछ कोशिश की हो तो सत्य नहीं झुठलाया जाता; तुम्हीं झुठलाए जाते हो। यह सब ऐसा ही है जैसे कोई आकाश की तरफ मुंह उठाए और थूके, वह थूक अपने पर ही गिर जाता है।
मगर बुद्धिमान आदमी इस तरह की बातें करते हैं। मति नहीं है। मति होती
तो अपने जीवन की सारी ऊर्जा का एक ही उपयोग करते, कि जान लूं उसे कि मैं कौन हूं। छोड़ो ईश्वर! ईश्वर शब्द से कुछ लेना-देना नहीं है। अगर बुद्धिमान हो तो इतना तो करो कि जान लो कि मैं कौन हूं। कहां से आता हूं, कहां जाता हूं, इस चौराहे पर कैसे आकर खड़ा हो गया हूं, कौन हूं, इतना तो जान लो!
नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुधबुध ग्यान दे, सत्गुरु किया सुजान।।
सुधबुध ग्यान दे, ...
ख्याल करना, गुरु ने कोई शास्त्र-ज्ञान नहीं दिया, सुध-बुध दी।
दो तरह के ज्ञान हैं। एक शास्त्रीय ज्ञान है, जो विद्यालय-विश्वविद्यालय में मिलता है। एक शास्त्रीय ज्ञान है, शब्द-ज्ञान है, उसका बड़ा जंगल है। उसमें भटके तो जन्मों-जन्मों लग जाएं तो भी बाहर न आ सको। जंगलों में भटका तो निकल आए, किताबों में भटका नहीं निकल पाता। क्योंकि जंगल की तो एक सीमा है, शब्दों की कोई सीमा नहीं है।
सुधबुध ग्यान दे, ...
सुध का अर्थ है चेताया। चेताया कि तू कौन है। जगाया, झकझोरा। उस झकझोरने में ही बुध, बोध पैदा होता है। और इस सुध-बुध का नाम ही ज्ञान है। शेष तो सब व्यर्थ बकवास है। शेष तो ऐसा है जैसे लगी है भूख और पाकशास्त्र खोले हुए किताब पढ़ रहे हैं। पढ़ो, खूब, भूख मिटती नहीं। लगी तो है प्यास और फार्मूला लिए बैठे हैं कि जल कैसे निर्मित होता है--एच.टू.ओ.। रखे रहो इस फार्मूले को, इसका ताबीज बना लो, इसको गले में लटका लो, इसका मंत्र-जाप करोः एच.टू.ओ., एच.टू.ओ., एच.टू.ओ.! गुनगुनाओ। मगर प्यास नहीं बुझेगी। प्यास मंत्रों से नहीं बुझती। प्यास के लिए जल चाहिए। और आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि तुम एच.टू.ओ. का पाठ कर रहे हो और सामने नदी बह रही है। मगर तुम अपने पाठ में ऐसे तल्लीन हो कि नदी देखने कि सुविधा किसे!
दरिया सुधबुध ग्यान दे, सत्गुरु किया सुजान।
अजान था, सुजान किया।
सत्गुरु सब्दां मिट गया, दरिया संसय सोग।
औषध दे हरिनाम का, तन मन किया निरोग।।
सत्गुरु सब्दां मिट गया, ...
सदगुरु के शब्दों को सुन कर, सब संशय मिट गए, सब संदेह मिट गया।
अब इसको थोड़ा समझना। ऐसा मत समझना कि जो भी दरिया के गुरु के पास गए थे, सभी के संशय मिट गए होंगे। सुनने की एक कला चाहिए। तुम बुद्ध के पास भी जाओ तो भी संशय ले आ सकते हो। सुनने की एक कला चाहिए। सुनने का एक अनूठा ढंग चाहिए। इस भांति सुनना है कि तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा तर्कजाल बीच में बाधा न दे। प्रेम से सुनना है, तर्क से नहीं। तर्क-शून्य होकर सुनना है। वही श्रद्धा का अर्थ है।
दरिया के तो मिट गए सारे शोक, सारे संशय, क्योंकि इस आदमी के प्रेम में
पड़ गए। इस आदमी को देखा नहीं, इस आदमी की आंख में आंख पड़ी नहीं, कि सुध-बुध खो बैठे।
अब यह बड़े मजे की बात है! जिसके साथ तुम सुध-बुध खो बैठो उसी के पास सुध-बुध पैदा होती है। यह बड़ा विरोधाभास है।

कुछ तुम्हारी निगाह काफिर थी,
कुछ मुझे भी खराब होना था

देखी होंगी वे आंखें--रस से सरोबोर! देखी होंगी वे आंखें शांत झील की तरह, जिन पर कमल तिरते हों! देखी होंगी वे आंखें और डूब गए होंगे उनमें। उस प्रेम ने पकड़ लिया। पकड़े गए। बहुत बुद्धिमान होते, पढ़े-लिखे होते तो सोचते कि कहीं इस आदमी ने सम्मोहित तो नहीं कर लिया! कि मैं यह किस जाल में पड़ा जा रहा हूं! अपने को सम्हालते। अपने तर्क को निखारते। सुनते भी तो भी डूब कर न सुनते, दूर-दूर खड़े रह कर सुनते। सुनते तो ऐसे सुनते जैसे कि न्यायाधीश सुनता है अदालत में। सुनते तो ऐसे सुनते जैसे परीक्षक होकर आए हैं। सुनते तो ऐसे सुनते कि निर्णय मुझे करना है कि ठीक हो कि गलत
अब, काश तुम्हें ही पता होता कि क्या ठीक है और क्या गलत है तो आए ही क्यों थे?
सुनने वाले को ऐसे सुनना चाहिए कि मुझे तो पता नहीं है कि क्या ठीक और क्या गलत इसलिए मैं कैसे निर्णायक बनूंगा? निर्णय छोड़ कर सुनता हूं। मुझे तो पता नहीं है क्या ठीक है और गलत है, शायद इस आदमी को पता हो। एक मौका इसे दो। इस आदमी के सामने अपने हृदय को खोल दो। इस आदमी को उठाने दो संगीत हृदय में। इस आदमी को छेड़ने दो तार, इस आदमी को बजाने दो वीणा मेरे हृदय की। लेकिन तर्कनिष्ठ आदमी प्रविष्ट ही नहीं होने देता किसी को हृदय तक। खुद तो जानता नहीं कैसे अपनी वीणा बजाए और जो जानते हैं उनके हाथ को भीतर नहीं जाने देता। कहता है, बाहर रखना हाथ, सम्मोहित मत कर लेना, कहीं मुझे उलझा मत देना, किसी झंझट में न पड़ जाऊं।
अब यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं, लेकिन तुम डरे बहुत रहते हो कि कहीं कुछ खो न जाए! है क्या तुम्हारे पास खोने को? सम्मोहित करके तुमसे लिया क्या जा सकता है? आत्मा तो तुम्हारी बिल्कुल खाली है। डरते क्यों हो? भय क्या है? खोओगे क्या? तुम्हारे पास क्या है? लेकिन बड़ा डर है। बड़े होश से सुनते हो। होश का मतलब? होश नहीं। होश का मतलब इतना ही कि दूर-दूर रहते हो, भागे-भागे रहते हो। एक जगह तक जाते हो, वहां से आगे नहीं बढ़ते। ख्याल रखते हो कि इतनी दूर खड़ा रहूं कि अगर भागने की नौबत आ जाए तो भाग सकूं, पकड़ा न जाऊं। बड़ी होशियारी से सुनते हो। बड़ी चालबाजी से सुनते हो। बड़ी चालाकी से सुनते हो। जिसने चालाकी से सुना वह चूक जाएगा। ये बातें चालाकों के लिए नहीं हैं। ये बातें दीवानों के लिए हैं।
सत्गुरु सब्दां मिट गया, ...
क्या मिट गया? दरिया मिट गया। सुने वे शब्द, सुने वे प्यार भरे शब्द, सुने वे मिठास भरे शब्द, सुने वे मस्ती के शब्द! ऐसा नहीं है कि उन शब्दों में बड़ा तर्क था, इसलिए वे जंचे। उन शब्दों में बड़ा प्रेम था, इसलिए ये बड़े फर्क की बातें हैं। ऐसा नहीं है कि उन शब्दों में बड़ा सिद्धांत था। सिद्धांतियों के पास तो दरिया बहुत गए थे, पंडित और मौलवियों के द्वार खटखटाए थे। सिद्धांत वहां खूब था, सघन था। तर्क वहां काफी प्रतिष्ठित था। जो भी वे कहते थे, प्रत्येक बात के लिए शास्त्रों से प्रमाण देते थे। यहां न तो शास्त्र था न प्रमाण था, न कोई तर्क था; यहां तो बड़ी बेबूझ बातें हो रही थीं। यहां तो पियक्कड़ बैठे थे। यह तो मधुशाला थी। ये प्रेम जी महाराज की मधुशाला में डूब गए।
सत्गुरु सब्दां मिट गया, --
यहां तो कुछ ऐसी बातें कही जा रही थीं, जो कही ही नहीं जा सकतीं। यहां
तो कुछ ऐसी बातें कही जा रही थीं कि अगर तुम शब्दों पर ही अटक जाओ तो समझ ही न सकोगे। शब्दों के बीज जो खाली जगह होती है, उसको सुनना पड़ता है। पंक्तियों के बीच में जो रिक्त स्थान होता है उसमें झांकना पड़ता है। यहां हर शब्द के साथ जुड़ा हुआ निःशब्द था। उस निःशब्द में झांकना होता है। जब कोई शब्द को बहुत श्रद्धा से सुनता है तो उसके हाथ में निःशब्द आ जाता है। जब शब्दों को कोई बहुत सहानुभूति और लगाव से सुनता है तो फिर शब्दों में जो छिपा हुआ शून्य है वह उसमें झलक देने लगता है। तुमने अगर बहुत ज्यादा चालाकी से सुना तो शब्द को तुम मार डालते हो, उसकी मृत्यु हो जाती है;

मुर्दा शब्द तुम्हारे हाथ में रह जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा सिद्धांत तुम्हारे हाथ में आ जाएगा, लेकिन शून्य चूक जाएगा। और असली बात वही थी। ऐसा समझो कि मैंने तुम्हारे पास एक पत्र भेजा और तुमने लिफाफा रख लिया और भीतर जो पत्र था वह तुमने देखा ही नहीं, या भूल ही गए, या खो ही दिया, या खोला ही नहीं लिफाफा, लिफाफे में ही बहुत मोहित हो गए। शब्द तो लिफाफे हैं; उनके भीतर जो शून्य है छिपा हुआ, वहीं है संदेश। मगर शून्य को सुनना हो तो हृदय जरा भी सुरक्षा करता हो अपनी, तो नहीं सुन पाओगे। असुरक्षित होकर, सब भांति समर्पित होकर, निवेदित होकर... ।
सत्गुरु सब्दां मिट गया, दरिया संसय सोग।
दरिया ही मिट गया फिर संशय कहां! संशय तो अहंकार की छाया है। तुम जब तक
हो तब तक संशय है। तुम गए, संशय गया। और संशय गया तो सब शोक, सब दुख गए; क्योंकि संशय के कारण हम विभक्त हैं, खंड-खंड टूटे हैं।

बंटी है टूट कर यह जिंदगी इस भांति टुकड़ों में
दरारें जोड़ना इनकी नहीं इतना सरल कोई

बड़े टूटे हैं टुकड़ों में हम।

बंटी है टूट कर यह जिंदगी इस भांति टुकड़ों में
दरारें जोड़ना इनकी नहीं इतना सरल कोई

जब तक कि तुम किसी के प्रेम में बिल्कुल न बह जाओ, तुम जुड़ न पाओगे।
जब तक कि तुम किसी के प्रेम में बिल्कुल न बह जाओ, तुम जुड़ न पाओगे। जब
तक कि तुम किसी के प्रेम में बेबस न हो जाओ, तुम जुड़ न पाओगे। प्रेम जोड़ता है, तर्क तोड़ता है। विचार खंडित करते हैं, निर्विचार अखंड बनाता है।
तुम मुझे सुन रहे हो, दो ढंग से सुन सकते हो। एक तो दरिया का ढंग--तो तुम सौभाग्यशाली। किसी दिन तुम कह सकोगेः सत्गुरु सब्दां मिट गया, दरिया संसय सोग। और एक ऐसे तुम सुन सकते हो जैसे विद्यार्थी सुनता है कि नोट लेने हैं, कि क्या ये कह रहे हैं ठीक है या नहीं, चलो सोच कर रख लेंगे, बाद विचार कर लेंगे। और जब तुम सुन रहे हो तब भी भीतर तुम्हारा अतीत, तुम्हारा जाना हुआ बोल रहा है कि हां ठीक है, यह रामायण से मेल खाता है, यह कुरान से मेल खाता है; यह बात नहीं जंचती, यह हमारे धर्म के खिलाफ है। ऐसा तुम पूरे वक्त कमेंट्री कर रहे भीतर। तुम चल रहे हो। इधर मैं बोल रहा हूं, उधर तुम बोल रहे हो। तब तो बड़ा मुश्किल होगा। कुछ का कुछ सुन लोगे। कुछ छूट जाएगा, कुछ जुड़ जाएगा। कुछ का कुछ हो जाएगा। फिर तुम उतने सौभाग्यशाली नहीं सिद्ध होओगे जैसे दरिया सौभाग्यशाली सिद्ध हुए।
सत्गुरु सब्दां मिट गया, ...
जिसने प्रेम से किसी सदगुरु के शब्द सुन लिए वह मिट ही जाता है। उसी मिटने में होना है। उसी मृत्यु में नया जन्म है।
औषध दे हरिनाम का, तन मन किया निरोग।
और सब आरोग्य हो गया, सब निरोग हो गया, सब स्वस्थ हो गया। सब रोग गए, क्योंकि सारे रोग मन के हैं। सारे रोग अस्मिता के हैं।
औषध दे हरिनाम का, ...
हरिनाम की औषधि उसे ही दी जा सकती है जो प्रेम से सुनने में तत्पर हो जाए।
सुनो, अपूर्व वचन है--
रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सत्गुरु एक ही शब्द से, दीन्हीं तुरत उड़ाय।।
रंजी का अर्थ होता हैः धूल।
रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
दरिया कहते हैं, मेरे अंग-अंग में धूल लगी थी शास्त्र-ज्ञान की। सुनी- सुनाई बातें, पढ़ी-पढ़ाई बातें--लिपटी थीं चारों तरफ। उधार बातें, बासी बातें।

रंजी सास्तर ग्यान की, ...
शास्त्र-ज्ञान की धूल मुझे खूब लिपटी थी चारों तरफ। बकवास थी सब, मगर खूब लिपटी थी। उसी में मैं गंदा हो रहा था। स्नान की जरूरत थी। और उस धूल को मैं सब कुछ समझे बैठा था।
रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सत्गुरु एक ही शब्द से, दीन्हीं तुरत उड़ाय।।
और सदगुरु के एक शब्द से स्नान हो गया, वह सारी धूल उड़ गई। सदगुरु वही
जो तुमसे तुम्हारे शास्त्र छीन ले। जो तुम्हें शास्त्र देता हो वह सदगुरु नहीं--जो तुमसे तुम्हारे शास्त्र छीन ले। जो तुम्हें ज्ञान दे वह सदगुरु नहीं--जो तुम्हें बोध दे और तुम्हारा सारा ज्ञान छीन ले। सदगुरु वह नहीं जो तुम्हें बहुत ज्यादा सिद्धांती बना दे--सदगुरु वही जो तुम्हारे जीवन से सारे सिद्धांतों की धूल अलग कर दे; तुम्हें जीवंत, जाग्रत बना दे। शास्त्र न दे, तुम्हें शास्त्र बना दे--वही सदगुरु।
तुम्हारे भीतर भी वही तो छिपा है जो उपनिषद के ऋषियों में छिपा था। तुम उपनिषदों को कब तक पकड़े बठे रहोगे? कब भीतर के ऋषि को मौका दोगे कि गुनगुन हो, गीत उठे? तुम्हारे भीतर के ऋषि को कब अवसर दोगे? वेद में जिन्होंने गाए अपूर्व वचन, वैसा ही चैतन्य तुम भी लिए चल रहे हो। इसको कब मौका दोगे कि तुम्हारा वेद प्रकट हो?
जीसस और बुद्ध और महावीर तुम्हारे भीतर भी बोलने को आतुर हैं, क्योंकि तुम्हारी भी आत्यंतिक संभावना वही है। तुम भी बुद्ध होने को हो; उससे कम पर तुम्हारी भी यात्रा पूरी नहीं होगी। लेकिन जब तक तुम उधार को बांधे रहोगे, गठरी उधार की सिर पर लिए रहोगे तब तक तुम्हारी अपनी संपदा पैदा न होगी।
तो गुरु तो वही है जो तुम से शास्त्र छीन ले।
मैंने सुना, चीन में एक अदभुत झेन फकीर हुआ, हुईनेंग। निकल रहा है आश्रम में, बगीचे के पास से गुजर रहा है, और उसका एक शिष्य वृक्ष के नीचे बैठा बुद्ध-वचनों को कंठस्थ कर रहा है, रट रहा है। वह खड़े होकर सुनता है और उसे कहता है, सुन! ख्याल रखना, कहीं ऐसा न हो कि शास्त्र तुझे गड़बड़ा दे, तू शास्त्र को गड़बड़ा देना!
अपूर्व वचन है कि तू शास्त्र को गड़बड़ा देना; कहीं ऐसा न हो कि शास्त्र तुझे गड़बड़ा दे। फिर तो झेन फकीरों ने इस पर काफी काम किया।
फिर तो दूसरे एक झेन फकीर ने अपने सारे शिष्यों को अपने मरते वक्त इकट्ठा किया और सारे शास्त्र इकट्ठेेेेेे करके आग लगवा दी और कहा कि देखो यह मेरा आखिरी संदेश है। जब तक ऐसे ही तुम्हारे भीतर के सभी शास्त्र न जल जाएंगे तब तक तुम्हारे भीतर का शास्ता पैदा न होगा।
रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सत्गुरु एकहि सब्द से, दीन्हीं तुरत उड़ाय।।
पर यह कैसे होता होगा? क्योंकि कितने ही तो लोग, कितने लोगों की बातें सुनते हैं, कुछ होता नहीं। एक ही शब्द से हो गया होगा?
प्रेम से सुना जाए तो एक शब्द भी काफी हो जाता है। प्रेम से न सुना जाए
तो करोड़ों शब्द भी काफी नहीं होते। फिर समझदार को इशारा काफी होता है। बुद्ध कहते थेः एक दिन एक आदमी आया और उसने बुद्ध को कहा कि आप तो संक्षिप्त में कह दें, मैं जल्दी में हूं। आप सार बात कह दें, बस उसी को पूरा कर लूंगा। और बुद्ध ने उससे कुछ भी न कहा, वे चुप ही बैठे रहे। वह आदमी आधा घड़ी चुप बैठा रहा, फिर बड़ा पुलकित होकर उठा, बुद्ध के चरण छुए और कहाः धन्यवाद! मिल गई बात। बुद्ध ने कही नहीं और उसको मिल गई। मिल गई बात!
जब वह चला गया तो आनंद ने बुद्ध से पूछा कि इसको क्या मिल गया? क्योंकि मैं इधर तीस साल से आपके साथ हूं--सुन-सुन कर थक गया हूं। और यह आदमी आधा घड़ी बैठा और आपने इससे कुछ कहा भी नहीं, इसको मिला कैसे? इसको मिला क्या? यह मामला क्या है? और आप भी प्रसन्न थे जब उसने कहा मिल गया और वह भी बड़ा अपूर्व आनंदित था! जरूर कुछ हुआ तो है, कुछ गुप चुप हो गया!
बुद्ध ने कहाः आनंद, मुझे याद है जब हम राजकुमार थे, आनंद बुद्ध का ही चचेरा भाई था। तो मुझे घोड़ों का बहुत शौंक था, घुड़सवारी में तू नंबर एक था।

तुझे ख्याल होगा, भूल नहीं गया होगा। घोड़े कई तरह के होते हैं। एक तो वह घोड़ा होता कि कि मारो मारो, फिर भी चलता नहीं। एक वह भी घोड़ा होता है कि जरा मारा कि चल पड़ता है। फिर एक वह भी घोड़ा होता है, मारने की जरूरत नहीं पड़ती, कोड़ा फटकारा कि चल पड़ता है। और फिर एक वह भी घोड़ा होता है आनंद, हमारे पास ऐसे घोड़े थे तुझे याद होगा कि उसको फटकारना भी नहीं पड़ता कोड़ा क्योंकि वह भी उसका अपमान हो जाएगा--बस कोड़ा हाथ मैं है, इतना काफी है। फटकारना भी नहीं पड़ता। और तुमने उस आखिरी परम घोड़े को भी देखा होगा जिसको, घोड़े को, कोड़े को भी नहीं रखना पड़ता जिसके साथ, क्योंकि वह उसका अपमान हो जाएगा। उसे तो कोड़े की छाया भी काफी है। दूर की छाया भी पर्याप्त है। ऐसा ही यह जो आदमी था--यह घोड़ा था--उसे कोड़े को छाया काफी थी।
आदमी-आदमी अलग अलग ढंग से सुनते हैं। दरिया ने बड़े डूब कर सुना होगा।
एक शब्द तोड़ गया सारी कारा, सारा अंधकार। एक किरण जगा गई भीतर की रोशनी को।
जैसे सत्गुरु तुम करी, मुझसे कछू न होए।
विष-भांडे विष काढ़कर, दिया अमीरस मोए।।
और दरिया कहते हैंः गजब किया! खूब किया! चमत्कार किया! कैसे तुमने किया? --जैसे सत्गुरु तुम करी, मुझसे कछू न होए। क्योंकि मैं जानता हूं कि यह मेरे किए नहीं हुआ है। यह मेरे किए तो होता ही नहीं था, मैं तो कर-कर हार गया था। मैं तो थक रहा था। मैं तो विषाद से भर रहा था, मैं तो निराश होने लगा था। मुझे तो हताशा घेरने लगी थी। मेरे किए तो कुछ नहीं हो रहा था। जैसे सत्गुरु तुम करी, मुझसे कुछू न होए।
अब मुझे पक्का पता है कि यह प्रसाद से हुआ है।
ख्याल रखना, ध्यान के मार्ग पर प्रयास, और प्रेम के मार्ग पर प्रसाद, प्रभु-कृपा। प्रभु-कृपा की पहली किरण--गुरु-कृपा।
विष-भांड़े विष काढ़कर, ...
चमत्कार तुमने किया कि मैं तो विष से भरा हुआ घड़ा था, तुमने विष भी निकाल दिया और कब मुझे अमृत से भर दिया मुझे पता भी न चला!
सत्गुरु एकहि शब्द से, दिया अमीरस मोए।
एक शब्द मात्र से! इशारे मात्र से! आंख में आंख डाल दी और सब कर दिया! विष-भांड़े विष काढ़कर, ...
कठिन था काम यह, मगर पलक मारते हो गया।
परमात्मा पलक मारते हो जाता है। यह काम कठिन है अगर तुम करना चाहो; अगर तुम होने दो तो यह काम कठिन नहीं है, बहुत सरल, बहुत सहज है। तुम बाधा न डालो बस।
तो फर्क समझना। ध्यान के मार्ग पर श्रम। इसलिए ध्यान का मार्ग अथक परिश्रम का मार्ग है। इसलिए तो बुद्ध और महावीर की संस्कृति ‘श्रमण संस्कृति’ कहलाती है--श्रम। वहां भक्ति का कोई उपाय नहीं है, कोई व्यवस्था नहीं है। वहां ध्यान ही एकमात्र मार्ग है। इसलिए बुद्ध और महावीर दोनों के मार्ग पर स्त्री थोड़ी परेशान रही है, क्योंकि भक्ति का वहां कोई उपाय नहीं है। महावीर के मानने वाले तो कहते हैं कि स्त्री-पर्याय से तो मोक्ष नहीं हो सकता।
स्त्री-पर्याय का क्या अर्थ होता है? स्त्री-पर्याय का अर्थ होता है-- प्रेम की पर्याय। बुद्ध ने वर्षों तक स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी, इनकार करते रहे। और जब दी भी तो बड़े संकोच से दी और देने के बाद कहा कि आनंद, तुम मानते नहीं तो देता हूं; लेकिन ध्यान रखना, मेरा धर्म जो पांच हजार साल चलता, अब पांच सौ साल से ज्यादा नहीं चलेगा।
यह बात क्या है? ऐसा क्या कारण है! धर्म से इसका कोई संबंध नहीं है--एक विशिष्ट दृष्टि से। ध्यान पुरुषगत है--श्रम, अथक श्रम, प्रयास, संकल्प, साधना। प्रेम स्त्रीगत है--प्रसाद, स्वीकार-भाव, अहोभाव, प्रतीक्षा, प्रार्थना। स्त्री ग्रहण करती है; पुरुष खोजता है। पुरुष यात्रा पर निकलता है; स्त्री बाट जोहती है।
और ऐसा मत समझना कि सभी पुरुष पुरुष हैं और सभी स्त्रियां स्त्रियां हैं। ऐसा मत समझना। कुछ स्त्रियां हैं जो ध्यान से उपलब्ध होंगी। और बहुत पुरुष हैं जो प्रेम से उपलब्ध होंगे। इसलिए स्त्री-पुरुष का विभाजन

शरीरगत नहीं है सिर्फ, जैविक नहीं है; बहुत गहरा है। जैसे चैतन्य हैं; अगर चैतन्य को आध्यात्मिक दृष्टि से सोचना हो तो स्त्री कहना पड़ेगा, पुरुष नहीं। क्योंकि पाया भक्ति से। ठीक मीरा जैसे व्यक्ति हैं; जरा भी भेद नहीं। शरीर के भेद से क्या फर्क पड़ता है? थोड़े हार्मोन कम या ज्यादा इधर-इधर, इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। वह भेद तो शरीर का है। चैतन्य की जो चेतना है वह ठीक मीरा जैसी है।
कश्मीर में एक महिला हुई, लल्ला। वह महावीर जैसी है। वह नग्न रही। पुरुष का नग्न रहना इतना कठिन नहीं मालूम पड़ता, स्त्री का नग्न रहना बहुत कठिन मालूम पड़ता है। मगर लल्ला रही, जीवन भर नग्न रही। महावीर की भी हिम्मत नहीं पड़ी की अपनी दीक्षित संन्यासिनियों को कहें कि तुम नग्न हो जाओ। पुरुष तो नग्न हुए, लेकिन स्त्रियों को रोक दिया। शायद इसी कारण कहा कि एक दफा फिर तुमको जन्म लेना पड़ेगा; पुरुष बन कर जब तुम सब तरह से छोड़ कर दिगंबर हो जाओगी तभी पाओगी। मगर इस जन्म में तो कैसे होगा?
लेकिन लल्ला कश्मीर की नग्न रही। लल्ला को स्त्री कहना ठीक नहीं। लल्ला ठीक वैसी ही है जैसे महावीर।
तो इस भेद को ऐसे मत मान लेना कि यह शरीरगत ही है; यह ज्यादा आत्मगत है।
जैसे सत्गुरु तुम करी, ...
दरिया के पास स्त्री का दिल है। सभी भक्तों के पास स्त्री का दिल है।
... मुझसे कछु न होय।
तुमने किया, हो गया। मेरे किए कुछ भी न होता।
सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेसा मोहि।
सत्गुरु ने किरपा करी, खिड़की दीन्हीं खोहि।।
सब्द गहा सुख ऊपजा, ...
शब्द के गहते ही--शब्द को लेते ही भीतर, सुख उपजा। इधर तुमने शब्द दिया, इधर सुख उपजा। तुम्हारे शब्द से सुख की वर्षा हो गई।
सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेशा मोहि।
सारा भय मिट गया।
समझो। आमतौर से तुम सोचते हो कि प्रेम और घृणा विपरीत हैं। यह बात सच नहीं है। प्रेम और भय विपरीत हैं। प्रेम और घृणा विपरीत नहीं हैं--प्रेम के साथ घृणा चल सकती है। इसलिए विपरीत नहीं कह सकते। तुम जिसको प्रेम करते हो उसी को कई बार घृणा करते हो। सच तो यह है उसी को घृणा करोगे, और किसको घृणा करोगे? पति पत्नी को, पत्नी पति को--जिससे तुम प्रेम करते हो उसी से तो झगड़ोगे! उसी पर नाराज भी होओगे, उसी को घृणा भी करोगे। जिसके लिए जीते हो, कभी-कभी सोचने लगते हो मिट ही जाए, मर ही जाए! जिसके जीने के लिए जान दे सकते हो, कभी उसकी जान लेने का विचार भी मन में आ जाता है।
प्रेम के साथ घृणा चल सकती है, कुछ अड़चन नहीं है। लेकिन प्रेम के साथ
भय कभी नहीं चलता; इसलिए असली विरोध तो प्रेम और भय में है। जहां प्रेम आया, भय गया। जहां भय आया वहां प्रेम गया।
मैंने सुना है, एक जापानी कथा हैः एक युवक विवाह करके... एक योद्धा विवाह करके अपने घर लौट रहा है--अपनी नव-वधू को लेकर। नाव पर दोनों सवार हैं। तूफान आ गया है। नाव डांवाडोल हो रही है--अब गई, तब गई! लेकिन वह युवक निश्चिंत बैठा है। वह पत्नी उसकी घबड़ाने लगी। वह कंपने लगी। उसने उससे कहा, तुम इस तरह निश्चिंत बैठे हो जैसे कुछ भी नहीं हो रहा है! देखते नहीं कि नाव डूबी, अब बचना मुश्किल है। अभी हम विवाहित ही हुए थे, अभी विवाह का सुख भी न जाना था--और ये कैसे दुर्दिन आ गया! यह कैसी दुर्घटना हुई जा रही है। तुम बैठे क्यों हो? तुम ऐसे निश्चिंत बैठे हो जैसे घर में बैठे हो, जैसे कुछ भी नहीं हो रहा!
उस युवक ने अपने म्यान से तलवार निकाल ली--और तलवार उस युवती के, अपनी पत्नी के गले के पास ले गया। ठीक बिल्कुल पास ले गया कि जरा बाल भर का फासला रह गया। जरा सी चोट की कि गरदन अलग हो जाए। वह युवती हंसने लगी। उस युवक ने कहा, तू हंसती है? घबराती नहीं? तलवार तेरी गरदन पर है--नंगी तलवार; जरा सा इशारा और तू गई। घबड़ाती नहीं?

उसने कहाः क्या घबड़ाना? तलवार जब तुम्हारे हाथ में है... ।
उस युवक ने कहाः यही मेरा उत्तर है। जब तूफान परमात्मा के हाथ में है
तो क्या घबड़ाना?
तलवार उसने वापस म्यान में रख ली। इधर वह तलवार म्यान में वापस रख रहा
था कि उधर तूफान भी म्यान में वापस रख लिया गया।
प्रेम जहां है वहां भय नहीं। इसलिए भक्त से ज्यादा निर्भय कोई भी नहीं होता जिसको तुम ध्यानी कहते हो, वह भी डरा रहता है--बहुत डरा डरा रहता है कि कहीं यह न चूक जाए, कहीं यह भूल न हो जाए, कहीं यह पाप न हो जाए, कहीं यह नियम उल्लंघन न हो जाए!
बुद्ध के भिक्षु के लिए तैंतीस हजार नियम! सोचो, चिंता तो रहती होगी-- तैंतीस हजार नियम! याद ही रखना मुश्किल है; कुछ न कुछ तो भूल होने ही वाली है। नरक निश्चित ही है। तैंतीस हजार नियम हों तो नरक से बचोगे कैसे? लेकिन प्रेमी को कोई भय नहीं। वह कहता है, तुम जानो। अगर भूल करवानी
हो भूल करवा लेना; अगर न करवानी हो मत करवाना।
भक्त का अभय पूरा है; समग्र है।
सब्द गहा सुख ऊपजा, ...
तुम्हारे शब्द को गहा ही नहीं कि सुख उपज गया।
यह गहा शब्द भी ख्याल रखना--जैसे स्त्री ग्रहण करती है। जब एक नया जीवन जन्मता है जगत में तो पुरुष देता है, स्त्री ग्रहण करती है। सिर्फ गहती है। ग्रहण करते ही उसके गर्भ में अंकुरण हो जाता है। जैसे पृथ्वी बीज को ग्रहण करती है, ग्रहण करते ही बीज में अंकुरण पैदा हो जाता है। जन्म शुरू हुआ, जीवन की यात्रा हुई, उत्सव का प्रारंभ हुआ।
कहते हैं दरियाः सब्द गहा सुख ऊपजा।
इधर मैंने तुम्हारा शब्द अपने भीतर लिया कि उधर मैंने पाया कि सुख की वर्षा हो गई; सुख ही सुख के फूल खिल गए।
... गया अंदेशा मोहि।
और बड़े चकित होने की बात है कि उस क्षण मैंने पाया कि सब भय मेरे विसर्जित हो गए। कोई भय नहीं बचा। प्रेम में भय कहां! जैसे रोशनी में अंधेरा नहीं, ऐसे प्रेम में भय नहीं। लाए दिया कि रोशनी आई नहीं कि अंधेरा गया नहीं। ऐसे ही जला दिया प्रेम का, कि भय समाप्त हो जाता है। और जिसके जीवन में भय न रहा, उसके जीवन में ही आनंद हो सकता है।
भक्त के जीवन में भय नहीं, क्योंकि यह जगत दुर्घटना नहीं है, यह जगत परमात्मा के हाथों में है। यह तूफान उसके हाथ में है। यह तलवार उसकी है। भक्त मौत के सामने भी भयभीत नहीं होता, क्योंकि वह मौत भी उसकी ही सेविका है, उसके ही इशारे पर आई है। भक्त मौत को भी आलिंगन कर सकता है।
करता है। मौत में भी मित्रता बांध लेता है। क्योंकि जो भी उसने भेजा है, सभी उसका है।
मैंने सुना है, महमूद गजनवी का एक दास था, जिससे उसका बड़ा लगाव था। लगाव के लायक था भी आदमी। कहते हैं कि महमूद अपनी पत्नियों को भी बहुत उसकी पत्नियां थी... उनको भी अपने कमरे में रात नहीं सोने देता था, डरा रहता था--कोई मार डाले, कोई दुश्मन से मिल जाए; कोई झगड़ा झंझट, कोई जहर पिला दे! लेकिन यह दास उसके कमरे में सोता था। इससे उसे कोई भय ही नहीं था। एक दिन दोनों जंगल में खो गए। शिकार करने गए थे, रास्ता भटक गए; साथी बिछुड़ गए। सिर्फ यह दास ही उसके साथ था। भूखे-प्यासे एक बगीचे में पहुंचे। एक वृक्ष में सिर्फ एक ही फल लगा है। पता नहीं किस जाति का फल है, कैसा फल है, कभी देखा भी नहीं! महमूद ने उसे तोड़ा। जैसी उसकी सदा की आदत थी, उसने चाकू निकाला, फल को काटा। वह पहली कली हमेशा अपने दास को देता था, उसने दास को दी। उसने कली ली। बड़ा प्रसन्न हुआ दास। उसने कहाः एक और। ऐसा सुस्वादु फल कभी चखा नहीं। तो महमूद ने एक कली और दे दी। अब आधा ही फल बचा। और दास बोला कि एक और। तो महमूद ने एक और दे दी--अब एक ही पंखुड़ी बची; चौथाई हिस्सा बचा। और दास कहने लगा, यह भी मुझे दे दो। महमूद ने कहाः यह जरा ज्यादती है। मैं भी भूखा हूं और एक ही फल है इस वृक्ष पर; तीन हिस्से तूने ले लिए, एक मुझे भी लेने दे। लेकिन यह दास बोला कि नहीं मालिक, दे दो मुझे। हाथ से छीनने लगा।

महमूद ने कहा कि ठहर, यह जरा सीमा के बाहर बात हो गई। लेकिन दास कहता रहा कि मुझे दे दो, दे दो। कहते-कहते भी महमूद ने वह कली चख ली। वह कड़वा जहर थी। थूक दी, कली फेंक दी। कहा कि पागल, तूने कहा क्यों नहीं कि यह जहर है? और इसको भी तू मांग रहा था। और तीन टुकड़े तू इस तरह खा गया जैसे अमृत है!
उस दास ने कहा कि जिन हाथों से बहुत सी सुस्वादु चीजें मिली हों उनसे कभी एकाध अगर कड़वी भी चीज मिल जाए तो इसमें शिकायत की बात नहीं है। जिन हाथों ने इतना सुख दिया है, उन हाथों से अगर थोड़ा दुख भी मिल जाए तो वह भी सौभाग्य है। वह उन्हीं हाथों से आ रहा है। आपके हाथों ने छुआ, इतना ही काफी था।
महमूद ने अपने संस्मरणों में यह बात लिखी है। भक्त की यही दृष्टि है जगत के प्रति। इतना आनंद परमात्मा देता है कि अगर कभी एकाध कांटा कहीं रास्ते पर चुभ जाता है तो काई शिकायत की बात है? छिपा कर जल्दी से निकाल लेना कि उसको पता न चल जाए, कि कहीं अनजाने शिकायत न हो जाए, कि कहीं आह न निकल जाए! जिससे इतना मिलता हो उसके लिए हम जरा भी धन्यवाद नहीं देते; लेकिन जरा सी अड़चन आ जाए--जरा सी अड़चन, जरा सिरदर्द हो जाए, कि आदमी नास्तिक हो जाता है। काफी है सिरदर्द नास्तिक होने के लिए। सब आस्तिकता इत्यादि एक क्षण में खत्म हो जाती है, लड़के को नौकरी न मिले और नास्तिकता सिर उठाने लगती है। बेटा मर जाए और तुम मूर्ति इत्यादि फेंक देते हो घर से निकाल कर कि हो गया अब बहुत।
तुम्हारा भगवान दो कौड़ी का है। तुम्हारी भगवान से कोई पहचान नहीं है। तुमने कोई संबंध जोड़ा नहीं है।
सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेसा मोहि।
कहते हैं दरियाः सब भय मिट गया, अंदेशा मिट गया। कैसा तुमने गजब किया! कैसा तुमने चमत्कार किया! और मैंने कुछ किया नहीं--सिर्फ शब्द गहा! मेरी तरफ से कुछ करा-किया धरा नहीं। मेरी तरफ से तो सिर्फ ग्रहण हुआ। सिर्फ मैंने, तुमने जो दिया, वह ले लिया। मैं तो भूमि बन गया, तुम्हारा शब्द बीज बन गया। मैं तो स्त्री बन गया, तुम्हारा शब्द मेरे भीतर आकर गर्भ बन गया, अंकुरित होने लगा।
सत्गुरु ने किरपा करी, खिड़की दीन्हीं खोहि।
और तुम्हारी कृपा, कि खोल दिया द्वार जिसकी मैं तलाश कर रहा था--प्रेम
का द्वार। क्योंकि प्रेम के द्वार से ही जाना जाता है परमात्मा। ध्यान के द्वार से जानी जाती है आत्मा। प्रेम के द्वार से जाना जाता है परमात्मा। आत्मा भी परमात्मा है, परमात्मा भी आत्मा है। लेकिन इसलिए ध्यानी आत्मा की बात करते हैं, परमात्मा की नहीं। महावीर परमात्मा की बात नहीं करते-- आत्मा की।
ध्यान से खिड़की खुलती है अपने भीतर को; अंतर्मुखता पैदा होती है। और प्रेम से खिड़की खुलती है समस्त की; सब तरह वही दिखाई पड़ने लगता है। और प्रेमी को पहले दिखाई पड़ता है सब तरफ वही--और तब पता चलता है कि मैं भी वही। ज्ञानी को पहले दिखाई पड़ता है मैं वही और तब दिखाई पड़ता है सब वही। इतना फर्क होता है। अंतिम परिणाम एक है।
लेकिन प्रेम का मार्ग बड़ा रसपूर्ण है। रसो वै सः। बड़ा रस-भरा है!
सत्गुरु ने किरपा करी, खिड़की दीन्हीं खोहि।
और तुमने द्वार खोल दिए, तुम्हारी कृपा हो गई।
पान बेल से बीछुड़ै, परदेसां रस देत।
जन दरिया हरिया रहै, उस हरि बेल के हेत।।
और अब तो मैं तुमसे ही जुड़ा रहूंगा; जैसे पान का पत्ता बेल से जुड़ा रहे
तो हरा रहता है।
जन दरिया हरिया रहै, उस हरि बेल के हेत।
अब तो मैं तुमसे जुड़ गया, तुमसे एक हो गया; अब मुझे कोई अलग न कर सकेगा।
गुरु से शिष्य को फिर अलग नहीं किया जा सकता। एक दफा घटना भर घट जाए, फिर यह गांठ खुलती नहीं। और सब तरह के प्रेम बनते हैं, मिट जाते हैं; यह प्रेम सिर्फ बनता है, मिटता नहीं। न बने और बात; बन जाए फिर मिटता नहीं।
पान बेल से बीछुड़ै, परदेसां रस देत।

पान का पत्ता होता है, बेल से टूट जाता है तो दूसरों को सुख देता फिरता है; किसी के मुंह में पड़ेगा, रस देगा; किसी के मुंह को लाली करेगा।
दरिया कहते हैं, अब मेरी कोई इच्छा नहीं कि कहीं जाऊं, परदेसों में भटकूं, किसी को रस दूं, किसी को प्रभावित करूं, किसी का मुंह रंगूं--इस सबकी मुझे कुछ इच्छा नहीं है। अब तो एक ही इच्छा हैः जन दरिया हरिया रहै, उस हरि बेल के हेत। कि तुमसे जो लग गया लगाव वह लगा रहे और यह पत्ता हरा बना रहे। मगर ऐसा होता ही है। एक बार जुड़ गया जो सदगुरु से, वह जुड़ गया। क्योंकि सदगुरु से जुड़ने का आत्यंतिक अर्थ इतना ही होता है कि वह परमात्मा से जुड़ गया है। सदगुरु तो कोई है ही नहीं। सदगुरु तो शून्य मात्र है। सदगुरु तो शून्य मात्र है। सदगुरु तो एक खिड़की है आकाश की। खिड़की खुल गई, तुम्हारा संबंध आकाश से हो गया। बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताए! अब इस खिड़की से छूटने का उपाय भी क्या है! जब तुम आकाश से ही छूटना चाहो तभी इस खिड़की से छूट सकोगे। और आकाश से कौन छूटना चाहता है! कौन होना चाहता है क्षुद्र! कौन नहीं विराट होना चाहता! कौन सीमा में बंधना चाहता है! जिसको असीम के दर्शन हुए वह क्यों सीमा में लौटना चाहे!
हमारी सारी खोज एक ही है कि कैसे असीम हो जाएं, कैसे अनंत हो जाएं, कैसे विराट और विभु हो जाएं।
सदगुरु शब्द पर थोड़ी सी बातें। सदगुरु का अर्थ होता है जिसने जाना; जिसने अनुभव किया; जिसकी ज्योति जली। अब अगर तुम्हारी ज्योति बुझी है। तो किसी जले हुए दीये के पास जाओ। और कोई उपाय नहीं है। निकट आओ किसी दीये जले हुए दीये के। आते जाओ निकट। निकटता की ही एक सीमा है, जब अचानक तुम पाओगे जले दीये की लपट बुझे दीये पर छलांग लगा गई। एक क्षण में क्रांति घट जाती है। जले दीये का कुछ नुकसान नहीं होता। जला दीया अब भी वैसा ही जलता है। बुझे दीये को मिल जाता है, जले दीये का कुछ खोता नहीं है। एक दीये से हजार दिए जला लो, तो भी जलता दीया जल ही रहा है, वैसा ही जल रहा है जैसा जलता था। उसने जरा भी नहीं खोया।
गुरु का कुछ खोता नहीं, शिष्य को बहुत कुछ मिल जाता है, अनंत मिल जाता है। ऐसा अपूर्व यह व्यवसाय है। यहां खोया कुछ जाता ही नहीं। तो गुरु यह भी नहीं सोचता एक क्षण को भी कि उसने तुम पर कोई कृपा की। सच तो यह है, गुरु तुम्हारा धन्यवादी होता है कि तुम करीब आए, तुमने इतनी हिम्मत की क्योंकि गुरु की ज्योति जितने-जितने दीयों में फैलने लगती है, उतना ही गुरु का आनंद गहन होने लगता है। जैसे माली को देख कर आनंद होता है जब उसके वृक्षों पर फूल खिल जाते हैं, ऐसे गुरु को परम आनंद होता है, जब उसके शिष्य खिल जाते हैं। गुरु अनुगृहीत होता है कि तुम इतने करीब आए, कि तुमने थोड़ा सा उसका बोझ बंटा लिया।
आनंद भी बंटना चाहता है। आनंद भी घनीभूत हो जाता है। जैसे बादल जब भर जाते हैं जल से तो बरसना चाहते हैं। तो तुम यह मत सोचना कि जब प्यासी धरती पर बादल बरसते हैं तो सिर्फ धरती ही धन्यवाद करती है। बादल भी धन्यवाद करते हैं। चूंकि बादल खाली हो गए, बोझ से मुक्त हो गए, धरती ने उन्हें मुक्त कर दिया बोझ से।
जब फूल सुगंध से भर जाता है तो खिलता है--खिलता ही है, खिलना ही पड़ता है। और हजार-हजार मार्गों से बिखरता है। अपनी सुगंध को बिखेरता है। रंग में और गंध में यात्रा करता है दूर-दूर हवाओं की, कि पहुंच जाए उन नासापुटों तक जो प्रफुल्लित होंगे और आनंदित होंगे।
यह अकारण ही तो नहीं है कि बुद्धपुरुष भटकते हैं गांव-गांव, द्वार-द्वार, आदमी-आदमी को खोजते हैं, दस्तक देते फिरते हैं। शिष्य जैसे गुरु को खोजते हैं वैसे ही गुरु शिष्य को भी खोजता है। और जब कभी किसी सदगुरु का सदशिष्य से मिलना हो जाता है तो सारा जगत आनंद से भरता है। क्योंकि वही घटना इस जगत में सबसे परम घटना है।
जन दरिया हरिभक्ति की, गुरां बताई बाट।
भूला ऊजड़ जाए था, नरक पड़न के घाट।।
दरिया के इन वचनों में डूबना। दरिया को तीर्थ बनाना। दरिया से कुछ सीखो। दरिया से मिटने की कला सीखो।

[illegible]

[illegible]

कानों सुनी सो झूठ सब
दूसरा प्रवचन

रंजी सास्तर ग्यान की

पहला प्रश्नः दरिया साहिब पंडित नहीं थे, पढ़े-लिखे भी नहीं थे, फिर उन
पर शास्त्रों की धूल कैसे जमी कि गुरु को उसे उड़ाना पड़ा?

पहली बात, यह जन्म ही तुम्हारी सारी कथा नहीं है। इस जन्म के पीछे बहुत जन्मों की धूल है। दरिया पढ़े-लिखे नहीं थे यह इस जन्म की बात हुई। लेकिन जन्मों-जन्मों में न मालूम कितने शास्त्र जाने होंगे, न मालूम कितने शब्द सुने होंगे। तो एक तो, जब भी हम एक जन्म की बात कर रहे हैं तो भूल मत जाना कि इस जन्म के पीछे कतार है, पंक्तिबद्ध जन्म खड़े हैं; पर्त पर पर्त संस्कारों की है।
तो छोटा सा बच्चा भी पूरा-पूरा निर्दोष थोड़े ही होता है! सब तरह के दोष भीतर इकट्ठे पड़े हैं। समय पाकर प्रकट होंगे। अभी बीज-रूप हैं, तो दिखाई नहीं पड़ते। जब अंकुरित होंगे, और शाखाएं और पत्ते फैलेंगे तब दिखाई पड़ेंगे। छोटे से छोटा बच्चा भी, जिसकी आंख में अभी कोई धूल नहीं दिखाई पड़ती वह भी बड़ी आंधियां लिए बैठा है। बड़ी आंधियां भीतर तैयार हो रही हैं। अभी आंख खाली मालूम पड़ती है। अभी पर्दा खाली मालूम पड़ता है। तैयार हो रहा है। जल्दी हमले शुरू हो जाएंगे। उसके भीतर छिपे हुए संस्कारों की भीड़ प्रकट होगी। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा वैसे-वैसे भीड़ उमगेगी, आंधियां उठेंगी, अंधड़ घेरेगा। इसलिए निर्दोष तो छोटा बच्चा भी नहीं है। लगता है। निर्दोष तो केवल संत ही होता है, जिसने सारे जन्मों की धूल पोंछ डाली। जिसने धूल मात्र पोंछ डाली। जिसका कुछ पीछा न रहा और जिसका कुछ आगा भी न रहा। जिस दिन पीछा नहीं रह जाता उसी दिन आगा भी नहीं रह जाता। क्योंकि पीछे से ही आगा पैदा होता है। अतीत ही भविष्य का निर्माता है। अतीत ही भविष्य की कुंजी है।
तुम जो रहे हो पहले और तुमने जो संगृहीत कर लिया है वही तुम्हारे भविष्य को भी प्रभावित करता रहेगा। जिस दिन अतीत से पूरा छुटकारा हो जाता है उसी दिन व्यक्ति भविष्य से भी छूट गया। जिस दिन पुराने सारे संस्कारों की धूल विदा हो गई उस दिन करने को कुछ भी न बचा; दर्पण खाली हो गया।
इसको भी हम ठीक-ठीक बचपन कहते हैं। संत ही बालक होता है। बालक बालक नहीं है, बालक तो केवल बड़े होने की तैयारियां हैं। बालक तो प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तैयार हो जाए, कब कूद पड़े संसार में। बालक तो संसार के किनारे खड़ा प्रशिक्षण ले रहा है संसार का।
जो संसार में उतर चुका, बहुत बार उतर चुका, ऊब चुका, हार चुका, हताश हो चुका, जिसने देख लिया संसार सब कोनों से; सब तरफ से पहचान लिया और पाया कि व्यर्थ है, कूड़ा-करकट है। सोना इसमें है ही नहीं। हीरे यहां पाए ही नहीं जाते। यहां सिर्फ आदमी अपने को गवांता ही हैं, कमाई यहां होती ही नहीं। जिसने असफलता को परिपूर्णता से पहचान लिया, जिसकी हार आखिरी हो गई, वह आदमी संसार की आंधियों के बाहर निकल आता है। तब सच्चे अर्थों में बच्चा हुआ।
इसको ही हम द्विज कहते हैं क्योंकि यह दूसरा जन्म हुआ। एक जन्म मां- बाप से मिला था; वह कोई बहुत बड़ा जन्म नहीं, देह बदली थी। मन तो पुराना ही रहा था। बोतल बदल गई थी, शराब तो पुरानी ही रही थी। पुरानी शराब को भी नई बोतल में रखो तो भ्रम पैदा होता है कि शराब नई है। बच्चे की देह नई है, बच्चे का संस्कार थोड़े ही नया है! बच्चे के प्राण तो बड़े प्राचीन हैं। उतने ही प्राचीन हैं जितना यह संसार प्राचीन है। हम सदा से चल रहे हैं इस संसार में। हमने न मालूम कितनी यात्राएं की हैं। हमने न मालूम कितने- कितने मार्गों पर भीख मांगी है। और हमने न मालूम कितने-कितने दुख झेले हैं, कितने विषाद पाए हैं, कितनी चिंताओं से गुजरे हैं। और हमने बहुत बार शास्त्र भी पढ़े हैं। अगर खुद भी न पढ़े हों तो सुने हैं।

और फिर शास्त्र तो हवा में तैर रहे हैं। कोई पढ़ा-लिखा होना थोड़े ही जरूरी है! शास्त्रों की धूल तो हवाओं में उड़ रही है। शब्द तो हवा में तैर रहे हैं। संस्कार को पकड़ने के लिए पढ़ना-लिखना ही थोड़े आवश्यक है। संस्कार से मुक्त होने के लिए दूसरे से मुक्त होना जरूरी है, सिर्फ शास्त्र से मुक्त होने से न चलेगा। लोगों की बात तो सुनते हो!
बच्चा बड़ा होगा तो मां-बाप की बात तो सुनेगा, परिवार की बात तो सुनेगा, आस-पास की बात, खबरें तो सुनेगा, मंदिर का घंट-नाद तो सुनेगा। मंदिर में होती पूजा तो देखेगा। पंडित दोहराएगा शास्त्र, तोते गुनगुनाएंगे शास्त्र, बच्चा सुनेगा। संस्कार पड़ने लगे। पढ़ने से थोड़े ही संस्कार पड़ते हैं! अगर पढ़ने से ही संस्कार पड़ते होते तो गैर पढ़े-लिखे तो सभी मुक्त हो जाते।
गैर-पढ़ा-लिखा भी संस्कार इकट्ठे करता है। उसके संस्कार इकट्ठे करने
के ढंग जरा पुराने ढंग के हैं। वह नये ढंग से इकट्ठा नहीं करता; निजी ढंग से शास्त्रों में नहीं जाता। कोई दूसरा शास्त्रों में गया है, उसकी सुन लेता है।
तो पहली तो बातः एक जन्म के पीछे अनंत जीवन कतारबद्ध खड़े हैं।
दूसरी बात। अगर न भी पढ़े-लिखे हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। शास्त्र तो सब तरफ तैर रहे हैं। उनकी गूंज हो रही है। मस्जिद के पास से निकलोगे तो अल्लाह का नाम सुनाई पड़ जाएगा। मंदिर के पास से निकेलोगे तो राम का नाम सुनाई पड़ जाएगा। सुन लिया कि संस्कार बना। मां को पूजा करते देखोगे, पिता को पूजा करते देखोगे, झुकते देखोगे कहीं मंदिर में।
संस्कार बहुत-बहुत रूपों में चारों तरफ से आते हैं। असंस्कारित रह जाना असंभव है। कोई उपाय नहीं है। किसी न किसी तरह का संस्कार तो पड़ेगा ही। असंस्कारित होने का तो एक ही उपाय है कि किसी दिन जाग कर तुम सारे संस्कारों को, संस्कारों से हुए तादात्म्य को तोड़ दो। किसी दिन जाग कर पोंछ डालो सारी धूल।
सोए-सोए तो धूल इकट्ठी होती ही है। ऐसा मत सोचना कि हम सोए थे तो कैसे धूल इकट्ठी होगी? सपनों में धूल उड़ती रहेगी। रात तुम सो जाओ तो भी हवा में धूल है, तुम्हारे कपड़ों पर जमती रहेगी। सुबह तुम पाओगे, कपड़े थोड़े गंदे हो गए। तुम तो सोए ही रहे थे, तुमने कुछ भी न किया था। धूल तो चल ही रही है।
और जितने तुम सोए हुए हो उतनी जल्दी धूल जम जाती है। क्योंकि झाड़ने वाला तो मौजूद नहीं है। जागो तो झाड़ने वाला तैयार होता है। प्रतिपल पड़ती धूल को झाड़ता जाता है, इकट्ठी नहीं होने देता। बहुत पर्तें इकट्ठी नहीं होने देता।
वह जो दरिया ने कहा कि शास्त्रों की जो धूल मुझ पर जमी थी गुरु ने एक फूंक मार दी, एक शब्द से सब उड़ गई। क्या अर्थ होगा इसका? इतनी संस्कारों की पुरानी धूल और एक शब्द से उड़ गई! जंचती नहीं बात। गणित की नहीं मालूम होती, बेबूझ लगती है। लेकिन जरा भी बेबूझ नहीं है; गणित की है।
जैसे कि किसी कमरे में हजार साल से अंधेरा हो और तुम एक दीया ले आओ तो क्या तुम सोचते हो कि अंधेरा कहेगा, मैं हजार साल पुराना हूं, इतनी आसानी से हटूंगा नहीं। हजार साल पुराना हो कि करोड़ साल पुराना हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? आया दीया, कि गया अंधेरा। आते ही गया। एक क्षण भी झिझक नहीं सकता। एक क्षण भी यह नहीं कह सकता कि मैं कोई नया वासी नहीं हूं इस कमरे का। कोई ऐसा नहीं कि कल ही रात आकर ठहर गया हूं। यह कोई धर्मशाला नहीं है, यह मेरा घर है। यहां मैं हजारों-करोड़ों साल से रहा हूं। और ऐसे तुम आ जाओ और मुझे अलग कर दो, यह नहीं चलेगा। नहीं, अंधेरा कुछ भी नहीं कर सकता। अंधेरा नपुंसक है। बल ही नहीं है अंधेरे में। अंधेरे का कोई अस्तित्व ही नहीं है। जरा सी किरण, दीये की जरा सी लपट, और बड़े पुराने अंधेरे को तोड़ देती है।
ऐसा ही होता है गुरु के पास। वह सत्य की जो छोटी सी किरण है, पर्याप्त है, सारे शास्त्रों की धूल को झाड़ देने के लिए। क्यों पर्याप्त है? क्योंकि जो तुमने शब्द से पकड़ा है, सुन कर पकड़ा है वह तुम्हारा तो नहीं है।
जो तुम्हारा नहीं है, वह झूठ है।

मुझे इसे दोहराने दो। इसे तुम गांठ बांध लेनाः जो तुम्हारा नहीं है,
वह झूठ है। झूठ का और कोई अर्थ नहीं होता। झूठ का यह अर्थ नहीं होता कि तुम जो कह रहे हो वह झूठ है। वह हो सकता है कि झूठ न हो, क्योंकि वही किसी संत ने कहा हो। लेकिन जब संत ने कहा था तो सच था, जब तुमने दोहराया तो झूठ हो गया। तुम्हारा दोहराना तो तोता-रटंत है। तोता-रटंत में कैसे सच हो हो सकता है? दरिया ने कुछ कहा--सच। कह दिया, अब तो शब्द तुम्हें मालूम है, तुम याद
कर लो, दरिया के पद कंठस्थ कर लो। और हो सकता है तुम्हारा कंठ दरिया से बेहतर हो। और हो सकता है तुम दरिया से ज्यादा शुद्ध भाषा का उच्चार कर सको। हो सकता है दरिया भी तुम्हारे सामने शब्द दोहराएं तो तुम्हारा शब्द ज्यादा बलशाली मालूम पड़े।
अंधों की इस दुनिया में बड़ी अड़चन है। यहां कभी-कभी तो झूठ बड़ा बलशाली मालूम पड़ता है क्योंकि झूठ हजार तर्क जुड़ा लेता है। कभी-कभी सच यहां बिल्कुल ही शक्तिहीन मालूम पड़ता है। क्योंकि सच कोई तर्क तो जुटाता नहीं। सच कोई प्रमाण तो इकट्ठे नहीं करता। सच तो बड़ा नग्न होता है। आभूषण भी नहीं होते, वस्त्र भी नहीं होते, सजावट भी नहीं होती। और तुम तो आभूषण, वस्त्रों और सजावट में इस तरह उलझ गए हो, कि जब कोई सत्य नग्न खड़ा हो जाए तो तुम पहचान ही न सकोगे।
मैंने सुना, दो छोटे बच्चे एक न्यूडिस्ट कैंप के पास से निकल रहे थे। नंगों की बस्ती थी। दीवाल से झांक कर दीवाल में छेद थे--नाली का छेद--उसमें से झांक कर दोनों ने भीतर देखा, वहां सभी लोग नग्न थे। स्त्रियां भी नग्न थीं, पुरुष भी नग्न थे। दोनों छोटे-छोटे बच्चे होंगे छह-सात-सात साल के, अपना बस्ता लटकाए स्कूल से लौटते थे। दोनों बड़े विचार में पड़ गए कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष? क्योंकि उन्होंने कभी नंगी स्त्री, और नंगे पुरुष देखे नहीं थे वे तो एक ही फर्क जानते थे कि साड़ी पहने हो तो स्त्री, और साड़ी न पहने हो तो पुरुष। आज बड़ी मुश्किल में पड़ गए। घर लौट कर आए तो उन्होंने अपने मां-बाप को कहा कि हम नंगों की बस्ती से गुजरते थे, हमने देखा झांक कर। तो मां ने पूछा कि कौन थे वहां, आदमी थे कि औरतें? उन्होंने कहा, अब हम कैसे बताएं? वस्त्र तो पहने ही नहीं थे।
उन बच्चों की बात समझे? बच्चों की पहचान तो वस्त्रों की पहचान है। मगर तुम्हारी पहचान भी वस्त्रों से ज्यादा कहां है। सत्य अगर नग्न खड़ा होगा, तुम न पहचान सकोगे। तुम तो सत्य के वस्त्र पहचानते हो। अगर हिंदू के वस्त्र पहने खड़ा है और तुम हिंदू के घर में पैदा हुए हो तो, पहचान लोगे कि हां, ठीक है। यही तो लिखा है रामायण में; यही तो गीता कहती है। और अगर तुम इस्लाम के परिवार में पैदा हुए हो तो शायद न पहचान पाओ क्योंकि यह वस्त्र अपरिचित है। तुम तो कुरान की आयत होगी तो पहचान पाओगे।
मगर सत्य क्या कुरान से बंधा है कि गीता से बंधा है? सत्य के क्या कोई वस्त्र हैं? सत्य तो निर्वस्त्र है। वस्त्र तो हमने ओढ़ा दिए। वस्त्र तो हमने लगा दिए। वस्त्र तो हमारा दान है सत्य को।
तो ख्याल रहे, कभी-कभी तुम ठीक वे ही शब्द उपयोग करते हो जो संतों ने किए, फिर भी तुम्हारे शब्द झूठे होते हैं और संतों के सच। सच का शब्दों से कुछ नाता नहीं है, अनुभव से नाता है। तुम्हारे अनुभव से जो आए, सत्य; उधार जो हो, बासा जो हो, झूठ। यही कसौटी है।
तो शास्त्रों से जो सुना था वह झूठ था। ख्याल रखना, फिर दोहरा दूं। ऐसा मत समझ लेना कि शास्त्रों में जो लिखा है, वह झूठ है। शास्त्रों को दोहराओगे तो झूठ हो जाएगा। शास्त्रों में जो लिखा है, अगर तुम्हारा भी अनुभव हो जाए तो सच हो जाएगा।
तो दरिया कहते हैं कि धूल बहुत जमी थी शास्त्रों की, गुरु ने एक फूंक मार दी और उड़ गई। सत्य की एक किरण आई और जन्मों-जन्मों का अंधेरा, झूठ का अंधेरा टूट गया। झूठ अंधेरे जैसा है, सत्य प्रकाश जैसा। फिर एक ही किरण काफी है कोई पूरे सूरज को थोड़े ही घर में लाना पड़ता है! एक छोटा सा दीया काफी है। इसलिए कहा, एक शब्द से।
सच तो यह है कि शब्द कि भी शायद जरूरत न पड़ी होगी। यह सब कहने की बात है। गुरु की मौजूदगी काफी हो गई होगी। वह मौजूदगी का संस्पर्श, वह मौजूदगी

की चोट, वह गुरु की उपस्थिति, वह आघात तोड़ गया होगा अंधेरे को। शास्त्रों की धूल झड़ गई।
जिस दिन शास्त्रों की धूल झड़ जाती है उसी दिन तुम्हें अपने भीतर का शास्त्र उपलब्ध होता है। उसी दिन फिर तुम बासे नहीं रह जाते। अब तुम स्वयं जानते हो। अब ये बातें तुम्हारी मान्यता की नहीं है, अब यह तुम्हारा अपना अनुभव, अपनी प्रतीति, अपना साक्षात्कार, अब तुम स्वयं गवाह हो। अब तुम यह न कहोगे, गीता कहती है इसलिए सच। अब तुम कहोगे मैं कहता हूं। अब तुम इसलिए नहीं कहोगे सच, कि कुरान में लिखा है। अब तुम कहोगे कि वह कुरान सच है क्योंकि मेरे अनुभव में आ गया है। पहले तुम कहते थे मेरी मान्यता ठीक है क्योंकि कुरान में लिखी है। कुरान प्रथम था, तुम द्वितीय थे। अब तुम प्रथम हुए, कुरान द्वितीय हुआ।
जिस दिन शास्त्र नंबर दो हो जाता है, जिस दिन तुम प्रथम हो जाते हो, जिस दिन तुम अपनी छाती पर हाथ रख कर कह सकते हो यह मेरा अनुभव, जिस दिन तुम कह सकते हो कि मैंने भी जाना जो शास्त्र में लिखा है, उस दिन शास्त्र को पकड़े रहने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। क्या जरूरत रही? जिसके पास अपनी अनुभूति की संपदा है वह शास्त्र को भूल जाए।
और मजा यह है कि जो शास्त्र को भूल सकता है वही शास्त्र का सबसे बड़ा व्याख्याकार है। यह विरोधाभास है। जो शास्त्र की धूल से मुक्त हो गया, वही शास्त्रज्ञ है। उसने ही जाना, उसने ही पहचाना। वही जो कहेगा, फिर शास्त्र बन जाएगा। दरिया की वाणी शास्त्र बन गई। धूल झाड़ दी गुरु ने दरिया की, और दरिया की वाणी शास्त्र बन गई। समझने की बात इतनी ही है, शास्त्रों में जो लिखा है, जिन्होंने लिखा था सच ही जान कर लिखा था; लेकिन लिखे हुए को जब तुम मान लेते हो तो तुम्हारे पास आकर सब झूठ हो जाता है।
मैंने प्रेम किया, मैंने प्रेम जाना, मैंने तुमसे प्रेम की बात कही।
तुमने न कभी प्रेम किया, न कभी प्रेम जाना, बात सुनी, पकड़ ली, दोहराने लगे।
तुम्हारे लिए बात सब झूठी-झूठी है; थोथी, उथली-उथली है। तुम स्वयं उसके गवाह नहीं हो। आंख देखी नहीं है, कानों सुनी हैः कानों सुनी सो झूठ सब।
अपनी देखी हो।
इसीलिए तो हम द्रष्टा को मूल्य देते हैं, श्रोता को नहीं। क्यों द्रष्टा को मूल्य देते हैं? आंख से देखी हो। परमात्मा आंख के सामने देखा गया हो। कान से सुना गया हो, फिर किसी की कही हुई बात अफवाह है। कौन जाने ठीक हो। कौन जाने न ठीक हो। भरोसे की बात है। जब तुम किसी पर भरोसा करते हो तो यह कभी पूर्ण श्रद्धा तो हो ही नहीं सकती। पूर्ण श्रद्धा तो सिर्फ अपने ही अनुभव पर होती है, निज अनुभव पर होती है। दूसरे पर तो थोड़ा न बहुत शक बना ही रहता है, कि कौन जाने। आदमी तो भला है, भरोसे योग्य है। न चोरी की कभी न किसी को धोखा दिया है, न बेईमानी की है, तो ठीक ही कहता होगा मगर कौन जाने! यह भी तो हो सकता है कि खुद ही भ्रम में पड़ गया हो। झूठ न कहता हो मगर खुद ही भ्रम में पड़ गया हो। खुद ही धोखा खा गया हो। यह भी तो हो सकता है क्योंकि मृग-मरीचिकाएं भी तो होती हैं।
रेगिस्तान से एक आदमी आए--सत-चरित्र, सब तरह से परखा जोखा, और कहे कि मैंने एक मरूद्यान देखा। दूर मैंने एक मरूद्यान देखा। इसकी बात झूठ नहीं होगी क्योंकि यह झूठ बोलने का आदी नहीं है। तुम मान ले सकते हो कि ठीक कहता होगा लेकिन दूर देखा मरुद्यान हो सकता है मृग-मरीचिका रही हो। मरीचिका भी होती है। फिर जो आदमी आज तक झूठ नहीं बोला वह आज झूठ बोल सकता है। ऐसी अड़चन क्या है? जो आज तक झूठ बोलता रहा वह आज सच बोल सकता है। एक क्षण में रूपांतर हो सकते हैं। कहावत है, हर संत का अतीत है, और हर पापी का भविष्य। अगर जो आदमी आज तक झूठ बोला है, कभी सच बोल ही न सके, फिर तो कोई आशा ही न रही; फिर तो कोई संभावना ही न रही। जो आदमी आज तक पाप ही करता रहा है, हत्यारा है, झूठा है, चोर है, बेईमान है वह भी तो किसी दिन बाल्या भील की तरह वाल्मीकि बन जाता है।
तो कौन जाने, जो आदमी बिल्कुल झूठ बोलता रहा हो वह आज सच बोल रहा हो।
और कौन जाने, क्योंकि संत भी भ्रष्ट हो जाते हैं, पतित हो जाते हैं।
योगभ्रष्ट शब्द है हमारे पास। गिर जाते हैं ऊंचाइयों से। सच तो यह है, जो

ऊंचाइयों पर होता है वही गिर सकता है। जो नीचाइयों पर होता है वह गिरेगा कैसे? इसलिए भोग भ्रष्ट शब्द हमारे पास नहीं है, योगभ्रष्ट। भोगी तो कैसे भ्रष्ट होगा? कहां भ्रष्ट होगा? अब गिरने को और जगह कहां है? गिरा ही हुआ है। आखिरी जगह तो पहले से ही है। अब इसके पार और कहां गिरेगा? स्वर्ग से लोग गिरते हैं, नरक से नहीं गिरते। नरक से कहां गिरेंगे? नरक से गिरे तो सौभाग्य। क्योंकि नरक से गिरेंगे तो कहीं न कहीं पर ऊपर ही गिरेंगे, नीचे तो और बचा नहीं कुछ।
तो जो आदमी आज तक सच्चा था, ईमानदार था, सब तरह से ठीक था, वह आज झूठ हो सकता है। भरोसा कैसे करोगे दूसरे पर?
और फिर शास्त्र जिसने लिखा हो वह कब हुआ इसका भी पता नहीं, कौन था इसका
भी पता नहीं। किसी जानने वाले ने लिखा कि दूसरों के उधार, उच्छिष्ट को इकट्ठा करके लिख दिया! सभी किताबें अनुभव से तो नहीं लिखी जातीं। सौ में से एकाध किताब कभी अनुभव से लिखी जाती है। निन्यानबे किताबें तो सब उधार और बासी होती हैं।
तो कैसे भरोसा करोगे? इसलिए संदेह तो बना ही रहेगा। अनुभव से ही जाता
है संदेह--समग्रीभूत। और जब तुम्हें अपने पर अनुभव आ जाता है, अपने पर भरोसा आ जाता है, अपने में प्रतीति हो जाती है, उस दिन तुम्हारे लिए सारे शास्त्रों में--ध्यान रखना सारे शास्त्रों में; फिर ऐसा नहीं होता कि हिंदू शास्त्र ठीक हो गए और जैन शास्त्र गलत हो गए और मुसलमान शास्त्र गलत हो गए। नहीं, जिस दिन तुम्हें अपना अनुभव होता है, उस दिन तुम पाते हो कि अल्लाह के नाम से जिसको पुकारा गया है वह यही है। और राम के नाम से जिसको पुकारा गया है वह भी यही है। उस दिन सारे शास्त्र, सारे पृथ्वी के शास्त्र सत्य हो जाते हैं। तुम्हारा एक छोटा सा अनुभव सारे जगत के मनीषियों के लिए गवाही बन जाता है। तुम प्रमाण हो जाते हो। और कोई प्रमाण नहीं है। परमात्मा का और कोई प्रमाण नहीं है। जब तक तुम ही प्रमाण न हो जाओ तब तक कोई प्रमाण नहीं है।
रामकृष्ण से किसी ने पूछा है कि आप ईश्वर का कोई प्रमाण दें। रामकृष्ण ने कहा, मैं मौजूद हूं। तुम देखो मेरी आंखों में। तुम पकड़ो मेरा हाथ। तुम नाचो मेरे साथ। तुम बैठो प्रार्थना में मेरे निकट, मैं मौजूद हूं। वह आदमी थोड़ा तिलमिला गया। उसने कहा कि यह तो ठीक है, आप मौजूद हैं वह मुझे पता है। मैं प्रमाण मांगता हूं परमात्मा का। अब और क्या प्रमाण हो सकता है? रामकृष्ण कहते हैं, झांको मेरी आंखों में, पकड़ो मेरा हाथ, चलो मेरे साथ, उठो-बैठो मेरे पास, डूबो। मैं प्रमाण हूं। लेकिन वह आदमी तो राजी नहीं होता। वह कहता है, हम प्रमाण मांगने आए हैं, आपको थोड़े ही मांगते हैं। आपसे क्या होता है?
यह अंधा आदमी है। रामकृष्ण का जवाब एकमात्र जवाब है; और जवाब हो भी नहीं सकता। तुम प्रमाण हो सकते हो, तुम प्रमाण दे नहीं सकते।
जिस दिन शास्त्रों की धूल झड़ गई होगी दरिया की, उस दिन दरिया स्वयं शास्त्र बने। उस दिन उनकी वाणी वेद हो गई। उस दिन उनकी वाणी में उपनिषद का सार आ गया। उस दिन उनकी वाणी में कुरान का गीत आ गया। थे मुसलमान; लेकिन उस दिन से फिर न मुसलमान रहे, न हिंदू रहे। उस दिन से तो बस धार्मिक हो गए। धार्मिक आदमी न हिंदू होता है, न मुसलमान होता है, न ईसाई होता है। धार्मिक आदमी तो बस धार्मिक होता है। और सारे जगत की संपदा उसकी अपनी होती है।

दूसरा प्रश्नः शिष्य गुरु के निकट हो और अपना हृदय खोले, इसका क्या तात्पर्य है? कृपया अच्छी तरह से समझाएं। और आखिर यह इतना मुश्किल क्यों है और भय क्यों होता है?

तात्पर्य में गए तो भटके। बात सीधी साफ है, उलझाओ मत। शिष्य गुरु के निकट हो। निकट होने का अर्थ होता है शिष्य अपनी रक्षा न करे।
तुम सदा अपनी रक्षा कर रहे हो। तुम अगर गुरु के पास भी जाते हो तो बस
एक सीमा तक जाते हो--जहां तक तुम्हें लगता है खतरे के बाहर हो। तुम गुरु से भी अपनी रक्षा करते हो। तुम बड़े भयभीत हो। तुम डरे रहते हो कि कहीं कुछ ऐसा

न गुरु कर दे, जो मेरे खिलाफ चला जाए। और सत्य तुम्हारे खिलाफ है। क्योंकि तुम झूठ हो, इसलिए गुरु को ऐसा तो करना ही पड़ेगा जो तुम्हारे खिलाफ जाएगा।
तुम जैसे हो इसे तो मिटाना ही होगा; तुम जैसे हो ऐसे तो तुम्हें मारना ही होगा; तो ही तुम्हारा नया जन्म होगा।
तो शिष्य का निकट होने का एक ही अर्थ होता है, वह अपने शस्त्र रख दे।
वह कह दे कि अब मैं निरस्त्र हुआ। यह मैंने छोड़ दी मेरी तलवारें और कवच, और ढाल और तीर-कमान, ये सब मैंने छोड़ दिए। अब मैं तुमसे लडूंगा नहीं। अब तुम्हें मुझे मारना हो तो मार डालो, बचाना हो तो बचा लो। अब तुम्हें जो करना हो, जैसी तुम्हारी मर्जी।
निकट होने का अर्थ हैः आज मैं अपनी मर्जी छोड़ता हूं। यही संन्यास का अर्थ है, यही शिष्य का अर्थ है, यही दीक्षा का अर्थ है कि आज से मैं अपनी मर्जी छोड़ता हूं। अपनी मर्जी से रह कर मैंने देख लिया। भटका, दुख पाया, कहीं पहुंचा नहीं। अपनी मर्जी के सब आयोजन कर लिए, सब तरफ विफलता हाथ लगी, अपने से जो भी मैंने किया, गलत गया।
अहंकार के साथ लंबी यात्रा करके आए हो तुम। गौर से देख लो अपनी अहंकार
की यात्रा को। कहां पहुंचे हो? अगर कहीं पहुंच रहे हो तब तो कोई जरूरत नहीं है गुरु की। अगर तुम्हें लग रहा है कि यात्रा बिल्कुल ठीक चल रही है, तुम मार्ग पर हो, चित्त में सुगंध बढ़ रही है, शांति बढ़ रही है, आनंद की वर्षा हो रही है, मेघ घिर रहे हैं, और भी वर्षा होगी। ऐसी तुम्हें प्रतीति होती है तो गुरु की कोई जरूरत नहीं है, दीक्षा की कोई जरूरत नहीं है। तुम ठीक रास्ते पर हो। तुम चले जाओ, चलते जाओ। फिर न कोई समर्पण चाहिए, न किसी के निकट होने की कोई आवश्यकता है।
लेकिन अगर ऐसा मालूम न पड़ता हो, और लगता हो कि हाथ खाली के खाली हैं।
और जिन चीजों को भी संपदा समझा आखिर में पाया कि वह सब ठीकरे सिद्ध हुए। स्वर्ण समझ कर गए थे लेकिन केवल पीतल को चमकता हुआ पाया। हीरे-जवाहरात समझ कर जिसे इकट्ठा किया था वे केवल कांच के टुकड़े थे। अगर हर जगह विफलता हाथ लगती हो, और हर जगह हार हाथ लगती हो, और ऐसा लगता हो कि जीवन विषाद से विषादमय होता जा रहा है, और तुम नरक की यात्रा पर हो, तो फिर जरूरत है कि तुम किसी का हाथ गहो; तुम किसी के चरणों में गिरो और तुम कह दो कि अब अपनी मर्जी से न चलूंगा, अब तुम्हारी मर्जी मेरी मर्जी होगी।
निकट होने का अर्थ हैः तुमने अपना संकल्प छोड़ा। संकल्प का त्याग है निकटता। अगर कहीं भीतर तुम अपने संकल्प को अभी भी बचाए हुए हो, अगर तुमने गुरु के पास दीक्षा भी ली है, संन्यस्त भी हुए हो, और यह भी तुम्हारा ही संकल्प है, तो तुम चूकोगे; तो तुम दूर रहोगे। तुमने कहा कि यह मेरा निर्णय है कि मैं संन्यास लेता हूं। संन्यास भी ले लोगे और चूक भी जाओगे, क्योंकि तुम्हारा निर्णय? तो फिर तुम्हारी अभी पुरानी मर्जी कायम है। अभी पुरानी अकड़ कायम है। रस्सी जल गई, अकड़ नहीं गई। अब तुम आखिर अवस्था में भी अपनी अकड़ को बचाने की कोशिश कर रहे हो। तुम कहते हो, मैंने संन्यास लिया। मैंने दीक्षा ली। अभी भी मैं बचा है, अभी भी मैं बोल रहा है। अभी भी मैं काफी मुखर है तो चूक गए। तो तुम चरण पकड़ कर भी बैठ जाओ तो भी तुम हजारों कोस दूर हो। और अगर तुमने मैंने लिया है ऐसे भाव से नहीं, वरन इस अनुभव से कि मैं
तो हार चुका--हारे को हरिनाम; मैं तो हार चुका, अब मैं क्या लूंगा? अब तो अपनी हार में इन चरणों में गिर जाता हूं। तब तुम्हारी प्रतीति बड़ी भिन्न होगी। तुम्हारी प्रतीति ऐसी होगी, गुरु ने दीक्षा दी। तुमने ली ऐसा नहीं, गुरु ने दीक्षा दी; तुम्हें प्रसाद दिया। और उसी घड़ी से तुम पास होने लगे। फिर तुम हजार कोस दूर भी रहो गुरु से तो कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम निकट हो। निकट का अर्थ भौतिक निकटता नहीं। निकट का अर्थ शारीरिक निकटता नहीं। निकट का अर्थ है, आत्मिक निकटता। और आत्मिक निकटता तभी होती है जब तुम्हारा अहंकार, संकल्प, तुम्हारी पुरानी अकड़ खो जाए। तुम एक ढेर की तरह होकर गिर जाओ गुरु के चरणों में।
‘शिष्य गुरु के निकट हो और अपना हृदय खोले इसका क्या तात्पर्य है?’
और हृदय खोलने का अर्थ होता है, तुम कुछ छिपाओ मत। तुमने सब से छिपाया है, तुमने अपने प्रेमी से भी छिपाया है। तुमने अपने रा.ज कायम रखे। तुमने

अपनी पत्नी से भी पूरी बात नहीं कही है। तुमने अपने पति से भी पूरा राज नहीं कहा है। तुमने कुछ बातें छिपा रखी हैं। तुम रोज छिपाते हो। तुमने कभी भी कहीं अपने हृदय को पूरा नहीं खोला है। खोल भी नहीं सकते थे। तुम्हें मैं दोष भी नहीं देता, क्योंकि जिनके भी सामने तुम पूरा हृदय खोलते वे ही तुम्हारे खिलाफ हो जाते।
तो तुम्हारा डर नैसर्गिक है। अगर तुम अपनी पत्नी से आकर कह देते कि आज रास्ते पर एक सुंदर स्त्री को गुजरते देख कर मेरा मन ऐसा हो आया कि काश में इससे विवाह कर लूं, तो अड़चन ही खड़ी होगी। इसकी बहुत कम संभावना है कि तुम्हारी पत्नी समझे। पत्नी सिर पीटने लगेगी, हाथ-पैर मारने लगेगी, रोने लगेगी, धुआं-उपद्रव मचा देगी, पास पड़ोस के लोगों को इकट्ठा कर देगी। और तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर पाएगी। और उस दिन से तुम पर ज्यादा पाबंदी और ज्यादा इंतजाम शुरू हो जाएंगे। तुम्हें कहीं अकेला भी न जाने देगी। किसी स्त्री की तरफ आंख उठा कर देखोगे तो तुम्हें अपराध के भाव से भर देगी।
तो कह भी नहीं सकते हो। इसे तो सरका कर रख देना होगा। इसे छिपाना होगा। इसे प्रकट नहीं किया जा सकता। हृदय को खोला नहीं जा सकता। क्योंकि तुम्हारे चारों तरफ लोग हैं, जो चाहते हैं तुम्हें, एक खास ढंग का जीवन तुम बिताओ। चुनाव करते हैं जो। कहते हैं, ऐसे होना तो स्वीकार हो; अगर ऐसे हुए तो अस्वीकार हो जाओगे। तुमने अगर अपनी कमजोरियां प्रकट कीं तो तुम निंदित हो जाओगे। तुमने अपने हृदय को खोल कर अगर वैसा ही रख दिया जैसा तुम्हारे भीतर है--कच्चा बिना रंग-रोगन लगाए, बिना टचअप के, जैसा है कच्चा; सुंदर तो सुंदर, कुरूप तो कुरूप, अनगढ़, बेे-बना--ऐसा का ऐसा रख दिया तो तुम्हें कोई भी सम्मान न देगा। सम्मान तो तुम्हारे पाखंड को मिलता है। तो जितना बड़ा पाखंडी उतना सम्मानित हो जाता है।
तो तुम्हें दिखाना पड़ता है--चाहे तुम महात्मा हो या न हो--तुम्हें दिखाना पड़ता है कि महात्मा तुम हो। तुम आखिरी दम तक दिखाने की कोशिश करते हो कुछ, जो तुम नहीं हो। और छिपाने की कोशिश करते हो वह, जो तुम हो।
यह तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया को गुरु के पास भी रखोगे जारी तो फिर तुम्हें गुरु मिला ही नहीं। और फिर जिस गुरु से डरना पड़े तुम्हें वैसा ही, जैसे तुम पत्नी से डरते हो, पति से डरते हो; पिता से, मां से डरते हो; मित्र से डरते हो, ग्राहक से डरते हो; मालिक से डरते हो; नौकर से डरते हो अगर ऐसा ही तुम्हें गुरु से भी डरना पड़े तो यह गुरु भी सांसारिक है। समझनाः गुरु तभी सांसारिक नहीं है, जिसके सामने तुम सब खोल कर रख दो और उसकी आंख में जरा सा भी निंदा का भाव न उठे। निंदा का भाव जिसकी आंख में उठ आए, वह गुरु नहीं है।
इसलिए तुम्हारे सौ गुरुओं में से निन्यानबे तथाकथित हैं, सांसारिक हैं। तुम्हें डराए हुए हैं वे। उतना ही डराए हुए हैं जितना कोई और डराए हुए है। सच तो यह है कि तुम अपने तथाकथित महात्माओं के पास और भी ज्यादा डर जाते हो, जितना तुम और कहीं डरते हो। अपने महात्मा से तुम यह भी नहीं कह सकते कि मैं चाय पीता हूं। क्योंकि चाय यानी पाप। तुम अपने महात्मा से यह भी नहीं कह सकते कि मुझे जरा धूम्रपान की आदत है। धूम्रपान यानी नरक जाने का सुनिश्चित उपाय। छोटी-छोटी बातें, क्षुद्र बातें--उनको भी तुम खोल नहीं सकते। क्योंकि वह जो आदमी वहां बैठा है, तत्क्षण तुम्हारी गरदन पकड़ लेगा कि तुम और ऐसा करते हो? त्याग करो इसका इसी वक्त। और तुम सदा के लिए अप्रतिष्ठित हो जाओगे उसकी आंखों में। पाखंड की प्रतिष्ठा है। जब तक कोई व्यक्ति तुमसे अपेक्षाएं कर रहा है कि तुम्हें ऐसा होना ही चाहिए तब तक तुम कैसे अपने हृदय को खोलोगे? इसलिए संसार में चलते निन्यानबे गुरु, गुरु नहीं हैं।
गुरु कि परिभाषा यही है, सदगुरु की परिभाषा यही है कि जिसके पास जाकर तुम सब खोल सको। जो तुम्हें ऐसी सुगमता दे, जो तुम्हें ऐसा अवसर दे कि तुम बिना निंदा-स्तुति के, बिना डरे अपने हृदय को खोल कर रख सको। तुम कह सको कि मैं ऐसा हूं। क्योंकि जब तक गुरु तुम्हें वैसा ही न जान ले जैसे तुम हो, तो काम ही शुरू न होगा।

गुरु से छिपाना तो ऐसे ही है जैसे डाक्टर के पास गए और उससे बीमारी छिपा रहे हो। मरे जा रहे हो, मगर बीमारी डाक्टर से छिपा रहे हो। और गए हो डाक्टर के पास। किसलिए गए हो? इलाज के लिए गए हो, निदान के लिए गए हो, कि डाक्टर पकड़ ले कि बीमारी क्या है तो निदान कर दे।
डाक्टर के पास तुम अपनी बीमारी नहीं छिपाते न? तुम डरते तो नहीं कि डाक्टर को कह देंगे कि मुझे खांसी आती है, और खांसी में कभी-कभी खून भी आ जाता है तो डाक्टर एकदम मेरे खिलाफ हो जाएगा और कहेगा कि अरे पापी! कि कहीं नौकरी से निकलवा दे, कि सबको पता हो जाए। सब ठीक ठाक चल रहा है, चुनाव में खड़े हुए हैं, पता चल जाए वोटरों को कि खांसी आती है, और खून भी गिरता हो तो कौन वोट देगा?
तो नेतागण अपनी बीमारी की खबर अखबारों में नहीं छपने देते। अखबारों
पर बड़े नाराज हो जाते हैं अगर उनकी बीमारी की कोई खबर छाप दे। मरते दम तक नेता दुनिया को यही दिखलाता रहता है कि मैं परम स्वस्थ हूं। क्यों? क्योंकि नहीं तो वोट कौन देगा? मुर्दों को तो कोई वोट नहीं देता। मरते दम तक नेता यही कहता रहता है कि कोई मुझे खराबी नहीं, सब तरह से ठीक हूं। यह उसे दिखाना ही पड़ता है। तो नेता अपने डाक्टर को भी छिपा कर रखता है।
यह तो बहुत बाद में पता चला कि स्टैलिन बहुत बीमार था। यह तो बहुत बाद में पता चला हिटलर के हार जाने के बाद कि हिटलर बहुत बीमारियों से रुग्ण था। लेकिन यह कभी पता नहीं चला जब हिटलर ताकत में था। किसी को कभी पता नहीं चला। बहुत बीमारियों से परेशान था। मिरगी की भी बीमारी थी। और भी तरह के रोग थे, जो खतरनाक थे। अगर पता चल जाता तो हिटलर एक दिन सत्ता में नहीं रह सकता था। इन सब को छिपा कर रखना पड़ता है। जनता के सामने एक चेहरा बताना पड़ता है।
स्टैलिन के फोटो बिना सरकारी आज्ञा के छपते नहीं थे क्योंकि उसके मुंह पर चेचक के दाग थे। सिर्फ एक फोटो में भूल से पकड़े गए हैं, बाकी कभी किसी फोटो में नहीं पकड़े जा सके। चेचक के दाग से भी इतना बचना पड़ता है। नेता को ऐसा होना चाहिए कि सर्वांग सुंदर। चेचक के दाग और नेता में जरा जंचते नहीं। तो किसी चित्र में छपने नहीं दिए गए हैं। सब चित्र टचअप किए गए हैं। पहले टचअप हो जाएंगे तब छपेंगे। माओ के हाथ-पैर कंपते थे लेकिन यह बात अखबारों तक नहीं पहुंच पाती थी। बोलता था तो ठीक से बोल नहीं सकता था, जबान लड़खड़ाती थी। उम्र हो गई थी। लेकिन यह बात जब तक माओ मर नहीं गया तब तक जाहिर नहीं हो सकी।
तो हो सकता है, तुम चुनाव में खड़े हो, हो सकता है कि तुम कहीं नौकरी के लिए आवेदन किए हो, और पता चल जाए। हो सकता है कि तुम किसी स्त्री से विवाह का निवेदन किए हो और और पता चल जाए कि खांसी आती है और खून के कतरे भी गिरते हैं; तो डर से तुम डाक्टर को न बताओ तो फिर इलाज कैसे होगा? फिर गए ही किसलिए? डाक्टर के पास तो तुम खोल देते हो न! यह तो डाक्टर की नीति का हिस्सा है कि अपने मरीज की बीमारी किसी को न बताए। अपने मरीज के संबंध में एक शब्द भी कहीं न कहे, यह डाक्टर की नीति का हिस्सा है। यह मारल कोड है। इसलिए तुम डाक्टर के पास जाकर बता भी देते हो और फिर बीमारी से तुम छूटना चाहते हो।
गुरु के पास जब तुम आते हो तो तुम और भी बड़ी बीमारियां लेकर आए हो। वह क्षय रोग का मामला नहीं है, और न कैंसर का मामला है। जन्मों-जन्मों की आध्यात्मिक बीमारियां हैं। तुम इन्हें छिपाओगे? तुम गुरु से छिपाओगे? तब तो फिर ऐसा ही हो गया कि तुम अपने को औषधि से ही बचा रहे हो। गुरु तो वैद्य है; उससे छिपाया नहीं जा सकता। उसके सामने तो सब खोल कर रख देना होगा। पाप का, पुण्य का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख देना होगा। सब बुरा भला खोल कर रख देना होगा। और तुम एक उपद्रव हो भीतर, जहां हर तरह के पाप दबे पड़े हैं। जहां हर तरह की बुराई दबी पड़ी है। निसंकोच छोड़ देना होगा अपने को। इसलिए मैंने कहा, हृदय खोल कर गुरु के सामने रखना होता है।
हृदय खोलने का अर्थ है, तुम गुरु के सामने अपनी किसी भी तरह की प्रतिमा बचाने की कोशिश मत करना। तुम कहना, जैसा मैं हूं, यह हूं--बुरा- भला। और सदगुरु वही है कि तुम जब अपने प्राणों की सारा का सारा मवाद भी खोल

कर उसके सामने रख दो, तब भी तुम्हारे बुद्धत्व में उसे जरा भी शक पैदा न हो। तुम्हारे परमात्म-स्वरूप में उसे जरा भी शंका न आए; वही तो सदगुरु है। यह सारी बीमारियां ठीक हैं, इनके बावजूद भी तुम हो तो परमात्मा। इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। तुमने हजारों पाप किए हों तो भी तुम्हारा परमात्म-स्वरूप नष्ट नहीं होता। तुम कितने ही अंधेरे में भटके हो तो भी तुम्हारा स्वभाव चिन्मय है। सदगुरु तो वही है, जिसने अपने चिन्मय को देख लिया, वह तुम्हारे चिन्मय को भी देख रहा है। वह तुमसे कहेगा ठीक है, यह कबाड़खाना ठीक है, मगर यह तुम नहीं हो। फिकर मत करो। मगर यह अवस्था--वह तुम्हें सजग कर सके कि यह तुम नहीं हो--तभी बनेगी जब तुम खोल दो अपना हृदय पूरी तरह।
‘और आखिर यह इतना मुश्किल क्यों है और भय क्यों होता है?’
मुश्किल है क्योंकि जब भी कहीं हृदय खोला तभी घाटा लगा। इसलिए मुश्किल है। अनुभव के कारण मुश्किल है। जब भी कहीं सच्ची बात कही तभी नुकसान हुआ है। लोग कहते हैं कि सत्यमेव जयते। अनुभव उलटा ही हैः जहां सच बोले वहीं हारे। कभी-कभी झूठ तो जीता, सच कभी जीतता हुआ अनुभव में नहीं आया। जहां ईमानदारी बरती, वहीं नुकसान हुआ। जहां बेईमानी की, कभी-कभी लाभ भी हुआ। बेईमानी से कभी नुकसान नहीं हुआ, पकड़ी गई तो नुकसान हुआ। इसलिए तुम्हारे समस्त जीवनों का अनुभव यह है कि बेईमानी से नुकसान नहीं होता, पकड़े जाने से नुकसान होता है। पकड़े भर मत जाओ, और फिर करो बेईमानी जितनी करनी है, लाभ ही लाभ है।
सत्य नहीं हारता, न सत्य जीतता--तुम्हारा अनुभव यह है। तुम अगर झूठ को
भी सत्य की तरह सिद्ध कर सको तो जीत हो जाती है। पकड़े भर न जाओ। तो तुम संत हो, अगर पकड़े न जाओ। पकड़े गए तो पापी।
तो असली सवाल पकड़े न जाने का है। तो कैसे हृदय खोलो? हृदय खोला तो अपने
ही हाथ से पकड़े गए। यह तो अपने ही हाथ से जाकर और समर्पण कर दिया। इसलिए सारे जीवन का तुम्हारा अनुभव यह है कि कहो मत, सचाई क्या है। जितना बन सके, झुठलाओ। और फिर जिससे भी तुमने कहा उसी से हानि हुई। अगर मित्र को कह दी सच्ची बात तो मित्र शत्रु हो गया।
फ्रायड ने कहा है, अगर सभी मित्र एक दूसरे के संबंध में सच बातें कह दें तो दुनिया में तीन मित्रताएं भी न बचें। तुम जो मित्र के संबंध में सच-सच सोचते हो अगर वही कह दो तो मित्रता बचनी बहुत मुश्किल है। लोग झूठ में जी रहे हैं। लोग झूठ में पगे हैं।
राह पर कोई मिल जाता है, तुम कहते हो, बड़ी दुआ--सलाम कहते हो, गले मिलते हो, कहते हो बड़ा सौभाग्य, दर्शन हो गए। शुभ मुहूर्त में घर से निकलते ही दर्शन हो गए। बड़े दिनों बाद दर्शन हुए। और भीतर सोच रहे हो कि दुष्ट का चेहरा कहां से दिखाई पड़ गया। अब पता नहीं दिन कैसा जाए! भीतर तुम यह सोच रहे हो, कि यह महाराज कहां से मिल गए। शुभ काम करने निकले थे और यह सज्जन बीच में ही मिल गए। मगर इनसे तुम यही कह रहे हो कि बड़ी कृपा की।
घर में मेहमान आते हैं, तुम कहते हो आओ। पलक-पांवड़े बिछाए बैठे हैं।
और भीतर रो रहे हो कि फिर आ गए! अब पता नहीं कब जाएंगे। पता नहीं कितनी देर पेरेंगे, परेशान करेंगे। ऊपर से कह रहे हो, अतिथि देवता है और भीतर से तुम जानते हो, कि अतिथि से ज्यादा शैतान और कोई भी नहीं।
तो तुम दो तल पर जीते हो। यह दो तल पर जीना इतना तुम्हें रास आ गया है, इतना सघन हो गया है, इसलिए कठिनाई है। इसलिए गुरु के पास भी आते हो तो पुरानी आदतें एकदम कैसे छूट जाएं? कुछ का कुछ दिखलाने लगते हो, कुछ का कुछ कहने लगते हो।
मैं रोज अनुभव करता हूं। लोग कुछ प्रश्न पूछने आते हैं और कुछ पूछने लगते हैं। मैं देख रहा हूं कि उनका प्रश्न कुछ और है। मुझे उन्हें लाना पड़ता है फुसला-फुसला कर असली प्रश्न पर। मगर जब प्रश्न पूछते हैं लोग, तब भी झूठ कर जाते हैं। क्यों? क्योंकि प्रश्न भी ऊंचा पूछना चाहिए। उसका प्रभाव पड़ता है। हो सकता है उसकी समस्या हो कामवासना की लेकिन प्रश्न उठाएंगे राम का। काम का होगा प्रश्न और उठाएंगे राम की बात। कहेंगे कि परमात्मा कैसे मिले? अब मैं उनको देख रहा हूं कि यह परमात्मा की कोई चाह ही कहीं दिखाई नहीं पड़ती उनके--उनकी ऊर्जा में, उनकी आभा में, कहीं

परमात्मा से कोई मतलब नहीं दिखाई पड़ता। पूछते हैं परमात्मा कैसे मिले? मुझे उन्हें फुसलाना पड़ता है, समझाना पड़ता है कि आओ, असली पर आओ। धीरे- धीरे-धीरे बामुश्किल वे असली पर आते हैं; वह भी बड़ी बेचैनी से आते हैं। और असली को ही सुधारा जा सकता है, नकली को तो कुछ किया नहीं जा सकता।
अगर तुमने प्रश्न ही झूठा पूछा तो मेरे उत्तर का क्या होगा? क्या करोगे उस उत्तर का? मैं तुम्हें जो दवा बता दूंगा वह किस काम आएगी? वह बीमारी ही तुम्हारी नहीं। अपनी बीमारी छिपा गए, किसी और की बात बता दी। एक सज्जन आए, वे कहने लगे कि मेरे एक मित्र हैं, बड़े कामी हैं। उनका मन
बस कामवासना ही से भरा रहता है। उनके लिए कुछ उपाय बताएं। मैंने कहा, मित्र को ही भेज देते और वे मुझसे कह देते कि मेरे एक मित्र हैं। इतनी काहे को झंझट की? तब वे थोड़े चौंके। चौंक कर चारों तरफ देखा कि... । लेकिन आदमी हिम्मतवर थे, कहा कि आपने पकड़ लिया। बात तो यही है। यह उपद्रव तो मेरा ही है। लेकिन मैंने यह सोचा कि सीधे यह पूछना कि मैं बहुत कामी हूं... मैंने सोचा, एक मित्र के बहाने पूछ लूं। जो आप बताएंगे वह मैं कर लूंगा।
मगर मित्र का प्रश्न मित्र का प्रश्न है। और कभी-कभी बीमारी भी एक जैसी हो तब भी दो आदमियों को दो तरह की दवाएं लगती हैं। ऐसा मत सोचना कि तुम्हारी बीमारी भी तुम्हारे मित्र जैसी बीमारी है तो एक ही दवा दोनों को काम कर जाएगी। तुम्हारा मित्र अनंत जन्मों से अलग तरह की यात्रा कर रहा है। उसके सारे व्यक्तित्व की संरचना भिन्न है, तुम्हारी संरचना भिन्न है। एक ही औषधि काम न पड़ेगी। मित्र के लिए जो औषधि बताई जाएगी वह तुम लेकर और झंझट में पड़ जाओगे। बीमारी तो बनी ही रहेगी, औषधि शायद और नई बीमारियां ले आए। तो अनेक बार तुम्हारी औषधियों ने तुम्हें और बीमार बनाया है।
इसलिए कहता हूं, हृदय को खोलना। कठिनाई है। तुमने जब भी हृदय खोला तभी हानि हुई। कहते हैं न, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है। ऐसी तुम्हारी अवस्था है। तुम इतनी बार जल गए हो। किसी से भी सच कहा कि मुश्किल हुई। किसी से भी सच कहा कि मुश्किल हुई। यह सारा संसार झूठ का संसार है। यहां सच बोलने से चलता ही नहीं। यहां झूठ ही यात्रा का पाथेय है, वही कलेवा है। उसी के सहारे सब चलता है। यहां हम झूठ से बंधे हैं एक-दूसरे से। तुम्हें पत्नी से रोज-रोज कहना ही पड़ता है, मैं खूब प्रेम करता हूं तुम्हें। तुम्हारे बिना एक क्षण न रह सकूंगा। तुम न होओगी तो मेरा क्या होगा? मैं रह न सकूंगा एक दिन। और तुम भलीभांति जानते हो कि पत्नी न रह जाएगी तो ऊपर तुम कितना ही रोओ, भीतर तुम प्रसन्न होओगे कि चलो झंझट मिटी, उपद्रव मिटा। चलो फिर स्वतंत्र हुए। चलो फिर कोई स्त्री खोज लें।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। वह बैठा है खाट के पास। जैसा उदास पतियों को बैठना पड़ता है वैसे ही बैठा है। गुण-तारे तो और बिठा रहा है भीतर, वह बात अलग। वह तो किसी से कहनी ही नहीं है। पत्नी भी मरते वक्त... पत्नियां भी खूब हैं, मरते दम तक ऐसे सवाल उठा देती हैं। पत्नी ने मरते- मरते आंखें खोलीं, और कहा कि एक बात पूछनी मुल्ला। मैं मर जाऊंगी, तो फिर तुम क्या करोगे? मुल्ला ने कहाः क्या करूंगा? मर जाऊंगा। क्या करूंगा! एक क्षण जी न सकूंगा, क्या करूंगा! तेरे बिना सोच ही नहीं सकता। पत्नी ने कहाः छोड़ो जी! ये बातें छोड़ो। किससे बातें कर रहे हो, ये बातें छोड़ो, यह मुझे बताओ, विवाह तो तुम करोगे ही। कभी नहीं, मुल्ला ने कहा, कभी नहीं। कसम खाता हूं कभी नहीं। तेरी कसम खाता हूं।
पत्नी ने कहा, मेरी कसम मत खाओ, क्योंकि मैं तो मरी ही जा रही हूं। एक
ही मेरी प्रार्थना है--वह मुझे पता है, इधर मैं मरी नहीं, इधर मेरा जनाजा उठा नहीं, कि उधर तुम विवाह का इंतजाम कर लोगे। एक ही मेरी प्रार्थना है कि विवाह तो तुम करके लाओगे ही, इतना ही ख्याल रखना कि जिस स्त्री को तुम लेकर आओ, वह मेरे कपड़े न पहने, मेरे जेवर न पहने। इससे मेरी आत्मा को बड़ा कष्ट होगा। मुल्ला ने कहाः तू उसकी फिकर ही मत कर, गुलाबों को तेरे कपड़े आएंगे भी नहीं--गुलाबो से चल ही रहा है! --उसकी तू फिकर ही मत कर।
समझदार आदमी पहले ही से इंतजाम बना लेता है। ऐसा थोड़ी है कि पत्नी मरेगी, फिर इंतजाम करेंगे। अब पत्नी तो मर ही रही है... ।

एक जगत है हमारा, जहां झूठ ही हमारी व्यवस्था है। जहां झूठ ही हमारे संबंधों का सारा सार सूत्र है। गुरु के साथ भी ऐसा ही संबंध बनाओगे क्या? तो फिर गुरु भी तुम्हें इस संसार के बाहर न ले जा सकेगा। गुरु का अर्थ है, जो तुम्हें इस झूठ के जाल के बाहर ले जाए। तो उसके पास तो तुम्हें ये पुराने अनुभव सब छोड़ देने पड़ेंगे। और जिसके पास तुम छोड़ सको निःसंकोच, वही तुम्हारा गुरु है। नहीं तो तुम्हारा गुरु नहीं। फिर तुम खोजो, अभी भी गुरु खोजो, कहीं न कहीं कोई आदमी तुम खोज पाओगे, जिसके पास तुम सब निःसंकोच छोड़ दोगे। कहीं तो कोई आदमी तुम्हें मिल जाएगा जिसकी आंखों में तुम्हारी निंदा न होगी। और जिससे सच कह कर भी तुम हारोगे नहीं बाजी। जिससे सच कह कर ही जीतोगे।
सदगुरु का यही अर्थ होता है। सदगुरु में निंदा तो होती नहीं। तुमने क्या किया है इसके प्रति अपरंपार करुणा होती है। तुमने पाप किया है उसके प्रति भी करुणा होती है, ध्यान रखना। तुम्हारे पाप को भी वह समझता है कि मनुष्य की कमजोरियां हैं, क्योंकि वह खुद भी उन्हीं कमजोरियों से गुजरा है। खुद भी उन्हीं गड्ढों में गिरा है, खुद भी उन्हीं कंटकाकीर्ण मार्गों से निकला है, खुद भी उसने... वे कांटे चुभे हैं उसे, वह जानता है, भलीभांति जानता है। सदगुरु का अर्थ है कि जो कल तक तुम्हारे ही जैसा था। आज भूल नहीं गई है बात। अब तो और भी ठीक से समझ में आती है।
सदगुरु के मन में अपरंपार करुणा होती है। तुमने कितना ही गहन पाप किया हो तुम सदगुरु के पास सिवाय क्षमा के और कुछ भी न पाओगे। और अगर कुछ और मिले तो समझ लेना कि यह सदगुरु नहीं है। तुम बचो। यह तुम्हारे झूठे जंजाल का ही हिस्सा है। यह होगा पंडित होगा, पुजारी होगा, तथाकथित महात्मा होगा, लेकिन अभी इसे खुद भी नहीं मिला है।
एक बात समझना--बहुत मनोवैज्ञानिक--अगर तुम किसी गुरु के पास जाकर कहो
कि मैं बहुत क्रोधी हूं और वह तुम से तब कहने लगे कि क्रोध पाप है, और नरक में सड़ोगे, और ऐसा-वैसा तुम्हें डराने लगे, धमकाने लगे। तुम कहो कि मैं कामी हूं और वह एकदम क्रुद्ध हो जाए, कि कामी हो तो यहां किसलिए आए? ब्रह्मचर्य का पालन करो नहीं तो सड़ोगे नरक में, कीड़े काटेंगे और कड़ाहों में जलाए जाओगे और एकदम आगबबूला होने लगे तो एक बात पक्की है कि वह अभी कामवासना से मुक्त नहीं हुआ, अभी क्रोध से मुक्त नहीं हुआ।
इसे तुम समझो। तुम नाराज उसी बात पर हो जाते हो जो बात तुम्हें अभी भी सताती है। नहीं तो नाराजगी क्या है? एक समझ होती है, शांत, शीतल। नाराजगी की बात क्या है?
संत राबिया के पास एक फकीर हसन ठहरा। दोनों बैठे थे; एक आदमी आया, उस आदमी ने हसन के चरणों में अशर्फिया रखीं--सोने की अशर्फियां रखीं, हसन तो एकदम नाराज हो गया। उसने कहाः तू यह--सोना लेकर यहां क्यों आया? सोना मिट्टी है, धूल है। हटा यहां से सोने को।
राबिया हंसी। हसन ने पूछाः क्यों हंसती हो? राबिया ने कहाः हसन, तो तुम्हारा सोने से मोह अभी तक गया नहीं? सोने से मोह! हसन ने कहाः मोह नहीं है इसलिए तो मैं इतना चिल्लाया कि हटा यहां से।
राबिया ने कहाः मोह न होता तो चिल्लाते ही क्यों? अगर मिट्टी ही है सोना, तो मिट्टी तो बहुत पड़ी है तुम्हारे आस-पास, तुम नहीं चिल्ला रहे हो। यह आदमी थोड़ी मिट्टी और ले आया, क्या चिल्लाना है? इतने आगबबूला क्यों हो गए? इतने उत्तेजित क्यों हो आए? यह उत्तेजना बताती है कि अभी भीतर डर है। यह उत्तेजना बताती है कि दबा लिया है। सोने के मोह को, मिटा नहीं है। नहीं तो क्या इसमें उत्तेजित होने की बात है? इस आदमी को तो देखो। इस आदमी को तो देखो। यह बेचारा गरीब है, इसके पास सोने के सिवाय कुछ भी नहीं है। यह बहुत गरीब है। इस गरीब को ऐसे मत दुतकारो। यह इतना गरीब है और कुछ देना चाहता है। इसका तुमसे लगाव है, और सोने के अलावा इसके पास कुछ भी नहीं है।
ऐसा हुआ, मैं जयपुर में था और एक बहुत अपूर्व आदमी थे, सोहनलाल दुगड़। जुआरी थे ऐसे तो वे, सटोरिया थे, भारत के सबसे बड़े सटोरिया थे। मगर बड़े हिम्मत के आदमी थे। सटोरिया थे, हिम्मत के होने ही चाहिए। एक झोले में भर कर बहुत से नोट ले आए। पहली दफा मुझे सुना था, दूसरे दिन आए और पूरा झोला

नोट से भरा हुआ मेरे पैरों पर उलटा दिया। मैंने उनसे कहा कि इनको सम्हाल कर रख लें, जब मुझे जरूरत होगी, मैं खबर करूंगा। अभी जरूरत नहीं है। जरूरत जरूर कभी हो सकती है। तो यह मेरी तरफ से रख लें अमानत आपके पास।
वे रोने लगे। मैंने सोचा नहीं था कि कोई आदमी रोने लगेगा। वे रोने लगे। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं सटोरिया हूं। आज हैं, कल नहीं है। यह झंझट मुझे मत दें। आपकी झंझट आप जानो, मैं नहीं रखूंगा। मैं जुआरी आदमी! कभी मेरे पास लाखों होते हैं, कभी करोड़ों भी होते हैं, और कभी मेरे पास कौड़ी नहीं होती। तो यह मैं नहीं रख सकता। आप किसी और को दे दो। तो मैंने कहा, कोई फिकर न करें। नहीं होंगे उस समय तो कोई मैं मुकदमा नहीं चलाऊंगा। मैं भी सटोरिया हूं। गए तो गए। तुम रखो।
वे तो रोने लगे। वे कहने लगे कि नहीं, मैं वापस न ले जा सकूंगा। मैं बहुत गरीब आदमी हूं क्योंकि मेरे पास सिवाय रुपयों के और कुछ भी नहीं है।
और मैं कुछ देना चाहता हूं और मैं क्या दूं? मेरे पास और कुछ है ही नहीं।
प्रेम मैं जानता नहीं, समर्पण का मुझे कुछ पता नहीं है, आत्मा मैंने देखी नहीं है। ये सब बातें हैं, मैंने सुनी हैं, लेकिन मेरे पास कुछ है नहीं।
मेरे पास सिवाय रुपयों के और कुछ भी नहीं है। मैं बहुत गरीब आदमी हूं।
सुनते हो उनकी परिभाषा गरीब आदमी की? कि मेरे पास सिवाय रुपयों के और कुछ भी नहीं है। मैं बहुत गरीब आदमी हूं। मैं बहुत गरीब आदमी हूं। मैं कुछ देना चाहता हूं। अगर रुपया आप न लेंगे तो मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुंचेगी।
मुझे लगेगा कि मैं इतना दीन कि कुछ भी न दे सका।
राबिया ने हसन से कहा कि उस गरीब को तो देख, वह किस भाव से लेकर आया है।
और हसन ने कहा कि राबिया तूने मुझे खूब चेताया। बात मेरे समझ में आ गई।
मैंने यह कंचन का जो मोह है, दबा लिया है, यह मिटा नहीं।
सदगुरु वही है, जो सच में जाग गया है। जो जाग गया है, तुमने क्या किया
है इससे कोई निंदा उसके मन में पैदा नहीं होगी। और न ही तुम्हारे लिए नरक भेज देगा, न तुम्हें डराएगा। क्योंकि सदगुरु तुम्हें देखता है, तुम्हारे कृत्यों को नहीं। कृत्यों का कोई मूल्य नहीं है। कृत्य तो माया है। तुमने जो किया, उसका कोई मूल्य नहीं है, तुम जो हो वही मूल्यवान है। और तुम जो हो वह तो साक्षात परमात्मा है। जिसने अपने भीतर के परमात्मा को देख लिया उसने सारे जगत में छिपे परमात्मा को देख लिया। फिर तुम लाख छिपाओ परमात्मा को चोर के भीतर, तो भी सदगुरु देखता है। पापी के भीतर, तो भी देखता है; हत्यारे के भीतर तो भी देखता है। तुम सदगुरु से छिपा नहीं सकते अपने परमात्मा को।
तो जब तुम अपने सारे पाप खोल कर रख देते हो--अच्छा बुरा जो भी है, जैसा
भी है--सदगुरु के पास खोल कर रखने में ही तुम्हें पहली दफा कर्मों से छुटकारा मिलता है। यह कर्म-मुक्ति का उपाय है। जब तक तुम दबाते हो, बंधे रहते हो; छिपाते हो, अटके रहते हो। कहीं तो कोई जगह होनी चाहिए, जहां तुम सब खोल कर रख दो। उसको खोल कर रखते ही तुम्हें एक बात दिखाई पड़ती है कि मैं तो पृथक हूं--साक्षीमात्र; मैं तो द्रष्टामात्र हूं। न तो कृत्य का कोई मूल्य है, न विचार का कोई मूल्य है। ये सब सपने की बातें हैं। कुछ सपने आंख बंद करके देखते हैं हम, कुछ सपने आंख खोल कर देखते हैं हम। लेकिन तुम्हारी अड़चन मैं जानता हूं। तुमने जब भी हिम्मत की, तभी अड़चन आई।

बादलों के पास से आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
है अंधेरी रात, मैं भटकी हुई
और सिर से पांव तक अटकी हुई
भाल पर की रेख सी अंधी हुई
पायलों सा और तड़फाना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं फिर मुझे इस बार भी भ्रम हो गया यूं छला जाना सहज क्रम हो गया जिंदगी का व्यर्थ सब श्रम हो गया

आस के उस गांव से आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं

कभी तुमने इतनी-इतनी आंखों में आंखें डालीं, सदा दुख पाया। तुम इतने
डर जाते हो कि परमात्मा से भी कहते हो किः

आस के उस गांव से आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
बादलों के पास से आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
है अंधेरी रात, मैं भटकी हुई
और सिर से पांव तक अटकी हुई
भाल पर की रेख सी अंधी हुई
पायलों सा और तड़फाना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं

जब भी तुमने किसी की आंख में आंखें डालीं और अपनी सचाई को खोला, तभी तुमने कष्ट पाया, तभी चोट पाई, तभी कांटा चुभा, तभी घाव बना। वे घाव बढ़ते चले गए। वे घाव भरे नहीं। वे घाव सब हरे हैं। तो तुम डरते हो, परमात्मा तक से डरते हो कि कहीं वह फिर तुम्हें किसी नये प्रेम में न उलझा दे, फिर कहीं आंख में आंख डाल कर तुम्हें किसी और झंझट में न डाल दे।

आस के उस गांव से आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
फिर मुझे इस बार भी भ्रम हो गया
यूं छला जाना सहज क्रम हो गया
जिंदगी का व्यर्थ सब श्रम हो गया

हर बार जब भी तुमने किसी की आंख में आंख डाली तभी भ्रम हुआ, तभी छल हुआ। तो तुम गुरु के पास भी जाकर आंख में डाल कर नहीं देखते हो। इधर उधर देखते हो। आस-पास देखते हो। तुमने प्रेम से इतने धोखे खाए हैं कि तुम गुरु के प्रेम में भी पूरे नहीं उतरते हो। वहां भी तुम सुरक्षा रखते हो। वहां भी तुम आयोजन रखते हो कि अगर जरूरत पड़े तो अपनी रक्षा कर सको। वहां भी तुम अरक्षित नहीं छोड़ते अपने को। वहां भी समर्पण पूरा नहीं होता।
तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। तुम्हारे प्राचीन अनुभव, सनातन के अनुभव इसी बात के लिए तुम्हें तैयार किए हैं। लेकिन अगर तुम इसी में उलझे रहे, तो तुम चूक जाओगे। कभी तो हिम्मत करो। क्या होगा? ज्यादा से ज्यादा एक धोखा और होगा, यही न! इतने धोखे खाए, एक धोखा और सही। खोने को क्या है तुम्हारे पास? लुट तो गए हो। लुटे खड़े हो, सर्व हारा हो। चलो, यह आदमी और थोड़ा लूट लेगा, और क्या होगा? तुम्हारी लुटाई इतनी हुई है कि अब और थोड़े लुट गए तो क्या फर्क पड़ जाएगा? इसलिए हिम्मत करो।
इसलिए अगर कभी किसी के प्रेम में उतर रहे हो, कभी किसी की पुकार तुम्हें सुनाई पड़ती हो और कभी किसी के आस-पास परमात्मा की किरण दिखाई पड़ती हो तो चूक मत जाना अवसर। खोने को क्या है? एक भ्रम और होगा इतना ही न! चलो ठीक, एक भ्रम और सही। करोड़ों भ्रम में एक भ्रम जुड़ जाएगा तो क्या अड़चन होने वाली है? इतने कांटे गड़े, एक कांटा और गड़ जाएगा। इतने लोगों ने धोखा दिया, एक आदमी और धोखा दे जाएगा।
इसको मैं साहस कहता हूं। साहस का अर्थ है, एक बार और प्रयोग करें। साहस का अर्थ है, अतीत के अनुभव को ही सब कुछ न मान लें। संभव है, कुछ और हो, नया हो। नया हो सकता है, इस बात का भरोसा ही श्रद्धा है। जो अब तक हुआ है वही सदा होता रहेगा ऐसा मान लेना तो फिर विषाद में घिर जाना है, निराश हो जाना है। सच है, बहुत मार्गों पर तुम गए, कोई मार्ग कहीं नहीं ले गया, इससे कुछ घबड़ाने की बात नहीं है।

मैंने सुना है, अमरीका का प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन एक प्रयोग कर रहा था। सात सौ बार हार गया। रोज प्रयोग चलता सुबह से सांझ तक, और रोज हार होती। वह प्रयोग सफल होता न मालूम होता। सात सौ बार काफी होता है। कोई तीन साल बीत गए। चौथा साल बीतने लगा। उसके सहयोगी तो थक मरे। आखिर उसके सहयोगियों ने एक दिन इकट्ठा होकर कहा कि बहुत हो गया। कुछ और करना है कि जिंदगी भर इसी को करते रहना है? और यह कुछ होता दिखाई पड़ता नहीं। और आपसे हम घबड़ा गए हैं क्योंकि आप रोज सुबह आ जाते हैं फिर उत्साह से भरे, फिर उमंग से भरे, फिर शुरू कर देते हैं। आप थकते ही नहीं। क्या जिंदगी भर यही करना है?
एडीसन ने कहाः अब रुकने की जरूरत है? सात सौ रास्ते हम देख चुके, गलत सिद्ध हो गए, अब ठीक रास्ता करीब ही आता होगा। आखिर कितने गलत होंगे? समझो कि हजार रास्ते हैं अगर कुल मिला कर, तो सात सौ तो हमने जांच लिए, अब तीन सौ ही बचे। जीत रोज करीब आ रही है पागलो, किसने तुमसे कहा कि हार हो रही है? जीत रोज आ रही है। हर हार जीत की तरफ एक कदम है। और यह तो ठीक ही है, एडीसन ने कहा कि ठीक रास्ता एक ही होगा। गलत नौ सौ निन्यानबे हो सकते हैं। ठीक तो एक ही होगा। तो नौ सौ निन्यानबे से गुजरना तो होगा ही। उसके बिना कोई उपाय नहीं है उस एक तक पहुंचने का।
हिम्मतवर आदमी का यह लक्षण है। उसकी आशा नहीं टूटती। उसका भरोसा नहीं खोता। वह कहता है इतने धोखे खा लिए, इतने आदमी जांच लिए, इतने प्रेम परख लिए, इतने संबंध टटोल लिए अब तो ठीक संबंध करीब आता ही होगा। अब कब तक दूरी रहेगी? अब ठीक घड़ी करीब आती ही होगी। इतने-इतने जन्मों तक भटके, अब और कब तक भटकना होगा? इसलिए अब ठीक के करीब आते हैं। और हिम्मत करें, और साहस करें और उमंग, और उत्साह।
ख्याल रखना, इस संसार में और सब तो तुम्हारे विरोध में हैं, इसलिए उनके साथ अगर तुम सच खोलोगे तो अड़चन में पड़ोगे। वे तुम्हारा सब शोषण करेंगे। इस जगत में सब तुम्हारे प्रतिस्पर्धी हैं, सब तुम्हारे प्रतियोगी हैं। उन्हें तो तुम्हें कुछ का कुछ बताना पड़ेगा।
मैंने सुना है कि दो दलाल--शेयर मार्केट बंबई के दो दलाल--ट्रेन में मिले। पहले ने दूसरे से पूछाः कहां जा रहे हो? दूसरे ने कहाः पूना जा रहा हूं। पहले ने कहाः बनो मत। तुम मुझसे झूठ मत बोलो। मुझे पक्का पता है कि तुम पूना जा रहे हो, तुम मुझसे झूठ मत बोलो। वह पहला बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि मैं ही तो कह रहा हूं कि पूना जा रहा हूं। वह दूसरा बोलाः तुम मुझसे झूठ मत बोलो, मुझे पक्का पता है। मैं तुम्हारे आफिस से पता लगा कर आ रहा हूं कि तुम पूना ही जा रहे हो।
मतलब समझे आप? वह यह कह रहा है कि दलाल तो ऐसा झूठ बोलते ही रहते हैं। पूना जा रहा हूं मतलब तुम कहीं और जा रहे हो; तुम्हारा प्रयोजन यह है। पूना की कह रहे हो तो कहीं और जा रहे हो इतना पक्का। इगतपुरी जा रहे, कि कल्याण जा रहे, कि उल्हास नगर; मगर पूना नहीं जा रहे, इतना तो पक्का है। इसलिए वह दूसरा कहता है कि तुम मुझसे झूठ मत बोलो कि पूना जा रहे हो, तुम पूना ही जा रहे हो।
ऐसी दुनिया है। यहां सब ऐसा ही चल रहा है। यहां बड़ी प्रतिस्पर्धा है। मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र को शिकार के किस्से बता रहा था। तब उसके मित्र ने पूछाः बड़े मियां, अगर आप जंगल में निहत्थे हों और शेर आपका पीछा करना शुरू कर दे तो आप क्या करेंगे? मुल्ला ने उत्तर दियाः अगर वहीं कोई नदी पास में होगी तो उसमें कूद जाऊंगा। मित्र बोलाः अगर शेर भी नदी में कूद जाए तो? मुल्ला ने कहाः मैं नदी पार कर जाऊंगा। मित्र ने कहाः अगर शेर भी नदी पार कर जाए तो? तब मैं पेड़ पर चढ़ जाऊंगा, मुल्ला ने कहा। मित्र ने फिर कहाः शेर भी अगर पेड़ पर चढ़ जाए तो? अब की बार मुल्ला झुंझला गया और बोला कि यार, पहले यह तो बता दो कि तुम मेरी तरफ हो कि शेर की तरफ?
यही अड़चन है। यहां संसार में कोई तुम्हारी तरफ तो है नहीं। इसलिए सच बोलना खतरे से खाली भी नहीं है।
लेकिन सदगुरु का तो अर्थ ही होता है कि यह आदमी तुम्हारी तरफ है। इससे तुम्हारी क्या प्रतिस्पर्धा हो सकती है, इससे तुम्हारा क्या विरोध हो

सकता है! यह तुम्हें किस भांति की हानि पहुंचा सकता है? इससे तुम्हारी किसी भी तरह की प्रतिस्पर्धा की संभावना कहां है? तुम्हारे पास जो है उसमें इसकी उत्सुकता नहीं है। तुम्हारी जो आकांक्षाएं हैं वे इसकी आकांक्षाएं नहीं हैं। अगर तुम धन पाने में लगे हो, यह ध्यान पाने में लगे हैं। अगर तुम पद पाने में लगे हो, यह परमात्मा पाने में लगा है।
और एक मजा कि अगर धन पाने में दो आदमी लगे हों तो दुश्मन हो ही जाएंगे, क्योंकि धन सीमित है। और अगर ध्यान पाने में दो आदमी नहीं, दो करोड़ आदमी लगे हों तो भी कोई दुश्मनी का कारण नहीं है। क्योंकि ध्यान असीम है। अगर मुझे ध्यान उपलब्ध हो गया तो इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि अब तुम्हारे लिए कुछ कम बचा दुनिया में। अब तुम क्या करोगे? अगर कोई दो आदमी पद पाने में लगे हों तो एक ही पा सकेगा, दोनों न पा सकेंगे। लेकिन कोई अगर परमात्मा को पाने में लगा हो किसी से कोई स्पर्धा ही नहीं है।
मैं परमात्मा को पा लूं इससे मैं तुम्हारा दुश्मन थोड़े ही हूं! इससे कुछ परमात्मा तुम्हारे लिए कम थोड़े ही बचा! कि अब तुम पाओगे तो थोड़ा तो पहले ही कोई ले जा चुका है, अब तुमको अधूरा ही मिलेगा। आश्चर्य की बात तो यही है कि अगर किसी एक व्यक्ति ने परमात्मा को पा लिया तो तुम्हारे पाने की संभावना बढ़ गई। घटी नहीं, बढ़ गई। और अगर किसी एक व्यक्ति ने पद पा लिया तो तुम्हारे पाने की संभावना समाप्त हो गई। अब या तो मोरार जी बैठ जाएं या इंदिरा बैठ जाए। एक ही बैठ सकते हैं। दूसरा या तो जेल होगा या जेल के बाहर, जेल से भी बदतर हालत में होगा। जहां पद का संघर्ष है, वहां तो स्पर्धा है; वहां तो दुश्मनी है, वहां मैत्री कैसी?
तो राजनीतिज्ञ मित्र हो ही नहीं सकते। मित्र भी जो दिखाई पड़ते हैं, वे
भी मित्र नहीं होते। जो एक ही पार्टी में होते हैं, वे भी मित्र नहीं होते। कैसे हो सकते हैं? मित्रता सब दिखावा है, ऊपर-ऊपर है, धोखा है। मित्रता सब औपचारिक है। भीतर दुश्मनी चल रही है। भीतर एक-दूसरे को काटने के सब उपाय चल रहे हैं।
राजनीति में मित्रता होती ही नहीं, धर्म में शत्रुता नहीं होतीं। हो कैसे सकती है? अगर मुझे कुछ मिल गया है, तो इससे तुम्हारे मिलने की संभावना कम नहीं हुई, बढ़ गई। अगर एक आदमी को मिल सकता है, तो तुम्हें भी मिल सकता है यह भरोसा आ सकता है। अगर तुम जैसे ही हड्डी-मांस-मज्जा के आदमी को मिल सकता है तो तुम्हें क्यों नहीं मिल सकता? तुम्हारी हिम्मत जगेगी। तुम अपने खोए उत्साह को पुनः पा लोगे। तुम्हारा आत्म-विश्वास पैदा होगा। सदगुरु का अर्थ है, उसने कुछ ऐसे जगत में पाया है जहां प्रतिस्पर्धा होती ही नहीं। उसने ध्यान पाया, समाधि पाई, परमात्मा पाया, धर्म पाया। एक तो तुम्हारी आकांक्षा नहीं है इन बातों की, अगर तुम्हारी आकांक्षा है तो भी कोई स्पर्धा नहीं है। तुम सदगुरु के सामने सब खोल कर रख सकते हो। तुम्हें अपने ताश के पत्ते छिपाने की जरूरत नहीं है; ट्रम्प कार्ड भी छिपाने की जरूरत नहीं है। तुम सारे पत्ते खोल कर रख सकते हो। अच्छा यही होगा कि तुम सारे पत्ते खोल दो तो सदगुरु तुम्हें ठीक-ठीक से रास्ते पर ले चले। तुम्हारा हाथ पकड़ ले। तुम्हारे सारे पत्ते खोल कर रख देने में ही तुमने अपना हाथ सदगुरु के हाथ में रख दिया। उसके पहले तुम रखोगे नहीं। उसके पहले तुम मुट्ठी बांधे हुए हो। कुछ छिपाए हुए हो। बचाना है, ज्यादा करीब न आओगे, जरा दूर-दूर रहोगे, दीवाल रखोगे, ओट रखोगे, परदा रखोगे, क्योंकि कहीं सब बात खुल न जाए। सब बात खोल ही दो, ताकि बचाने को कुछ न रहे। जब बचाने को कुछ न रहेगा, कुछ रा.ज न रहेगा, कुछ रहस्य न रहेगा, तो फिर किसलिए ओट करोगे? फिर किसलिए परदे डालोगे? फिर सब ओट मिट जाएगी। और जहां ओट मिटती है वहीं क्रांति घटती है।

तीसरा प्रश्नः
राम राम करत काही, राम ऐसे मिलत नाहीं,
राम सदा कहत जाई, राम सदा बहत जाई,
कहत पकड़ो राम नाहीं, चलत पकड़ो राम नाहीं,
राम सदा विराजत मांही, सब दिशत राम सही

सुंदर वचन हैं। लेकिन इनको प्रश्न क्यों बनाया? इनमें उत्तर है। सीधे सरल वचन है। इनकी व्याख्या की भी जरूरत नहीं है। इससे सीधा सरल और क्या होगा?
राम राम कहत काही? राम-राम किसलिए कहते हो? कहने की बात नहीं है राम। हृदय में सम्हालने की बात है राम कहना किसको है? पुकारना किसको है? चीखना- चिल्लाना किसको है। राम कहीं दूर थोड़े ही है!
कबीर कहते हैंः क्या बहरा हुआ खुदा है? क्या तेरा खुदा इतना बहरा हो गया है, जो इतने ऊंचे मीनार पर चढ़ कर चिल्ला रहा है? राम शब्द को भी दोहराने की क्या जरूरत है? भाव को गहो। भाव को सम्हालो हृदय में। जैसे गर्भवती स्त्री अपने बच्चे को सम्हालती है गर्भ में, ऐसे राम के भाव को सम्हालो।
राम राम कहत काही, राम ऐसे मिलत नाहीं
ऐसे बोलने से, राम-राम दोहराने से, राम-नाम की चदरिया ओढ़ लेने से राम मिलते होते तो बड़ा सस्ता हो जाता। फिर तो तोतों को भी मिल जाते।
राम सदा कहत जाई, ...
सुंदर वचन है कि तुमने कहा राम कि गए राम, हाथ से चूके। कहे कि चूके।
यह शब्द की बात नहीं है, निःशब्द में सम्हालना है। शून्य में, मौन में पकड़ना है। शब्द बना कि तुम राम से दूर हो गए। शब्द बना कि मन बन गया। जहां मन आया, राम दूर हो गए। जहां मन नहीं होता वहां राम विराजमान है। राम कोई नाम थोड़े ही है! यह तो प्रतीक है नाम। भाव की बात है।
इसीलिए तो कहते हैं कि वाल्मीकि मरा-मरा जपते-जपते भी राम को पा गया। भाव की बात है। गंवार थे, पढ़े-लिखे न थे। गुरु तो कह गया था कि राम-राम जपना; भूल गए। सीधे-सादे आदमी थे। इसलिए कभी-कभी गंवार पहुंच जाते हैं मगर पंडित कभी पहुंचे हों ऐसा सुना नहीं। पंडित बिल्कुल शुद्धोच्चारण करता है, व्याकरण, भाषा सबका आयोजन करता है, मगर यह कोई शुद्धोचारण की बात थोड़े ही है! यह कोई भाषा की बात थोड़े ही है, भाव की बात है।
भूल गए। राम-राम कहते-कहते-कहते--जल्दी-जल्दी दोहरा रहे होंगेः राम-राम-राम-राम, वह मरा-मरा हो गया। तो वे उसी को दोहराते रहे। उसी को दोहराते-दोहराते पा गए। जब गुरु वापस आया और देखा कि बाल्या तो वाल्मीकि हो गया है, अपूर्व शांति में विराजा है। आनंद झर रहा है, अमृत बरस रहा है। तो गुरु ने पूछा, मिल गया? राम-राम जपते-जपते मिला? तब कहीं बाल्या को याद आया। उसने कहा, अरे, बड़ी भूल हो गई। राम-राम कहा था। मैं तो मरा-मरा जपता रहा। मगर मिल गया।
तो न तो राम जपने की बात है, न राम शब्द से कुछ लेने-देने की बात है।
यहां पुष्पा बैठी है। वह यहां नाद का प्रयोग करती है। एक छोटा सा संन्यासियों का समुदाय उसके पास बैठ कर नाद का प्रयोग करता है, नाद में डूबता है। पुष्पा हालैंड से आई है, संस्कृत जानती नहीं। तो कुछ संस्कृत की भूल-चूक हो जाती होगी।
फिर यहां तो संस्कृत जानने वाले भी आ जाते हैं। आना तो नहीं चाहिए, मगर आ जाते हैं। तो किसी संस्कृत जानने वाले ने ऐतराज उठाया होगा, पुष्पा को समझाया-बुझाया कि इस तरह का नहीं, ठीक-ठीक उच्चारण होना चाहिए मंत्र का। नाद का ठीक स्वर होना चाहिए, ठीक व्याकरण होना चाहिए। तो बेचारी पुष्पा बात में पड़ गई।
जब हमेशा वह अपने समूह को लेकर आती थी तो परम आनंद की घटना घटती थी। वे खूब गहरे डूबते थे। इस बार जब आई मेरे पास और उसके समूह ने जब नाद का उच्चार किया तो उच्चारण तो सही था, बाकी सब खो गया। व्याकरण बिल्कुल ठीक हो गई, मगर न भाव था, न रस था, न डुबकी थी। डर दूसरा लगा था। डर यह लगा था कि कहीं कोई भाषा की भूल-चूक न हो जाए! तो गौण तो पकड़ में आ गया, मूल खो गया। मैंने उससे बुला कर पूछा कि तू जरूर किसी संस्कृत जानने वाले के चक्कर में आ गई। उसने कहा कि हां, कुछ गलती हुई? मैंने कहाः सब गड़बड़ हो गया, गलती नहीं हुई। यह ऐसे ही हुआ, जैसे कि बाल्या मरा-मरा जप रहा था, वह तो संयोग की बात है, प्रभु ने बड़ी कृपा की कि कोई पंडित नहीं भेजा इस वक्त,

नहीं तो वाल्मीकि अभी तक भटकते। पहुंचते ही नहीं। कोई पंडित आकर ठीक कर देता कि यह क्या कर रहे हो--मरा-मरा? राम-राम कहो। और याद रखना, इस तरह की भूल-चूक न हो। तो फिर डर पैदा हो जाता है। और डर में कहां प्रेम! जहां भय आया, संकोच आ गया सिकुड़ गया आदमी! फिर वह पूरे वक्त ख्याल रखते हैं कि कहीं मरा तो नहीं हो रहा है। फिर तो नहीं हो रहा है मरा। बस चूक जाते। फिर लीनता ही न बसती, फिर तल्लीनता ही पैदा न होती।
तो मैंने उनसे कहाः भूल सब भाषा-व्याकरण। यहां कोई मैं भाषा-व्याकरण थोड़े ही सिखाने को बैठा हूं। यहां असली की बात चल रही है, नकली की बात मत करा। भूल सब। कोई भी शब्द काम देगा। अपना भी नाम अगर दोहरा लो, तो भी हो जाएगा। यह प्रश्न ही शब्दों का नहीं है।
इसलिए कहते हैंः राम सदा कहत जाई। कहा कि चूके, कहा कि गया।
... राम सदा बहत जाई
और राम तो प्रवाह है। तुमने पकड़ने की कोशिश की कि चूका। मुट्ठी बांधी
कि गया। राम के साथ बहो। यह प्रवाह है, जीवंत प्रवाह है। यह कोई मुर्दा चीज नहीं है कि बांध ली गांठ और रख ली सम्हाल कर पोटली में। यह कोई हीरा नहीं है, यह नदी है, बहती हुई नदी है, यह सरित-प्रवाह है।
... राम सदा बहत जाई
कहत पकड़ो राम नाहीं, ...
और तुमने कह कर पकड़ लिया राम--चूके। राम बह रहा है, तुम भी उसके साथ बहो। बहो धारा के साथ। यही समर्पण का अर्थ है।
चलत पकड़ो राम नाहीं, राम सदा विराजत मांही
और राम तुम्हारे भीतर बैठा है, बुला किसको रहे हो? बुला कौन रहा है? जो बुला रहा है वही राम है। अब राम से ही राम-राम कहलवा रहे हो। काहे को कष्ट दे रहे हो? राम से राम-राम कहलवा के क्या सार होगा? जो भीतर पुकार रहा है उसमें ही डुबकी ले लो।
सब दिशत राम सही
जब भीतर राम दिखने लगेगा तो तुम पाओगे, सब दिशाओं में राम है।

चौथा प्रश्नः आपने कल महमूद गजनवी और उसके गुलाम के प्रेम की कहानी कही, लेकिन मुझे एक सत्य घटना मालूम है। जिसमें गुरु ने शिष्य के प्रति ऐसा भाव प्रकट किया। आप अपनी अमृतसर की एक यात्रा में लगातार तीन दिनों तक कड़वा रस पीते रहे और शिष्य को इसकी खबर नहीं होने दी। इसे समझाने की अनुकंपा करें।

पूछा है चमनलाल भारती ने। उन्हीं के घर की बात है, इसलिए वे ठीक ही कहते हैं। सच ही है बात। लेकिन इतने प्रेम से पिला रहे थे... । मैं बहुत घरों में रुका हूं। पत्नियां तो मुझे बहुत अनेक घरों में मिलीं जिन्होंने बड़े प्रेम से सेवा की, लेकिन जहां तक पतियों का संबंध है, चमनलाल अनूठे हैं। खुद ही सारी देखभाल करते। रात बारह बजे मुझे विदा करके फिर सुबह का इंतजाम करने में खुद लग जाते। चार बजे उठ कर फिर सुबह का इंतजाम। रस भी खुद लाते, पानी भी खुद लाते, भोजन भी खुद लाते।
इतने प्रेम से सेवा कर रहे थे कि कडुवे रस की बात उठानी ठीक नहीं थी।
और उनका क्या कसूर था? कुछ कडुवे फल आ गए होंगे। इतना प्रेम डाला था उसमें कि वह कड़वाहट कड़वाहट नहीं रही थी। जीभ तो जानती थी कि कड़ुवा रस है, लेकिन मैं तो कुछ और भी देख रहा था जो उसके साथ बह रहा है। वह इतना ज्यादा था कि उसने उस कडुवेपन को ढांक दिया था। कभी-कभी तो बेमन से कोई मीठा रस भी पिला दे तो कडुवा हो जाता है। और कभी कोई पूरे हृदय से कडुवा रस भी पिला दे मीठा हो जाता है। एक और भी मिठास है--प्रेम की।

आखिरी प्रश्नः संत दादू ने अपने शिष्यों की पीड़ा समझ कर भविष्यवाणी
की थी कि सौ साल बाद एक संत प्रकट होगा। वही पीड़ा मेरे समेत आपके सभी शिष्यों में मौजूद है। लगता है कि आपकी अनुपस्थिति हमें अनाथ बना देगी।

हमारे अंदर भी यही गहरी आकांक्षा जगती है। कि हमें भी कोई सौ साल बाद सम्हालने वाला हो। कृपा कर प्रकाश डालें।

पहली तो बात, मेरे रहते तुम सनाथ क्यों नहीं हो जाते हो? तुम्हारे इरादे अनाथ रहने के ही हैं? मैं तैयार हूं तुम्हें सनाथ करने को, और तुम कह रहे हो कि जब आप चले जाएंगे तो हम अनाथ हो जाएंगे। अगर तुम एक बार सनाथ हो गए तो सनाथ हो गए; फिर अनाथ नहीं होते। अनाथ वे ही हो जाएंगे मेरे जान के बाद, जो मेरे होते हुए भी अनाथ थे। इसे खूब ख्याल में ले लेना।
अगर मुझसे संबंध जुड़ गया तो परम से संबंध जुड़ गया। वही नाथ है उसके बिना तो अनाथ ही रहोगे। और अगर मुझे चूक गए तो सौ साल बाद अगर कोई आ भी जाए तो उसको भी चूक जाओगे। सौ साल में चूकने की आदत और मजबूत हो जाएगी। सौ साल अभ्यास कर लोगे न चूकने का! सौ साल के बाद की फिकर कर रहे हो। मैं अभी मौजूद हूं, दरवाजा अभी खुला है। तुम कहते हो, जब दरवाजा बंद हो जाएगा, सौ साल बाद कोई दरवाजा खुलेगा कि नहीं? अभी दरवाजा खुला है। तुम्हें सौ साल के बाद ही प्रवेश करना है? सौ साल और संसार में रहना है? अभी थके नहीं? अभी ऊबे नहीं? जो अभी हो सकता है उसे कल पर मत टालो। और अगर अभी न कर सके तो कल कैसे
कर सकोगे? करना है तो इस क्षण हो सकता है।
इसलिए मैं सौ साल के बाद की कोई भविष्यवाणी न करूंगा। मैं भविष्य की तरफ तुम्हें उन्मुख ही नहीं करना चाहता। वर्तमान मेरे लिए सब कुछ है, यही क्षण सब कुछ है। कल न तो आता है, न कभी आएगा, न कभी आया है। कल की आशा ही संसार है। आज में प्रवेश कर जाना ही धर्म है। धर्म बिल्कुल नगद बात है। तुम उधारी की बातें मत करो।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक दुकान पर गया। देखा कि दुकानदार एक तख्ती लगा रहा है। तो मुल्ला ने पूछा कि बड़ी प्यारी तख्ती है। उसने कहा, पढ़ो भी तो क्या लिखा है! वह मुल्ला जैसे आदमियों के लिए ही तख्ती लगा रहा था, तख्ती पर लिखा थाः आज नगद, कल उधार। मुल्ला थोड़ी देर चुप बैठा रहा फिर बोलाः अच्छा भाई चलते हैं। तो दुकानदार ने कहाः कैसे आए, कैसे चले? उसने कहा कि अब जैसे आए थे... यह तख्ती देख कर जा रहे हैं। अब कल आएंगे। आज नगद, कल उधार--तो जिस हिसाब से आए थे, अब वह तो आज चलेगा नहीं। कल आएंगे। उधार लेने आए थे।
मगर कल फिर आज की तरह आएगा न! कल जब आओगे, फिर तख्ती पर फिर लिखा होगाः
आज नगद, कल उधार।
ऐसी जिंदगी की तख्ती है, जिस पर लगा हैः आज नगद कल उधार। तुम कल के लिए प्रतीक्षा कर रहे हो, कल कभी आता है? आज ही आता है। जो आता है वह आज है। द्वार खुला है। हिम्मत हो, प्रवेश कर जाओ। हिम्मत न हो तो सौ साल का क्या हिसाब रख रहे हो? सौ साल बाद जब जो होगा, होगा। अगर हिम्मत होगी तो उस दिन भी दरवाजे मिल जाएंगे। हिम्मतवर को सदा दरवाजा है। अगर हिम्मत न होगी, तो कायर को कभी भी दरवाजा नहीं है। दरवाजे कभी समाप्त नहीं होते। कहीं न कहीं दरवाजा बंद होता है, कहीं न कहीं दरवाजा खुल जाता है। ऐसा तो कभी नहीं होता कि परमात्मा तक पहुंचने का कोई उपाय न हो। सदा उपाय है। परमात्मा किसी न किसी रूप में, किसी न किसी द्वार से तुम्हें पुकारता ही रहता है। तुममें भर हिम्मत होनी चाहिए।
अब तुम कह रहे हो कि सौ साल बाद आप की अनुपस्थिति हमें अनाथ बना देगी। मेरी उपस्थिति तुम्हें सनाथ बना रही है? अगर मेरी उपस्थिति तुम्हें सनाथ बना रही है तो अनाथ होने का फिर कोई उपाय नहीं रहा। बात ही खत्म हो गई। फिर तुम अनाथ कभी नहीं हो सकोगे। यह नाता कोई दिन दो दिन का नहीं है। यह नाता फिर शाश्वत है। जो तुम्हें चाहिए वह मैं तुम्हें देने को तैयार हूं, तुम भर लेने को तैयार हो जाओ। तुम भर अपना हृदय खोलो।
मैथिली में एक लोक-कथा है। गोनू झा का नाम बिहार में खूब प्रचलित है। मुल्ला नसरुद्दीन जैसा आदमी रहा होगा गोनू झा। गोनू झा मेले से सुंदर बछड़ा मोल लेकर अपने गांव लौट रहे थे। अभी वे गांव की सीमा में प्रवेश कर रहे थे। कि एक चरवाहे ने पूछा कि पंडित जी, बछड़ा तो बहुत सुंदर है, कितने में मोल लिया? पचहत्तर रुपये में, गोनू झा ने उत्साह से उत्तर दिया और आगे

बढ़े। वे गांव में प्रवेश कर चुके थे कि पाठशाला में जाता हुआ एक छात्र पूछ बैठा बाबा, बछड़ा तो बहुत सुंदर है, कितने में मोल लिया? पचहत्तर रुपये में, गोनू झा ने झल्ला कर कहा। आगे गांव का कुआं था जिस पर एक पनिहारन पानी भर रही थी। पनिहारन भी पूछ बैठी, पंडित जी, महाराज, बछड़ा तो बड़ा सुंदर है... और अभी वह इतना ही कह पाई थी कि गोनू झा बछड़े को वहीं छोड़ कर झम्म से कुएं में कूद पड़े।
पनिहारिन के शोर मचाते ही बात ही बात में समूचा गांव इकट्ठा हो गया और
एक रस्सी डाल कर गोनू झा को किसी तरह बाहर निकला गया। बाहर निकलते ही गोनू झा जोर से चिल्लाए, पचहत्तर रुपये।
क्यों गोनू, दिमाग तो ठिकाने है? एक अत्यंत वृद्ध व्यक्ति ने पूछा। बिल्कुल होश में हूं।
तो यह क्या बक रहे हो? पचहत्तर रुपये और कुएं में कूदने से क्या लेना- देना? और कुएं में कूदे ही क्यों थे?
ताकि सभी गांव वालों के प्रश्न का एक ही बार में उत्तर देकर छुट्टी पा लूं अब एक-एक आदमी को अलग-अलग उत्तर देते फिरना, और गांव भर पूछेगा कि बाबा, बछड़ा बड़ा सुंदर है। पचहत्तर रुपये, पचहत्तर रुपये तो गोनू झा ने ठीक उपाय किया, कूद पड़े कुएं में। सारा गांव अपने आप इकट्ठा हो गया, एक दफा पचहत्तर रुपया कह कर छुटकारा पा लिया।
जो प्रश्न तुमने पूछा है, वह प्रश्न औरों के मन में भी हो सकता है। वह प्रश्न किसी एक का नहीं है। वह मैं बहुतों की आंखों में देखता हूं। अलग अलग उत्तर देने की जरूरत नहीं है। मैं इकट्ठा ही कह देता हूंः पचहत्तर रुपये!
दरवाजा खुला है। आज नगद है और कल उधार हो जाएगा। नगद को स्वीकार कर लो। हिम्मत करो। चुनौती लो। अपने को खोओगे तो ही सनाथ हो सकोगे।
स्वयं मिटे बिना कोई सनाथ नहीं होता। क्योंकि जब अहंकार मिटता है तब परमात्मा प्रवेश करता है।

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
तीसरा प्रवचन

सूर न जाने कायरी

पंडित ग्यानी बहु मिले बेद ग्यान परबीन।
दरिया ऐसा न मिला रामनाम लवलीन।।
बक्ता श्रोता बहु मिले करते खैंचातान।
दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बान।।
दरिया सांचा सूरमा सहै सब्द की चोट
लागत ही भाजै भरम निकस जाए सब खोट।।
सबहि कटक सूरा नहीं कटक माहिं कोई सूर।
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रन तूर।।
भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग।
दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग।।
दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया।
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया।।
सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत।।
पुरजा-पुरजा हो पड़े तऊ न छांड़े खेत।।
दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर।
मन को जीत खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर।।

ज्ञान और ज्ञान में बड़ा भेद है--आकाश पाताल का। एक ज्ञान है जो स्वयं
का है, एक ज्ञान है जो स्वयं का नहीं है। जो स्वयं का नहीं है, वह केवल अज्ञान को ढांकने का उपाय है। जो स्वयं का है उससे ही मिटता है भीतर का अंधियारा।
उधार ज्ञान बुझा हुआ दिया है। शायद दीया भी नहीं, दीये की तस्वीर है। दीये की तस्वीर से अंधेरा नहीं मिटता; सत्य की तस्वीर से भी नहीं मिटता है। उधार ज्ञान मात्र स्मृति है, बोध नहीं। तुम जागे नहीं, नींद में पड़े हो। स्वप्न में ही तुमने दूसरों की आवाजें सुन ली हैं और संग्रहीत कर ली है। किसी ने कहा ईश्वर है, और तुमने मान लिया। ईश्वर है इसलिए नहीं, किसी भय के कारण, किसी प्रलोभन के कारण।
दुनिया में तीन तरह के धार्मिक लोग हैं। एक वे जो भय के कारण धार्मिक हैं। डरे हैं। कहीं कुछ भूल-चूक न हो जाए। कहीं नरक न पड़ना पड़े। कहीं कोई पाप न हो जाए।
एक वे जो लोभ के कारण धार्मिक है--स्वर्ग मिले, सुख मिले, भविष्य सुंदर हो। यहां तो बहुत पीड़ा उठा ली है, आगे न उठानी पड़े।
मगर ये दोनों ही धार्मिक नहीं हैं। धार्मिक व्यक्ति लोभी होगा, भयभीत होगा तो धार्मिक कैसे होगा? धार्मिक होने की तो अनिवार्य शर्त है कि लोभ और भय विदा हो जाए।
मैंने सुना है, राजा भोज के दरबार में बड़े पंडित थे, बड़े ज्ञानी थे। और कभी-कभी राजा भोज उनकी परीक्षा लिया करता था। एक दिन वह अपना तोता राजमहल से ले आया दरबार में। बस तोता एक ही रट लगाता था, एक ही बात दोहराता था बार-बारः बस एक ही भूल है, बस एक ही भूल है, बस एक ही भूल है। राजा ने अपने दरबारियों से पूछाः यह कौन सी भूल की बात कर रहा है तोता? पंडित बड़े थे, बड़ी मुश्किल में पड़ गए। और राजा ने कहाः अगर ठीक जवाब न दिया तो फांसी। ठीक जबाब दिया तो लाखों का पुरस्कार और सम्मान। तो अटकलबाजी भी नहीं चल सकती थी, खतरनाक मामला था। ठीक जवाब क्या हो? तोते से पूछा भी नहीं जा सकता। तोता कुछ और जानता भी नहीं। तोता इतना ही कहता है--तुम लाख पूछो, वह इतना ही कहता हैः बस एक ही भूल है।
सोच-विचार में पड़ गए पंडित। उन्होंने मोहलत मांगी, खोज-बीन में निकल गए। जो राजा का सब से बड़ा पंडित था दरबार में, वह भी घूमने लगा कि कहीं कोई ज्ञानी मिल जाए। अब तो ज्ञानी से पूछे बिना न चलेगा। शास्त्रों में देखने से अब कुछ अर्थ नहीं है। और अनुमान से भी अब काम नहीं होगा। जहां जीवन खतरे

में पड़ा हो, वहां अनुमान से काम नहीं चलता। तर्क इत्यादि भी काम नहीं देंगे। तोते से कुछ राज निकलवाया नहीं जा सकता है। तो पुराने जितने हथकंडे थे, सब फिजूल हो गए। वह अनेकों के पास गया लेकिन कहीं कोई जवाब न दे सका कि तोते के प्रश्न का उत्तर क्या होगा।
बड़ा उदास लौटता था राजमहल की तरफ कि एक चरवाहा मिल गया। उसने पूछाः पंडित जी, बहुत उदास हैं? जैसे पहाड़ टूट पड़ा आपके ऊपर, कि मौत आने वाली हो, इतने उदास! बात क्या है? तो उसने अपनी अड़चन कही, दुविधा कही। उस चरवाहे ने कहा फिकर न करें, मैं हल कर दूंगा। मुझे पता है। लेकिन एक ही उलझन है। मैं चल तो सकता हूं लेकिन मैं बहुत दुर्बल हूं। और मेरा यह जो कुत्ता है इसको मैं अपने कंधे पर रख कर नहीं ले जा सकता। और इसको पीछे भी नहीं छोड़ सकता हूं। इससे मेरा बड़ा लगाव है। पंडित ने कहाः तुम फिकर छोड़ो। मैं इसे कंधे पर रख लेता हूं।
उन ब्राह्मण महाराज ने कुत्ते को कंधे पर रख लिया। दोनों राजमहल में पहुंचे। तोते ने वही रट लगाई--एक ही भूल है, बस एक ही भूल है। चरवाहा हंसा उसने कहाः महाराज, देखें भूल यह खड़ी है। वह पंडित कुत्ते को कंधे पर लिए खड़ा था। भूल यह खड़ी है। राजा ने कहाः मैं समझा नहीं। उसने कहा कि शास्त्रों में लिखा है कि कुत्ते को पंडित छुए तो स्नान करे। और आपका महापंडित कुत्ते को कंधे पर लिए खड़ा है। लोभ जो न करवाए सो थोड़ा है। बस, एक ही भूल है--लोभ।
और भय लोभ का ही दूसरा हिस्सा है, नकारात्मक हिस्सा। यह एक ही सिक्के
के दो पहलू हैं--एक तरफ भय, एक तरफ लोभ।
ये दोनों बहुत अलग-अलग नहीं हैं। इसलिए जो भय से धार्मिक है, डरा है दंड से, वह धार्मिक नहीं है। और जो लोभ से धार्मिक है, जो लोलुप हो रहा है, वासनाग्रस्त है स्वर्ग से, वह भी धार्मिक नहीं है।
फिर धार्मिक कौन है? धार्मिक वही है जिसके पास न लोभ है, न भय। जिसे कोई चीज लुभाती नहीं और कोई चीज डराएगी भी नहीं। जो भय और प्रलोभन के पार उठा है वही सत्य को देखने में समर्थ हो पाता है।
सत्य को देखने के लिए लोभ और भय से मुक्ति चाहिए। सत्य की पहली शर्त
है अभय। क्योंकि जहां तक भय तुम्हें डांवाडोल कर रहा है वहां तक तुम्हारा चित्त ठहरेगा ही नहीं। भय कंपाता है, भय के कारण कंपन होता है। तुम्हारी भीतर की ज्योति कंपती रहती है। तुम्हारे भीतर हजार तरंगें उठती हैं लोभ की, भय की।
चीन में एक सम्राट हुआ। वह अपने महल के ऊपर ऊपर खड़ा है छत पर; और उसने देखा सागर में बहुत सी नौकाएं चल रही हैं, हजारों नौकाएं। उसने अपने बूढ़े वजीर से कहा देखते हैं, हजारों नौकाएं चल रही हैं। उस बूढ़े वजीर ने कहाः मालिक, हजारों नहीं हैं, नौकाएं तो दो ही हैं। उस सम्राट ने कहाः दो? तो क्या मैं अंधा हूं? मुझे इतनी हजारों नौकाएं दिखाई पड़ती हैं, तुम्हें दो ही दिखाई पड़ती हैं?
उस वजीर ने कहाः आपकी आंखें मुझ से बेहतर, लेकिन आपकी दृष्टि मुझ से बेहतर नहीं है। आप जवान हैं, आप दूर तक देख सकते हैं। मैं बूढ़ा आदमी मुझे साफ-साफ दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन जिंदगी भर के अनुभव से कहता हूं कि दुनिया में दो ही नौकाएं हैं। कुछ लोग भय की नौका में सवार हैं, कुछ लोभ की नौका में सवार हैं। और तो सब बातें हैं।
उस बूढ़े ने बड़े काम की बात कह दी। लेकिन जो भय की नौका में सवार है या लोभ की नौका में सवार है, ये दोनों ही धर्म के तट तक नहीं पहुंचेंगे। ये तो बहुत सांसारिक वृत्तियां हैं। इन से ज्यादा तो और कोई सांसारिक वृत्ति होती नहीं। फिर सारे उपद्रव तो इन्हीं से पैदा होते हैं। लोभ अगर है तो काम भी रहेगा। लोभ अगर है तो क्रोध भी रहेगा। क्योंकि जहां लोभ में बाधा पड़ेगी वहीं क्रोध उठ आएगा। और जहां लोभ है वहां काम कैसे जाएगा। इसलिए जिन्होंने स्वर्ग की कल्पनाएं की हैं, वहां भी कामवासना का खूब इंतजाम कर रखा है। शराब के चश्मे बह रहे हैं, सुंदर अप्सराएं नाच रही हैं। सब तरह का आयोजन कर रखा है। वही लोभ, वही काम, जो यहां टटोलता था अंधेरे में, वही स्वर्ग को भी बना रहा है।

जहां भय है वहां कभी प्रेम का जन्म नहीं होता। भय से तो घृणा पैदा होती है। भय से तो शत्रुता पैदा होती है; मैत्री तो पैदा नहीं होती। तो जो आदमी भयभीत होकर परमात्मा की तरफ आंखें उठा रहा है, हृदय में तो दुश्मन रहेगा। उसकी परमात्मा से मैत्री नहीं हो सकती। तुम उसको कैसे प्रेम करोगे जिससे तुम भयभीत हो? तुम उससे घृणा कर सकते हो। घृणा ही कर सकते हो। हां, ऊपर से चाहो तो प्रेम दिखा सकते हो क्योंकि वह बलशाली है। नौकर मालिक के आस-पास जो पूंछ हिलाता है, वह कुछ आत्मा से नहीं हिलती। आत्मा तो सिर्फ एक ही मांग करती है कि मौका मिल जाए तो गरदन काट दें।
मैंने सुना है, एक सिपाही बढ़ते-बढ़ते कप्तान हो गया। जब वह कप्तान हो गया तो दो सिपाही उसके आस-पास चलते थे। लेकिन वह दोनों सिपाही बड़े हैरान थे। जब भी कोई दूसरा सिपाही--और सैकड़ों सिपाहियों से मिलना होता दिन भर के आवागमन में--जब भी कोई सिपाही खड़े होकर सलामी मारता, जोर से बूट की ठोकर करता, सलाम करता, तो सलाम तो करता था वह कप्तान, लेकिन धीरे से यह भी कहताः वही तुम्हारे लिए भी। वे सिपाही बड़े हैरान थे कि यह क्यों कहता है बार-बार--वही तुम्हारे लिए भी।
एक दिन उन्होंने पूछा कि मालिक और तो सब ठीक है लेकिन जब भी कोई आपको सलाम करता है, तो आप भीतर से यह क्यों कहते हैं धीरे से कि वही तुम्हारे लिए भी?
उसने कहाः इसके पीछे राज है। मैं कभी सिपाही था। मुझे पता है कि जब सिपाही कप्तान को सलाम करता है तो भीतर गाली देता है। मैं जानता हूं। मैं सिपाही था। जब भी भीतर से--बाहर से सलाम करता है--भीतर से, अच्छी गालियां देता है। तो ऊपर से तो मैं सलाम कर लेता हूं। भीतर से मुझे पता है कि भीतर असली में वह क्या कह रहा है तो उसके भीतर के लिए मैं जवाब देता हूं कि वही तुम्हारे लिए भी। जो तुम मेरे लिए कह रहे हो भीतर से, वही मैं भी तुम्हारे लिए कह रहा हूं। वह उसके लिए उत्तर है। मुझे भीतरी बात का पता है।
यह आदमी ठीक कह रहा है। तुम जानते हो भलीभांति, जिसको तुमने भय के कारण नमस्कार किया है उसके लिए तुम्हारे हृदय में गालियों के अतिरिक्त और कुछ भी न होगा। और लोग कहते हैं, धार्मिक आदमी ईश्वर-भीरु होता है। यह बात असंभव है। दुनिया की सभी भाषाओं में इस तरह के शब्द हैं, ईश्वर-भीरु, गॉड-फियरिंग। ये बिल्कुल अधार्मिक शब्द हैं। भीरु, भयभीत तो कैसे ईश्वर को प्रेम करेगा? जिसका ईश्वर से प्रेम है वह ईश्वर से भयभीत नहीं है। ईश्वर से भयभीत हो अगर तो फिर अभय कहां होगा? ईश्वर तक से भयभीत हो तो फिर इस जगत में कहां शरण कर पाओगे? फिर कहां तुम्हारी प्रार्थना उठेगी? फिर तो गालियां ईश्वर के पास भी उठ रही हैं।
महात्मा गांधी कहते थे, किसी से मत डरना लेकिन ईश्वर से डरना। और मैं कहता हूं, सबसे डरना लेकिन ईश्वर से मत डरना। ईश्वर से अगर डरे तो फिर और कहां... फिर निर्भय की वीणा कहां बजेगी? फिर अभय के स्वर कहां उठेंगे? फिर अभय की अर्चना कहां होगी? फिर अभय की थाली कहां सजेगी? फिर अभय की दीपमाला कहां जलेगी?
ईश्वर के साथ भी अगर भय रहा तो फिर तो इस संसार में अभय कहीं भी नहीं
हो सकता। ईश्वर कोई सांप-बिच्छू नहीं है कि तुम उससे भयभीत होओ। ईश्वर तुम्हारा अंतर्तम है, तुम्हारे प्राणों का प्राण है। ईश्वर तुम्हारा शुद्धतम रूप है। उससे तुम आए हो, उसमें तुम हो, उसमें ही तुम जाओगे। जैसे लहर सागर से डरे, ऐसा पागलपन है ईश्वर से डरना। लहर और सागर से डरे?
लेकिन जिनको हम पंडित कहते हैं, जिनको हम धार्मिक कहते हैं, तपस्वी कहते हैं, महात्मा कहते हैं, जांच कर लेना, दो नावों में सवार मिलेंगे--या तो भय की नाव, और या लोभ की नाव।
फर्क भी साफ है कि भय की नाव में वे लोग सवार होते हैं, जो लोग जीवन में बुरा कर रहे हैं; क्योंकि वे घबड़ाए होते हैं। तो बुरे लोगों को तुम भय की नाव में सवार पाओगे। और जिनको तुम भले लोग कहते हो, जो पुण्य करते हैं, दान करते हैं, तप करते हैं, व्रत करते हैं, त्याग करते हैं, उपवास करते हैं, पूजा-प्रार्थना करते हैं, इनको तुम लोभ की नाव में सवार पाओगे। जो पाप करते हैं उनको तुम भय से कंपते हुए पाओगे। और जो पुण्य करते हैं उनको तुम

लोभ से भरे हुए सरोबोर पाओगे। मगर दोनों चूक जाएंगे। परमात्मा तक न तो लोभी पहुंचता है, न भीरु पहुंचता है। परमात्मा तक तो वही पहुंचा है जो लोभ और भय दोनों को छोड़ देता है। छोड़ते ही पहुंच जाता है। छोड़ते ही क्रांति घट जाती है।
एक ज्ञान है, जो लोभ और भय से मुक्त होकर उपलब्ध होता है। एक ज्ञान है,
जो केवल लोभ और भय का ही विस्तार है। वह जो दरिया कहते हैं, रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाए। वह जो शास्त्र की धूल लगी थी सारे शरीर में, सारे अंग में, वह गुरु ने एक ही शब्द से गिरा दी।
तुम हिंदू क्यों हो? तुम मुसलमान क्यों हो? तुम ईसाई क्यों हो? अपने कारण कि संयोगवशात? तुमने चुना है? तुमने निर्णय लिया है? या कि यह केवल मात्र संयोग की घटना थी कि तुम हिंदू घर में पैदा हो गए हो तो हिंदू हो; मुसलमान घर में पैदा हो गए तो मुसलमान हो। जो धूल तुम पर पड़ी उसी से तुम भर गए हो।
गुरु के पास जाकर न तुम हिंदू रह जाओगे, न मुसलमान, न ईसाई। रंजी सास्तर ग्यान की--वह सारे शास्त्र की ज्ञान की जो धूल है। वह झाड़ देगा। वह तुम्हें नहलाएगा, वह तुम्हें धुलाएगा। वह तुम्हें ताजा करेगा। वह तुम्हें वही करेगा जैसे तुम हो। वह ऊपर की सब खोलें अलग कर देगा। तुम्हारे ऊपर जितने वस्त्र हैं, सब हटा देगा। तुम्हारे ऊपर बाहर के तुमने जितने आडंबर कर रखे हैं, वह सब तोड़ देगा। इसलिए धार्मिक व्यक्ति को बड़ा साहसी होना चाहिए। तो भयभीत व्यक्ति तो कैसे इस यात्रा पर जाएगा? यह तो क्रांति की घटना है।

कोई देता है दरे दिल पर मुसलसल आवाज
और फिर अपनी ही आवाज से घबड़ाता है
अपने बदले हुए अंदाज का एहसास नहीं
मेरे बहके हुए अंदाज से घबड़ाता है
साज उठाया है कि मौसम का तकाजा था यही कांपता हाथ मगर साज से घबड़ाता है
राज को है किसी हमराज की मुद्दत से तलाश और दिल सोहबते हमराज से घबड़ाता है
शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े हौसला यह है कि परवाज से घबड़ाता है तेरी तकदीर में आशायेश अंजाम नहीं
एक ही शोर से आगाज से घबड़ाता है
कभी आगे, कभी पीछे, कोई रफ्तार है यह? हमको रफ्तार का आहंग बदलना होगा
जिहन के वास्ते सांचे तो न ढालेगी हयात
जिहन को आप ही हर सांचे में ढलना होगा
यह भी जलना कोई जलना है कि शोला न धुआं
अब जला देंगे जमाने को जो जलना होगा
रास्ते घूमकर सब जाते हैं मंजिल की तरफ
हम किसी रुख से चलें, साथ ही चलना होगा

हमारे जीवन की सबसे बड़ी पीड़ा यही है कि हम घबड़ाए हुए हैं। साज भी उठा लेते हैं तो हाथ कंपते हैं वीणा को छूते वक्त। डरते हैं, पता नहीं कैसा संगीत पैदा होगा। अपनी ही वीणा, अपने ही हाथ, अपना ही जीवन, और घबड़ाए हैं।

साज उठाया है कि मौसम का तकाजा था यही
वसंत आ गया था, फूल खिल गए थे, पक्षियों ने गीत गाए थे, सुबह उठी थी नई-नई, घास पर शबनम थी और उठा लिया साज।
साज उठाया है कि मौसम का तकाजा था यही
चारों तरफ वसंत ने घेर लिया था तो उठा ली है वीणा हाथ में।
कांपता हाथ मगर मगर साज से घबड़ाता है

लेकिन कांप रहा है हाथ। क्योंकि संगीत जो तुम पैदा करोगे, वह अज्ञात है। पता नहीं क्या पैदा होगा। इस साज को तुमने कभी छेड़ा नहीं। इस साज को तुमने कभी बजाया नहीं। यह तुम्हारी वीणा अनबजी पड़ी है--तो पता नहीं क्या होगा?
तुम ज्ञात से बंधे हो। भयभीत आदमी ज्ञात से बंधा रहता है। जो उसने किया है उसी को दोहराता रहता है। जो उसने बार-बार किया है उसी में वह कुशल हो जाता है।
कई बार तो ऐसा होता है कि तुम अपने दुख को भी नहीं छोड़ते, क्योंकि उससे बहुत परिचित हो गए हो। छोड़ने में डर लगता है। पता नहीं फिर किससे मिलना हो जाए। यह दुख है, माना कि दुख है, मगर अपना है और पुराना है। और जान-पहचान भी हो गई है। अब इससे राजी भी हो गए हैं। किसी तरह समायोजित भी हो गए हैं। नई झंझट कौन ले?
तुम अपनी जिंदगी को बदलते नहीं। क्योंकि डर लगता है कि बदल कर नये रास्तों पर चलना होगा, नई पगडंडी बनानी होगी, अनजान रास्ते होंगे, जिनका नक्शा भी पास नहीं, जिन पर कभी चले भी नहीं। अंधेरी रातें होंगी। पता नहीं खो न जाएं, भटक न जाएं। इसलिए घूमते रहो अपनी ही चक्कर में कोल्हू के बैल की तरह। राज को है किसी हमराज की मुद्दत से तलाश
किसी की तुम खोज कर रहे हो कि कोई साथ मिल जाए जो तुम अपने हाथ में ले लो।

राज को है किसी हमराज की मुद्दत से तलाश
और दिल सोहबते हमराज से घबड़ाता है

और सत्संग से डर लगता है। क्योंकि सत्संग तुम्हें मिटाएगा। गुरु से मिलने का अर्थ है, अपनी मौत से मिलना। पुराने शास्त्रों ने कहा है, आचार्यो मृत्यु। आचार्य तो मृत्यु है। सम्हल कर जाना, सोच कर जाना, सब तरह से निर्णय लेकर जाना, क्योंकि फिर लौट न सकोगे। गुरु में गए तो गए; फिर लौटना नहीं है।

शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े

शौक तो हमारे बड़े हैं। दिल में तरंगें तो बहुत उठती हैं। सपने तो हम बहुत लेते हैं। आंखें तो हमारी ख्वाबों से भरी हैं।

शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े
हौसला यह है कि परवाज से घबड़ाता है

और हौसला बिल्कुल नहीं है। हिम्मत बिल्कुल पस्त है। पंख खोलने में प्राण घबड़ाते हैं, क्योंकि पंख खोलने का मतलब है, अनंत आकाश। बैठे हैं अपने घोंसले में। सब सुरक्षित है, सब सुविधा है। यह खुला आकाश, यह विराट आकाश, इसमें कहीं खो न जाएं। तो सबने अपने घर बना लिए हैं।
इस घर बनाने की वृत्ति को ही मैं कहता हूं गृहस्थी। गृहस्थ का मतलब मेरे लिए यह नहीं है कि तुम्हारी पत्नी है और बच्चे हैं। पत्नी और बच्चों से क्या कोई घर बनता है? पत्नी और बच्चे से घर नहीं बनता है इसलिए पत्नी- बच्चों को छोड़ कर संन्यासी भी नहीं हो सकते। पत्नी-बच्चों से घर ही नहीं बनता तो पत्नी बच्चों को छोड़ कर कैसे संन्यासी हो जाओगे? घर बनता है सुरक्षा से, घर बनता है कमजोरी से। घर बनता है भय से। घर बनता है सदा सीमा के भीतर रहने से।
गृहस्थी का अर्थ होता है, जो आदमी कभी अपने घोसले के बाहर नहीं जाता,
जो पंख ही नहीं मारता, नये से जो संबंध नहीं बनाता। हिंदू घर में पैदा हुआ तो हिंदू ही मर जाएगा। हिंदू घर में पैदा हो जाना तो अच्छा है लेकिन हिंदू घर में ही मर जाना दुर्भाग्य। मुसलमान पैदा हुआ तो मुसलमान घर में ही मर

जाएगा। जैसा पैदा हुआ है उसी सीमा में घूमता कोल्हू के बैल की तरह वहीं समाप्त हो जाएगा। एक दिन वहीं गिर जाएगा। नये आकाश, नये आयाम, नई दिशाएं पुकारती रहेंगी और तुम हौसला न करोगे।

शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े
हौसला यह है कि परवाज से घबड़ाता है

पंख खोलने में प्राण अटकते हैं। जहां पंख खोलने की बात करो वहीं वह बचने की बात करने लगता है। वह कहता है घर बैठे-बैठे बात चले--राम की हो, कि रहीम की हो, कि मोक्ष की हो, कि निर्वाण की हो; सब सुनेंगे। सत्यनारायण की कथा यहीं करवाएंगे। मगर कहीं जाएंगे नहीं। इंच भर बदलेंगे नहीं।

तेरी तकदीर में आशायेश अंजाम नहीं
एक ही शोर से, आगाज से घबड़ाता है,

अगर ऐसी बात है कि क्रांति से इतना डर है, कि क्रांति की आवाज से इतना
डर है तो फिर तेरी किस्मत में सुख की कोई संभावना नहीं।

तेरी तकदीर में आशायेश अंजाम नहीं

फिर तू पक्का समझ ले कि फिर सुख तुझे मिलने वाला नहीं है। फिर आनंद की कभी वर्षा न होगी। अमृत कभी तेरे द्वार पर दस्तक न देगा। और परमात्मा से कभी तेरा मिलन न होगा।

तेरी तकदीर में आशायेश अंजाम नहीं
एक ही शोर से आगाज से घबड़ाता है

अगर क्रांति की आवाज से घबड़ाता है, अगर इंकलाब से घबड़ाता है, अगर अपने
को बदलने से ऐसा भयभीत है, डरा हुआ है कि अपने को पकड़े हुए है, कि जैसा हूं वैसा ही रहूंगा... ।
सोचो, बच्चा मां के पेट में होता है और घबड़ा जाए, और मां के पेट के बाहर
न आए तो क्या हो? एक बात तो साफ है कि जब बच्चा नौ महीने के बाद मां के पेट बाहर आता है तो उसे ऐसा ही लगता होगा कि मर रहा हूं। निश्चित ही लगता होगा कि मर रहा हूं। क्योंकि नौ महीने तक जो जिंदगी जानी, वह तो खत्म हो रही है, वह तो समाप्त हो रही है। और नौ महीने तक कैसी मजेदार जिंदगी जानी, कैसे सुख की दुनिया देखी। न कोई चिंता थी, न कोई फिकर थी, न कोई दायित्व था, न कोई झंझट थी। सोए थे क्षीरसागर में विष्णु बने।
तुम्हें पता है न। मां के पेट में ठीक समुद्र के जल जैसा जल होता है। उसी जल में बच्चा तैरता है। मां के शरीर की गर्मी उस जल को गरम रखती है। जैसे कभी गरम टब में तुम बैठ जाते हो और सुख से डूब जाते हो, ऐसा बच्चा नौ महीने उस गरम जल में तैरता है। वह क्षीरसागर है। कोई चिंता नहीं, कोई फिकर नहीं। न रोटी कमानी है, न घर बनाना है। श्वास तक अपनी लेने की फिकर नहीं है। मां ही श्वास लेती है। मां ही भोजन पचाती है, मां ही खून पहुंचाती है। सारा काम कोई कर रहा है। उसे उसका पता भी नहीं है। धन्यवाद भी देने की झंझट नहीं है। सब हो रहा है, अपने आप हो रहा है। परमात्मा सब कर रहा है। फिर एक दिन अचानक इस अपूर्व घर से उजड़ने की घड़ी जा जाती है। निकलना पड़ता है इसे घोसले के बाहर। तो बच्चा घबड़ाता है--घबड़ाता ही होगा।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जीवन की सब से बड़ी पीड़ा जीवन के पहले दिन घटती है। फिर तो सब पीड़ाएं छोटी हैं। उसको ट्रामा कहते हैं मनोवैज्ञानिक। वह इतना बड़ा घाव हो जाता है बच्चे को, अचानक उखड़ना पड़ता है। बस गए थे। और नौ महीने तुम थोड़ा मत समझना। तुम्हें थोड़े लगते हैं नौ महीने, बच्चे के लिए तो नौ महीने अनंत काल है। क्योंकि न तो घड़ी है, न कैलेंडर है। कोई जांच-पड़ताल तो है नहीं।

और एक बात और ख्याल रखना, सुख की घड़ियां खूब लंबी होती हैं। अनंतकाल मालूम पड़ता है। सुख ही सुख है। कहीं दुख की कोई किरण भी नहीं है। तो नौ महीने जैसे शाश्वत! कोई शुरू नहीं, कोई अंत नहीं। एक ही स्वर बजता रहता है। तो बच्चे के लिए नौ महीने नौ महीने नहीं हैं, वह तो अनंतकाल रह लिया।
अब इस अनंतकाल रहने के बाद अचानक एक दिन उखड़ना पड़ रहा है, सब छोड़ना पड़ रहा है। जिसे जीवन जाना था वह छूट रहा है, और कहां जाना होगा इसका कुछ पता नहीं है। तो बच्चा भी रुकने की कोशिश करता है। इसी से पीड़ा होती है मां को। बच्चा रुकने की कोशिश करता है। बच्चा अपने को वहीं जमाए रखने की चेष्टा करता है, आना नहीं चाहता जगत में। जगत का उसे पता भी नहीं है। लेकिन अगर न आए तो मरेगा। जिसको वह मृत्यु समझ रहा है वह एक नये जीवन की शुरुआत है। और अगर वह जिद करके वहीं रुक जाए, तो जिसे वह अब जीवन समझ रहा है वह मृत्यु में परिणत हो जाएगा।
वह कक्षा पार हो गई, अब उसके आगे जाना है। अब खतरा मोल लेना है। क्योंकि खतरा मोल लिए बिना जीवन में कोई विकास नहीं होता। अब चुनौतियां झेलनी हैं। बच्चा पैदा होगा, रोज-रोज चुनौतियां बढ़ती जाएंगी। रोज-रोज! जैसे-जैसे बड़ा होगा वैसे-वैसे संसार का दायित्व और संघर्ष, और उपद्रव बढ़ते जाएंगे। और जैसे-जैसे बड़ा होगा वैसे-वैसे और-और घर भी छोड़ने होंगे। पांच-सात साल का हो जाएगा तो स्कूल जाना पड़ेगा। फिर एक झंझट। यह घर की चार-दीवारी बड़ी सुखद थी। यहां सब अपने थे, अब परायों में जाना होगा। अब पता नहीं वे कैसा व्यवहार करेंगे। निश्चित वह ऐसा ही व्यवहार तो नहीं करेंगे जैसा मां करती थी, पिता करते थे, भाई बहन करते थे। डरता है बच्चा। तुमने देखा है न! छोटे बच्चे को स्कूल भेजने वक्त कैसी घबड़ाहट होती है। कैसा लौट-लौट कर घर की तरफ देखता है। वह गृहस्थी का मन है। अनजान में जा रहा है। पता नहीं कौन मिलेंगे। कैसे लोग मिलेंगे। क्या व्यवहार करेंगे। अब तक सुरक्षा में पला है, अब असुरक्षा में उतर रहा है।
फिर स्कूल है, और कालेज है और विश्वविद्यालय है। और फिर विश्वविद्यालय के बाद एक दिन विवाह है, और एक नया घर उसे अपना बनाना होगा। अब सारा दायित्व उसका है। अब उसकी जिम्मेवारियां बढ़ती जाती हैं। अब उसके बच्चे होंगे उनकी भी जिम्मेदारी उस पर होगी। अब संघर्ष में उतर गया पूरे संसार के; बाजार में खड़ा होगा।
यह आत्म विकास के लिए अनिवार्य है। ऐसी ही अंतर्यात्रा पर भी घड़ियां हैं। ऐसे ही ठीक मील के पत्थर हैं। वहां भी क्रांति के लिए तैयार होना पड़ता है। तुमने जो ज्ञान इकट्ठा कर लिया है शास्त्रों का वह तो ठीक है, कामचलाऊ है; उसे छोड़ना होगा। तुम्हें स्वयं ही उतरना होगा इस अनंत के आकाश में, पर मारने होंगे।

कभी आगे, कभी पीछे कोई रफ्तार है यह!
हमको रफ्तार का आहंग बदलना होगा
हमें रफ्तार का ढंग बदलना होगा।
जिहन के वास्ते सांचे तो न ढालेगी हयात

और जिंदगी तुम्हारे ढंग से नहीं चल सकती, याद रखना। तुमने जिंदगी को अपने ढंग से चलाना चाहा कि तुम दुख में पड़े। यही तो दुख है। सारा संताप यही है। जगत का दुख क्या है? कि तुम जिंदगी को अपने ढंग से चलाना चाहते हो। तुम कहते हो कि यह जिंदगी का व्यवहार मेरे ढांचे में हो। मैं जैसा चाहूं, वैसा हो। तुम चाहते हो यह नदी मेरे पीछे चले।
यह नदी तुम्हारे पीछे नहीं चलेगी। तुम इसी नदी की छोटी सी लहर हो। लहर
के पीछे नदी कैसे चल सकती है? लहर को ही नदी के साथ चलना होगा। अंग को विराट के साथ चलना होगा। विराट अंग के साथ नहीं चल सकता। हम तो छोटे-छोटे हिस्से हैं। मगर जिंदगी भर हम यही तो कोशिश करते हैं।
यही तो अहंकार की घोषणा है; कि मैं सिद्ध कर दूंगा कि जिंदगी मेरे पीछे चलती है; कि अस्तित्व मेरे पीछे चलता है; कि परमात्मा साए की तरह मेरे पीछे आता है। यही दुख है। अहंकार दुख का मूल है।

जिहन के वास्ते सांचे तो न ढालेगी हयात

तुम याद रखो, जिंदगी तुम्हारे लिए तुम्हारे बनाए सांचों में नहीं ढलेगी।

जिहन को आप ही हर सांचे में ढलना होगा।

तुम्हीं को जिंदगी के सांचों में ढलना होगा। इसका नाम समर्पण है। जिस दिन यह समझ आ जाती है कि नदी के साथ मुझ ही को बहना होगा, जिस दिन तुम अपने अहंकार को उतार कर रख देते हो और तुम कहते हो, अब मैं तैरूंगा भी नहीं; अब तो सिर्फ बहूंगा। ले जाए जहां नदी, गिराए पर्वतों से तो गिरूंगा। डुबाए सागरों में तो डूबूंगा। ले जाए जहां नदी। भाप बन कर उड़ेगी बादलों में तो उडूंगा। ले जाए जहां नदी। अब अपनी इच्छा छोड़ता हूं। अब अपनी मर्जी छोड़ता हूं। यही तो राम के होने का अर्थ है।
तो ज्ञान और ज्ञान में बड़ा भेद है। एक तो ज्ञान मिलता है, पोथी से। पोथी यानी थोथी। पोथी से जो मिले, उस पर भरोसा मत करना। और एक ज्ञान मिलता है साहस करके, जीवन में उतरने से। शूरवीर चाहिए।
आज के इन पदों में उसी शूरवीर की प्रशंसा है। ये अदभुत पद हैं। एक-एक
पद पर ठीक-ठीक ध्यान देना।
पंडित ग्यानी बहु मिले बेद ज्ञान परबीन।
दरिया ऐसा ना मिला रामनाम लवलीन।।
दरिया कहते हैं, खोजते-खोजते थक गया। बहुत लोग मिले, पंडित थे, ज्ञानी थे, वेद-शास्त्र के ज्ञाता थे, कंठस्थ थे वेद, उपनिषद वाणी से झरती थी।
तोते थे लेकिन। सब दोहरा रहे थे। अपना जाना कुछ भी न था। निज की संपदा जरा भी न थी। सब बासा, उच्छिष्ट, उधार।
पंडित ग्यानी बहु मिले बेद ग्यान परवीन।
बड़ी कुशलताएं थी उनकी। प्रवीण थे बहुत शब्दों में, तर्कों में, खंडन-मंडन में, शास्त्रार्थ में, वाद-विवाद में, अनुमान में, दर्शन में बड़ी प्रवीण थे। मगर इस प्रवीणता का क्या करना? भीतर तो दीया जला न था। भीतर तो गहन अंधेरा था।
दरिया ऐसा न मिला रामनाम लवलीन।
तलाश दरिया को उसकी थी जो राम में डूबा हो। क्योंकि जो राम में डूबा
हो वही तुम्हें भी राम में डुबा सकता है। शास्त्र में जो डूबा है वह तुम्हें भी शास्त्र में ही डुबाएगा, और तो कुछ कर नहीं सकता। वेदपाठी के पास जाओगे, वेदपाठी हो जाओगे। व्याकरण सिखाएगा, भाषा सिखाएगा; शब्द की महिमा सिखाएगा लेकिन निःशब्द शून्य का चमत्कार तो उसके पास नहीं। मौन तो उसके पास नहीं पा सकोगे। उसके हृदय में ध्यान तो नहीं। सुरति तो उसकी नहीं जगी। तो उसके पास से तुम भी खूब कूड़ा-करकट इकट्ठा करके लौट आओगे। जान लोगे बहुत और जानोगे कुछ भी नहीं। ज्ञान खूब इकट्ठा हो जाएगा और भीतर का अज्ञान जहां का तहां, जैसा का तैसा।
दरिया ऐसा न मिला रामनाम लवलीन।
तलाश थी किसी की जो राम में डूबा हो; जिसने अपने अहंकार को छोड़ा हो; जिसने अनंत को वरा हो। तलाश थी किसी ऐसे की जो अब तैरता न हो--धारा के विपरीत की तो बात ही नहीं, जो तैरता ही न हो। जिसने अब छोड़ दिया हो अपने को परम विश्राम में। परमात्मा जहां ले जाए, उसकी जो मर्जी। जो उसके ही इशारे पर जीता हो। जो बांस की पोंगरी हो। परमात्मा जो गाए, गाता हो, न गाए, चुप रह जाता हो। जिसकी अपनी पकड़ गई, वही राम का होता है।
बड़े दर्द से कहते हैं, दरिया ऐसा न मिला--ऐसे गुरु की तलाश थी।
बक्ता श्रोता बहु मिले...
मिले बहुत समझाने वाले, मिले बहुत सुनने वाले।
... करते खैंचातान।

और उनके पास खूब तर्क देखा, खूब विवाद देखा, खूब खेंचातान देखी, खूब खेंचातान चलती है दुनिया में।
अब गीता पर हजार टीकाएं हैं। कृष्ण का तो मतलब एक ही होगा। पागल तो नहीं थे कि हजार मतलब हों। लेकिन खूब खेंचातान चलती है। ज्ञानमार्गी सिद्ध करता है कि गीता का अर्थ ज्ञान। और भक्तिमार्गी सिद्ध करता है कि गीता का अर्थ भक्ति। और कर्ममार्गी सिद्ध करता है कि गीता का अर्थ कर्म। शंकर से पूछो तो ज्ञान। रामानुज से पूछो तो भक्ति। तिलक से पूछो तो कर्म। कृष्ण से किसको लेना-देना है। खूब खेंचातान चलती है। कृष्ण ने क्या कहा है यह तो कृष्ण हुए बिना नहीं कहा जा सकता। कृष्ण ने जो कहा है वह तो कृष्ण होकर ही जाना जा सकता है। कृष्णमय होकर ही कृष्ण की वाणी का अर्थ खुल सकता है, व्याख्याओं से नहीं खुलेगा। लेकिन खूब खेंचतान चलती है। देखी होगी दरिया ने।
बक्ता श्रोता बहु मिले करते खैंचातान।
दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बान।।
लेकिन खोज थी उसकी, जो परमात्मा के बाण को हृदय खोल कर झेल ले ऐसे हिम्मतवर की, ऐसे दिलवाले की कि जो परमात्मा के बाण को हृदय खोल कर झेल ले; जो कहे कि मुझे मारो ताकि मैं तुममें जी सकूं। जो कहे मेरी मृत्यु बनो ताकि तुम मेरे जीवन हो जाओ। जो कहे मुझे मिटा दो, मुझे पोंछ दो, मेरी रूपरेखा न बचे, ताकि तुम ही तुम बचो, मैं न रहूं।
दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बान।
धार्मिक तो वही हो सकता है जो मरने को तैयार है। इसीलिए तो मैं कहता हूं कि मेरे पास आए तो सोच-समझ कर आना। मैं मृत्यु सिखाता हूं। यह पाठ मरने का पाठ है, मैं यहां तुम्हें सजाने के लिए नहीं हूं। कि तुम्हें थोड़ा सजा दूं, तुम्हें थोड़ा सुंदर बना दूं, कि तुम्हें थोड़े और आभूषण दे दूं, कि तुम थोड़े और पंडित और ज्ञानी होकर लौट जाओ, कि तुम थोड़े और अकड़ से भर जाओ; कि तुम दुनिया को समझाने लगो; कि दुनिया में तुम त्यागी और महात्मा बनने लगो। नहीं, यहां आए हो तो मिटने की तैयारी चाहिए। जो सन्मुख झेले बान!
ध्यान मृत्यु है। सूली अपने कंधे पर लेकर जो चले वही संन्यासी है। जो अहंकार के जगत में मरने को प्रतिपल तैयार रहे वही संन्यासी है। जो मौत का स्वागत करे वही संन्यासी है। जिसे एक बात समझ में आ गई है कि मेरे रहते तो दुख रहेगा। मैं ही दुख का मूल हूं। मैं हूं तो दुख है मैं हूं तो नरक है। तो जो परमात्मा से एक ही प्रार्थना करे कि प्रभु, मुझे मिटाओ। अब बहुत
हो गया यह खेल। अब मुझे डुबाओ। क्योंकि यह कुछ मामला ऐसा है कि यहां जो डूबते हैं वही किनारे लगते हैं। जिन्होंने किनारे लगने की कोशिश की वे तो डूब जाते हैं। यहां जो डूबते हैं वे किनारे लग जाते हैं।
दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बान।
दरिया सांचा सूरमा सहै सब्द की चोट।
लागत ही भाजे भरम निकस जाए सब खोट।।
और जो हृदय को खोल कर प्रभु के बाण को लेने को तैयार है। प्रभु तो शिकारी है। तुम्हें शिकार बनना होगा।
इस देश में हमारे पास बड़े प्यारे शब्द हैं। उन प्यारे शब्दों में परमात्मा के नामों में जो सबसे प्यारा है, वह है हरि। हरि का अर्थ होता है जो तुम्हारे हृदय को चुरा कर ले जाए। हरि का अर्थ होता है, चोर। हर ले, झपट ले, लूट ले। अगर तुम अपने हृदय को बचाए-बचाए फिर रहे हो तो हरि से मिलन न होगा। यह तो सौभाग्य है तुम्हारा कि वह तुम्हारे हृदय की तरफ आकर्षित हो जाए और तुम्हें लूट ले। बुलाओ उसे और हृदय को ऐसी जगह रख दो कि जहां उसे अड़चन न हो लूटने में। खोल कर रख दो।
दरिया सांचा सूरमा सहै सब्द की चोट।
वही है सच्चा हिम्मतवर, जो सत्य शब्द की चोट सह सके।
बहुत कठिन है। झूठे शब्द बड़े प्यारे लगते हैं। झूठे शब्दों में अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। तुम जांचना, अपनी जिंदगी में जांचना।
क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह हर चीज जिंदगी में जांची जानी चाहिए; वहीं

प्रमाण मिलेंगे। तुम जांचना, झूठ शब्द बड़े प्यारे लगते हैं। सच बड़ा अखरता है।
कोई तुमसे कह देता है आप बड़े सुंदर है। कैसे गुदगुदी फैल जाती प्राणों में। कैसे कमल खिल जाते हैं। कोई कह देता है, आप बड़े ज्ञानी। आप की कहां उपमा! आप तो बस आप ही हो अपनी उपमा। किसी और से तुलना आपकी हो ही नहीं सकती। कैसे हिमालय उठने लगते हैं अहंकार के भीतर। यह आदमी कितना प्यारा लगने लगता है।
नहीं तो खुशामद दुनिया में चलती क्यों? और खुशामद इतनी कारगर क्यों होती? झूठ प्यारा लगता है इसलिए खुशामद कारगर होती है। झूठ खूब प्यारा लगता है। और ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें पता नहीं चलता कि यह झूठ है। तुमने अपनी शकल आईने में देखी है। तुम्हें पता है तुम कितने सुंदर हो। तुम्हें पता है तुम कितने ज्ञानी हो। जीवन की छोटी-मोटी समस्याएं भी तो हल नहीं होतीं। टुच्ची-टुच्ची बातें तो उलझा देती हैं। टुच्ची-टुच्ची बातें तो रात की नींद खराब कर देती हैं। छोटे-छोटे हानि लाभ तो ऐसा डांवाडोल कर जाते हैं। कैसा तुम्हारा ज्ञान है? नहीं, लेकिन वह तुम सब भूल जाओगे। जब कोई झूठ बोलेगा तब तुम एकदम भरोसा कर लोगे; तब तुम एकदम मान लोगे। लेकिन अगर कोई सच कह दे तो चोट लगती है। क्योंकि सच का मतलब यह है कि तुमने जो अपनी प्रतिमा बना रखी है अहंकार की, वह खंडित होती है।
अक्सर ऐसा होता है कि जो तुमसे सच बोल देता है उसे तुम कभी माफ नहीं कर पाते। तुम उससे बदला लेते हो, तुमसे अगर कोई सच कह दे, वैसा का वैसा जैसा है--नंगा निर्वस्त्र सत्य कह दे, तो तुम उस आदमी के पास फिर दुबारा नहीं फटकते; फिर तुम भूल कर वहां नहीं जाते। सच से आदमी बचता है क्योंकि सच तुम्हारी असली तस्वीर को प्रकट करता है।
हम सब ने एक प्रतिमा बना रखी है अपनी अपने मन में कि हम ऐसे हैं, या कम
से कम ऐसे होने चाहिए, या कम से कम ऐसे होते। और जब भी कोई उस प्रतिमा को सहारा देता है, हमें प्यारा लगता है। किनको तुम अपने मित्र कहते हो? जिनको तुम अपने मित्र कहते हो अक्सर वे वे ही लोग हैं जिन्होंने तुम्हारे आस-पास झूठ फैला रखा है।
कबीर ने तो कहा हैः निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाए। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो उसको तो बुला ही लाना, अपने घर में ही ठहरा लेना कि भैया, तू यहां ही रह। अब कहां जाएगा और? जितना बन सके उतनी निंदा कर। सच तो ये है कि शायद निंदक से तुम्हें जो लाभ मिल जाए वह प्रशंसक से न मिले। लेकिन कौन निंदक को पसंद करता है! तुम अपनी असली तस्वीर तो देखना ही नहीं चाहते। तुम तो अपनी नकली तस्वीर देखना चाहते हो जैसा तुम सपनों में सजाए बैठे हो। इसलिए कहते हैं दरिया,
दरिया सांचा सूरमा सहै सब्द की चोट।
गुरु के पास तो वे ही लोग आ सकते हैं, सदगुरु के पास तो बहुत थोड़े लोग आ सकते हैं--विरले, सूरमा, जो शब्द की चोट सहने को राजी हों। क्योंकि सदगुरु तुमसे कुछ ऐसा नहीं कहेगा जिससे तुम्हारा अहंकार बढ़े। वह तुम्हारा दुश्मन नहीं है। वह तो जो भी कहेगा उससे तुम्हारा अहंकार टूटे, गिरे, खंडित हो, भस्मीभूत हो। वह तो तुम्हें मिटाने चला है। वह तो तुम्हें जलाने चला है। वह तो तुम्हें चिता पर चढ़ाने चला है।
कबीर ने कहा हैः
जो घर बारे आपना, चले हमारे संग।
सब जलाने की तैयारी हो तो आ जाओ।
कबीरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ।
लट्ठ लिए हाथ खड़े हैं, कबीर कहते हैं, बाजार में। अब जिसकी हिम्मत हो,
आ जाए। खोपड़ी तुड़वानी हो, तो कबीर के साथ चलो। मगर जो कबीर के साथ चले, वे ही पहुंचते हैं। मिटते हैं, वे पहुंच जाते हैं।
जीसस ने कहा हैः जो अपने को बचाएगा, वह मिट जाएगा। और जो अपने को मिटाने को तैयार है, उसे फिर कोई भी नहीं मिटा सकता। जो बचाएगा, मिटेगा। जो नहीं बचाएगा अपने को, बचेगा। यह विरोधाभास धर्म की बड़ी आत्यंतिक रहस्य की गहरी बात है।

लागत ही भाजै भरम निकस जाए सब खोट।
गुरु को अगर मौका दिया चोट करने का, अगर शब्द की चोट सहने की हिम्मत रखी, भाग नहीं गए, छोटी-छोटी क्षुद्र बातों में उलझ कर भाग नहीं गए, हिम्मत रखी, सहते गए, तो एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि--लागत ही भाजै भरम। जिस दिन चोट बैठ जाती है, तीर लग जाता है, उसी दिन सारे भ्रम मिट जाते हैं--निकस जाए सब खोट!
मगर खोट यानी तुम। तुम्हारा तो कुछ भी नहीं बचेगा। तुम तो खोट ही खोट हो। जब सारी खोट निकल जाएगी तो जो बचेगा वह परमात्मा है, तुम नहीं हो। तुम्हारा तो परमात्मा से कभी मिलना नहीं होगा। तुम्हारा तो परमात्मा से मिलना हो ही नहीं सकता। झूठ तो कैसे परमात्मा से मिले?
इसलिए कबीर ने कहा है--बड़ी अदभुत बात--कि जब तक मैं था तुम न थे, अब तुम
हो मैं नहीं। यह भी खूब रही। खोजने निकला था--हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
गए थे खोजने, खो गए। जिस दिन खो गए उस दिन परमात्मा सामने खड़ा था। खोए नहीं कि परमात्मा हुआ नहीं। जब तक थे तब तक परमात्मा न मालूम कहां था। पता नहीं चलता था, कहां छिपा है।
तो आदमी का कभी परमात्मा से मिलन नहीं होता। आदमी तो झूठ है, आदमी तो अंधेरा है। अंधेरे का रोशनी से मिलन कैसे होगा? तो खोट यानी तुम। यह मत सोचना कि खोट निकल जाएगी तो सब खराब चीजें निकल जाएंगी और अच्छा-अच्छा बच जाएगा। अच्छा तो तुम में कुछ भी नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है, तय करनी, मान लेना बड़ी कठिन है। इसलिए तो कहते हैं दरिया,
दरिया सांचा सूरमा सहै सब्द की चोट।
तुम भी सुन रहे हो मेरी बात, तुम्हारा मन भी कह रहा होगा, सब खोट ही खोट? कुछ तो ठीक होगा। मान लिया कि कभी-कभी चोरी भी करते हैं, बेईमानी भी करते हैं, लेकिन दान भी तो देते हैं। लेकिन जो दान चोरी से निकलता है वह दान कैसे होगा? वह तो चोर की ही तरकीब है और बड़ी चोरी करने की तरकीब है। लाख रुपये चुरा लेते हैं, हजार रुपये दान कर देते हैं। यह हजार रुपये दान करके तुम सोच रहे हो, वह लाख की जो चोरी की थी उसके पाप को धो डाला। दान का उपयोग तुम साबुन की तरह कर रहे हो। वे जो दाग लग गए थे तुम्हारी चादर पर, उनको धो डाला। लाख रुपये की चोरी की, हजार के दान से कैसे मिटेगी? सच तो यह है कि लाख रुपये की चोरी लाख रुपये से ज्यादा दान होगा तो ही मिट सकती है। लाख के दान से भी नहीं मिटेगी क्योंकि लाख का दान तो सिर्फ जो लिया था वह वापस लौटाया। दंड भी कुछ दोगे कि नहीं लेने के बाबत? लाख चुराए थे, लाख लौटा दिए, चलो ठीक है। हिसाब-किताब ऊपर से तो बराबर हो गया लेकिन लिए थे, लेने चाहे थे, उसके लिए भी कुछ दोगे या नहीं?
तो तुम कहते हो कि होगा, कुछ-कुछ हममें बुरा भी है, कुछ-कुछ भला भी है। नहीं, बुरा और भला साथ-साथ जीता ही नहीं। जिसको तुम सज्जन कहते हो वह एक तरह का झूठ है, एक तरह का पाखंड है।
संत का अर्थ होता हैः जिसके भीतर स्व का होना न रहा--न भला, न बुरा। जिसकी सारी खोट निकल गई। सज्जन का अर्थ होता हैः बुरे-बुरे को छिपाए हुए है, भले को ऊपर झलकाता फिरता है लेकिन बुरा भीतर छिपा है। बुरे के बिना भला भी न हो सकेगा।
मेरे पास एक दंपति मिलने आए। पति ने खूब दान किया है। पत्नी उनके पति
के संबंध में प्रशंसा कर रही थी। यही तो हमारा धंधा है। पति-पत्नी की प्रशंसा करता है, पत्नी पति की प्रशंसा करती है, ऐसे सब पारस्परिक लेन-देन चलता। पत्नी प्रशंसा कर रही थी कि मेरे पति बड़े धार्मिक। आपको शायद पता भी न हो कि उन्होंने लाख रुपयों का दान किया है। पति ने जल्दी से उसको हाथ मारा कि लाख... ? एक लाख दस हजार! वह दस हजार चूक गई।
मैंने पूछाः यह तो ठीक, एक लाख या एक लाख दस हजार, मगर इसके पीछे चोरी कितनी की है? वे तो नाराज हो गए। वे तो फिर दुबारा नहीं आए। क्योंकि वे आए थे मुझसे सुनने कि मैं उनको एक प्रमाण-पत्र दूं कि आप महा दानवीर हैं। वे मेरे पास लाए भी थे अपनी एक किताब, जिसमें उन्होंने और महात्माओं के प्रमाण-पत्र इकट्ठे किए हुए थे कि फलां महात्मा ने ऐसा कहा, फलां महात्मा

ने ऐसा कहा था। वे इसके लिए आए भी थे। इतना ही प्रयोजन था उनका कि मैं दो शब्द कह दूं, लिख दूं उनकी किताब पर।
वे सज्जन जैन हैं, और इरादा रखते हैं कि अगले कल्प में पहले तीर्थंकर होंगे। मुझे चिट्ठी लिखी थी आने के पहले तो उसमें यह लिखा था कि मेरी सारी योजना एक ही है, कि जब अगली सृष्टि होगी तो मैं पहला तीर्थंकर... । उसके लिए मैं सब तरह के तप कर रहा हूं, व्रत कर रहा हूं, दान कर रहा हूं, मैंने इसलिए उनको बुला भी भेजा था कि जरा देख तो लूं पहला तीर्थंकर अगली सृष्टि में कौन होने जा रहा है! वह एक लाख दस हजार दान किए हैं, खूब सस्ते तीर्थंकर होना चाहते हो! मैंने उससे पूछाः चोरी कितनी की की थी? ये लाख आए कहां से? यह किस अपराध के कारण दान करना पड़ा? वे तो बेचैन हो गए। वे तो आए थे प्रमाण-पत्र लेने। उनको तो पसीना आने लगा। मैंने कहाः उस संबंध में कुछ कहें कि लाख आए कहां से? लेकर आए थे जब पैदा हुए थे? लाए तो नहीं थे, यहीं किसी से छीने-झपटे होंगे। कितने छीने-झपटे थे? क्योंकि ऐसा मुझे नहीं दिखाई पड़ता कि तुमने जितने छीने-झपटे थे, पूरे दे दिए होंगे। नाराज हैं; फिर दुबारा नहीं आए। सच की चोट सहने की हिम्मत नहीं होती है।
दरिया सांचा सूरमा सहै सब्द की चोट।
लागत ही भाजे भरम निकस जाए सब खोट।।
यह सब हमारे दान, पुण्य रिश्वतें हैं।
मैंने सुना, एक महिला ने एक मंत्री को फोन किया और बोली, कुछ सप्ताह पहले मैं आपके पास सोई थी। मैं आपको ब्लैकमेल नहीं कर रही हूं, लेकिन क्या आप मेरे घर एक फ्रिज भिजवा सकते हैं? मंत्री महोदय ने बहुतेरा सोचा लेकिन उन्हें कुछ भी याद नहीं आया कि यह औरत कौन है। फिर भी गले में पड़ी बला उतारने के लिए उन्होंने उसे एक फ्रिज भिजवा दिया।
वक्त के साथ महिला की मांगें बढ़ती चली गईं। कभी वह कीमती हार की फरमाइश करती, कभी दो-चार हजार रुपये नगद की, आखिर जब एक दिन उसने मोटर कार की मांग की तो मंत्री जी ने तंग आकर पूछ ही लिया कि आप आखिर हैं कौन? और मेरे साथ कहां और कब सोई थीं? महिला ने उत्तर दिया, तीन एक महीने पहले विज्ञान भवन में एक सम्मेलन हुआ था। आप और मैं साथ-साथ बैठे थे, एक निहायत बोर भाषण के दौरान आप भी बैठे-बैठे सो गए थे और मैं भी सो गई थी।
लेकिन अब मंत्री महोदय तो मंत्री महोदय हैं। डरे होंगे, भयभीत हुए होंगे, तो पूछने की हिम्मत नहीं कि कि सोई कब थी, कहां सोई थी। अब जो कहती है, ठीक ही कहती होगी। झंझट छुड़ाओ, दे दो पैसे। ले लेने दो इसको।
तुम्हारे दान-पुण्य बस ऐसे ही हैं। इधर पाप किए चले जाते हैं, उधर थोड़ा पुण्य किए चले जाते हैं। तुम किसे धोखा दे रहे हो? भय के कारण कि हो न हो, कहीं परमात्मा हो ही न! कहीं हो न हो, कर्म का सिद्धांत सही ही न हो। हो न हो, नरक-स्वर्ग हो। तो कुछ इंतजाम कर लो, कुछ व्यवस्था कर लो। उसकी भी फिकर रख लो, थोड़ा हाशिए में उसके लिए भी कुछ करते जाओ। जिंदगी की पूरी किताब पर तो जो लिखना है सो लिखो मगर हाशिया में थोड़ा आगे-पीछे का भी हिसाब करते जाओ। हाशिया है तुम्हारा पुण्य, और तुम्हारा त्याग और तुम्हारा धर्म और तुम्हारी प्रार्थना और तुम्हारी पूजा। यह तुम्हारी जिंदगी नहीं है, यह तुम्हारी जिंदगी से पैदा हुए अपराध-भाव के लिए किसी तरह अपने को समझाने की सांत्वना है।
इसलिए तुमसे मैं कहना चाहता हूं, तुम तो खोट ही खोट हो। अगर गौर से देखोगे तो खोट ही खोट पाओगे। इसीलिए तो आदमी भीतर नहीं देखता। डरता है कि इतनी खोट दिखाई पड़ेगी तो फिर जीऊंगा कैसे? फिर चलूंगा कैसे एक कदम, जब इतनी खोट दिखाई पड़ेगी? बोलूंगा कैसे, उठूंगा कैसे, श्वास कैसे लूंगा जब इतनी खोट दिखाई पड़ेगी? इसलिए आदमी भीतर नहीं देखता। आदमी अपने से बचता रहता है। अपने आमने-सामने नहीं आता। तुम अपने ही आमने-सामने आ जाओ तो राज खुल जाए; तो रहस्य खुल जाए। तुम एक बार अपने को ही आमने-सामने देख लो तो कुछ और बचता नहीं जानने को। किसी शास्त्र में जाने की जरूरत नहीं है। अपना आमना-सामना हो जाए तो तुम खोट ही पाओगे। और उस दर्शन में ही कि खोट ही खोट है। तुम्हारे जीवन में अतिक्रमण शुरू होता है।

तो फिर खोट से बचने का सवाल नहीं है कि कुछ पुण्य कर लो, कुछ त्याग कर दो। खोट को आमूल जड़ से ही तोड़ देने का सवाल है। यह खोट कहां से उठती है, उस जड़ को ही काट देना है। नहीं तो पत्ते काटते रहते हैं हम। एक पत्ता दान कर दिया। मगर एक पत्ता कटा कि चार पत्ते निकल आते हैं। वृक्ष समझता है, कलम कर रहे हो। और पत्ते घने हो जाते हैं। जड़ काटनी होती है। जड़ यानी अहंकार। दान पुण्य से कुछ भी न होगा। त्याग तपश्चर्या से कुछ भी न होगा। अगर अहंकार भीतर मौजूद है तो तपश्चर्या से भी अहंकार मजबूत होगा, और त्याग से भी मजबूत होगा, और पुण्य से भी अहंकार ही भरेगा। यह सब पुण्य त्याग, तपश्चर्या सब पानी बन जाएंगे उसी अहंकार की जड़ को और उसे मजबूत करेंगे।
अहंकार को ही काट देना है।
सबहि कटक सूरा नहीं कटक मांही कोई सूर।
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रन तूर।।
फौज में सभी सैनिक बहादुर नहीं होते।
सभी कटक सूरा नहीं कटक मांही कोई सूर।
बड़ी-बड़ी फौंजों में कभी एकाध कोई सूरमा होता है। किसको कहते हो सूरमा? किसको कहते बहादुर? हजारों लाखों की भी भीड़ में कभी कोई एकाध आदमी धार्मिक होता है। करोड़ों में कभी कोई एकाध आदमी इतनी हिम्मत करता है मिटने की, विसर्जित होने की, शून्य हो जाने की। किसको कहते हैं दरिया सूरमा?
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रन तूर।
जैसे दीया जले और पतंग दौड़ कर आग में उतर जाए; कि जब रणभेरी बजे तो भय न उठे और शूरवीर युद्ध में पहुंच जाए।
ऐसा हुआ, बुद्ध एक गांव में ठहरे थे। उस गांव का बड़ा प्रसिद्ध हाथी था राजा का, वह बूढ़ा हो गया था। सारी राजधानी उस हाथी को प्रेम करती थी। उसमें बड़े गुण थे, बड़ा बुद्धिमान था। और उसकी बड़ी जीवन की यश-गाथाएं थीं। बड़े युद्ध उसने लड़े थे, और बड़े युद्ध उसने जीते थे। और राजा को उसने अनेक-अनेक कठिनाइयों में युद्ध के मैदान पर बचाया था। राजा पर उसकी बड़ी बड़ी सेवाएं थीं। तो उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी नगर में। वह एक दिन गया था तालाब पर पानी पीने और कीचड़ में फंस गया--बूढ़ा हो गया था, शिथिल-गात्र, निकल न सके। जितनी चेष्टा करे निकलने की कीचड़ से उतना फंसता जाए। अब हाथी वजनी, घबड़ा कर बैठ गया कीचड़ में।
राज महल खबर पहुंची। उस हाथी का जो बूढ़ा महावत था वह तो कभी का अवकाश प्राप्त हो गया था। नये महावत भेजे गए, उन्होंने उसे बड़े भाले छोंके, उसे बड़ा सताया, निकालने की कोशिश की लेकिन बूढ़ा तो वैसे ही बूढ़ा था, इनकी चोट और मार-पीट में और शिथिल हो गया, मरणासन्न हो गया, और कीचड़ में गिर गया। निकलने का कोई उपाय न दिखाई पड़े।
फिर तो स्वयं राजा गया। उस बूढ़े हाथी के आंखों से आंसू बह रहे हैं। वह बूढ़ा हाथी अपनी दयनीयता पर पीड़ित हो रहा होगा। बड़े युद्धों में लड़ा था, पहाड़ों से जूझ जाता था, आज यह दशा हो गई। इस छोटी सी कीचड़ से नहीं निकल पा रहा है? उसकी आंख से आंसू बह रहे हैं। राजा भी बहुत दुखी हो गया। फिर उसे याद आई, इसके पुराने महावत को बुलाओ। उस बूढ़े को खोजो कहां है। शायद वह कुछ जानता हो। वह इसके साथ जिंदगी भर रहा है, उसे कुछ राज पता हो।
वह बूढ़ा आया। सारी राजधानी इकट्ठी हो गई थी। बुद्ध के शिष्य भी इकट्ठे हो गए वहां। पास ही बुद्ध ठहरे थे। वह महावत आया, हंसा, और उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो? उसे मार डालोगे? हटो। और उसने कहा कि बैंड-बाजे लाओ, युद्ध का नगाड़ा बजाओ। और किनारे पर रख कर उसने युद्ध का नगाड़ा बजवाया। युद्ध का नगाड़ा बजना था कि हाथी एक छलांग में बाहर आ गया। एक क्षण की देर न लगी। सूरमा था। उस क्षण में भूल गया जब नगाड़ा बजा, कि मैं बूढ़ा हूं; भूल गया कि कमजोर हूं; फिर जवान हो गया।
हम उतने ही जवान होते हैं जितनी हमारी हिम्मत होती है। हम उतने ही युवा होते हैं जितनी हमारी हिम्मत होती है। हिम्मत से आदमी बूढ़ा होता है, युवा होता है।
उसके साहस पर चोट लगी। यह तो उसने कभी सहा ही नहीं था। युद्ध के बाजे
बज जाएं और वह रुका रह जाए! वह मर भी गया होता तो शायद निकल आता कीचड़ से।

बुद्ध के शिष्यों ने आकर बुद्ध को कहाः भगवान एक अपूर्व चमत्कार देखा। बुद्ध ने कहाः अपूर्व कुछ भी नहीं है। तुममें भी मेरी पुकार सुन कर वे ही निकल पाएंगे, जो सूरमा हैं। यही तो मैं भी कर रहा हूं नासमझो! तुम कीचड़ में फंसे हो और मैं रणभेरी बजा रहा हूं। तुममें से जो हिम्मतवर हैं, जिनमें थोड़ी सी भी क्षमता है साहस की वे निकल आएंगे; वे चुनौती को स्वीकार कर लेंगे।
सबहि कटक सूरा नहीं कटक मांही कोई सूर।
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रन तूर।।
जब युद्ध की भेरी बजे तो सूरमा ऐसे उतर जाता है युद्ध में जैसे पतंग उतर जाता है जलते हुए दीये की ज्योति में। फिर फिकर भी नहीं करता कि बचूंगा कि मिटूंगा। सोच-विचार नहीं करता। संन्यास ऐसी ही प्रक्रिया है-- सोच-विचार की नहीं--जैसे पतंग उतर जाए जलती हुई ज्योति में, ज्योतिशिखा में।
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रन तूर।
भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग।
दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग।।
सुनना। खूब हृदयपूर्वक सुनना। भया उजाला गैब का--जब भी कभी कोई व्यक्ति कहीं शून्य हो जाता है, शून्य का चमत्कार घटता है, जब भी कहीं कोई व्यक्ति निर-अहंकार को उपलब्ध हो जाता है, जब भी कहीं कोई व्यक्ति व्यक्ति की तरह मिट जाता है, शून्य हो जाता है वहीं परमात्मा का रहस्य प्रकट होता है, गैब का चमत्कार होता है। इस जगत में बड़े से बड़ा चमत्कार एक ही हैः तुम मिट जाओ ताकि परमात्मा तुम से प्रकट हो सके। तुम हट जाओ ताकि परमात्मा तुम से बह सके। तुम मार्ग में मत खड़े रहो। तुम दरवाजा खोल दो। तुम द्वार दो। तुम मार्ग के पत्थर न बनो ताकि झरना बह सके।
भया उजाला गैब का...
और जब भी कभी ऐसी कोई घटना घटती है--कोई बुद्ध हो गया, कोई कृष्ण हो गया, कोई क्राइस्ट हो गया, कोई मोहम्मद हो गया, जहां कहीं यह चमत्कार घटा है शून्य का, जहां कहीं परमात्मा प्रकट हुआ है, किसी शून्य में उतर गए व्यक्ति से बहा है।
... दौड़े देख पतंग।
तो जिनके भीतर भी थोड़ी हिम्मत है, जिनके भीतर थोड़ा साहस है, जो मुर्दे नहीं हैं, जो वस्तुतः जीवित हैं, ऐसे व्यक्तियों के लिए तो मोहम्मद, कृष्ण, बुद्ध की मौजूदगी ज्योतिशिखा बन जाती है, दीप-शिखा बन जाती है। दौड़े देख पतंग... फिर तो सारी दुनिया के कोने-कोने से, जिनमें हिम्मत है वे दौड़ने लगते हैं उस शून्य की तरफ।
भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग।
इन्हीं पतंगों का नाम प्रेमी, साधक, भक्त, संन्यासी।
दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग।
और अपने को मिटा देते हैं। अपने आपे को, अपने अहंकार को, अपनी अत्ता को, मैं हूं इस भाव को डुबा देते हैं। उस शून्य के साथ एक हो जाते हैं।
दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग।
और वह जो सदगुरु है, वह जो अगिन प्रकट हुई है, उसके साथ एक रंग हो जाते हैं। इस देश में संन्यासी का वस्त्र गैरिक इसीलिए चुना गया; वह अग्नि कर रंग है। वह प्रतीक है। वह आग की लपट है।
दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग।
और जब तक यह घटना न घटे तब तक तुम हो न हो, बराबर हो। तुम्हारा होना न होने जैसा है।

जिंदगी मजबूरियों की सहचरी है
एक चादर है जो पैबंदों भरी है
हम जतन से रख सकें इसको असंभव
ज्यों की त्यों केवल कबीरा ने धरी है
एक क्षण का स्वर्ग हो शायद कहीं पर

उम्र का अधिकांश लंबी भुखमरी है गीत मत खोजो इबारत देख कर ही
यह हमारे आय व्यय की डायरी है
सिर्फ बाहर से सजावट की गई है।
मुस्कुराहट वर्ना रीती गागरी है
रात चिंताओं की गूंगी नौकरानी
और दिन बस व्यर्थता की चाकरी है

जब तक जिंदगी उस अग्नि के रंग में एक न हो जाए, जब तक जिंदगी लपट न बने,
तब तक बस सिर्फ बाहर से सजावट की गई है। मुस्कुराहट वर्ना रीती गागरी है। ऊपर-ऊपर लीपे-पोते मुस्कुराहट को, हंसते हुए, तुम गुजार देते जिंदगी की इस लंबी यात्रा को। भीतर खाली के खाली। भीतर रिक्त के रिक्त। भीतर ना-कुछ। ऊपर से झंडे उठा लेते हो। बड़े डंडों में झंडे लगा लेते हो। झंडा ऊंचा रहे हमारा, चिल्लाते फिरते हो। मगर भीतर... ? भीतर सिर्फ अंधेरा है। भीतर सिर्फ उदासी है, विषाद है।

बेकसों की रात होगी मुक्तसर सुनते तो हैं
एक समा है हवस का यह क्यों निजामें दहर में
कोई दिलवाला छुड़ाए उनको दस्ते जबर से
हो गया सूरज का अगपा रात के एक सहर में
कहीं ऐसा न हो आवाज कफन को तरसे
ऊंची दीवारों से टकरा कर सदा खो जाए
मसलहर जब्त की जंजीर लिए बैठी है
जबर इतना न करो कि दिल पर बेहिश हो जाए
मुझे एहसास अपनी बेबसी का लेकर डूबेगा
कहीं सुराख एक देखा है अब अपने सफीने में
किसी ने जिंदगी में खौफ के वे बीज बो डाले है
वे जिनसे जहर के पौधे उगेंगे मेरे सीने में

हमारी जिंदगी की नाव में एकाध छेद हो ऐसा भी नहीं है, छेद ही छेद हैं। हमारी यह जिंदगी की नाव छेदों से जुड़ कर बनी है।

मुझे एहसास अपनी बेबसी का लेकर डूबेगा
कहीं सुराख एक देखा है अब अपने सफीने में

हम देखते नहीं सुराख अपनी नाव में। कभी एकाध दिखता भी है तो जल्दी से
हम उसे ढांक देते हैं, कोई और न देख ले। जैसे कि सुराख देखने से कुछ बड़ा होगा, कि छोटा होगा। जैसे कि सुराख न देखा जाएगा तो सुराख भर जाएगा। जिंदगी में सुराख हो तो देखना, गौर से देखना और खोजना; क्योंकि सुराख अकेले नहीं होते, उनके भी समुदाय होते हैं। और जो आदमी गौर से देखेगा, देखेगा यह पूरी नाव ही सुराखों से भरी है। इस नाव में कभी किसी ने कोई भवसागर की यात्रा नहीं की है डूबा है सिर्फ। इसलिए जो अपनी नाव को पूरा सुराखों से भरा देख लेता है, वह नाव से कूद जाता है। इस कूदने का नाम संन्यास है। वह तैरने पर भरोसा करता है। वह कहता है अपने से ही उतर जाएंगे हम, यह नाव तो डूबने ही वाली है। इस नाव में रहे तो हम भी डूबेंगे।

मुझे एहसास अपनी बेबसी का लेकर डूबेगा
कहीं सुराख एक देखा है अब अपने सफीने में
किसी ने जिंदगी में खौफ के वे बीज डाले हैं
वे जिनसे जहर के पौधे उगेंगे मेरे सीने में

और जिंदगी भर--बचपन से लेकर अब तक, और जन्मों-जन्मों में बार-बार सिर्फ
भय के बीज ही तुम्हारे भीतर डाले गए हैं। धर्मगुरु तुम्हें भयभीत करता है,

सिर्फ डराता है। और भय से सिर्फ जहर पैदा होता है। वास्तविक सदगुरु तुम्हें डराता नहीं, तुम्हें जगाता है और तुमसे कहता है, तुम्हारे भीतर अदम्य साहस पड़ा है। तुम अग्नि की एक लपट हो। जगो उठो। तुम्हारे भीतर परम चैतन्य विराजमान है। हिम्मत करो। तुम हिम्मत करोगे तो ही तुम्हारे भीतर जो बीज है वह टूटेगा, और तुम्हारे भीतर जो वृक्ष छिपा है वह प्रकट होगा। भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग।
और कहीं अगर तुम्हें गैब का उजाला दिखाई पड़े, कहीं अगर तुम्हें शून्य में पूर्ण दिखाई पड़े, कहीं तुम्हें अगर मालूम पड़े कि कोई व्यक्ति मिट गया है और उसकी जगह परमात्मा बहना शुरू हुआ है, तो फिर रुकना मत; फिर हिसाब-किताब मत लगाना।
... दौड़े देख पतंग।
तब तुम पतंगे हो जाना। तुम पतंगे जैसे दीवाने हो जाना, ताकि तुम इस मौके से चूक न जाओ। यह द्वार तुम्हारे लिए द्वार बन जाए।
दरिया आपा मेटकर मिले अग्नि के रंग।
अपने अहंकार को छोड़ कर अग्नि के रंग में डूब जाना, एक हो जाना। तो खोट
ही जलेगी--याद रखना। तुम जलोगे, यह सच है--तुम जो कि झूठ हो। और तुम्हारे भीतर जो सत्य है वह तो जल नहीं सकता। जब आग में हम सोने को फेंकते हैं तो कचरा ही चलता है, सोना बच जाता है। सोना निखर कर बचता है, कुंदन होकर बचता है, शुद्ध होकर निकल आता है।
तो तुम्हारे भीतर जो खोट है वह जल जाएगी। अहंकार जल जाएगा, लोभ जल जाएगा, भय जल जाएगा, क्रोध, काम, मत्सर जल जाएगा। तुम्हारे भीतर शुद्ध सोना बचेगा। उस शुद्ध सोने का नाम ही परमात्मा है। आत्मा बचेगी, अहंकार जल जाएगा।
दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया।
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया।।
दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया।
ऐसे प्रेम से ही, ऐसे पागल प्रेम से, जैसा पतंगे का होता है ज्योतिशिखा से, ऐसे पागल प्रेम से ही राम-नाम का धन मिलता है। ऐसे पागल प्रेमी पर ही धन की वर्षा होती है। छप्पर तोड़ कर धन बरसता है।
राम नाम धन पाया, दरिया प्रेमी आत्मा--
सिर्फ प्रेमी आत्माओं ने राम-नाम का धन पाया है। न भय, न लोभ; प्रेम। भयभीत आदमी प्रेम नहीं कर सकता। लोभी भी प्रेम नहीं कर सकता। लोभी की नजर किसी और बात पर अटकी होती है, प्रेम पर तो होती नहीं।
अगर लोभी जाकर भगवान से प्रार्थना भी करता है तो वह कहता है कि देखो
इस बार लाटरी का नंबर दिलवा दें। देखो, इस बार चूक न हो जाए। इतनी इतनी प्रार्थना कर रहा हूं, ख्याल रखना। इतना सिर फोड़ रहा हूं तुम्हारे द्वार पर दरवाजे पर। इतनी नाक घसीट रहा हूं, इसका सब हिसाब रखना। अब तो दया करो। लोभी परमात्मा के सामने खड़े होकर भी कुछ और मांगता है, परमात्मा को नहीं मांगता। परमात्मा की किसको पड़ी है? परमात्मा का क्या करोगे?
परमात्मा तो अगर यह भी कहे कि चलो तू इतना मांगता है तो मैं आए जाता हूं तेरे पास। तो तुम कहोगे महाराज, वैसे ही दिक्कत में हूं; अब आप और आ जाएं तो एक और झंझट। आप कृपा करें। लाटरी दिलवाएं, इतना ही काफी है। आप कष्ट न करें आने का। आप को लेकर और क्या करेंगे? बाल-बच्चे ही तो पल नहीं रहे हैं। और सफेद हाथी घर के सामने बांध कर क्या करना है? आप कृपा करें। मुझ गरीब से आपकी सेवा न हो सकेगी। मुझे तो सिर्फ लाटरी दिलवा दें। मैं तो छोटे ही से राजी हूं। इतना बड़ा तो... आप बड़े-बड़े महात्माओं के पास जाएं। मैं तो छोटा-मोटा आदमी हूं।
परमात्मा तो कोई मांगता भी नहीं, लोभी मांग भी नहीं सकता। कुछ और मांगता है। प्रेमी ही परमात्मा को मांगता है। उसका न कोई लोभ, न भय है। न तो वह नरक से डरा हुआ है, न स्वर्ग का उसे कोई आयोजन है, न प्रयोजन। वह कहता है, तुमसे लग जाए लगाव। बस तुम्हारी चाहत एकमात्र चाहत हो जाए, सब हो गया। वह कहता है, न स्वर्ग चाहिए, न नरक का भय है मुझे। भक्तों ने तो कहा हैः हमें मोक्ष भी नहीं चाहिए। क्या करेंगे मोक्ष का? बस तुम्हारे चरण मिल जाए

तुम्हारे चरणों में लग जाए चित्त, बस इतना काफी है। तुम्हारे दर्शन हो जाएं। तुम मिले तो सब मिला।
दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया।
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया।।
एक ही धन है इस जगत में, वह परमात्मा है। उसको छोड़ कर हम और सब खोजते हैं। इसलिए हम दरिद्र के दरिद्र ही बने रहते हैं। इसलिए सब धन भी इकट्ठा हो जाता है, फिर भी कहां तृप्ति, कहां संतोष! नहीं, सब हो जाता है--बड़े महल बड़ा धन, बड़ी तिजोड़ी, बड़ी प्रतिष्ठा और भीतर? भीतर वैसे के वैसे दरिद्र और भिखमंगे। धन बाहर पड़ा रहता है, भीतर की निर्धनता जरा भी उससे नहीं बदलती। भीतर की निर्धनता तो तभी जाती है जब असली धन मिलता, परम धन मिलता। उसका नाम ही परमात्मा है।
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया।
और परमात्मा के मिलन में ही भूला घर लौटता है। नहीं तो भटके ही हुए हैं। लाख करो और सब कुछ उपाय, भटकन ही बढ़ती रहेगी। सिर्फ एक ही है, जहां भटकन मिटती है।
क्यों भूला घर आया? क्योंकि परमात्मा हमारा वास्तविक घर है वह हमारा स्वरूप है। उसी से हम आए हैं, उसी में हमें जाना है। हम उसी की तरंग हैं। हमें उसी में लीन हो जाना है। हम उससे अपने को पृथक समझें तो हम दरिद्र रहेंगे। हम उसमें अपने को डुबा दें तो सागर का सारा धन हमारा धन है। बूंद डरती है सागर में उतरने से कि कहीं खो न जाऊं! खो तो जाएगी सच। डर भी ठीक है। लेकिन खोने से ही तो सागर बनेगी इसलिए डर ठीक भी नहीं है। मिटने से ही तो कोई पाता है।
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया।
सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत।।
साहस से जोड़ो अपनी गांठ, कमजोरियों से नहीं। दरिया बड़े पते की बात कह रहे हैं।
सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत।
पुरजा-पुरजा हो पड़े तऊ न छांड़े खेत।।
हिम्मत जगाओ। हिम्मत का नाम धर्म है। साहस को जगाओ। साहस का नाम धर्म है। नरक से डर कर कायर की तरह मत कंपते रहो। और स्वर्ग के लोभ से लोभी होकर गिड़गिड़ाओ मत, पूंछ मत हिलाओ।
सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत।
उसका तो साहस और अभियान से ही लगाव है। उसकी गांठ, उसका तो विवाह अभियान से हुआ है। नये अभियान पर जाना है। रोज नये अभियान पर जाना है। रोज नये की तलाश करनी है। रोज अज्ञात पर चरण रखना है। रोज नये शिखर छूने हैं ऊंचाइयों के, गहराइयों के, नई तलाशें करनी हैं।
सूरातन से हेत--साहस से ही जिसका लगाव है, वही धार्मिक हो पाता है। पुरजा-पुरजा हो पड़े तऊ न छांड़े खेत।
सब मिट जाए तो भी वह मैदान नहीं छोड़ता, हड्डी-हड्डी गिर जाए, पुर्जा- पुर्जा हो पड़े, टुकड़ा-टुकड़ा होकर गिर जाए, तो भी वह खेत नहीं छोड़ता। भागता नहीं। मैदान से हटता नहीं।
और यह परम घटना तभी घटती है जब सब पुर्जा हो-हो कर गिर जाता है। जब तुम्हारे पास कुछ भी नहीं बचता, सब गिर जाता है, तब अचानक तुम पाते हो कि वही बच रहा है जो तुमसे गिर नहीं सकता; जो तुम्हारा परम धन है; जिससे तुम अलग नहीं हो सकते। सब कट कर गिर जाता है तब जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है।
दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर।
मन को जीत खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर।।
और दरिया कहते हैं उसकी हम बात नहीं कर रहे हैं--गलती मत समझ लेना।
दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर।
यह कोई शरीर की बहादुरी की बातें नहीं हो रही हैं। तो दरिया कहते हैं, भूल मत कर लेना, हम यह नहीं कह रहे हैं कि तुम जाकर युद्ध के मैदान पर लड़ो,

और तुम्हारा शरीर कट-कट के गिर जाए, तो तुम कुछ बहादुर हो गए। यह कोई बड़ी बात हुई नहीं। यह तो फिर अहंकार में, अहंकार की ही सेवा है।
दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर।
मन को जीत खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर।।
ये भीतर के युद्ध की, भीतर के संग्राम की बात हो रही है। मन को जीत खड़ा रहे--न तो लोभ मन को डिगाए, न भय मन को डिगाए। कोई मन को न डिगाए। तूफान उठे कि आंधियां, मन अडिग और अकंप, निष्कंप बना रहे। जैसे निर्वात घर में जहां हवा का झोंका न आता हो, दीये की लौ अकंप हो जाती, ऐसा तूफानों के बीच में भी जो अकंप बना रहे; हारे तो रोए नहीं; जीते तो हंसे नहीं; सफलता मिले तो गर्व न उठे; पराजय हो जाए तो दीनता न पकड़े; न दिन फर्क करे, न रात, सुख हो कि दुख, सबमें समभाव बना रहे।
मन को जीत खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर।
मैं उस सूरमा की बात कर रहा हूं, दरिया कहते हैं। उस पर मैं बलिहारी हूं।
यह धर्म के रास्ते पर जो पहला गुण है, साहस है। धर्म के रास्ते पर न तो उपवास से कुछ होता है, न व्रत से कुछ होता है, न पूजा-पाठ से कुछ होता है। जो पहला गुण चाहिए वह साहस है। और जिसके पास साहस है उसके पास सब गुण अपने आप आ जाते हैं। साहस सभी गुणों का जन्मदाता है। और जिसके पास साहस नहीं है, भयभीत है जो, उसके भीतर सब दुर्गुण आ जाते हैं। भय दुर्गुण का स्रोत है। तुमने देखा नहीं? जब तुम झूठ बोलते हो, तो झूठ क्यों बोलते हो? भय के कारण। तुमने देखा नहीं? जब तुम चोरी कर लेते हो तो चोरी क्यों कर लेते हो? भय के कारण। भयभीत हो कि पैसा पास में नहीं है, कैसे जीऊंगा? और हजार रुपये पड़े दिखाई पड़ गए, उठा लेते हो। झूठ बोल देते हो क्योंकि डरते हो, कि अगर सच बोला, पकड़ा गया, बेइज्जती होगी। तो झूठ बोल देते हो।
ख्याल करना तुम्हारे जीवन के, सारे दुर्गुणों की जड़ तुम भय में पाओगे,
या लोभ में पाओगे। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
आज के सूत्रों का सार इतना ही है कि अगर लोभ और भय छूट जाए तो तुम्हारे जीवन में परमात्मा को आने का द्वार खुल जाता है। भय लोभ छोड़ो।
पंडित ग्यानी बहु मिले वेद ग्यान परबीन।
दरिया ऐसा न मिला राम नाम लवलीन।।
यह भय और लोभ छूट जाए तो तुम रामनाम में लवलीन हो सकते हो। दरिया ने बहुत खोजा--मिला, एक व्यक्ति मिला, जिसके चरणों में बैठ कर क्रांति घटी; जिसके चरणों में बैठ कर आकाश में उड़ान हुई; जिसके चरणों में बैठ कर अनंत की यात्रा हुई। लेकिन उसके पहले बहुत लोगों के पास गए। तरह-तरह के लोग मिले, उनकी बड़ी कुशलताएं थीं, उनके बड़े गुण थे, लेकिन असली बात नहीं थी। भीतर का दीया बुझा था।
सदगुरु को खोजो। और जहां कहीं तुम्हें किसी व्यक्ति में भीतर का दीया जलता हुआ दिखाई पड़ जाए तो फिर लाज-संकोच न करना; फिर भय विचार में न पड़ना। फिर तो पागल पतंग की भांति... । फिर तो अदम्य साहस करके उतर जाना उस अग्नि में; अग्निमय हो जाना। यही संन्यास की परिभाषा है।
और एक बार ऐसी घटना घट जाए, तो मौत से मिलती है परम जीवन की कुंजी, हाथ आती है। मिटने से होने का राज हाथ आता।

हमें अनुवाद करना आंसुओं का आ गया अब तो
कभी कुछ गीत ढल जाते कभी ढलती गजल कोई

फिर तो जीवन में दुख रहता ही नहीं। आंसू भी... कभी कुछ गीत ढल जाते हैं। कभी ढलती गजल कोई। आंसू भी ढल-ढल कर गीत बन जाते हैं, गजल बन जाती है। अभी तो मुस्कुराहट भी झूठी है, अभी तो मुस्कुराहट से भी गीत नहीं बनते और गजल नहीं बनती, अभी तो मुस्कुराहट भी धुआं-धुआं है। फिर आंसू भी, फिर मृत्यु भी परम जीवन की तरफ ले जाती है। फिर तो मिटना भी होने के मार्ग पर सीढ़ियां बना देता है।
भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग।

दरिया आपा मेटकर मिले अग्नि के रंग।।
दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया।
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया।।
भूले हो अभी, घर आओ। निर्धन हो अभी, धनवान बनो। बाहर मत खोजो इस धन को।
इस धन का खजाना तुम्हारे भीतर पड़ा है।
मैंने सुना है, एक राजधानी में एक भिखमंगा मरा। वह तीस साल तक एक ही जगह बैठ कर भीख मांगता रहा। जब मर गया तो गांव के लोगों ने उसे जलाया। और फिर गांव के लोगों ने सोचा, तीस साल यह इसी जगह बैठा रहा चौरस्ते पर, यह जगह भी गंदी हो गई है। गंदे कपड़े, ठीकरे, बर्तन-भांडे, सब वहीं रखे बैठा रहा। भिखारी तो भिखारी। तो उन्होंने कहाः इसकी थोड़ी मिट्टी भी यहां से निकाल कर फेंक दो। यह मिट्टी भी गंदी कर डाली।
तो उन्होंने मिट्टी निकाली। मिट्टी निकाली तो चकित रह गए। वहां एक बड़ा खजाना गड़ा था; बड़े हंडे गड़े थे। अशर्फियां ही अशर्फियां निकलीं। सारे गांव में एक ही चर्चा हो गई कि यह भी खूब रही। यह भिखमंगा उसी जगह बैठा जिंदगी भर भीख मांगता रहा, जहां इतना खजाना गड़ा था।
और ध्यान रखना, वह जो गांव में जिन लोगों ने चर्चा की और इस भिखमंगे के दुर्भाग्य पर रोए, उनमें से किसी ने यह न सोचा कि जहां वे खड़े हैं, जहां वे हैं, वहां भी बड़े खजाने गड़े हैं। उससे भी बड़े खजाने गड़े हैं। अनंत खजाने गड़े हैं।
हम सब उस भूमि पर खड़े हैं जहां अनंत खजाना गड़ा है। लेकिन आंख बाहर भटकती है और भीतर नहीं आती, और खजाना भीतर है। पद भीतर, धन भीतर, प्रतिष्ठा भीतर और तुम भटकते बाहर, इसलिए चूक हो जाती है। खूब भूले, खूब भटके, अब घर आओ।

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
चौथा प्रवचन

सुख-दुख से कोई परे परम पद

पहला प्रश्नः दरिया साहिब के कल के सूत्र सूरता की प्रशस्ति के सूत्र थे। केवल एक शब्द-प्रेमी को ध्यानी से बदल कर वे सूत्र बहुत मजे में जिनेश्वर महावीर के सूत्र कहे जा सकते हैं। भक्ति भी क्या इतनी जुझारू होती है? और क्या भक्ति और ध्यान में इतना ही फर्क है?

धर्म के मार्ग पर चाहे कोई भी विधि चुनी जाए, साहस तो चाहिए ही होगा। साहस के बिना तो धर्म नहीं है। भक्ति हो या ध्यान, कमजोर और भीरु के लिए कोई मार्ग नहीं। भीरू न तो हिम्मत कर पाता है ध्यान की। क्योंकि ध्यान का अर्थ है पूर्ण होने का प्रयास। ध्यान का अर्थ है स्वयं को उपलब्ध करने की चेष्टा। ध्यान का अर्थ है अपूर्व संकल्प। साहस चाहिए, संघर्ष चाहिए। प्रेम के मार्ग पर भी उतना ही साहस चाहिए। कोई ऐसा न सोचे कि प्रेम या भक्ति के मार्ग पर साहस की क्या जरूरत? शायद थोड़ा और ज्यादा ही साहस चाहिए, क्योंकि भक्ति है समर्पण। भक्ति है विसर्जन। ध्यान कहता हैः स्वयं हो जाओ। भक्ति कहती हैः स्वयं को मिटा दो। स्वयं को बिल्कुल मिटा दो। मिटने के लिए तो और भी साहस चाहिए। ध्यानी को तो थोड़ी आशा है कि मैं बचूंगा। भक्त उतनी आशा भी नहीं रख सकता। ध्यानी भी मिटता है, अंतिम चरण में मिटता है। भक्त पहले चरण में ही मिट जाता है।
ध्यानी भी समर्पण करता है लेकिन आखिरी चरण में। शुरुआत से तो अपने अहंकार को शुद्ध करता है। सारे जीवन के जितने भी दोष हैं उन्हें दूर करता है। संघर्ष करता है दोषों से। अंत में बचता है शुद्ध अहंकार। वह अंतिम घड़ी है। उसे भी छोड़ना होता है क्योंकि वह आखिरी दोष है--मैं भाव। अब न चोरी रही अब न क्रोध रहा, न लोभ रहा, न काम रहा, सब गए। लेकिन सबकी जगह बस एक अस्मिता छूट गई--मैं हूं। अंततः उसे भी छोड़ता है ज्ञानी। उस आखिरी घड़ी में क्रांति घटती है।
लेकिन भक्त और प्रेमी तो पहले ही चरण में छोड़ देता है उसे। फर्क इतना
ही है, ध्यानी और बुराइयों को पहले छोड़ता है और अहंकार की बुराई अंत में छोड़ता है। भक्त अहंकार की बुराई पहले छोड़ता है और उसी बुराई को छोड़ने के बाद अपने आप दूसरी बुराइयां छूटती चली जाती हैं। क्योंकि सभी बीमारियों की जड़ अहंकार है। तुमने कभी क्रोध भी किया है तो अहंकार के कारण ही किया है। और तुमने अगर कभी लोभ भी किया है तो भी अहंकार के कारण ही किया है। तो भक्त तो सीधा जड़ पर चोट करता हैं। और भी साहस चाहिए। ज्ञानी तो शाखाएं काटता है। धीरे-धीरे-धीरे काटते-काटते ऐसी घड़ी आती है, जब सारा वृक्ष कट जाता है, केवल जड़ें रह जाती हैं। तब अंततः जड़ों को काट देता है। ज्ञानी की प्रक्रिया तो बहुत क्रमिक है--कदम-कदम। लेकिन भक्त की प्रक्रिया अक्रमिक है--एक ही छलांग में। तो भक्त को तो साहस और भी चाहिए।
तो ऐसा तो भूल कर भी मत सोचना कि संकल्प के मार्ग पर साहस ठीक, लेकिन
यह दरिया तो प्रेम की बात करते हैं, यह इतने जुझारू होने की बात कर रहे हैं? भक्त को मिटना है। इससे बड़ा और साहस क्या होगा? भक्त को स्वयं को खोना है। इससे बड़ा और दुस्साहस क्या होगा? इसलिए जो प्रतीक दरिया ने चुना है ठीक है, प्यारा है। कि जैसे पतंगा दीपशिखा पर आकर मर जाता है, ऐसे ही भक्त सदगुरु की शिखा पर आकर मर जाता है, मिट जाता है। सदगुरु में मर कर ही परमात्मा में जन्म होता है।

दूसरा प्रश्नः क्या संप्रदाय से धर्म प्रवेश हो ही नहीं सकता?

हो सकता है। जहां भी हो वहीं से धर्म प्रवेश हो सका है। क्योंकि ऐसी
तो कोई जगह ही नहीं है जहां से परमात्मा की तरफ जाने का मार्ग न हो। ऐसी अगर कोई जगह हो तो उसका अर्थ हुआ, ऐसी भी कोई जगह है जहां परमात्मा नहीं

है। तो जहां भी तुम हो वहीं से मार्ग है। लेकिन संप्रदाय में अगर तुम हो तो मार्ग का अर्थ होगा, संप्रदाय को छोड़ कर।
जैसे कोई कारागृह में बंद है, तो क्या कारागृह से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है? छुटकारे का उपाय हैः कारागृह की दीवाल को फांदो और निकलो; कि कारागृह का दरवाजा तोड़ो; कि कारागृह के सींकचे काटो; कि कोई उपाय करो कि दीवाल तुम्हें बाधा न बने, दीवाल में सेंध लगाओ ताकि बाहर निकल जाओ। मार्ग तो कारागृह से भी है; खोजना पड़ेगा। जिसे नहीं जाना है वह तो स्वतंत्र भी बैठा हो खुले आकाश के नीचे तो नहीं जाएगा। तो तो मार्ग वहां भी नहीं है तुम खुले आकाश के नीचे बैठे हो, गंगा सामने बहती है और तुम्हें पानी नहीं पीना है, या तुम्हें प्यास ही नहीं लगी है, तो तुम उठोगे भी नहीं। गंगा बहती रहे, बहती रहे। या तो तुम्हें प्यास नहीं है, या तुम सोचते हो प्यास इस पानी से बुझेगी नहीं। तुम किसी और पानी की तलाश में बैठे हो। तुम्हारी आंखें कहीं और भटक रही हैं तो जो खुला बैठा है, वह भी जरूरी नहीं कि परमात्मा में पहुंच जाए। और जो संप्रदाय के कारागृह में बंद है, वह भी जरूरी नहीं कि बंद ही रह जाए। इस पर निर्भर करता है कि परमात्मा को पाने की कितनी प्रबल आकांक्षा है। तो कोई बंधन न रोकेगा। जंजीरें भी नहीं रोकती। जिसको रुकना ही नहीं है उसे कोई भी नहीं रोकता। और जिसे रुकना है, कुछ भी रोक लेता है; कुछ भी छोटी-मोटी बात रोक लेती है।
कारागृह से भी लोग छूटते हैं। आखिर सभी लोगों का जन्म संप्रदाय में होता है। बुद्ध हिंदू घर में पैदा हुए, नानक हिंदू घर में पैदा हुए, दरिया मुसलमान घर में पैदा हुए, लेकिन छूट गए। खोज हो तो इस जगत में काई चीज बांधती ही नहीं। खोजी को कभी किसी ने नहीं बांधा है। खोज न हो तो जंजीरें नहीं, बेड़ियां नहीं, तुम खुले आकाश के नीचे बैठे हो, मगर बैठे रहो, इससे कुछ यात्रा नहीं होगी।
संप्रदाय का अर्थ क्या होता है? संप्रदाय का अर्थ इतना ही होता है, सांप था कभी, निकला था कभी, अब सांप तो नहीं है, धूल पर लकीर रह गई है। सांप गुजरा था कभी। कभी महावीर थे, अब जैन संप्रदाय है। सांप गुजरा था कभी इस राह से, रेत पर छूटा हुआ चिह्न रह गया है। बुद्ध गुजरे थे कभी, उनके चरणचिह्न रह गए हैं समय की रेत पर। उन्हीं चरण चिह्नों का नाम संप्रदाय है।
चरण-चिह्नों में चरण तो नहीं है ध्यान रखना, चिह्न ही हैं! तुम लाख इन्हें पूजो। अगर तुमने बुद्ध के जीवित पैर पकड़ लिए होते तो उनकी गति के साथ तुम्हारी गति भी जुड़ जाती। वे गत्यात्मक थे, प्रवाह थे, तुम उनके साथ बहे होते। लेकिन अगर तुमने चरणचिह्न पकड़ा तो चरण-चिह्न कहीं भी नहीं जाता, वहीं के वहीं पड़ा रहेगा; सदा वहीं पड़ा रहेगा। चरण-चिह्न में कोई गति नहीं है।
तुमने अगर बुद्ध को पकड़ा होता तो वे तुम्हें जगाते। तुमने अगर बुद्ध
की मूर्ति पकड़ी तो वह तुम्हें कैसी जगाएगी? वह खुद ही जागी नहीं है। तुमने अगर कृष्ण के पास बैठने का सौभाग्य पाया होता, तो शायद उनके वे मधुर शब्द तुम्हारे जीवन को परमात्मा की खोज की अभीप्सा से भर देते। लेकिन गीता से यह बात न हो सकेगी। कोई जीवित आंखें चाहिए जो तुम्हारी आंखों में झांकें, और तुम्हें झकझोरें। कोई जीवंत शब्द चाहिए जो सिर्फ ओंठों से न उठा हो, किताबों से न उठा हो। रंजी सास्तर ग्यान की--शास्त्र-ज्ञान की धूल से यह न हो सकेगा। यह तो कहीं कोई हृदय धड़कता हो शब्दों के पीछे, कहीं कोई शून्य विराजमान हो शब्दों के पीछे, उसी शून्य से उठता हो शब्द और तुम्हारे अंतःस्थल में जाता हो, तो शायद तुम्हारे जीवन में रोमांच हो जाए, तो शायद तुम भी नाचने लगो; पैर में तुम्हारे भी घूंघर बंधें।
मीरा ने भजन गाए। निश्चित ही लता मंगेशकर उन्हीं भजनों को ज्यादा ढंग
से गाती है, लेकिन लता मंगेशकर का भजन सुन कर तुम्हारे जीवन में भगवान का पदार्पण नहीं होगा। मीरा को शायद इतना ढंग-ढौल न भी आता हो, शायद संगीत की पूरी कला न भी आती हो, लेकिन जो मस्ती थी, जो जीवंतता थी, वह तो किसी गायक के स्वर में नहीं हो सकती। गायक के स्वर में संगीत होगा, छंद होगा, मात्रा

होगी, संगीत के नियमों का अनुसरण होगा, पालन होगा, सब होगा, मगर कुछ बात चूकी-चूकी रह जाएगी।
जैसे लाश पड़ी हो, सजी-संवरी, गहने पहनाए हुए, सुंदर वस्त्रों में ढंकी, चेहरे पर भी पाउडर लगाया हो, लालिमा लगाई हो, ओठों पर लिपस्टिक हो और लाश पड़ी हो--ऐसा ही होगा गायक का गीत। लेकिन जीवंत नहीं। यह लाश उठ न सकेगी। यह लाश बोल न सकेगी। तुम पुकारोगे तो यह लाश जवाब न देगी। और इन गहनों और आभूषणों और इन वस्त्रों के भीतर सिर्फ सड़ रही है लाश, जल्दी ही बदबू उठेगी। मृत है।
संप्रदाय मरे हुए धर्म का नाम है। जैसे तुम अपनी मां को प्रेम करते हो लेकिन जब मां मर जाती है तो क्या करते हो? उसे घर में तो नहीं रख लेते। उसे मरघट ले जाते हो। रोते हो, छाती पीटते हो, विदा कर आते हो। ऐसा ही है संप्रदाय। जिस दिन धर्मगुरु जा चुके, जिस दिन जीवंत प्राण उड़ गए हों, ज्योति विलीन हो गई हो और सिर्फ बुझा हुआ दीया रह जाए उस दिन उसकी पूजा करते जाना, लाश को घर में विराजमान कर लेना है। इसलिए संप्रदाय से मुक्ति नहीं होती।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संप्रदाय का जो दीया है, उसमें कभी ज्योति नहीं थी, यह मैं नहीं कह रहा हूं। इसमें ज्योति कभी थी; नहीं तो तुम पूजते ही नहीं। दीये को भी नहीं पूजते। तुमने कभी किसी ने ज्योति देखी थी, उसी से पूजा शुरू हुई थी। फिर पूजा जारी है। ज्योति कब की बुझ गई। जिन्होंने देखी थी वे भी हजारों साल हुए विदा हो गए। फिर उनके बेटों के बेटे, बेटों के बेटे, बेटों के बेटे, इस आशा में कि उनके पूर्वजों की ज्योति दिखी थी, होगी जरूर, अब भी बुझे दीये को पूजे चले जाते हैं। इस तरह वेद पुजता है इस तरह कुरान पुजती है, इस तरह बाइबिल पुजती है।
दरिया कहते हैं, रंजी सास्तर ग्यान की अंग रही लिपटाए।
यह सब धूल है, जो अंग से लिपटी है। खोजो किसी गुरु का झरना कि उसमें डुबकी ले लो, यह धूल बह जाए। खोजो किसी गुरु की संगति कि उसके अंधड़ में तुम्हारी धूल उड़ जाए; कि तुम स्वच्छ हो जाओ। शास्त्र से स्वच्छ हो जाओ।
शब्द से मुक्त हो जाओ। धारणा और सिद्धांतों का बोझ हट जाए तो तुम्हारा चित्त निर्मल हो। उसी निर्मल चित्त में परमात्मा की छवि बनती है।
लेकिन लाशों को पूजते-पूजते तुम खुद ही लाश हो गए हो। ऐसा हो जाता है। तुम जो पूजोगे वही हो जाओगे। इसलिए अपनी पूजा बहुत ध्यानपूर्वक चुनना। हर कुछ मत पूजने लगना। पत्थर पूजोगे, पत्थर हो जाओगे। तुम जो पूजोगे वही हो जाओगे। क्योंकि तुम पूज रहे हो उसका अर्थ ही यही है कि तुम अपने से श्रेष्ठ वहां कुछ देख रहे। अगर लाश पूजी तो तुम जीवन के भक्त नहीं हो, तुम मृत्यु के भक्त हो। तुम जल्दी ही मर जाओगे।

आप अपनी सरहदों में खो गया है आदमी
चीन की दीवार जैसा हो गया है आदमी
शीशियों में भर लिए हैं इसने कुछ चेहरों के घोल
जिससे हर पहचान अपनी धो गया है आदमी
सींपियों को विष की बूंदें, जुल्म को नैनों का नीर कौन सा मोती कहां पर पो गया है आदमी
एक टुकड़ा छांव भी है हादसा जिसके लिए
धूप के पैबंद पहने सो गया है आदमी
रोज बनकर टूटता है गर्दिशों के चाक पर
वक्त के हाथों खिलौना हो गया है आदमी
जिस्म से मन को अलग रखकर गए सदियां हुई
आज तक लौटा नहीं है जो गया है आदमी
कौन सी इच्छा बनी थी मकबरा पहले पहल
मकबरों का सिलसिला सा हो गया है आदमी

कब्र जैसे हो गए हो, मकबरे जैसे हो गया हो। मकबारे पूजोगे, मकबरे हो जाओगे। कब्रों की पूजा से सावधान। संप्रदाय अतीत की पूजा है, बीत गए की--जो

कभी था और अब नहीं है। संप्रदाय का अर्थ होता है, सत्य को समूह के द्वारा खोजा जा सकता है। और सत्य जब भी खोजा गया है तो व्यक्ति के द्वारा खोजा गया है, समूह के द्वारा नहीं।
सिंहों के नहीं लेहड़े--सिंह तो अकेले होते हैं। उनके लेहड़े नहीं होते। कबीर अकेले, नानक अकेले, दादू अकेले, दरिया अकेले। जब पाया तो अकेले में पाया। जब भी किसी ने पाया है तो नितांत अकेलेपन में पाया है। जहां दूसरे की कोई छाया भी न पड़ती थी। महावीर ने पाया, बुद्ध ने पाया, क्राइस्ट ने पाया, मोहम्मद ने पाया, अकेले में पाया।
मोहम्मद पर जब पहली दफा कुरान उतरी तो पहाड़ पर अकेले थे, कोई भी न था। महावीर को जब अनुभव हुआ तो वह बारह साल तक मौन जंगल में खड़े रहे थे, चुपचाप। शब्द भी छोड़ दिए थे, बोलना भी छोड़ दिया था, क्योंकि बोलो तो दूसरा आ जाता है। दूसरे को इस तरह विसर्जित कर दिया था कि बोलेंगे ही नहीं तो दूसरा आएगा कैसे? बुद्ध को जब मिला तो एकांत में अकेले बोधिवृक्ष के नीचे बैठे थे। कोई दूसरा न था। पांच संगी-साथी थे, वे भी छोड़कर चले गए थे।
यह कथा भी प्यारी है। प्रतीकात्मक भी हो सकती है, क्योंकि ऐसे बुद्ध पुरुषों के पास जो भी कथाएं बनती हैं, वे प्रतीकात्मक हो जाती हैं। ये पांच संगी साथी थे बुद्ध के। जो सदा उनके साथ रहे थे। पांचों को साथ लेकर वे सत्य की खोज पर निकले थे। लेकिन जब बुद्ध ने देखा कि बहुत तपश्चर्या करके भी कुछ नहीं मिलता। सब तरह से शरीर को सुखा लिया और कुछ भी नहीं हुआ तो उन्होंने तपश्चर्या त्याग दी। संसार छोड़ दिया था एक दिन फिर एक दिन तपश्चर्या भी छोड़ दी। जिस दिन तपश्चर्या छोड़ी, वे पांचों नाराज हो गए। उन्होंने कहाः यह गौतम भ्रष्ट हो गया, पहले इतनी तपश्चर्या करता था और अब कुछ भी ले लेता है। भिक्षा भी स्वीकार कर लेता है। अब पुरानी कठोरता न रही। वे छोड़ कर चले गए। जिस दिन वे छोड़ कर चले गए, उसी रात बुद्ध को ज्ञान हुआ।
यह पांच का प्रतीक पांच इंद्रियों का प्रतीक भी हो सकता है--होना चाहिए। यह पांच इंद्रियों को साथ लेकर जैसे बुद्ध खोज रहे थे तब तक अड़चन रही। पहले इन पांच इंद्रियों के भोग से खोजते थे, फिर इन पांच इंद्रियों के त्याग में खोजते थे लेकिन यह पांच इंद्रियों का साथ बना रहा था। उस रात इन पांच का साथ छूट गया, अतींद्रिय हो गए, उसी रात घटना घट गई।
मगर वे पांच शिष्य थे उनके। वे छोड़ कर चले गए कि गौतम भ्रष्ट हो गया। जिस दिन वे छोड़ कर गए उसी दिन घटना घट गई। ऐसा भी हो सकता है, उन पांच की मौजूदगी बाधा बन रही थी। ऐसी ही मेरी प्रतीति है। उन पांच की मौजूदगी बाधा बन रही थी। भीड़-भाड़ थी। जमात हो गई थी। बातचीत भी करते होंगे, विवाद भी करते होंगे। सन्नाटा नहीं था, शून्य नहीं था। समाधि बनना मुश्किल थी। जब भी सत्य अवतरित हुआ है तो नितांत एकांत में व्यक्ति की अंतरात्मा में अवतरित हुआ है।
संप्रदाय का अर्थ होता है, तुम सोच रहे हो कि भीड़-भाड़ में खड़े होने से सत्य मिल जाएगा। हिंदू होने से सत्य मिल जाएगा कि मुसलमान होने से सत्य मिल जाएगा, नहीं, न हिंदू होने से सत्य मिलता है, न मुसलमान होने से सत्य मिलता है; अकेले होने से सत्य मिला है। हिंदू भी भीड़ है, मुसलमान भी भीड़ है। भीड़ तो राजनीति है। इसलिए संप्रदाय राजनीति है, धर्म कम। यह धर्म के नाम पर बड़ी सूक्ष्म राजनीति है।

अपना नन्हा चिराग जलाए बिना कोई चारा नहीं
कोई चारा नहीं कि जिस प्रकाश के भुलावे में
हमने अपने चिराग बुझा दिए
सारे शक-शुबहा सायाम सुला दिए
वह झूठा निकला
झूठा निकला यह विश्वास
कि सूरज सबको रास्ता दिखाएगा
मूर्ख होगा जो अपना अलग-अलग चिराग जलाएगा
क्या है जरूरत नन्हे नन्हे चिराग लिए अंधेरे में

टामक-टोए मारने की,
अलग-अलग रास्ता खोजने की,
जीतने की कोशिश में बार-बार हारने की?
जब कि नये सूरज की किरणों में जगमगाता आसमान खुल गया है अंधेरा हमेशा-हमेशा के लिए धुल गया है
कोटि-कोटि जन बढ़े जा रहे हैं
जयकारे बुलाते
और नारे लगाते
और अपने नन्हे चिराग सहर्ष बुझाते
झूठा निकला वह विश्वास
जनपथ बियाबान में खो गया
और प्रकाश अंधेरे की चादर ओढ़ कर सो गया
अपना नन्हा चिराग जलाए बिना कोई चारा नहीं

रोशनी सामूहिक नहीं है। सत्य का सूरज नहीं है। सत्य का तो छोटा सा चिराग जलता है तुम्हारी अंतरात्मा में, तुम्हारे एकांत में, तुम्हारे निबिड़ शांति में। छोटे-छोटे चिराग ही जलाने होते हैं सत्य के। समाधि के दीये होते हैं, सूरज नहीं।
यहां तुम इतने लोग हो, अगर तुम सभी भी ध्यान करने बैठे जाओ तो जैसे ही ध्यान घटेगा, तुम अकेले रह जाओगे, बाकी सब लोग भूल जाएंगे। साथ भला बैठे हो, देह ही साथ होती है। जैसे ही तुम भीतर गए, अकेले हो जाते हो। भीतर तो एकदम अकेलापन है। वहां तुम किसी दूसरे को ले भी न जा सकोगे। चाहो तो भी न ले जा सकोगे। अपने प्रीतम को भी बुलाना चाहो तो न बुला सकोगे। वहां दूसरे के पहुंचने की संभावना ही नहीं है। वहां बस तुम ही विराजमान हो।
उस परम-सत्ता को खोज लेना है जहां तुम ही विराजमान हो। उसी को ज्ञानी आत्मा कहते हैं, भक्त परमात्मा कहते हैं। वह तुम्हारा ही निज स्वरूप है।
लेकिन उसे पाने के लिए भीड़-भाड़ तो छोड़नी होगी। भीड़-भाड़ से तो बचना होगा।
भीड़-भाड़ के उपयोग हैं। और उपयोग हैं, धार्मिक कोई उपयोग नहीं है भीड़-भाड़ का। राजनैतिक उपयोग हैं; अगर बड़ी भीड़ के हिस्सेदार हो तो तुम ताकतवर हो।
अगर छोटी भीड़ के हिस्सेदार हो तो ताकत कम हो गई। तो ये ताकत की बातें हैं।
लेकिन अगर तुम अकेले हो तो धार्मिक हो गए।
और एक बार तुम उस अकेलेपन को जान लो, एक बार तुम्हारा नन्हा सा चिराग
जल जाए, तो फिर तुम भीड़ों में रहो, बाजारों में रहो, कोई फर्क नहीं पड़ता।
जिसका चिराग जला है उसके लिए बाजार कहीं है ही नहीं। उसके लिए सभी जगह परमात्मा का वास है। उसके लिए सभी जगह हिमालय फैल गया है। उसके लिए सभी जगह सन्नाटा है। और जिसकी अपनी रोशनी जली है उसे कहीं भी अंधेरा नहीं है। तुमने देखा न! छोटा सा दीया हाथ में लेकर तुम चलो तो तुम जहां जाओ, तुम्हें रोशनी घेरे रहती है। तुम्हारा छोटा सा दीया पर्याप्त है। कम से कम कुछ कदमों तक, चार-छह कदमों तक रोशनी तुम्हें घेरे रहती है। रोशनी का एक वर्तुल तुम्हारे साथ चलता है। जिसके भीतर का दीया जल रहा है उसके लिए अंधेरा है ही नहीं। वह जहां भी जाएगा वहीं रोशनी है। बाजार में बैठे तो बाजार में रोशनी है। पहाड़ पर बैठे तो पहाड़ पर रोशनी है। परिवार में रहे तो परिवार में रोशनी है। परिव्राजक हो जाए तो परिव्राजक होने में रोशनी है। असली बात भीतर की रोशनी का जल जाना है। लेकिन यह संप्रदाय से नहीं होता है, इसके लिए तो तुम्हें स्वयं ही चेष्टा करनी होगी।
दुनिया में धर्म के नाम पर संप्रदाय खोटे सिक्के की भांति है, झूठे सिक्के की भांति है। यह प्रलोभन दे देता है। यह कहता है, देखो, सम्मिलित हो जाओ। इस संप्रदाय में सम्मिलित हो जाओ, या उस संप्रदाय में सम्मिलित हो जाओ। और पा लोगे, जो तुम्हें पाना है। लेकिन कभी किसी ने पाया? जीसस पैदा हुए थे यहूदी घर में लेकिन यहूदी संप्रदाय में नहीं मिला। खोजना पड़ा एकांत में। आज तक दुनिया में जितने लोगों ने पाया है, सब ने एकांत में पाया।

और सबके साथ यह दुर्भाग्य घटता है कि जब उनको मिल जाता है तो उनके दीये की रोशनी देख कर हजारों लोग दौड़े आते हैं, पतंगे आते हैं। पतंगे मरते हैं उनकी ज्योति में आकर; उनकी ज्योति में लीन होते हैं। फिर समय रहते उनकी ज्योति बुझ जाती है। इस जगत में कोई भी चीज शाश्वत नहीं है। सदगुरु भी घटते हैं और विदा हो जाते हैं। घड़ी भर को द्वार खुलता है, फिर बंद हो जाता है। लेकिन लोगों को पता नहीं चलता।
लोग तो पुरानी लकीर के फकीर। सुनते हैं कि उनके बापदादा फलां दीये पर गिर कर और निर्वाण को पा गए थे तो वे भी उसी दीये पर गिरते जाते हैं, और यह भी नहीं देखते हैं कि दीया अब जला नहीं रहा है। पतंगा पतंगा बना रहता है। दीये पर गिरता जाता है, सिर पटक लेता है। बल्कि और भी प्रसन्न होता है कि यह अच्छी रही। मरने से भी बचे और दीये पर गिरने का साहस दिखाने का भी मजा ले लिया। असली दीयों से बचता है। जहां ज्योति जल रही है अब, वहां नहीं जाता। वह कहता है, हमारा अपना ही दीया है, हम उसी पर गिरते हैं। हमारा अपना मंदिर है, अपना गुरुद्वारा है, अपनी मस्जिद है, हम वहीं जाते हैं। हम क्यों जाएं दूसरी जगह? मगर तुम यह तो देखो कि जिस मंदिर से तुम लौट आते हो वह मंदिर न होगा। जो मस्जिद तुम्हें मिटाती नहीं वह मस्जिद नहीं है अब। जिस गुरुद्वारे से तुम वैसे के वैसे लौट आते हो जैसे गए थे, वह गुरुद्वारा कहां रहा? वह गुरु का द्वार अब कहां रहा? जब गुरु नहीं रहा तो गुरु का द्वार कहां रह जाएगा? गुरुद्वारे से तो जो गया सो गया; फिर लौटे कैसे? असली दीये पर गिरोगे तो गए।
तो इस संप्रदाय के नाम पर एक झूठ प्रक्रिया चलनी शुरू होती है। एक थोथा जाल फैलता है। अगर कभी कोई लोग इस संप्रदाय के नाम पर किसी तरह ठोक-पीट कर अपने को थोड़ा शांत भी कर लेते हैं, तो भी वह शांति मुर्दे की शांति होती है, जीवित आदमी की शांति नहीं। शांति शांति में फर्क है, ध्यान रखना। एक मरघट की भी शांति होती है। एक हिमालय की भी शांति है। एक शांत बैठे आदमी की शांति होती है और एक मुर्दा लाश की भी शांति होती है। ऊपर से देखने में दोनों शांतियां मालूम पड़ती हैं। तुम अपने कमरे में मर गए तो भी सन्नाटा हो जाता है, और तुम अपने कमरे में समाधि में चले गए तो भी सन्नाटा हो जाता है। लेकिन क्या ये दोनों समाधियां, ये दोनों शांतियां एक जैसी हैं? ये सन्नाटे एक जैसे हैं? लाश का सन्नाटा और समाधिस्थ व्यक्ति के सन्नाटे में कुछ फर्क करोगे या न करोगे? समाधिस्थ व्यक्ति का सन्नाटा जीवंत है, परम ऊर्जा से आंदोलित है। मुर्दे का सन्नाटा सिर्फ सन्नाटा है; सिर्फ शोरगुल का अभाव है, नकारात्मक है। उसमें कुछ विधायकता नहीं है।

ऐसी आग भी होती है जो औरों को नहीं जलाती है
पर अपनी परिधि में रुकी
अपनी मर्यादा में बंधी दिप-दिप जलती है
हमें राख की शांति नहीं चाहिए
ऐसी आग भी होती है जो चिटकती नहीं
शोर नहीं मचाती
अपनी गरिमा से पुष्ट
अपनी शक्ति से संतुष्ट
अनवरत शांत मगन दहकती है
हमें राख की शांति नहीं चाहिए

शांति चाहो ऐसी आग की, जो दिप-दिप जलती है। ऐसी आग की, जो अपने में संतुष्ट, परितुष्ट, अनवरत शांत और मगन दहकती है। आग की शांति चाहो, राख की नहीं। राख की भी शांति होती है--मुर्दा, ठंडी; जहां जीवन जा चुका। हां, कभी वहां भी आग थी।
संप्रदाय राख है। कभी वहां आग थी, कभी अंगारे थे, अब नहीं हैं। धर्म की खोज में व्यक्ति को हमेशा अंगारे खोजने पड़ते हैं; और यही अड़चन है। क्योंकि राख में तो तुम पैदा होते हो, अंगारा तुम्हें खोजना पड़ता है। हिंदू घर में पैदा हुए इसके लिए तुम्हें कुछ करना तो नहीं पड़ा। यह तो संयोग की बात थी।

कि जैन घर में पैदा हुए, संयोग की बात थी। बचपन से एक संप्रदाय तुम्हें मिल गया। बचपन से एक संप्रदाय का संस्कार पड़ गया। लेकिन अगर तुम्हें सदगुरु खोजना है तो खोजना पड़ेगा। सदगुरु जन्म से नहीं मिलते। सदगुरु के लिए तो आंखें खोल कर भटकना पड़ता है, यात्रा करनी पड़ती है। सदगुरु तीर्थयात्रा से मिलते हैं। खतरा उठाना पड़ता है, जोखम लेनी पड़ती है। क्योंकि कौन जाने, जिसको तुमने सदगुरु माना, है भी या नहीं! तो जुआरी बनना पड़ता है। दांव लगाना पड़ता है। चूक भी हो सकती है।
संप्रदाय में भूल-चूक नहीं होती। बापदादों से चला आता है, उधार है। तुम्हें मिल जाता है मुफ्त--वसीयत की तरह; खुद नहीं कमाना होता। इस फर्क को समझ लेना। संप्रदाय मुफ्त मिलता है वसीयत की तरह। धर्म कमाना पड़ता, धर्म खोजना पड़ता है, धर्म पर दांव लगाना होता है, इसलिए थोड़े से ही लोग धार्मिक हो पाते हैं।
अब जिन्होंने नानक को चुना--जिंदा नानक को, उनकी बात और थी। अब जो सिक्ख हैं उनकी बात और है। जिन्होंने नानक को चुना था--जिंदा नानक को, उन्होंने बड़ी अड़चन से चुना था; बड़ी मुश्किल से चुना था। क्योंकि कोई हिंदू घर में पैदा हुआ होगा। नानक का तो कोई घर ही नहीं था तब तक। कोई मुसलमान घर में पैदा हुआ था, कोई जैन घर में पैदा हुआ था कोई गोरख पंथी था, कोई और था, कोई और था, हजार संप्रदाय थे, उनमें लोग पैदा हुए थे। फिर नानक की ज्योति जली, यह अंगारा प्रगटा। इस अंगारे के गीत जन्मे। तब तो जिन्होंने चुना, बड़े हिम्मतवर लोग रहे होंगे। बहुत नहीं हो सकते, बिरले हो सकते हैं। इसलिए तो दरिया कहते हैं, पूरी फौज में कोई एकाध सूरमा होता है। फौज की फौज वीरों की नहीं होती, कोई एकाध वीर पुरुष होता है।
तो थोड़े से लोगों ने नानक का गीत सुना। थोड़े से लोगों ने पहचान बताई। थोड़े से लोगों ने हिम्मत की, अपने अतीत को दांव पर लगाया। अतीत सुरक्षित था। गीता दांव पर लगा दी इस आदमी के प्रेम में, इस आदमी के मोह में। कहा कि छोड़ते हैं गीता। क्योंकि कृष्ण ठीक थे या नहीं यह सवाल नहीं है। गीता में अब कृष्ण कहां? राख बची है। महावीर को छोड़ दिया, बुद्ध को छोड़ दिया, मोहम्मद को छोड़ दिया इस आदमी के साथ सगाई कर ली। इस आदमी के साथ विवाह रचा लिया। यह खतरे का काम था। क्योंकि गीता की पुरानी साख थी--हजारों साल पुरानी। यह आदमी तो अभी-अभी हुआ। पता नहीं ठीक भी हो कि न हो। इसके पीछे कोई पुरानी साख तो नहीं है। बाजार में इसकी कोई साख तो नहीं है। इसको कोई जानता तो है नहीं अभी। इस अनजान के साथ प्रेम बांध लिया। हिम्मतवर लोग थे। उनको अगर नानक ने शिष्य कहा--सिक्ख उसी से बना--तो ठीक कहा; वे शिष्य थे। जो गुरु खोजता है, वह शिष्य है।
लेकिन अब जो सिक्ख हैं वे सिक्ख नहीं हैं। अब उन्होंने गुरु थोड़े ही खोजा। अब तो वे सिक्ख घर में पैदा हुए। अब तो उनको गुरु खोजना पड़े तो फिर झंझट होगी। अब तो उन्हें नानक को छोड़ कर गुरु खोजना पड़ेगा, यह झंझट होगी। और तुम्हें यह हैरानी होगी बात जान कर कि जो नानक को छोड़ कर गुरु खोजेंगे वही सिक्ख हैं। क्योंकि सिक्ख का अर्थ ही यह होता है कि जो गुरु को खोजे। जीवित गुरु को खोजे। अब तो जो असली सिक्ख है, वह सिक्ख संप्रदाय के बाहर हो जाएगा। जो असली जैन है वह जैन संप्रदाय के बाहर हो जाएगा। जो असली हिंदू है वह हिंदू संप्रदाय के बाहर हो जाएगा। क्योंकि संप्रदाय में कहां असली? वह असली को खोजेगा। असली तो सदा किसी जीवित गुरु के प्राणों में होता है। मगर नुकसान तो उसे उठाने पड़ते हैं।
किसी संप्रदाय को छोड़ना इतना आसान तो नहीं। फिर संप्रदाय के साथ बहुत
से न्यस्त स्वार्थ हैं, औपचारिकताएं हैं, व्यवस्थाएं हैं, सुरक्षाएं हैं, सुविधाएं हैं। फिर संप्रदाय इसे क्षमा भी नहीं करता। संप्रदाय इसका ठीक से बदला लेता है। जब तुम किसी संप्रदाय को छोड़ते हो तो तुम संप्रदाय के अहंकार को चोट पहुंचाते हो कि तुमने समझा क्या? तुम अपने को अक्लमंद समझ रहे हो? हम सब गलत हैं? हम हजारों साल से मान रहे हैं और गलत हैं? और तुम एक अकेले समझदार हो गए हो? तो सारा संप्रदाय तुम्हारे खिलाफ खड़ा हो जाता है। भीड़ उनकी है, वह तुम्हें अड़चन देती है। यह अड़चन सत्य के मार्ग पर साहसी

आदमी को उठानी ही पड़ती है। इसलिए दरिया ठीक ही कहते हैं कि कुछ सूरमा ही होते हैं, जो धर्म के मार्ग पर जाते हैं।
धर्मगुरु सदगुरु नहीं है, धर्मगुरु सदगुरु का धोखा है। पंडित है, पुरोहित है, मौलवी है, वे धोखे हैं। उनके भीतर की आग जलती हुई नहीं है। उन्हें खुद भी कुछ पता नहीं है। वे उतने ही अज्ञान में हैं जितने तुम। कभी- कभी तो ऐसा होता है, तुमसे भी ज्यादा अज्ञान में हैं। क्योंकि तुम्हें कम से कम इतनी समझ है कि मुझे कुछ पता नहीं है, उनको यह ख्याल है कि उन्हें सब पता है और पता कुछ भी नहीं। उनकी हालत तुम से बदतर है।
फिर धर्म के साथ उनका संबंध क्या है? धर्म के साथ उनका कोई संबंध नहीं है। धर्म के पाखंड के साथ उनका संबंध है क्योंकि उससे लाभ है; उससे व्यवसाय है। धर्मगुरु धर्म का व्यवसाय कर रहा है।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन के पास एक आदमी आया, बड़ा डरा हुआ था। मुल्ला मौलवी! उसने कहा कि मुल्ला, बचाओ। बड़ी भूल हो गई। आज सात दिन से सोया भी नहीं। एक बकरा चुरा लिया किसी का, और मित्रों ने मिल कर खा-पी भी लिया। अब मुझे यह पाप कचोटता है कि मित्रों ने खाने-पीने में तो हाथ बंटाया लेकिन फसूंगा तो मैं ही आखिर में। निर्णय के दिन, कयामत के दिन पुकारा तो मैं जाऊंगा। चुराया तो मैंने था बकरा। खा तो ये सब गए। मुझे थोड़ा बहुत मिला है, इसमें ठीक है, मगर ये तो खा-पी कर विदा हो गए, फंस मैं गया। चोरी मैंने की थी। मुल्ला, मुझे कुछ रास्ता बताओ कि मैं निकल आऊं? मुल्ला तो बहुत चिल्लाया, नाराज हुआ एकदम। उसने पूरा का पूरा नरक का दृश्य खड़ा कर दिया कि दोजख में सड़ोगे, जलाए जाओगे कड़ाहों में, कीड़े-मकोड़े काटेंगे, जन्मों-जन्मों तक दुख पाओगे। खूब डराया उस आदमी को। वह बहुत घबड़ा गया। उसने कहा कि मुल्ला, अब और मत घबड़ाओ। मैं वैसे ही सात दिन से सोया नहीं, तुम तो ऐसी हालत किए दे रहे हो। मैं क्या करूं, यह बताओ। मुल्ला ने कहाः कुछ करना है अगर तो केवल बातचीत से न होगा, कुछ नगद प्रमाण चाहिए। नगद प्रमाण? उस आदमी ने कहाः तुम्हारा मतलब क्या है?
मुल्ला ने कहाः नगद नहीं समझते?
उसकी अकल में आया, उसने पांच रुपये का नोट निकाल कर मुल्ला को दिया कि लो। मुल्ला ने उसे खीसे में रखा और कहा घबड़ाओ मत, हर झंझट के बाहर मार्ग है, लेकिन तुम समय पर आ गए। कयामत में बुलाए तो जाओगे। ईश्वर पूछेगा कि बकरा क्यों चुराया? तो तुम साफ मुकर जाना। तुम कहना चुराया ही नहीं। वह आदमी बोलाः साफ मुकर जाना? मुल्ला ने कहाः कोई गवाह है? कहाः गवाह कहां? किसी ने देखा तुम्हें चुराते? उस आदमी ने कहाः किसी ने नहीं देखा। मुल्ला ने कहाः फिर बेफिकर रहो। जब कोई गवाह ही नहीं है तो फिर कोई छोटी-मोटी अदालत भी कुछ नहीं कर सकती। तो उसकी तो बड़ी अदालत है। गवाह तो पूछेगा ही कि कोई गवाह है, जिसने देखा?
वह आदमी बोला कि बात तो ठीक है, लेकिन परमात्मा तो सभी विराट शक्तिमान है, उसके लिए क्या कमी है? वह चाहे तो बकरे को ही बुला सकता है कि यह बकरा खड़ा है। बकरे ने तो देखा। मुल्ला ने कहाः यह अड़चन आ गई। नगद प्रमाण फिर से दो। तो उस आदमी ने फिर पांच रुपये का नोट निकाला। वह खीसे में रख कर मुल्ला ने कहाः देखो ऐसा है, अगर वह बकरे को बुलाए सामने तो जल्दी से बकरे को पकड़ कर उस आदमी को दे देना, जिसका चुराया है। कहना झंझट मिटी। बात ही खतम हो गई। लेना देना पूरा। अब कैसा मामला! वह आदमी भी खुश हुआ, मुल्ला भी प्रसन्न है। उस आदमी को भी बात जंच गई कि यह बात ठीक है।
जिसको तुम धर्मगुरु कहते हो वह व्यवसाय कर रहा है। उसकी रोटी-रोजी है। उसे तुमसे कुछ मतलब नहीं है, न तुम्हारे भविष्य से कुछ प्रयोजन है। उसे अपने ही भविष्य का पता नहीं है, तुम्हारे भविष्य का क्या प्रयोजन होगा? लेकिन व्यवसाय है, संप्रदाय है। जल्दी ही पंडित-पुरोहितों का व्यवसाय बन जाता है।
स्वभावतः पंडित-पुरोहित सदा ही सदगुरु के विरोध में खड़े रहते हैं-- खड़े ही रहेंगे। क्योंकि जब भी सदगुरु पैदा होगा, जब भी किसी व्यक्ति में फिर से अंगारा जलेगा, तो वे सब घबड़ा जाएंगे, जो राख का धंधा कर रहे हैं। उसको भभूत कहो, विभूति कहो, जो भी कहना हो कहो, लेकिन जो भी राख का धंधा कर

रहे हैं वे सब घबड़ा जाएंगे। वे सब एकजुट विरोध में हो जाएंगे। वे कहेंगे, यह अंगारा खतरनाक है। जाना मत, जलोगे। मुश्किल में पड़ोगे। यह राख अच्छी है, ठंडी है, शीतल है, फिर बापदादे भी यही पूजते रहे हैं, तुम भी यही पूजो। अपने बापदादों को मत छोड़ो। अपनी निष्ठा मत गंवाओ। भटक मत जाना। यह मार्ग सुनिश्चित है, इस पर अनेक लोग गए हैं। यह नये मार्ग के झंझट में मत पड़ो। क्या पता कोई जाता हो, न जाता हो। नई बातें खतरनाक हो सकती हैं। पुरानी जांची-परखी गई बातें में ही रहो।
तुम पूछते होः ‘क्या संप्रदाय से धर्म प्रवेश हो ही नहीं सकता?’
हो सकता है, संप्रदाय के बाहर आना उपाय है। संप्रदाय को भी सीढ़ी बना लो। उस पर चढ़ जाओ, उससे पार निकल आओ। और तुम संप्रदाय के भीतर बंध कर जिसे खोज रहे थे उसे तुम संप्रदाय के बाहर रह कर किसी दिन पा लोगे। जिस दिन तुम पा लोगे उस दिन तुम जान लोगे--अगर तुम हिंदू थे तो तुम जान लोगे कि अब मैं हिंदू हुआ। अगर मुसलमान थे तो पाओगे कि अब मैं मुसलमान हुआ। अगर जैन थे तो पाओगे, अब मैं जैन हुआ। लेकिन जैन रहते कोई जैन नहीं होता, न हिंदू रहते कोई हिंदू होता है। यह विरोधाभास है। छूट कर संप्रदाय से व्यक्ति धार्मिक बनता है। क्षुद्र शब्दों और शास्त्रों की सीमाओं से उठ कर सत्य का खुला आकाश उपलब्ध होता है।

तीसरा प्रश्नः आप कहते हैं कि सुख का समय अनंत है और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुख का समय अनंत है। कृपा करके समझाएं अनंत के प्रति यह दो विपरीत दृष्टिकोण किस कारण है।

नहीं, जरा भी विरोध नहीं है। जब सुख घटता है, जब घट रहा होता है, तो क्षणिक मालूम होता है। जब सुख घट रहा होता है, उसी समय अगर देखोगे, तो सुख क्षणिक मालूम होगा। क्यों? क्योंकि मन चाहता है, सुख सदा घटता रहे। इसलिए कितना ही घटे, लगता है कम घटा।
प्रियजन से मिलना हो गया, रात ऐसे बीत जाती है बात में, गपशप में, कब सुबह हो गई, पता नहीं चलता। ऐसा लगता है कि घड़ी बड़ी तेजी से चल गई। कांटों ने बड़ा धोखा किया, जल्दी-जल्दी घूम गए। कांटे तो अपने ही तरह से घूम रहे हैं, समय तो अपने ही गति से जा रहा है। कोई फर्क तुम्हारे लिए नहीं किया है। तुम्हारे मन में फर्क हो गया है क्योंकि इस मित्र को पाकर तुम्हें जो रस आ रहा है उसे तुम चाहते हो सदा आता रहे आता ही रहे। तुम्हारी मांग इतनी बड़ी है, उस मांग की तुलना में जो सुख मिल रहा है वह इतना छोटा मालूम पड़ता है कि यह गया... यह गया... । अभी आया मित्र अभी जाने की घड़ी आ गई। अभी सुख आया था, उपजा था, यह चला।
तो जब सुख बीत रहा होता है, जब तुम सुख की घड़ी में होते हो तब ऐसा लगता
है बड़ी जल्दी जा रहा है, क्षणभंगुर है।
ठीक इससे विपरीत दशा दुख की होती है। जब तुम दुख की घड़ी में होते हो तो लगता है, घड़ी चल ही नहीं रही। अटका है कांटा। घूमता ही नहीं कांटा। तुम्हारा प्रियजन मर रहा है, मृत्युशय्या पर पड़ा है, तुम किनारे बैठे
हो खाट के उसके, रात ऐसी लगती है कि बीतेगी ही नहीं। लगता है कि लंबी होती जा रही है, क्या मामला क्या है? क्या कयामत की रात आ गई? आखिरी रात आ गई? आज सुबह होती नहीं दिखाई पड़ती। आज सुबह होगी या नहीं होगी? अब सूरज निकलेगा कि नहीं निकलेगा? कारण क्या है? कोई फर्क नहीं पड़ा। घड़ी अपने ढंग से चल रही है। सुबह भी होगी। चाल समय की वही है जो थी लेकिन तुम्हारा मन आज बड़ा दुख में भरा है। तुम चाहते हो जल्दी यह रात कट जाए। जल्दी कट जाए। सुख में तुम चाहते हो, कहीं जल्दी न कट जाए। दुख में तुम चाहते हो, जल्दी कट जाए। अब कट ही जाए। किसी तरह सुबह हो जाए, किसी तरह सूरज निकल आए।
जब तुम दुख में होते हो तो तुम जल्दी पार होना चाहते हो। तुम्हारी जल्दी के कारण देरी मालूम पड़ती है कि दुख की घड़ी बड़ी धीरे-धीरे जा रही है। जा ही नहीं रही, चल ही नहीं रही। समय ठहर गया है। सुख में तुम चाहते हो समय ठहर जाए, सो समय भागता मालूम पड़ता है। यह तुम्हारे ही मन की कल्पना के कारण

होता है। समय तो वैसा ही चलता है, जैसा चलता है। न सुख की फिकर है, न दुख की फिकर है।
तो यह पहली बात। फिर जब तुम पीछे लौट कर देखते हो सुख की घड़ी को या दुख
की घड़ी को, तो फिर एक फर्क हो जाता है। जब तुम पीछे लौट कर देखते हो सुख की कोई घड़ी----रात जिस दिन, जब कोई प्रियजन आ गया था और तुम गीत गाते रहे थे, और साथ बैठ कर चांद निहारते रहे थे, नाचे थे साथ-साथ, मग्न हुए थे, एक-दूसरे में डुबकी ली थी, जब तुम पीछे लौट कर देखते हो तो वह सुख बड़ा लंबा मालूम पड़ेगा। जब तुम सुख में गुजरे थे तो बड़ा छोटा मालूम पड़ता था। जब तुम लौट कर देखोगे तो सुख बहुत लंबा मालूम पड़ेगा। और जब तुम दुख को लौट कर देखोगे तो दुख छोटा मालूम पड़ेगा। जब दुख में से गुजरे थे तो बड़ा लंबा मालूम पड़ता था। क्यों? क्योंकि हम कल्पना में भी दुख को बड़ा नहीं करना चाहते। हम कल्पना में तक दुख को छोटा करना चाहते हैं। असलियत में तो कर नहीं सकते, कल्पना में तो कर सकते हैं। असली दुख जब सामने खड़ा है तब तो वह गुजरेगा तब गुजरेगा। जितना समय लेगा, लेगा। हम चाहते हैं जल्दी गुजर जाए, तो लगता है, धीरे गुजर रहा है। हमारी अपेक्षा अड़चन डाल देती है। लेकिन जब तुम लौट कर देखते हो तब तो तुम मालिक हो गए। अब तुम चाहो जितने जल्दी कैलेंडर को फाड़ दो। एक क्षण में दिन बीत जाए। एक क्षण में रात बीत जाए एक क्षण में वर्ष बीत जाए। अब तुम्हारे हाथ में है। तो तुम दुख को छोटा कर लेते हो। तुम सदा से छोटा करना चाहते थे। असलियत में तो न कर सके थे, स्मृति में कम कर लेते हो।
इसलिए लोग स्मृति में दुख की बातों को भूल जाते हैं। खूब दुख घटे है जिंदगी में लेकिन उनको भूल जाते हैं। और सुख को कभी नहीं भूलते हैं। सुख को खूब याद रखते हैं, संजो कर रखते हैं। उसकी तिजोड़ी बना लेते हैं। और सुख को खूब लंबा-लंबा कर देखते हैं। वह तुम्हारी कल्पना की बात, जैसा तुम्हें देखना हो। इसलिए लोग पीछे लौट-लौट कर देखते हैं और कहते हैं, कैसे अच्छे दिन थे वे पुराने दिन। अब बीत गए। बचपन कैसा प्यारा था। इसी मनोवैज्ञानिक आधार पर सारी दुनिया में यह एक प्रवृत्ति है कि अतीत में स्वर्ण-युग था, सतयुग था, वह बीत गया। कैसे प्यारे दिन! कैसे आनंद के दिन! वे सब चले गए। वर्तमान सदा दुख मालूम होता है और अतीत सुख मालूम पड़ता है। क्योंकि अतीत से तुमने दुख तो अलग कर दिए, छांट दिए। स्मृति तो तुम्हारी है, तुम जो चाहो। करो। पन्ने फाड़ दिए तुमने स्मृति के किताब से जो दुख के थे, या उनको संक्षिप्त कर दिया, या बिल्कुल छोटा कर दिया, फुटनोट रह गए। और सुख के जो पन्ने थे उनको खूब बड़े कर दिए। उनके अध्याय के अध्याय बना दिए। फुटनोट जो थे, अध्याय बन गए। अध्याय जो थे, फुटनोट हो गए। यह फिर तुम मालिक हो पीछे। फिर तुम्हारे हाथ में है। तुम अस्तित्व को तो नहीं बदल सकते लेकिन स्मृति को बदल सकते हो। और हम सब स्मृति को बदलते रहते हैं।
तो ये दो बातें हैं। जब सुख बीतता है, क्षणभंगुर मालूम पड़ता है। जब दुख बीतता है तो अनंत मालूम पड़ता है और जब बीत गए को तुम लौट कर याद करते हो तो हालत बिल्कुल उलटी हो जाती है। सुख खूब लंबा मालूम पड़ता है, दुख छोटा सा मालूम पड़ता है।
लेकिन ये दोनों ही स्थितियां अज्ञान की हैं। ज्ञानी को सुख-दुख दोनों बराबर मालूम पड़ते हैं; न कोई लंबा, न कोई छोटा। क्योंकि ज्ञानी की कोई अपेक्षा नहीं है। उसकी कोई मांग नहीं है। वह कहता नहीं कि यह रात बड़ी हो जाए कि यह रात छोटी हो जाए। वह कहता है जैसी है, उससे वह राजी है। उसके मन में तथाता का भाव है। सर्व स्वीकार है। कांटा गड़े तो स्वीकार है। फूल की गंध नासापुटों में भर जाए तो स्वीकार है। सुख बरसे तो ठीक, दुख बरसे तो ठीक। वह हर हालत में राजी है। चूंकि हर हालत में राजी है इसलिए दुख भी उतना ही मालूम होता है, जितना है। और सुख भी उतना ही मालूम होता है, जितना है। और एक बड़ी चमत्कार की बात घटती है। तब आदमी को पहली दफा पता चलता है कि जिंदगी में पचास-पचास प्रतिशत है दोनों। उतना ही दुख है, उतना ही सुख है। आधा-आधा है। संतुलन है। अज्ञानी को यह कभी पता नहीं चलता कि दोनों बराबर हैं। अज्ञानी कहता है कि जब बीत रहा है तब दुख बहुत ज्यादा है, सुख बहुत कम है। और जब बीत जाता है तो सुख बहुत ज्यादा हो जाता है, दुख बहुत कम। अज्ञान

के तराजू के पलड़े कभी समतुल हो जाते हैं। ज्ञानी की कोई अपेक्षा नहीं है। वह यह नहीं कहता, ऐसा हो। वह कहता है जैसा है, वैसा है। इसमें होने की कोई बात ही नहीं है।
जब कोई ऐसा स्थिर मति हो जाता है, स्थितप्रज्ञ हो जाता है, ऐसा शांत समचित्त हो जाता है, सम्यकत्व को उपलब्ध हो जाता है, जब देखता है जैसा है वैसा है, तो अचानक एक अपूर्व घटना घटती है--दुख और सुख दोनों बराबर हैं। अब यह बहुत हैरानी की बात है। इसे तुम्हें समझने में अड़चन होगी।
इसलिए जैसे सुख बढ़ता है वैसे ही दुख भी बढ़ जाता है। अमीर आदमी ज्यादा दुखी होता है बजाय गरीब आदमी के। संपन्न देश ज्यादा दुखी होते हैं बजाय विपन्न देशों के। आज अमरीका में जैसा दुख है वैसा भारत में नहीं है; हो नहीं सकता। कारण? कारण एक बहुत बहुमूल्य नियम है। जैसे सुख बढ़ता है वैसे दुख बढ़ जाता है, क्योंकि दोनों सदा अनुपात में होते हैं। एक तरफ सुख बढ़ा, दूसरी तरफ दुख बढ़ा। ऐसा ही समझो कि जितना ऊंचा पहाड़ होगा उतनी ही गहरी खाई होगी न उसके पास! पहाड़ बड़ा होने लगा तो खाई बड़ी होने लगी। अब हम एक उपद्रव की आकांक्षा करते रहते हैं सदा, कि खाई तो बिल्कुल न हो, पहाड़ खूब ऊंचा हो। यह हो नहीं सकता। अगर खाई नहीं चाहिए तो पहाड़ को भी मिटा देना होगा; तब समतल हो जाएगा।
दुनिया में आदमी सुख बढ़ाने के उपाय करता है और साथ ही साथ दुख बढ़ता जाता है, दुख बढ़ेगा। इससे तुम्हें एक बात समझ में आ जाएगी, समस्त महाज्ञानियों ने यह कहा है कि दुख को घटाने की फिकर मत करो और सुख को बढ़ाने की फिकर मत करो। सुख और दुख को स्वीकार कर लो। तुम घटाने-बढ़ाने की बात ही छोड़ दो। तुमने सुख बढ़ाया तो दुख भी बढ़ जाएगा, इधर तिजोरी में रुपये बढ़ेंगे, वहां शरीर में बीमारियां बढ़ेंगी। इधर बिस्तर सुंदर हो जाएगा और नींद तिरोहित हो जाएगी। यह रोज हो रहा है। यह तुम जानते हो। यह तुम्हारी जिंदगी में हो रहा है। मगर यह सत्य इतना कडुवा है कि तुम इसे स्वीकार करना नहीं चाहते। तुम इसको मद्देनजर किए रहते हो। तुम इसको उपेक्षा से टाले रहते हो। तुम कहते हो कि नहीं, ऐसे कैसे? सुख बढ़ जाएगा, दुख को घटा लेंगे। सुख को बड़ा कर लेंगे।
पर तुमने देखा? जितनी बड़ी सफलता होती है उतनी ही बड़ी विफलता की संभावना बढ़ जाती है। तुम जितनी ऊंचाई पर चलोगे उतने ही नीचे गिर जाने का डर भी साथ ही साथ बड़ा हो गया है। गिरोगे तो बहुत नीचे गिरोगे। और गिरना पड़ता ही है। गिरना पड़ेगा ही। मगर आदमी सोचता है कुछ होता कुछ है। आदमी जिंदगी के नियम को देखता ही नहीं।
यहां जीवन में सब चीजें समतुल हैं, नहीं तो जिंदगी बिखर जाए। अनुपात है। दिन है तो रात है, सर्दी है तो गर्मी है, जन्म है तो मृत्यु है, सुख है तो दुख है, सफलता है तो विफलता है। इसीलिए तो सारे ज्ञानी कहते रहे हैं-- समभाव। दोनों को बराबर मानो। दोनों बराबर हैं। तुमने एक को बढ़ाया तो दूसरा भी बढ़ जाएगा। तुम्हारी आकांक्षा का कोई संबंध नहीं है। जीवन का नियम यह है। जैसे किसी वृक्ष को अगर आकाश में ऊंचा उठना हो, तो उसको अपनी जड़ें पाताल में गहरी भेजनी पड़ेंगी। अब वृक्ष चाहे कि जड़ें तो गहरी न जाएं और मैं ऊंचा उठ जाऊं तो यह नहीं हो सकता। जितना ऊपर उठेगा उतना पाताल में गहरा भी उतरेगा।
नीत्शे का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः जो स्वर्ग को छूना चाहता है, उसे अपनी जड़ें नरक तक पहुंचानी होंगी। बिना नरक को छुए कोई स्वर्ग को नहीं छू सकता। इसलिए एक बड़ा अपूर्व जीवन का नियम समझ में आ जाए तो काम का होगा, बहुत काम का होगा। सुख को बढ़ाने की फिकर मत करना, दुख को घटाने की फिकर मत करना। इसमें हम व्यर्थ ही समय खराब करते हैं। अगर तुम दुख घटाने की फिकर करोगे तो सुख घट जाएगा। अगर तुम सुख को बढ़ाने की कोशिश करोगे, दुख बढ़ जाएगा। दोनों साथ चलेंगे। ये गाड़ी के दो चाक हैं। एक को छोटा और एक को बड़ा तुम न कर सकोगे। नहीं तो गाड़ी टूट कर गिर जाएगी। यह साथ ही साथ बड़े-छोटे होते हैं, तो ही गाड़ी चल पाती है।
तो फिर आदमी क्या करे? आदमी स्वीकार करे। जैसा है उसे वैसा स्वीकार कर ले। अपनी तरफ से चेष्टा ही न करे। बजाय बदलाहट करने के देखे कि जीवन का

रहस्य क्या है। और जिस दिन तुम्हें यह दिख जाएगा, दोनों चीजें समान हैं, तब तुम चमत्कृत हो जाओगे। तब आखिरी हिसाब में भिखमंगा भी उतने ही दुख पाता है, उतने ही सुख, जितना सम्राट दुख पाता है और सम्राट सुख। अनुपात बराबर होता है। अनुपात में जरा भी फर्क नहीं होता। अगर भिखमंगे के पास दो दुख हैं तो दो सुख हैं। अगर सम्राट के पास दो करोड़ सुख हैं तो दो करोड़ दुख हैं। अनुपात बराबर है; वह दो और दो का ही है। इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम दुख के ऊपर एक आंकड़ा बढ़ाओ, एक आंकड़ा सुख पर बढ़ जाता है।
यह तुम्हें समझ में आ जाए तो तुम बड़े चकित होओगे। तो यहां भिखमंगे और सम्राटों में कोई बहुत फर्क नहीं है। माना कि सम्राट के पास सोने के लिए बड़ी सेज सुंदर है, मगर नींद कहां? और माना कि भिखमंगे के पास सेज है ही नहीं, सो जाएगा कहीं पटरी पर, लेकिन नींद है। सोएगा तो घोड़े बेच कर सो जाता है; हालांकि घोड़े नहीं हैं, मगर घोड़े बेच कर सो जाता है। सम्राट के पास घोड़े बहुत हैं लेकिन घोड़े बेच कर नहीं सो पाता। सो ही नहीं पाता। सम्राट के पास भोजन तो सभी तरह के हैं सुस्वादु लेकिन भूख खो गई है। भूख लगती ही नहीं। भिखमंगे के पास भोजन तो बिल्कुल नहीं है। रूखा-सूखा मिल जाए तो बहुत धन्यभाग। मगर जब मिल जाता है तो जो स्वाद उपलब्ध होता है वह किसी सम्राट को उपलब्ध नहीं होता। साथ-साथ है, अनुपात बराबर है।
जगत में सभी कुछ संतुलित है। इस संतुलन को देख लेना सम्यकत्व है। इस संतुलन को देखने से आदमी समता में थिर हो जाता है। तब एक अलग घटना घटती है-- न तो सुख ज्यादा है, न दुख ज्यादा है, सब बराबर है। अचुनाव पैदा होता है। आदमी निर्विकल्प होने लगता है। चुनना ही क्या है, जब सब बराबर है! मित्र बढ़ाओ, शत्रु बढ़ जाते हैं; तो फायदा क्या है? तो फिर जैसा है, ठीक है। जैसा है ठीक है, ऐसी चित्त की दशा शांत, निर्विघ्न हो जाता है। निर्धूम जलने लगती है भीतर की ज्योतिशिखा।
तो ज्ञानी को न तो सुख ज्यादा, न दुख ज्यादा। और जिसको यह दिखाई पड़ गया
कि सुख-दुख बराबर हैं, जिसने दोनों को ठीक से देख लिया, उसे एक तीसरी बात दिखाई पड़ती है कि मैं सुख-दुख के पार हूं। मैं अलग हूं। सुख आते, दुख जाते, दुख आते, सुख जाते, लेकिन मैं तो खड़ा देखता रहता मैं साक्षी मात्र हूं। इस साक्षी में आनंद का जन्म होता है।
आनंद सुख नहीं है। आनंद सुख से उतना ही भिन्न है जितना दुख से भिन्न है। आनंद को तुम यह मत समझना कि महासुख। कि बहुत-बहुत सुख जोड़ दिए तो आनंद बन जाएगा। आनंद का कोई संबंध सुख से नहीं है। आनंद उस चित्त-दशा का नाम है जहां तुमने सुख और दुख दोनों की सचाई पहचान ली और तुम दोनों से अलग हो गए। आनंद स्वभाव है। सुख-दुख आते हैं, आनंद है। सुख-दुख घटते हैं, आनंद सदा से है। जिस दिन भी तुम समतुल हो जाओगे उसी दिन आनंद का अनुभव शुरू हो जाएगा। आनंद मौजूद ही है तुम्हारे भीतर; सिर्फ तुम बाहर उलझे हो। कभी दुख में उलझे हो कि दुख न हो; कभी सुख में उलझे हो कि जरा ज्यादा देर रह जाए; तो तुम भीतर लौट कर नहीं देख पाते।
और जिसको यह दिखाई पड़ गया कि मैं आनंद हूं, उसके लिए समय मिट जाता है। सुख में लगता है, क्षण में गया। दुख लगता है खूब टिकता है। बीत जाने पर अज्ञानी को लगता है सुख खूब था, दुख बिल्कुल नहीं था। ज्ञानी को पता चलता है, न तो सुख-दुख है, न समय है। कालातीत समय-शून्य अवस्था उपलब्ध होती है। न कुछ अतीत है, न कुछ वर्तमान है, न कुछ भविष्य है, सब ठहरा हुआ है। सब थिर है, अचल है। जिस दिन अपने भीतर की अचलता का अनुभव होता है उसी दिन ठहर जाता है। तो ज्ञानी को समय ही मिट जाता है।

चौथा प्रश्नः काम की अनुभूति होती है, प्रेम की अनुभूति भी होती है लेकिन भक्ति-रस की अनुभूति कैसे होती है?

काम की अनुभूति का अर्थ होता है, तुम्हारा तादात्म्य अभी शरीर से है। तुम सोचते हो मैं शरीर हूं। मैं शरीर हूं तो काम की अनुभूति होती है। मैं शरीर हूं तो दूसरे का शरीर मुझे मिले। शरीर शरीर की मांग करता है। तो काम

की अनुभूति होती है। जो लोग सिर्फ इतना ही मानते हैं कि मैं शरीर हूं, उन्हें प्रेम की अनुभूति भी नहीं होती।
नास्तिक को, भौतिकवादी को, चार्वाकवादी को, प्रेम की अनुभूति भी नहीं होती। फ्रायड तो कहता है कि प्रेम कुछ भी नहीं है, बस काम का ही विकार है। प्रेम की भी कोई अनुभूति नहीं है। जो मानता कि मनुष्य शरीर पर ही समाप्त है, उसके पार, इसके भीतर कुछ है ही नहीं उसे प्रेम की अनुभूति भी कैसे होगी? बस काम ही की अनुभूति हो सकती है।
चार्वाक ने कहा है, जरा भी फिकर न करें पाप की या पुण्य की; और जरा भी चिंता न करें कर्मफलों की, क्योंकि आत्मा तो है ही नहीं। न तो कोई आएगा लौट कर, न कोई फल लेने वाला बचेगा। ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत। अगर ऋण लेकर भी घी पीने को मिले तो छोड़ें ना, पी लें। इसकी भी फिकर न करें कि चुकाना है, क्या चुकाना है, किसको चुकाना है! और इससे डरें नहीं कि मरने के बाद कोई कयामत होगी, कोई परमात्मा होगा। न कोई परमात्मा है, न कोई पूछने वाला है। ऋण लेकर भी घी पी लें। चोरी करके भी अपनी कामवासना को तृप्त कर लें। किसी भी भांति हो, येन केन प्रकारेण। किसी भी विधि से हो, अपने भोग को सिद्ध करें। तो जिसने मान रखा है कि मैं शरीर हूं उसे तो प्रेम की भी अनुभूति नहीं होती। मैं तुम्हें इसलिए यह कह रहा हूं ताकि तुम्हें पता चल जाए कि तुम्हारी मान्यता से अंतर पड़ता है। तुमने पूछा है, काम की अनुभूति होती है, और प्रेम की भी अनुभूति होती है। क्योंकि दो बातें तुम मानते हो। एक तो तुम मानते हो कि मैं शरीर हूं और एक तुम मानते हो कि मैं मन हूं। तो प्रेम की अनुभूति होती है। अगर तुम्हारे जीवन में तीसरी बात की प्रतीति भी उठ आए कि मैं आत्मा हूं तो भक्ति की अनुभूति होनी शुरू होगी, उसके पहले नहीं होगी।
ये तीन तल है--शरीर यानी काम, मन यानी प्रेम, आत्मा यानी भक्ति। तो जब
तक तुम शरीर ही मानोगे तब तक काम ही काम रहेगा। जब तुम थोड़े शरीर से ऊपर उठोगे, मन को भी स्वीकार करोगे तो फिर प्रेम की किरणें उठेंगी। जब तुम मन के भी पार उठोगे और आत्मा को स्वीकार करोगे तो--तो ही केवल भक्ति-रस का स्वाद आएगा।
तुम्हारा प्रश्न ईमानदारी का है। ऐसा ही हो रहा है। अधिक लोगों को काम की ही अनुभूति होती है, प्रेम की भी नहीं होती। थोड़े से लोगों को प्रेम की अनुभूति होती है। और विरले लोगों को भक्ति की अनुभूति होती है। भक्ति कामवासना का आमूल रूपांतरण है। प्रेम में कामवासना थोड़ी सी बदलती है, बहुत थोड़ी सी बदलती है। बहुत ज्यादा नहीं, थोड़ी बदलाहट होती है। लेकिन फिर फिर वापस कामवासना में गिर जाती है ऊर्जा। लेकिन थोड़ी बदलाहट होती है। भक्ति में आमूल बदलाहट हो जाती है। जड़ों से बदलाहट हो जाती है। फिर गिरने का उपाय नहीं रह जाता है। जो भक्ति में पहुंच गया है फिर उसके जीवन में कामवासना नहीं रह जाती। जो कामवासना में है उसके जीवन में भक्ति नहीं हो सकती। प्रेम दोनों के बीच का सेतु है, दोनों को जोड़ता है।
तो तुम घबड़ाना मत, अगर प्रेम की अनुभूति होती है तो तुम ठीक रास्ते पर हो। सेतु तक तो पहुंच गए हो। एक किनारे काम है। दूसरे किनारे भक्ति है। बीच में यह सेतु है, यह पुल है प्रेम का। तुम इसमें मध्य में आकर खड़े हो गए हो। थोड़ी चेष्टा करो तो भक्ति की धारा बहेगी।
क्या चेष्टा करो जिससे भक्ति की धारा बहे? तुमने देखा? चौदह साल तक बच्चा बड़ा होता है तब तक काम की धारा नहीं बहती। क्योंकि अभी उसका काम पुष्ट नहीं है। अभी काम ऊर्जा तैयार नहीं है। चौदह वर्ष की उम्र में अचानक काम ऊर्जा पकेगी और एक विस्फोट होगा। चौदह वर्ष तक लड़के लड़कियों के साथ खेलना भी पसंद नहीं करते। कोई लड़का खेलता भी हो लड़कियों के साथ तो कहते हैं कि तू लड़की है क्या?
मैंने सुना, एक घर में एक आठ साल के बच्चे ने, मां से नाराज हो गया और अपने को जाकर बाथरूम में बंद कर लिया भीतर से। लाख मां ने सिर पटका, चिल्लाई, रोई, डांटा, समझाया, बुझाया, फुसलाया की, रिश्वत देने की बात की, मगर वह गुपचुप खड़ा ही रह गया अंदर। वह बोले ही नहीं। तब तो मां घबड़ाई। पति परदेस गए। वह और मुश्किल में पड़ी। पड़ोसियों को बुला लिया। पड़ोसी भी... जब

देखा लड़के ने कि पड़ोसी भी आ गया तो उसको और मजा आया होगा। वह बिल्कुल ही सन्नाटा बांध कर खड़ा हो गया। वह बिल्कुल ध्यानी हो गया। वे दरवाजा पीटें मगर वह बोले ही नहीं। तो और घबड़ाहट बढ़ने लगी कि श्वास चल रही है इसकी कि नहीं! जिंदा है कि मर गया? हुआ क्या? सब उसकी मां को डांटने लगे कि ऐसा थोड़े ही व्यवहार करना चाहिए! उसने कहाः कुछ खास व्यवहार नहीं किया। जैसा रोज का व्यवहार है... किसी बात पर नाराज हो गई। इतना बिगड़ जाएगा यह तो सोचा नहीं।
कोई उपाय न देख कर किसी ने सलाह दी कि अब तो एक ही रास्ता है कि आग बुझाने वालों को खबर करो। उनको पता रहता है कैसे दरवाजा तोड़ें, या ऊपर से उतरें या क्या करें, या खिड़की से जाएं। तो आग बुझाने वालों को खबर की वे आए। उनके प्रधान ने आकर पूछा, आग कहां लगी है? महिला ने कहाः आग कहीं भी नहीं लगी। आप क्षमा करें, मगर मामला यह है। यह बच्चा अंदर हमें पता ही नहीं चल रहा कि जीवित है, या बेहोश हो गया, या मूर्च्छित हो गया या क्या हुआ। बोलता ही नहीं है, न आवाज जवाब देता है।
उसने कहाः कोई फिकर नहीं, मैं अभी देखता हूं। वह जाकर अंदर पहुंचा। दरवाजा खटखटाया। और कहाः लड़की बाहर निकल। वह लड़का बोलाः कौन कह रहा है मुझसे लड़की? अभी तक बोला ही नहीं था वह। जल्दी से दरवाजा खोल कर बाहर आ गया। उसने कहा किसने मुझसे लड़की कहा? मैं लड़का हूं।
चौदह साल की उम्र तक तो लड़के लड़कियों के साथ खेलने में भी डरते हैं, संकोच भी करते हैं। और बात ही फिजूल लगती है। लड़कों को लड़कों में रस होता है। लड़कियों को लड़कियों में रस होता है। अभी काम-ऊर्जा पकी नहीं।
अगर आठ साल का बच्चा तुमसे पूछे कि काम का संबंध कैसा होता है। तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। कैसे समझाओगे? तुम मुझसे पूछ रहे हो भक्ति का रस कैसा होता है? वैसा ही मुश्किल में तुम मुझे डाल रहे हो। आठ साल के बच्चे को कैसे समझाओगे कि संभोग का रस कैसा होता है? समझाओगे भी तो समझा न पाओगे। कहोगे भी तो खुद भी समझोगे साथ-साथ कि यह बात बेकार की कह रहा हूं, यह इस तक पहुंचेगी नहीं। अनुभव ही अनुभव को समझ पाता है। तुम उससे कहोगे, रुक, थोड़ा ठहर। जरा बड़ा हो जा, खुद ही जान लेगा। यह तो संयोग--सौभाग्य है, चौदह साल में सभी काम की दृष्टि से प्रौढ़ हो जाते हैं, लेकिन भक्ति की दृष्टि से तो बहुत कम लोग प्रौढ़ होते हैं। पूरी जिंदगी निकल जाती है। होना तो नहीं चाहिए। दुर्भाग्य है।
चौदह साल की उम्र में काम-ऊर्जा परिपक्व होती है और पहली दफा कामवासना उठती है। लड़के लड़कियों में उत्सुक होने लगते हैं, लड़कियां लड़कों में उत्सुक होने लगती हैं। अब उनकी पुरानी दोस्तियां ढीली पड़ने लगती हैं-- लड़कों से लड़कों की, लड़कियों से लड़कियों की। एक नया रस पैदा होता है विपरीत में। जिसमें कल तक कोई रस नहीं था, जिससे कल तक बचे थे, आज उसमें ही रस जगता है। आज उसमें ही सारे जीवन का सुख मालूम होता है। इसीलिए चौदह साल के पहले जो दोस्ती बन गई, बन गई। उसके बाद फिर दोस्तियां नहीं बनतीं। बचपन की दोस्ती टिकती है। चौदह साल के बाद जो दोस्तियां बनती हैं, बस कामचलाऊ होती हैं। बचपन की दोस्ती बात ही और है। बचपन की दोस्ती तो ऐसी भी होती है कि अगर बचपन का दोस्त तुम्हारे घर आ जाए तो तुम्हारी पत्नी ईर्ष्या करती है क्योंकि वह उससे पहले तुम्हारे जीवन में आया था और उससे गहरी उसकी जड़ें गई हैं। बचपन के दोस्त पत्नियां पसंद नहीं करतीं। बचपन की सहेलियां को पति भी पसंद नहीं करते। क्योंकि उनसे भी पहले कोई, यह बात जरा कष्ट देती है, अहंकार को चोट पहुंचाती है।
लेकिन चौदह साल के बाद फिर दोस्ती नहीं बनती। क्योंकि अब एक नई दुनिया शुरू हो गई। अब कामचलाऊ क्लब की दोस्ती होगी, बाजार की दोस्ती होगी, दुकान की दोस्ती होगी, मगर कामचलाऊ। इसलिए तो तुम कहते हो बचपन की दोस्ती फिर क्यों नहीं बनती? अब एक नया प्रयोग शुरू हुआ जीवन में। अब स्त्री की पुरुष से दोस्ती बनेगी, स्त्री की पुरुष से। पुरुष की स्त्री से दोस्ती बनेगी। विजातीय लिंग में रस शुरू हुआ। अगर यह गति ठीक से बढ़ती रहे तो एक दिन प्रेम का भी जन्म होता है--लेकिन अगर ठीक से बढ़ती रहे। अक्सर ऐसा हो नहीं पाता।

अगर तुम किसी स्त्री के प्रेम में बहुत गहरे उतर गए, उसकी वासना में बहुत गहरे उतर गए तो आज नहीं कल उसकी देह के साथ-साथ उसके भीतर के चैतन्य की भी थोड़ी तो झलक मिलनी शुरू होगी। तो धीरे-धीरे काम प्रेम में रूपांतरित होता है। इसलिए जिन लोगों ने भी मनुष्य को समझने की कोशिश की उन सब ने यह कहा है कि अगर एक ही व्यक्ति से काम के संबंध ज्यादा देर तक रह जाएं तो अच्छा। नहीं तो प्रेम पैदा ही नहीं हो पाएगा कभी। इसलिए पश्चिम में प्रेम खो रहा है। दो-तीन साल में स्त्री बदल ली, दो तीन साल में पुरुष बदल लिया। तो ऐसे ही हो गया जैसे आदमी कार बदल लेता है। नया मॉडल आया तो कार बदल ली। तो प्रेम का रोपा जम ही नहीं पाएगा। प्रेम के रोपे के जमने के लिए थोड़ा समय चाहिए, थोड़ी अवधि चाहिए। पश्चिम से प्रेम खो रहा है हालांकि प्रेम की बहुत बातचीत हो रही है। अक्सर ऐसा होता है कि जो चीज खो जाती है उसकी खूब बातचीत होती है। फिर बातचीत ही रह जाती है। बातचीत ही इसीलिए होती है कि चीज खो गई। जब चीज होती है तो कौन बात करता है? जब चीज खो जाती है तो लोग बात करते हैं। ऐसे ही जैसे तुम्हारा एक दांत टूट जाए तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। जब तक था तब तक कभी नहीं जाती थी। अब नहीं है, वहीं-वहीं जाती है-- चौबीस घंटे। तुम हजार बार हटा लेते हो। इधर तुम जरा भूले कि जीभ वहां गई। खाली जगह खलती है। पश्चिम में प्रेम की चर्चा हो रही है। बड़ी किताबें लिखी जाती हैं, बड़े विवाद, बड़ा विचार, बड़े वैज्ञानिक परीक्षण। दांत टूट गया है, जीभ वहीं-वहीं जाती है। प्रेम खो गया है। अब सिर्फ बातचीत रह गई है। प्रेम के लिए जरूरी है कि काम का संबंध एक अवधि तक गहरा हो। एक स्त्री,
एक पुरुष का संबंध खूब गहराई में जाए। इतनी गहराई में जाए कि धीरे-धीरे वह एक-दूसरे के शरीर को छूने की बजाय एक-दूसरे के मन को छूने लगें। मन गहरे में है, उतनी गहराई के लिए थोड़ा समय चाहिए। प्रेम मौसमी फूल नहीं है। काम तो मौसमी फूल है। डाल दिया, छह सप्ताह में फूल आ जाएंगे; मगर बाकी छह सप्ताह में चले भी जाएंगे। तीन चार महीने की जिंदगी ही है। जल्दी खिल आएंगे, जल्दी मुरझा भी जाएंगे। लेकिन अगर तुम्हें कोई वृक्ष लगाना हो जो आकाश छूता हो, चांद-तारों से बात करता हो तो छह सप्ताह में नहीं लगते ऐसे वृक्ष। वर्षों लगते हैं, पीढ़ियां लगती हैं। समय बीतता। अवधि चाहिए।
तो अगर काम का संबंध गहरा हो जाए, इतना गहरा हो जाए कि तुम्हें अपनी पत्नी की देह स्मरण ही न रहे, पत्नी को तुम्हारी देह स्मरण न रहे तो धीरे- धीरे प्रेम की झलकें, प्रेम झलक मारना शुरू करेगा। अगर ठीक से सब चलता रहे तो मेरे हिसाब में अट्ठाइस साल की उम्र में प्रेम की पहली झलक मिलती है। जैसे चौदह साल की उम्र में काम की पहली झलक मिलती है। चौदह साल अगर कामवासना का संबंध बड़ी निष्ठा से, पूजा से, तांत्रिक-भाव से--सिर्फ काम-भोग से नहीं बल्कि एक गहन जीवन के प्रयोग की भांति चले तो अट्ठाइस वर्ष के करीब कहीं झलक मिलनी शुरू होती है प्रेम की। पहली दफा प्रेम का अवतरण होता है। पहली दफा तुम्हें लगता है कि देह मूल्यवान नहीं रही, देह गौण हो गई। और अगर यह न हो जाए अट्ठाइस साल की उम्र में तो अट्ठाइस साल की उम्र के करीब तलाक आना निश्चित है क्योंकि शरीर से तो चुक गए तुम। अगर प्रेम का संबंध जुड़ गया तो ठीक है, शरीर से तो चुक गए। अब यह शरीर तो देख लिया चौदह साल तक। अब इसमें कुछ रस नहीं रहा। अगर नया संबंध गहरे तल पर बन गया तो ही विवाह टिकेगा, अन्यथा तुम नई पत्नी खोजोगे, नया पति खोजोगे, जिससे फिर से शरीर का रस शुरू हो। लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि तुम फिर जिस दिन नई पत्नी खोजी उस दिन तुम फिर चौदह साल की उम्र में गिर गए। इसलिए अमरीकन आदमी में तुम पाओगे प्रौढ़ता की कमी। वह बचकाना लगता है, अप्रौढ़ लगता है। बूढ़ा भी हो जाए तो बचकाना लगता है, कुछ बात कम लगती है। जैसे कुछ बुद्धिमत्ता पैदा नहीं होती। क्या कारण होगा?
पैंसठ साल की एक स्त्री ने मुझे कुछ दिन पहले पूछा कि मैं यहां आई हुई हूं, तीन महीने हो गए, और कोई पुरुष यहां मुझसे प्रेम करता ही नहीं। तो मैं वापस चली। पैंसठ साल... ! वह प्रसन्न नहीं थी यहां क्योंकि कोई पुरुष उसको प्रेम नहीं करता। पश्चिम में उसे प्रेम करने वाले मिल जाएंगे। पूरब में मुश्किल होगी। क्योंकि पश्चिम में जो पैंसठ साल के हो गए हैं, सत्तर साल के हो गए हैं, उनकी भी मानसिक उम्र चौदह साल से ऊपर नहीं गई है। वे मिल

जाएंगे। पश्चिम में बूढ़ों के लिए जो स्थान बनाए जाते हैं--वृद्धाश्रम जैसी चीजें, वहां खूब प्रेम चलता है। बूढ़े अस्सी साल के बूढ़े प्रेम में पड़ जाते हैं। ज्यादा कुछ अब कर भी न सकेंगे।
मैंने सुना है, एक बूढ़े आदमी ने नब्बे साल की उम्र में शादी कर ली। पचासी साल की स्त्री, नब्बे साल का बूढ़ा, शादी कर ली। पहली रात सुहागरात! बूढ़े ने बुढ़िया का हाथ पकड़ा, खूब दबाया। फिर दोनों बड़े मग्न होकर सो गए।
दूसरी रात उतना नहीं दबाया। बूढ़े ही... ! बस थोड़ा सा दबाया, सो गए। तीसरी रात जब बूढ़ा दबाने लगा तो बुढ़िया ने कहाः मेरे सिर में दर्द है; और करवट लेकर सो गई। नब्बे साल की उम्र में कामवासना होगी तो इसी तरह की मूढ़ता होगी। होनी स्वाभाविक है क्योंकि अप्राकृतिक है यह घटना।
अगर जीवन का विकास ठीक से चले तो अट्ठाइस साल की उम्र में प्रेम का स्वर पहली दफा सुनाई देगा। जिसके साथ चौदह साल तुम रहे हो, जिसके शरीर के साथ तुम्हारा शरीर हिल-मिल गया, एक हो गया, जिसके शरीर की वीणा तुम्हारे शरीर की वीणा से लयबद्ध हो गई, दो देहें अब दो देहें जैसी नहीं रह गई। अब दोनों देहों के बीच एक सेतु बन गया है। अब पहली दफा समझ में आएगा कि दूसरा एक प्राणवान मन है। देह गौण हो जाएगी, मन महत्वपूर्ण हो जाएगा।
तो पति-पत्नी अगर सच में एक-दूसरे के प्रेम में हों, तो एक-दूसरे के मन
की उन्हें समझ आनी शुरू हो जाती है। पति कहता भी नहीं और पत्नी समझ लेती है कि उसके मन में क्या है। पत्नी कहती भी नहीं और पति समझ लेता है कि उसके मन में क्या है। ऐसी बात न आ जाए तो समझना कि अभी तुम पति-पत्नी हुए ही नहीं। अभी असली बात नहीं घटी। एक-दूसरे के भीतर बात उठती है। और दूसरा समझ लेता है। एक तरह की विशिष्ट टेलीपैथी शुरू हो जाती है। विचारों का संप्रेषण शुरू हो जाता है। पति उदास है तो पत्नी को धोखा नहीं दे पाता। सारी दुनिया को धोखा दे ले, उसकी मुस्कुराहट सब जगह उसके लिए सुविधा बना देती है लेकिन पत्नी को वह मुस्कुराएगा तो भी पत्नी जानती है कि आज तुम्हारी मुस्कुराहट में उदासी है। कुछ बात है, तुम कहो। पत्नी पति को धोखा नहीं दे पाती। जिस दिन पति पत्नी एक-दूसरे को धोखा भी देना चाहें, छिपाना भी चाहें और न छिपा पाएं, दूसरे तक बात पहुंच ही जाए, संक्रमण हो ही जाए, उस दिन समझना कि प्रेम हुआ।
तो मैं नहीं जानता जिन्होंने प्रश्न पूछा है उन्होंने प्रेम को जाना
है या नहीं। उन्होंने कहा तो मैं मान लेता हूं कि जाना होगा। लेकिन प्रेम को जानना भी दुरूह है--दुरूह हो गया है। और अगर प्रेम फिर चौदह साल तक साथ चल जाए तो करीब बयालीस साल की उम्र के पास भक्ति-रस पैदा होता है। चौदह साल कामवासना का गहरा संबंध, प्रेम की तरंग को उठाता है, चौदह साल का दो मनों के बीच गहरा संबंध आत्मा की तरंग को उठाता है, भक्ति-रस शुरू होता है।
यह कुछ लकीर के फकीर मत बन जाना कि मैं कहता हूं कि बयालीस तो बयालीस। सिर्फ काम के लिए कह रहा हूं ताकि तुम्हारी समझ में आ जाए। पैंतालीस हुआ तो चलेगा, अड़तालीस हुआ तो चलेगा। मरने के एक दिन पहले भी अगर भक्ति रस हो जाए तो भी चलेगा। मगर वह भी नहीं हो पाता। अकसर लोग कामवासना में ही उलझे रह जाते हैं। कुछ लोग जो कामवासना से उठने में सौभाग्यशाली हैं, वे फिर भी प्रेम में पड़े रह जाते हैं। बहुत कम लोगों के जीवन में हरिभक्ति पैदा होती है।
‘अब तुम मुझसे पूछते हो कि भक्ति-रस की अनुभूति कैसे होती है?’
अगर तुम्हें प्रेम का अनुभव हुआ है--तुम कहते हो मैं मान लेता हूं--तो
अब इस प्रेम के अनुभव में गहरे उतरो। अब इस प्रेम को जीयो, इसकी सर्वांगीणता में जीयो। इस प्रेम में बाधाएं खड़ी न करो। छोटी-छोटी झंझटें, छोटी-छोटी बातें, छोटे-छोटे उपद्रव खड़े मत करो। सारी बाधाएं हटा दो। अब इस प्रेम को पूरा तरंगित होने दो। यही तरंग बड़ी होते-होते... काम की तरंग बड़ी होकर प्रेम बन जाती है, प्रेम की तरंग बड़ी होकर भक्ति बन जाती है।
इसलिए तो मैं कहता हूं, किसी को संसार छोड़ कर भागने की जरूरत नहीं है। इसी संसार में परमात्मा छिपा है। जैसे दूध को तुम दही बना लेते हो। दही दूध में छिपा था। फिर दही से तुम मक्खन निकाल लेते। मक्खन भी दही में छिपा

था। ऐसा ही मामला है। कामवासना यानी दूध। इसे जमाया तो दही बनता है-- प्रेम। फिर दही को मथा तो नवनीत--भक्ति।
प्रेम को मथो। प्रेम को खूब मथो। अहर्निश मथो। और भूल कर भी मत सोचना
कि परमात्मा तुम्हारी पत्नी या पति के विपरीत है। परमात्मा का आगमन तुम्हारे प्रेम के द्वार से ही होगा। इसलिए मैं संसार के जरा भी विरोध में नहीं। अपने संन्यासियों को कहता हूं, कहीं भाग कर मत जाना, नहीं तो चूक जाओगे। यहीं है। यहीं ठीक से समझो। दूध से घबड़ा मत जाना, नहीं तो दही नहीं जमेगा। और दही को फेंक मत देना कि खट्टा है, नहीं तो नवनीत न निकाल पाओगे।
नवनीत छिपा है, उसे खोजना है।
दो शरीर का संबंध काम।
दो मनों का संबंध प्रेम।
दो आत्माओं का संबंध भक्ति।
स्वभावतः दो शरीर का संबंध क्षणभंगुर होगा! दो शरीर इतने स्थूल हैं,
एक क्षण को भी करीब आ जाते हैं यह भी चमत्कार है। दो मनों का संबंध थोड़ा स्थाई होगा। शरीर से ज्यादा स्थाई होगा, ज्यादा सुखदायी होगा, ज्यादा रसपूर्ण होगा, ज्यादा तृप्ति लाएगा। लेकिन फिर भी दो मन अलग-अलग हैं।
दो आत्माएं जब मिलती हैं तो क्रांति घटती है, क्योंकि दो आत्माएं वस्तुतः दो नहीं हैं। आत्मा तो एक ही है संसार में। मेरी आत्मा अलग और तुम्हारी आत्मा अलग, ऐसा नहीं है। मेरा शरीर अलग, तुम्हारा शरीर अलग--सच, लेकिन मेरी आत्मा और तुम्हारी आत्मा अलग-अलग नहीं है। मेरा शरीर और तुम्हारा शरीर बिल्कुल अलग-अलग, मेरा मन और तुम्हारा मन खूब मिला-जुला, और मेरी आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक।
तो अगर एक आत्मा से भी तुम्हारा पूरा भक्ति का संबंध बन जाए, पत्नी में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ जाए और पति में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ जाए... वही तो अर्थ था पुराने दिनों में, जब हम कहते थे पति में परमात्मा। चूक इतनी ही हो गई थी कि वह अधूरी बात थी। पत्नी में भी परमात्मा कहा जाना चाहिए। जिस दिन तुम्हें अपने प्रिय में परमात्मा दिखाई पड़ जाए उस दिन तुम आंख खोल कर देखोगे और तुम्हें परमात्मा सब तरफ दिखाई पड़ेगा। पौधों में, पक्षियों में, पशुओं में, पहाड़ों में, सब तरफ परमात्मा दिखाई पड़ेगा आंख जब जान लेती है एक दफा भक्ति के रस को, आंख पर जब सावन उतर आता है भक्ति का, तो सब तरफ सावन दिखाई पड़ने लगता है।

आखिरी प्रश्नः आपमें असंभव संभव हुआ है, अघट घटित हुआ है। और आपको समझना भी असंभव सा ही लगता है। ऐसा क्यों?

समझना चाहोगे तो असंभव हो जाएगा। समझने की चाह में ही दूरी पैदा हो जाती है। तुम प्रेम से सुनो, समझने इत्यादि की फिकर छोड़ो। तुम सिर्फ प्रेम से सुनो और समझ जाओगे। समझने चले तो चूक जाओगे।
क्यों? क्योंकि जब तुम समझने बैठते हो तब तुम बुद्धि को बीच में ले आते हो। तुम पूरे वक्त सजग होकर देख रहे हो कि कौन सी बात ठीक, कौन सी बात ठीक नहीं। कौन सी बात ठीक नहीं। कौन सी बात तर्क के अनुकूल, कौन सी बात तर्क के प्रतिकूल। कौन सी बात मेरे शास्त्र के अनुकूल, कौन सी बात मेरे शास्त्र के प्रतिकूल। तुम इस सब उधेड़बुन में पड़ जाते हो। वह शास्त्र की धूल तुम्हारे भीतर अंधड़ होकर उठने लगती है। तुम मुझे तो भूल ही जाते हो। उस अंधड़ में तुम्हें कभी-कभी कुछ-कुछ सुनाई पड़ता है। कुछ का कुछ भी सुनाई पड़ता है। और फिर तुम व्याख्या कर लेते हो। फिर तुम अपने हाथ से उलझन खड़ी कर लेते हो।
ये बातें समझने की नहीं हैं। ये बातें प्रेम में उतरने की हैं। तुम सिर्फ सुनो। क्या फिकर समझने की? समझे तो ठीक, न समझे तो ठीक। यह समझने का हिसाब ही अलग रख दो। यह समझने की दुकानदारी की हटा दो। तुम सिर्फ सुन लो। ऐसे सुन लो, जैसे कोई झरने का कल-कल नाद सुनता है। वहां तो तुम समझने के लिए नहीं जाते। वहां तो तुम नहीं कहते कि यह झरना कुछ समझ में नहीं आ रहा। कल-कल-कल तो हो रही है, लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा है। समझने को है क्या?

झरना है कल-कल है, और क्या समझना है, इसमें डूबो। जब पक्षी गुन-गुन करते तब तुम समझते तो नहीं। मगर कहते हो, बड़ा रस आता है। जब कोई वीणा बजाता है तो तुम क्या समझते हो? लेकिन डोलने लगते हो। ये बातें डोलने की हैं, समझने की नहीं।
मैंने सुना है, लखनऊ का एक पागल नवाब, उसके दरबार में एक संगीतज्ञ आया, बड़ा वीणावादक। उस संगीतज्ञ ने कहा कि बजाऊंगा तो वीणा लेकिन मेरी एक शर्त है। मैं इस बिना शर्त के कभी बजाता ही नहीं। मुझे सुनते वक्त कोई सिर न हिले। नवाब तो पागल था। शायद वाजिद अली हो या कोई और हो, मगर पक्का लखनवी था। उसने कहाः तुम फिकर मत करो। सिर हिला कि उसी वक्त उतरवा देंगे। तलवारें तैयार रखेंगे।
डुंडी पिटवा दी लखनऊ में कि जो लोग सुनने आएं, वे सोच कर आएं। अगर सिर हिला तो गर्दन उतार दी जाएगी। संगीतज्ञ का बड़ा नाम था और लखनऊ के रसिक लोग बड़े दिन से प्रतीक्षा करते थे कि कब यह शुभ घड़ी आएगी कि इसको सुनेंगे। लेकिन यह बड़ी झंझट खड़ी हो गई। लाखों लोग आए होते। दूर-दूर से लोग आए होते सुनने, लेकिन मुश्किल से हजार एक लोग आए। क्योंकि यह बड़ा खतरनाक था। हजार में भी ऐसे ही लोग आए होंगे, जो बिल्कुल हर हालत में अपने पर काबू रख सकें। जिनको यम-नियम आसन इत्यादि का पता होगा कि बिल्कुल मार कर सिद्धासन बैठ जाएंगे आंख बंद करके। हिलेंगे ही नहीं तो फिर क्या होगा?
आ गए, बैठ तो गए लोग लेकिन सब तैयार होकर बैठ गए। सबने अपने शरीर का अकड़ा लिया कि कभी भूल-चूक में भी हिल जाओ, तो यह पागल नवाब है। फिर यह भी नहीं तय करेगा कि भूल-चूक से कोई मक्खी आ गई थी इसलिए शरीर हिल गया था। यह तो पागल तो पागल। यह सुनेगा नहीं। और उसने चारों तरफ नंगी तलवारें लिए सिपाही खड़े कर दिए। वीणावादक ने वीणा बजाई। कोई दस-पंद्रह मिनट तक तो कोई नहीं हिला, मूर्तियों की तरह लोग बैठे रहे। फिर पांच-सात लोग हिलने लगे, फिर दस-पंद्रह लोग हिले, फिर बीस-पच्चीस लोग हिले, फिर कोई सौ लोग...
नवाब तो घबड़ाने लगा। उसने यह नहीं सोचा था कि कटवाना ही पड़ेगा। मगर अब
तो मामला ऐसा है कि कटवाना ही पड़ेगा। अब तो अपना वचन दे दिया है। नवाब तो सुन ही न पाए। वह तो बार-बार यही देखता रहे कि और मरे। कितने लोग गए! सिपाही भी डरने लगे, खड़े थे आस-पास, कि यह नाहक की हत्या होगी। भले-अच्छे लोग हिल रहे हैं। इन पागलों को हुआ क्या है? लेकिन जैसे-जैसे लोग हिलने लगे, संगीतज्ञ डूबने लगा। फिर तो कोई दो-तीन सौ लोग डुबकी लगाने लगे, डोलने लगे, जैसे सांप बीन की आवाज सुन कर डोलने लगे।
आधी रात संगीतज्ञ ने वीणा बंद की। सम्राट ने कहा कि पकड़ लिए जाएं वे लोग। कोई तीन, साढ़े तीन सौ लोग पकड़ लिए गए। संगीतज्ञ ने कहाः बाकी को जाने दें, इनको रोक लें। बाकी चले गए। नवाब ने पूछाः इनका क्या करना? इनको कटवा दें? संगीतज्ञ ने कहाः नहीं, यही तो मेरे सुनने वाले हैं। अब इनको असली सुनाऊंगा। नकली गए। वे जो आसन इत्यादि लगा कर बैठे थे उनको संगीत का कुछ पता नहीं। यही...
पर सम्राट ने कहाः इसके पहले कि तुम इन्हें सुनाओ कुछ और, मैं इनसे पूछना चाहता हूं कि पागलो, हिले क्यों? तुम्हें जिंदगी का कोई लगाव नहीं है? तो उन लोगों ने कहाः हम हिले नहीं। हमें तो पता नहीं। जब तक हमें अपना पता था तब तक तो हम बिल्कुल सम्हले बैठे रहे। कौन मरना चाहता है? जब हम लापता हो गए, जब वीणा ही रह गई, जब हम बचे ही नहीं तो फिर कौन रोके कौन सम्हाले? सम्हालने वाला ही विदा हो गया। तो हम यह नहीं कहते हैं कि हम हिले। हम तो नहीं हिले। हम तो जब तक थे तब तक नहीं हिले। फिर जब हम रहे ही नहीं तो फिर हिलना हुआ। परमात्मा ने हिलाया। संगीत ने हिलाया। हम नहीं हिले। हमारा कोई कसूर नहीं है। और संगीतज्ञ ने कहाः ये ठीक कहते हैं। इसलिए इनको चुना है। यही मेरे सुनने वाले हैं, यही मेरे समझने वाले हैं। यही मैं तुमसे कहता हूं। समझना हो तो बुद्धि को एक तरफ रखो और समझ जाओगे। लेकिन अगर बुद्धि को बीच में लिया और समझने की बहुत खींचातानी की तो चूक जाओगे। ये कुछ बातें ऐसी हैं कि हिलोगे तो समझोगे। ये बातें कुछ ऐसी हैं कि डोलोगे तो समझोगे? ये बातें कुछ ऐसी हैं कि नाचोगे तो समझोगे। ये बातें बुद्धि की पकड़ में आने वाली बातें नहीं हैं। ये पागलों की,

दीवानों की बातें हैं। तुम मेरी दीवानगी में सम्मिलित हो जाओ, तुम अगर मेरे पागलपन में हाथ बटाओ तो तो जरूर समझ में आएगी।
तो इस विरोधाभास को मैं फिर से दोहरा दूं--समझना चाहा, समझ में न आएंगी। हिलने की हिम्मत रखी तो कोई तुम्हें समझने से नहीं रोक सकता। यह समझ में आने ही वाली हैं। मगर यह समझ हृदय की है, भाव की है, प्राण की है; बुद्धि की नहीं, विचार की नहीं, भक्ति की है। रस निष्पन्न होती है। रस की निष्पत्ति से आती है, तर्क से नहीं। डोलो। इस मन-मयूर को नाचने दो, जरूर समझोगे।

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
पांचवां प्रवचन

अनहद में बिसराम

रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक।।
धरती गगन पवन नहीं पानी पावक चंद न सूर।
रात-दिवस की गम नहीं जहां ब्रह्म रहा भरपूर।।
पाप-पुण्य सुख-दुख नहीं जहां कोई कर्म न काल।
जन दरिया जहां पड़त है हीरों की टकसाल।।
जीव जात से बीछड़ा धर पंचतत्त को भेख।
दरिया निज घर आइया पाया ब्रह्म अलेख।।
आंखों से दीखै नहीं सब्द न पावै जान।
मन बुद्धि तहं पहुंचे नहीं कौन कहै सेलान।।
माया तहां न संचरै जहां ब्रह्म का खेल।
जन दरिया कैसे बने रवि-रजनी का मेल।।
जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता हैं राम।
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम।

इन मस्त अखड़ियों को कमल कह गया हूं मैं
महसूस कर रहा हूं गजल कह गया हूं
प्रेम में सिक्त शब्द अनायास ही काव्य बन जाते हैं। जहां प्रेम है वहां गीत का जन्म अनिवार्य है। एक तो ऐसा काव्य है जो शब्द, भाषा, मात्रा और छंद पर निर्भर होता है और एक ऐसा काव्य है, जो केवल हृदय के प्रेम पर निर्भर होता है।
संतों का काव्य हृदय का काव्य है। हो सकता है मात्राएं ठीक न हों। मात्राओं की चिंता की भी नहीं गई है। हो सकता है छंद के नियमों का पालन न हुआ हो। संत किसी भी नियम का पालन करना जानते ही नहीं। एक ही नियम है उनका, एक ही पहचान है उनकी, वह प्रेम है। दरिया के ये शब्द बड़े गहन अनुभव से निकले हैं। इनके काव्य-गुण पर मत जाना। इनकी अनुभूति में डुबकी लगाना। जान कर, डूब कर कहे गए शब्द हैं।
सौ मैं निन्यानबे काव्य तो कल्पना ही होते हैं। सुंदर हों तब भी कल्पना ही होते हैं। और कल्पना में कैसा सौंदर्य? सौंदर्य तो केवल सत्य का ही अंग है। जहां सत्य है वहां सौंदर्य है। कल्पना में तो केवल खिलौने हैं, धोखे हैं। बच्चों को उलझाए रखने के लिए ठीक, लेकिन प्रौढ़ों के लिए वहां कोई संदेश नहीं है। एक ही सौंदर्य है और वह सौंदर्य है--जब सत्य आंखों में झलकता है। तो फिर जो बोलो वही सुंदर हो जाता है, जो करो वही सुंदर हो जाता है।
तो दरिया के शब्द तो टूटे-फूटे हैं। इनके शब्दों पर मत जाना। शब्दों में गए तो चूक जाओगे। दरिया तो तुतलाते से बोल रहे हैं। क्योंकि वह बात इतनी बड़ी है, उसे बड़ी बात को जो भी कहेगा वही तुतलाएगा। उस बड़ी बात को बिना झिझक तो केवल वे ही कह सकते हैं, जिन्होंने जाना नहीं। जाना नहीं उनको झिझक का पता ही नहीं। चीन में एक कहावत है कि केवल नासमझ ही बिना झिझके बोल सकता है, समझदार तो बहुत झिझकेगा क्योंकि हर शब्द उसके सत्य को छोटा करता है। जो उसने देखा है, जो उसने जाना है, शब्द उसे प्रकट नहीं कर पाते। इसलिए बड़ी झिझक है जानने वाले में।
ये दरिया के शब्द परम अनुभव के शब्द हैं।
रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक।।
मन हमारा जौहरी है। जौहरी इसलिए कि हर चीज का मूल्य आंकता रहता है। जो देखता है, तत्क्षण निर्णय करता है, सुंदर है कि असुंदर, शुभ है कि अशुभ, करणीय कि अकरणीय, सत्य कि झूठ! मन का सारा काम ही निर्णायक का काम है। अगर निर्णय न छूटा तो मन के पार गए नहीं। इसलिए जीसस ने कहा है जज ई नाट।

निर्णय ही मत करना। निर्णय किया कि मन के कब्जे में आ गए। वह जौहरी! वह बैठा भीतर। वह कसता रहता है अपने कसने के पत्थर पर हर चीज को, कि सोना है कि नहीं है। हीरा है कि नहीं है। मन तो एक तराजू है जो तोलता रहता है, तोलता रहता है। इसे तुम जांचो।
गुलाब का फूल देखा, देख भी नहीं पाए ठीक से कि फौरन मन कह देता है-- सुंदर! अभी देखना भी पूरा नहीं हुआ कि शब्द बन जाता है। कहीं गंदगी का ढेर लगा देखा, अभी गंध, दुर्गंध नासापुटों तक पहुंची ही थी कि मन तत्क्षण कह देता है कि कुरूप, गंदगी--बचो!
मन के निर्णय करने की यह जो आदत है, यह तुम्हें जीवन के सत्य को देखने
ही नहीं देती। मन अपनी पुरानी बातें ही दोहराए चला जाता है, थोपे चला जाता है। किसी नये तथ्य का आविष्कार नहीं हो पाता क्योंकि मन तो है अतीत। मन तो है तुम्हारा पिछले अनुभव का जोड़-तोड़। मन तो है तुमने जो अब तक जाना, सुना, समझा। उस सोचे, सुने, समझे को ही मन नये तथ्यों पर आरोपित करता जाता है। जब तुम किसी गुलाब के फूल को देख कर कहते हो सुंदर! तो तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो मैंने जो गुलाब के फूल पहले देखे थे, वे सुंदर थे। उस पुराने अनुभव के आधार पर यह फूल भी सुंदर है। मगर तुम चूक गए। एक बड़ी बात से चूक गए। यह गुलाब का फूल तुमने कभी भी देखा नहीं था, यह बिल्कुल नया है। ऐसा फूल पहले कभी हुआ नहीं, फिर कभी होगा नहीं। हर फूल अद्वितीय है, बेजोड़ है। अतुलनीय है। इसलिए तुम अपनी पुरानी जानकारी को बीच में न लाओ अन्यथा इस फूल से चूक जाओगे। और अगर इस फूल से चूकते हो तो इस बात का सबूत देते हो कि पहले तुमने जो फूल देखे होंगे उनसे भी चूके होगे और आगे तुम जो फूल देखोगे उनसे भी चूकोगे। तुम चूकते ही चले जाओगे। तुम अतीत को बीच में ले आओगे और वर्तमान से छिन्न-भिन्न, तुम्हारा नाता टूट जाएगा। मन निर्णय करता है। मन जौहरी है।
कहते हैं दरियाः रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
लेकिन उस परमात्मा का अनुभव ऐसा अनुभव है कि जौहरी एकदम ठग कर खड़ा रह जाता है। कुछ कह नहीं पाता, सूझता नहीं, बूझता नहीं।
रतन अमोलक... इसलिए उस रतन को, उस परम संपदा को मूल्यातीत कहा है-- अमोलक। मन उसका मूल्य नहीं आंक पाता। मन कह ही नहीं पाता। कुछ। मन एकदम लड़खड़ा जाता है। न कह पाता है सुंदर, न कह पाता शुभ।
इतना भी नहीं कह पाता कि परमात्मा, कि सत्य। मन की सारी कहनी एकदम बंद
हो जाती है। मन गूंगा हो जाता है। गूंगे केरी सरकरा। उस स्वाद के सामने मन बोल ही नहीं पाता।
उसी स्वाद को खोजो जहां मन गूंगा हो जाता है तभी तृप्ति होगी। जहां तक
मन बोलता चला जाता है, जिन-जिन चीजों पर मन लेबल लगा देता है, मूल्य की तख्ती टांग देता है इतने कीमत का है, वहां तक जानना संसार है। जिस क्षण ऐसा कोई अनुभव तुम्हारे भीतर उमगे, ऐसा कोई कमल खिले, ऐसी कोई सुगंध उठे, ऐसे लोक में तुम्हारे पंख तुम्हें ले चलें कि मन एकदम थाक के रह जाए, थका रह जाए, हार के रह जाए... ।
मन हारता ही नहीं। शरीर हार जाता है, मन नहीं हारता। तुम जानते रोज-- दिन भर के थके-मांदे बिस्तर पर पड़े हो शरीर तो थक गया, टूटा जा रहा है, अंग-अंग टूट रहा है, मगर मन है कि चलता जाता है। मन है कि सोचता जाता है। मन नये- नये विचार के पत्ते उगाए चला जाता है। मन थकता ही नहीं। जन्म से लेकर मरने तक मन अनवरत चलता है। मन थकना जानता ही नहीं। शरीर थकता है, नींद की भी जरूरत पड़ती है, मन थकता ही नहीं। मन सदा राजी है काम करने में। मन लगा ही रहता है--सक्रिय। मन कभी निष्क्रिय नहीं होता। जहां मन निष्क्रिय हो जाए, समझना कि आ गया प्रभु का द्वार। वह कसौटी है। वह पहचान है।
कैसे जानोगे कि प्रभु का द्वार आ गया है? प्रभु को पहले तो कभी देखा नहीं, प्रभु का द्वार भी पहले कभी देखा नहीं। प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी? दार्शनिक पूछते रहे हैं सदियों से कि समझ लो कि प्रभु को देखा भी तो पहचानेंगे कैसे कि यही प्रभु हैं? कैसे? क्योंकि पहले देखा हो तो ही पहचान सकते हो। पहचान कैसे होगी? प्रत्यभिज्ञा कैसी होगी?

दरिया सूत्र दे रहे हैं कि कैसे पहचान होगी! मन थक जाए! परमात्मा को तो नहीं जानते हो लेकिन एक बात जानते हो कि मन कभी नहीं थका। हर चीज पर निर्णय लगा दिया था उसने। हर चीज को नाप लिया था। हर चीज तराजू के पलड़े में आ गई थी। वजन तोल लिया था। मूल्य तोल लिया था। हिसाब-किताब लगा लिया था। जहां मन एकदम हिसाब-किताब न लगा पाए, जहां मन का तराजू बड़ा छोटा पड़ जाए, पूरा आकाश तोलने की बात आ जाए; जहां अचानक मन ठिठक जाए, अवरुद्ध हो जाए मन की सतत प्रक्रिया। जहां विचार एकदम शून्य हो जाएं। तुम सोचना भी चाहो और न सोच सको।
सोचना तुम चाहोगे। डरोगे तुम तो। प्रभु द्वार पर खड़ा होगा, सत्य तुम्हें घेरेगा तो तुम बहुत घबड़ा जाओगे। तुम्हारा रोआं-रोआं कांप जाएगा कि यह क्या हो रहा है? इस घड़ी मन धोखा दे रहा है। इस घड़ी में तो मन साथ दे दे। यह घड़ी न चूक जाए। यह अपूर्व घट रहा है और मन कुछ बोलता नहीं। और मन एकदम कहां विलीन हो गया पता नहीं चलता। तुम तो मन को लाना चाहोगे। लेकिन जैसे अंधेरे को प्रकाश के सामने नहीं लाया जा सकता, ऐसे मन को परमात्मा के सामने नहीं लाया जा सकता। मन और परमात्मा साथ-साथ नहीं होते।
यही पहचान है, यही परख है कि पारखी थक जाए। जहां तक पारखी की चलती है वहां तक संसार है। यह तो बड़ी अनूठी परिभाषा हुई। जहां तक मन चलता वहां तक संसार है। मन की गति संसार है। जहां मन अगति में पहुंच जाता वहीं परमात्मा है।
इससे दूसरी बात भी निकलती है कि अगर तुम किसी तरह मन को अगति में पहुंचा दो तो परमात्मा के सामने खड़े हो जाओगे। यह केवल परिभाषा ही नहीं हुई, इससे विधि भी निकल आती है। इसलिए समस्त ध्यान, समस्त भक्ति है क्या? एक ही प्रक्रिया है। कि किसी तरह मन रुक जाए, अवरुद्ध हो जाए। यह मन का सतत पागलपन, यह मन की गंगा जो बहती ही चली जाती है, बहती ही चली जाती है, रुकना जानती ही नहीं, यह एक क्षण को भी ठिठक जाए, ठहर जाए। तो या तो परमात्मा सामने हो तो मन ठिठकता है या मन ठिठक जाए तो परमात्मा सामने आ जाता है। तो इसमें परिभाषा भी हो गई कि कैसे पहचानोगे और इसमें विधि भी आ गई कि कैसे उस तक पहुंचोगे!
रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक।।
वहां कीमत ही नहीं। कीमत क्या परमात्मा की? कैसे उसकी कीमत आंको? एक
ही है, तो एक ही की कीमत तो नहीं आंकी जा सकती। दो हों तो कीमत आंकी जा सकती है। दो हीरे हों तो तुम कह सकते हो। यह बड़ा, यह छोटा; यह साधारण हीरा, यह कोहिनूर। दो हों तो अंकन हो सकता। तुलना हो सकती है। तो अंकन हो सकता है छोटे-बड़े का। कौन सा हीरा बिल्कुल शुद्ध हीरा, और कौन से हीरे में थोड़ी खोट। तो परख हो सकती है। मगर एक ही है तो कोई परख का उपाय नहीं।
दरिया तहं कीमत नहीं...
फिर कैसे कीमत जानो? फिर कैसे कीमत लगाओ?
परमात्मा की कोई कीमत नहीं है इसलिए मन को रुक ही जाना पड़ता है। मन बाजार में खूब चलता है। बाजार में हर चीज की कीमत है। जीवन में जहां भी मन उसके पास आता है जो अमूल्य है, अमोलक है, वहीं मन लड़खड़ाता है। जहां तक कीमत है वहां तक मन ठीक से चलता है। कीमत पर मन का पूरा कब्जा है। इसलिए बाजार में मन जैसा प्रसन्न होता है, वैसा मंदिर में नहीं होता। बैठते हो मंदिर में, मन सोचता बाजार की है। क्यों? आखिर मन का ऐसा बाजार से क्या लेना-देना है? मन की गति बाजार में है। वहां उसे पूरी सुविधा है। हर चीज की कीमत है। हर चीज पर लेबल लगा है।
मैं एक बार एक बड़े चित्रकार की चित्र-प्रदर्शनी देखने गया। मेरे साथ
एक मित्र थे; दुकानदार हैं, हर चीज को कीमत से तोलते हैं। मैं तो चित्र देखता था, वे चित्रों पर लगी हुई कीमत देखते थे। थोड़ी देर में मुझे लगा कि वे चित्र देख ही नहीं रहे हैं। पांच सौ रुपया, हजार रुपया, पंदरह सौ रुपया! जहां पांच हजार, वहां जरा ठिठक कर देख लें। जहां पांच सौ लिखा हो वहां से आगे बढ़ जाएं। मैंने उनसे पूछा कि तुम कर क्या रहे हो? तुम चित्र देखने आए कि कीमत देखने आए। तुम अपनी दुकानदारी कहीं बंद करोगे कि नहीं बंद करोगे!

तुम सब जगह दुकानदारी ही चलाओगे? उनके लिए एक ही बात का मूल्य है। मूल्य का ही बस मूल्य है।
आदमी को भी ऐसा आदमी देखेगा तो वह देखता है किसका कितना मूल्य है। यह आदमी प्रधानमंत्री है, यह आदमी चपरासी है, तो दो कौड़ी का। चपरासी को तो देखता ही नहीं। राष्ट्रपति को भर देखता है। राष्ट्रपति भी कल राष्ट्रपति नहीं रह जाएंगे तो यह आदमी नहीं देखेगा। चपरासी कल राष्ट्रपति हो जाएगा तो यह आदमी देखेगा। यह आदमी आदमी को देखता ही नहीं। इसकी आंखों में आदमी की कोई परख ही नहीं इस आदमी को तो सिर्फ कीमत। हर बात में कीमत।
तो देखते हो न! किसी आदमी से मिले, ट्रेन में मिलना हो गया किसी से, तुम
जो बातें पूछते हो... एकाध दो बात तुम पहले पूछते हो, फिर जल्दी से असली बात पूछते हो--कितनी तनख्वाह मिलती है? कैसा धंधा चलता है? असली बात! एकाध दो इधर-उधर की पूछीं कि कहां रहते हो, कहां से आते हैं? मगर यह तो गौण है। एकदम से कीमत पूछो तो जरा बेहूदगी लगती है।
पश्चिम में लोग किसी से भी नहीं पूछते कि कितनी तनख्वाह मिलती है। वह ज्यादा शिष्टाचार है। कीमत की बात ही पूछना अशिष्ट है। हो सकता है बेचारा आदमी प्रायमरी स्कूल में मास्टर हो और कहना पड़े कि सौ रुपये मिलते हैं। और इसको भी दीनता का अनुभव हो। और इसको ही हो ऐसा नहीं; जैसे यह कहेगा कि सौ रुपये मिलते हैं, स्कूल में मास्टर हूं, तुम्हारे लिए यह आदमी बेमूल्य हो गया। अब आगे इससे बात नहीं चलेगी। बात ही खत्म हो गई। यह भी कोई आदमी है! स्कूल में मास्टर है। इससे तो कुछ भी होता! पुलिस इंस्पेक्टर होता तो भी बेहतर था। कुछ तो जान होती! जैसे ही तुम पूछते हो किसी आदमी से कि कितनी तनख्वाह मिलती है, वैसे ही तुम यह पूछ रहे हो कि कितनी कीमत! कितना मूल्य? इस जिंदगी में भी तुम कई बार ऐसी चीज के करीब आ जाते हो, जिसका मूल्य नहीं होता। लेकिन तब तुम उससे चूक जाते हो। क्योंकि तुम वह तो परख ही नहीं तुम्हारे मन में। अगर तुम किसी संतपुरुष के पास आ जाओ तो तुम नहीं परख पाओगे। क्योंकि वहां तुम्हारा मूल्य-निर्धारक मन गति नहीं करता।
अगर सुबह सूरज उगता हो और एक सुंदर सुबह चारों तरफ फैलती जाती हो और प्राची पर लाली हो और आकाश बड़े गीत गाता हो, बड़े रंगों में नाचता हो, तुम नहीं देखोगे। उसका कोई मूल्य नहीं है, देखना क्या है? मैंने उन मित्र को कहा जो मेरे साथ चित्र की प्रदर्शनी देखने गए थे, मैंने कहा कि तुम सुबह कभी सूरज को उगते देखते? वहां तो कोई लेबल नहीं लगा होता, वहां तुम्हें बड़ी मुश्किल होगी। जब कीमत ही नहीं तो क्या देखना? कभी रात तारों टंकी आकाश के रहस्यों को देखते हो? वहां कोई कीमत नहीं लगी है, तुम क्या देखोगे? उन्होंने मुझसे कहा--ईमानदार आदमी हैं--रास्ते में लौटते वक्त कहा, आप ठीक ही याद दिलाया। मैं कभी सुबह नहीं देखा और मैंने कभी रात भी नहीं देखी। शायद यही कारण होगा कि मैं देखता ही उतनी चीज हूं जिसकी कीमत हो।
दरिया तहं कीमत नहीं...
तो अभ्यास करो थोड़ा अमोलक को देखने का। यहां भी कोई कीमत नहीं है। जब तुम गुलाब का फूल देखते हो, कहते हो कि चार आने में मिल जाता है बाजार में, तो तुम चूक गए। आदमी एक भी गुलाब का फूल पैदा कर पाया है, जो तुम कीमत आंक रहे हो? चार आने देने से तुम एक गुलाब का फूल पैदा कर पाओगे? चार करोड़ रुपये से भी तुम एक गुलाब का फूल पैदा नहीं कर पाओगे। सारी मनुष्य-जाति की क्षमता लगा कर भी तुम एक गुलाब का फूल पैदा नहीं कर पाओगे। आदमी चांद पर पहुंच गया है, यह एक बात है। अभी घास का एक तिनका भी पैदा नहीं कर पाया है, इसे मत भूल जाना। आदमी ने जो भी सफलता पाई है, सब मुर्दा चीजों पर है। अभी जीवन पर उसकी एक भी सफलता नहीं; होगी भी कभी नहीं। क्योंकि घास का एक तिनका भी पैदा नहीं होगा।
जीवन अमोलक है। गुलाब के फूल की क्या कीमत? कैसी कीमत? कैसे आंकते हो? अगर गौर से देखोगे तो पाओगे, गुलाब के फूल में अमोलक बैठा है। चांद निकला, इसकी क्या कोई कीमत हो सकती है? एक बच्चा खिलखिला कर हंसा, इस खिलखिलाहट की कोई कीमत हो सकती है? करोड़ रुपये देकर भी किसी बच्चे को तुम खिलखिलाने के लिए राजी नहीं कर सकते। और वह अगर खिलखिला भी दे, तो यह खिलखिलाहट न होगी। वह सिर्फ बाजार की होगी, अभिनेता की होगी। रुपये के लोभ में खिलखिला

देगा लेकिन ओंठ से गहरी न होगी। होंठ पर रंगी होगी, हृदय से न आएगी। प्राणों की उत्फुल्लता न होगी। उसमें परमात्मा का वास न होगा।
किसी की आंख से एक आंसू टपकते देखा है? उस आंसू की क्या कीमत? उस एक छोटे से आंसू को आदमी पैदा नहीं कर सकता। उस एक छोटे से आंसू में सारे महाकाव्य छिपे हैं। उस एक छोटे से आंसू में मनुष्य की सारी जीवन-व्यथा छिपी हो सकती है। मनुष्य के सारे जीवन का आनंद, अहोभाव छिपा हो सकता है। उस एक छोटे से आंसू में आदमी की सारी बेबसी छिपी हो सकती है। उस एक छोटे से आंसू में आदमी की सारी प्रार्थना छिपी हो सकती है। और एक आदमी की ही नहीं, सारी मनुष्यता की प्रसन्नता और प्रार्थना और दुख एक छोटे से आंसू में छुपा हो सकता है।
नहीं, हमारी आदत खराब हो गई है। हम हर चीज में मूल्य खोजते हैं। और जहां हमें मूल्य नहीं दिखता, हम देखते ही नहीं। हम सोचते हैं, यहां क्या रखा है? कुछ मूल्य तो होना चाहिए।
मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे पूछते हैं, ध्यान तो करेंगे, लाभ क्या होगा? लाभ। ध्यान से भी लाभ चाहते हैं। तनख्वाह में बढ़ोतरी हो जाएगी, कि दुकान ज्यादा ठीक से चलेगी... लाभ क्या होगा? तुम मंदिर में भी बैंक भी भाषा चलाना चाहते हो? तुम पूछते हो कि ध्यान तो करेंगे लेकिन इससे बैंक-बैलेंस बढ़ेगा कि नहीं बढ़ेगा? तुम रुपये में ध्यान को भी कूतना चाहते हो? एक सम्राट महावीर के पास पहुंच गया था। बड़ा सम्राट था। उसने सब पा लिया जो पाने योग्य था। लेकिन एक बात उसे खटकती थी--ध्यान। कभी-कभी उसका वजीर उसको बड़ी चोट पहुंचा देता था। वह कहता कि महाराज और सब तो ठीक है, ध्यान! धन तो पा लिया, सो ठीक है। धन तो कोई भी पा लेता है। ऐरे-गैरे नत्थू- खैरे पा लेते हैं; इसमें क्या रखा है? ध्यान? उसे बड़ी चोट लगती थी कि ध्यान क्या बला है? फिर उसने खबर सुनी कि महावीर का आना हुआ है। परम ध्यानी का आगमन हुआ है, तो वह गया। उसने महावीर से कहाः महाराज, इतनी कृपा करो ध्यान दे दो। जो भी कीमत हो ले लो, सब चुकाने को राजी हूं। यह वजीर मेरी छाती में तीर छेदता रहता है। मैं उससे यह भी नहीं पूछ सकता कि ध्यान क्या है? क्योंकि मैं यह भी स्वीकार नहीं कर सकता कि मुझे पता नहीं कि ध्यान क्या है! मेरा अहंकार बड़ा है। अब आपसे निवेदन करता हूं, ध्यान दे दो। किसी भी तरह ध्यान दे दो। और जो तुम कहो, मैं देने को राजी हूं। पूरा राज्य भी देने को राजी हूं। मैंने अपनी जिंदगी में हार जानी नहीं। जो चीज पानी चाही, पाकर रहा। अब यह ध्यान पाकर रहूंगा। सब लगाने को राजी हूं।
महावीर हंसे। इस पागल को कोई कैसे समझाए कि कोई ऐसी चीजें भी हैं जीवन में जो खरीदी नहीं जा सकतीं। जिनका कोई मूल्य नहीं होता। तुम सारा राज्य भी दे दो तो भी ध्यान का एक तिनका भी नहीं खरीद सकते। ध्यान की एक बूंद भी नहीं खरीद सकते। मगर इस पर दया भी आई। उन्होंने कहा ऐसा करो, मेरे पास तो राज्य था, वह मैं छोड़ चुका। अब राज्य की मुझे कोई चाहत नहीं है। तुम्हारे ही नगर में मेरा एक श्रावक, मेरा एक भक्त है। वह ध्यान को उपलब्ध हो गया है। तुम उससे मांग लो। वह गरीब आदमी है, शायद बेचने को राजी हो जाए। मेरे तो बेचने का कोई कारण नहीं। क्योंकि तुम जो राज्य दोगे वह तो मैं छोड़ ही चुका हूं, पहले ही छोड़ चुका हूं। इसलिए मैं तो बेचने वाला नहीं।
महावीर ने खूब मजाक किया। मैं तो बेचूंगा नहीं। इस आदमी से यह भी उन्होंने नहीं कहा कि यह बेचने की बात ही नहीं। इस आदमी को ठीक से शिक्षा देना चाहते थे। ठीक जगह से शिक्षा देना चाहते थे। तो उन्होंने कहा कि जल्दी से नाम बता दें। अगर मेरे ही राज्य में रहता है, मेरी राजधानी में रहता है तब तो कोई बात नहीं। अभी जाकर ले लूंगा। तत्क्षण उसने उस आदमी को बुलवाया और कहा, तुझे जो लेना हो ले ले, लेकिन यह ध्यान दे दे। वह आदमी हंसने लगा और उसने कहा, उन्होंने मजाक किया, आप समझे नहीं। मैं गरीब हूं तो आप अगर चाहें तो मेरी जान ले लें, प्राण ले लें, जीवन ले लें, मैं तैयार हूं। लेकिन ध्यान? आप बात क्या कर रहे हैं? मैं दूं भी कैसे? देना भी चाहूं तो दूं कैसे? ध्यान कोई चीज तो नहीं जो खरीदी जा सके। सम्राट ने कहाः देख, कीमत कुछ भी हो, छिपा मत। चालबाजियां मत कर, कीमत बोल। जितनी मांगेगा उससे दोगुनी दूंगा। मगर कीमत की बात कर।

कैसे कोई इन पागलों को समझाए कि कुछ चीजें हैं जिनकी कोई कीमत नहीं होती! प्रेम की, ध्यान की, कोई कीमत होती है? इन्हें कोई खरीद सकता है? तुम अपने जीवन में अगर अमोलक को देखना शुरू कर दो तो तुम तैयारी करोगे परमात्मा के पास जाने की। अमोलक की सीढ़ियां चढ़कर ही कोई परमात्मा के पास पहुंचता है।
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक।
चूंकि कीमत कोई भी नहीं थी वहां, मन कुछ भी न सोच पाया। उनमन भया अवाक।
मन एकदम से एक क्षण में अमन हो गया। मन था अभी तक; मन यानी मनन, मन यानी सोच-विचार। मनन की प्रक्रिया का नाम मन। जो सोचता जाता है, मनन करता जाता है, उस प्रक्रिया का नाम--मन।
... उनमन भया अवाक।
वह जो मन अब तक सोचता ही रहता था और जिसको चेष्टा करके भी रोका न जा सका था कि रुक जाए। जो रुकने को राजी न होता था, जो सदा मनन ही में लगा रहता था। जिसकी मनन की धारा जागते-सोते चलती ही रहती थी। अनवरत जो धारा बहती थी। वह अचानक ठहर गई। उनमन भया अवाक। और मन अ-मन हो गया।
यह ‘उनमन’ शब्द ठीक वही है जो झेन फकीर जिसको ‘नो-माइंड’ कहते हैं। जिसको कबीर ने ‘अ-मनी-दशा’ कहा है। उनमन भया अवाक। एकदम, एक क्षण में, एक आघात में, धारा अवरुद्ध हो गई, मनन ठहर गया। मनन ठहर गया तो मन ठहर गया।
जहां मनन न रहा, वहां मन न रहा। उनमन भया अवाक। और हो गया अवाक। आश्चर्य-मुग्ध पहली बार।
अवाक शब्द बहुत बहुमूल्य है। उसे ठीक से उस पर चिंतन करना, मनन करना, ध्यान करना। अवाक शब्द का अर्थ हैः ऐसा आश्चर्य कि हठात तुम ठगे रह गए।
अवाक! बोलती बंद हो गई। वाक खो गया, वाणी खो गई। बोलना चाहो तो बोल न सको।
हिलना चाहो तो हिल न सको। ऐसा विराट आश्चर्य सामने खड़ा हो गया। उस आश्चर्य के सामने खड़े होने से जैसे श्वास तक बंद हो गई। अवाक! एक क्षण को सब स्तब्ध हो गया, मौन हो गया।
रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक।।
इस सूत्र में दोनों ही बातें हैं। परमात्मा सामने आ जाए तो ऐसा होता है। ऐसा हो जाए तो परमात्मा सामने आ जाता है। तो तुम थोड़ा आश्चर्य खोजना शुरू करो।
मेरे पास लोग आते हैं, वह कहते हैं परमात्मा कैसे खोजें? मैं कहता हूं तुम परमात्मा को तो छोड़ो। परमात्मा पर बड़ी कृपा होगी तुम्हारी। तुम परमात्मा को तो मत खोजो। क्योंकि तुम जिस परमात्मा को खोज रहे हो, वह है ही नहीं। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारे मन की ही धारणा है। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारे मन की तस्वीर है। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारे मन का ही खेल और जाल और जंजाल है। तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे मन की ही धारा को अनवरत रखेगा। तुम्हारा परमात्मा बहुत परमात्मा नहीं है। तुम्हारा परमात्मा यानी हिंदू का, तुम्हारा परमात्मा यानी मुसलमान का। तुम्हारा परमात्मा परमात्मा नहीं है। तुम्हारा परमात्मा परमात्मा हो भी कैसे सकता है? अभी तुमने जाना ही नहीं है। अभी अज्ञान में जो तुमने प्रतिमा अपने मन में संजो ली है, वह अज्ञान की ही प्रक्रिया है। जानोगे तो सारी प्रतिमाएं गिर जाएंगी।
तो तुम परमात्मा को तो छोड़ दो। तुम मुझसे कोई दूसरी बात पूछो। तुम यह पूछो कि हम आश्चर्य-अवाक कैसे हों? यह बड़ी और बात है। परमात्मा को खोजने में क्या करोगे? अगर राम तुम्हारी धारणा में बैठे हैं, धनुर्धारी राम! तो तुम धनुर्धारी राम को खोजते फिरोगे। वो कहीं तुम्हें मिलेंगे नहीं। और अगर कभी मिल जाएं तो सावधान रहना। क्योंकि वह तुम्हारी कल्पना का ही फैलाव होगा। अगर बैठे ही रहे, बैठे ही रहे, सिर फोड़ते रहे दीवालों से और चिल्लाते रहे राम-राम-राम--और धनुर्धारी राम की कल्पना करते रहे कि अब आओ, अब प्रगटो; अगर बहुत ही शोरगुल मचाया तो तुम्हारा मन तुम्हीं को सांत्वना देने के लिए धनुर्धारी राम की प्रतिमा को निर्मित कर लेगा। वह तुम्हारा ही प्रक्षेपण है। यह राम किसी काम के नहीं। इनको धक्का दो तो गिर जाएंगे।

इनका धनुषवाण इत्यादि किसी काम का नहीं। रामलीला वाला धनुषबाण है। बस, सब ढोंग है। तुम्हारे मन का ही जाल है।
ऐसा हुआ एक रामलीला में कि जो आदमी रावण का पार्ट कर रहा था, मैंनेजर
से नाराज हो गया। तो उसने कहा, देखेंगे, वक्त पर मजा चखा देंगे। वक्त पर उसने मजा चखा दिया। जब सीता के वरण की कहानी आई और धनुष रखा गया और लंका से दूतों ने आकर चिल्लाया कि रावण! हे रावण! तू यहां क्या कर रहा है, लंका में आग लगी हुई है। उसने कहाः लगी रहने दो। इस बार लंका जले तो जले जाए, मगर सीता को लेकर जाएंगे। बड़ी घबड़ाहट फैल गई। क्योंकि उसको जाना चाहिए नियम से। और वह सीता ही ले जाए तो रामलीला खत्म। और वह तो किसी की सुने ही नहीं और लोग तो ठगे ही रह गए कि अब करना क्या है? जनक जी भी बहुत घबड़ाए। रामचंद्र जी भी इधर-उधर बगलें झांकने लगे। लक्ष्मण को भी पसीना आ गया कि यह तो मुश्किल मामला हो गया। किसी को समझ में न आए कि क्या करें! इस बीच वह उठा और उसने धनुषवाण तोड़ दिया। अब धनुषबाण क्या था, वह जो रामलीला का धनुषबाण था, कोई असली का तो था नहीं! उसने तोड़ दिया और कहा जनक से कि निकाल सीता कहां है? उसने सारी रामलीला खराब कर दी। वह तो जनक बूढ़ा आदमी था पुराना खिलाड़ी था। बहुत दिनों से यही काम करता था। उसने कहा कि ठहर। भृत्यो! मालूम होता है तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुष उठा लाए। असली धनुष लाओ, पागलो! तब परदा गिराया, किसी तरह रावण को धक्का देकर बाहर निकाला। फिर असली धनुष लाया गया, फिर नकली रावण लाया गया। दूसरा रावण पकड़ना पड़ा क्योंकि यह रावण तो काम न आए।
तुम्हारी कल्पना में जो राम खड़े होंगे, वह तुम्हारा ही खेल है। वे तुम्हारी ही धारणाएं हैं। या तुम चाहो तो कृष्ण के भक्त हो तो कृष्ण खड़े हो जाएंगे, बांसुरी बजाएंगे। और अगर तुम अगर क्राइस्ट के भक्त हो तो क्राइस्ट सूली पर लटके खड़े हो जाएंगे। और उनके हाथों से तुम्हें खून बहता हुआ मालूम पड़ेगा। मगर उस खून के धब्बे तुम्हारे कपड़ों पर भी नहीं पड़ेंगे, हृदय की तो बात और। वह तो सिर्फ कल्पना में ही रहेगा।
परमात्मा का सच्चा खोजी यह नहीं पूछता कि मैं परमात्मा को कैसे खोजूं? क्योंकि वह यह कहेगा परमात्मा तो मुझे मालूम ही नहीं है, खोजने की बात कैसे उठाऊं? यह तो बात ही बेईमानी की हो गई। परमात्मा ही मालूम होता तो खोजता क्यों? परमात्मा मालूम नहीं है इसलिए तो खोजना चाहता हूं। इसलिए मैं यह कैसे यह बात शुरू करूं कि परमात्मा को खोजना है?
वइ इतना ही कहेगा, जीवन अज्ञात है। इस अज्ञात जीवन में मैं कैसे प्रवेश करूं? कैसे जानूं, जो है, उसे कैसे जानूं? जो है, उसका कैसे साक्षात्कार हो? वह जो है को नाम भी नहीं देगा--कृष्ण, राम, क्राइस्ट। नहीं, वह कहेगा, जो है। यह जो चारों तरफ विराट फैला है, यह क्या है? इसे मैं कैसे जानूं? इसका द्वार कहां है?
आश्चर्य द्वार है। इसलिए छोटे बच्चे परमात्मा के ज्यादा निकट होते हैं। क्योंकि उनकी आंखें अब भी आश्चर्य-विमुग्ध होती हैं। स्त्रियां पुरुषों के बजाय परमात्मा के ज्यादा निकट होती हैं। उनकी आंखें आश्चर्य से इतनी रिक्त नहीं होतीं, जितनी पुरुषों की होती हैं। पंडित की बजाय अज्ञानी परमात्मा के ज्यादा निकट होते हैं। क्योंकि उनकी आंखें अभी भी रहस्यपूरित होती हैं। अभी भी सब रहस्य समाप्त नहीं हो गया। पंडित ने तो सब जान लिया। वह तो कहता है, मुझे सब मालूम है। जिसे सब मालूम है उसे कुछ भी मालूम नहीं होगा। इसलिए पांडित्य से बड़ा पाप नहीं है। क्योंकि पांडित्य आश्चर्य को नष्ट कर देता है। और आश्चर्य द्वार है। अगर तुम्हें यह भ्रांति पैदा हो गई कि मुझे सब मालूम है, क्योंकि मैं वेद जानता, कुरान जानता, बाइबिल जानता, तो तुम परमात्मा से चूकते जाओगे। वेद-कुरान रखे बैठे रहना। जैसे वेद-कुरान मुर्दा हैं ऐसे ही तुम भी उनके पास बैठे-बैठे मुर्दा हो जाओगे।
परमात्मा को खोजना हो तो यह जो जीवन तुम्हारे चारों तरफ फैला है, यह
जो पक्षियों के कंठ में, यह जो वृक्षों की शाखाओं में, यह जो फूलों के रंग में, यह जो सागर की तरंगों में, यह जो पहाड़ों की ऊंचाइयों में, यह जो घाटियों की गहराइयों में, यह जो चारों तरफ विस्तीर्ण है, यह जो विराट...

चारों तरफ से तुम्हें घेरा है। बाहर और तुम्हारे भीतर भी जो बैठा है, इसको... कैसे हम संबंध जोड़ें इससे?
आश्चर्य से संबंध जुड़ता है। इसलिए आश्चर्य-विमुग्धता धार्मिक आदमी
का द्वार है। आश्चर्य-विमुग्धता! आश्चर्य की आंखों से देखो, ज्ञान की आंखों से नहीं। निर्दोष आश्चर्य से देखो तो तुम्हें हर जगह परमात्मा के चरण-चिह्न मालूम पड़ेंगे। छोटी-छोटी चीजें रहस्यपूर्ण हो जाएंगी। रहस्यपूर्ण हैं। सिर्फ तुमने ही मान रखा है कि रहस्यपूर्ण नहीं।
आदमी जानता क्या है? एक भी बात तो जानते नहीं हम। सारी मनुष्यजाति के इतिहास में जो हमने जाना है, वह है क्या? कुछ भी तो जाना नहीं। एक छोटे से वृक्ष के पत्ते का राज भी पता नहीं। बीज कैसे अंकुर बनता है, यह भी पता नहीं। रोटी कैसे जाकर खून बन जाती है, मुर्दा चीज कैसे जीवंत हो जाती है, यह भी पता नहीं। एक छोटा बच्चा मां के पेट में कैसे बढ़ता है, यह भी पता नहीं। एक छोटा सा विचार तुम्हारे भीतर कैसे तरंगित होता है, यह भी पता नहीं है। कुछ भी पता नहीं है।
ज्ञानियों ने कहा है, अज्ञान द्वार है। क्यों? उपनिषद कहते हैं, जो जानता है, जानना कि नहीं जानता। जो नहीं जानता, जानना कि जानता होगा। क्यों? नहीं जानने में ऐसी क्या गुणवत्ता है? नहीं जानने की गुणवत्ता है-- आश्चर्य। क्योंकि जब तुम नहीं जानते, तुम्हें हर चीज पुलक से भर देती है। हर चीज आश्चर्य से भर देती है।
किसी छोटे बच्चे के साथ घूमने गए हो समुद्र के तट पर, या पहाड़ों में? कितने प्रश्न उठाता है छोटा बच्चा! हर चीज--यह देखा मोर, इनके पंखों पर इतने रंग क्यों हैं? यह देखा एक पक्षी को उड़ता और पूछता है मैं क्यों नहीं उड़ सकता? आदमी क्यों नहीं उड़ सकता? बेबूझ सवाल उठाता है। तुम घबड़ाते भी हो। तुम उसे चुप भी करना चाहते हो। तुम कहते हो, चुप हो जा। बड़ा होगा तो सब जान लेगा। तुम्हें भी पता नहीं बड़े होकर। तुम सिर्फ उसे चुप कर रहे हो, ऐसे तुम्हारे पिता ने तुम्हें चुप किया था। और तुम्हें बेचैनी क्यों होती है छोटे बच्चे के प्रश्नों से? बेचैनी इसलिए होती है कि तुम्हें भी उत्तर तो मालूम नहीं। यह बच्चा तुम्हारे ज्ञान को खंडित करता है। यह बच्चा तुम्हारे ज्ञान पर शंका और संदेह उठाता है। यह बच्चा तुम्हारे ज्ञान पर प्रश्न-चिन्ह लगाता है, कि अरे पिता जी! आपको भी पता नहीं कि मोर के पंख पर इतने रंग क्यों हैं? आपको और पता नहीं? यह आपके अहंकार को नीचे घसीट रहा है। यह कह रहा है अरे! तुम भी फिर मेरे ही जैसे हो! जैसा मैं अज्ञानी, वैसे तुम अज्ञानी! नाहक का ढोंग बांधते हो, नाहक जोर-जबरदस्ती दिखलाते हो कि तुम्हें पता है। इसलिए तुम बच्चे से कहते हो कि बड़ा हो जाएगा तुझे भी पता होगा।
बड़े होने से किसी को पता नहीं होता। बड़े होने से एक ही बात हो जाती है
कि बड़े होने पर आदमी अहंकारी हो जाता है और नहीं पता है यह कहने में असमर्थ हो जाता है बस! वह भी कहेगा हां, कि मुझे पता है। अपने बेटों के सामने उसको भी अपनी हिम्मत तो कायम रखनी पड़ेगी। नहीं तो छोटे बच्चे खतरनाक हैं। छोटे बच्चों को परमात्मा खूब सिखा-पढ़ा कर भेजता है कि जिन-जिन का ज्ञान हो उनको डगमगाना। जो-जो अकड़ गए हों ज्ञान में, उनको जरा हिलाना। कहते हैं, बच्चा जब तक नहीं बोलता तब तक परमात्मा के बहुत करीब होता है।
कल मैं एक अनूठी किताब देख रहा था। आइंस्टीन के जीवन पर है। लेखक ने
एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कही है। आइंस्टीन तीन साल का हो गया तब तक बोला नहीं। कई बच्चे देर से बोलते हैं, यह कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन लेखक ने यह बात उसमें उठाई है कि शायद इसीलिए जीवन में वह इतना बड़ा वैज्ञानिक हो सका क्योंकि तीन साल तक चुप रहा, बोला नहीं। वह तीन साल तक आश्चर्यविमुग्ध रहा। वह आश्चर्यविमुग्धता ही उसके भीतर व्यक्तित्व बन गई, उसकी प्रतिभा बन गई।
यह बात मुझे जंची। यह बात ठीक है। यह बात सच है। इसलिए तो महावीर बारह वर्ष तक मौन हो गए जंगल में जाकर। तुम क्या सोचते हो, किसलिए मौन हो गए? मौन होने का मतलब क्या है? मौन होने का अर्थ है? पांडित्य का त्याग। मौन होने का अर्थ है, भाषा का त्याग। भाषा में सारा ज्ञान है। जब भाषा गई तो

ज्ञान गया। इस तरह किसी जैन ने सोचा नहीं कि महावीर मौन क्यों हो गए! मौन होने का मतलब है कि भाषा त्याग दी। भाषा त्याग दी मतलब जो भी जानते थे, वह त्याग दिया। जब जानना त्याग दिया जाता है तो आश्चर्य का आविर्भाव होता है। तो फिर से बालक हो गए। नव जन्म हुआ। द्विज बने। मौन द्विज बनाता है। बारह वर्ष अपूर्व आनंद लिया होगा महावीर ने। बारह वर्ष लंबा समय है। बारह वर्ष में बिल्कुल उन्होंने सारी धूल झाड़ दी। रंजी सास्तर ग्यान की। एकदम निष्कपट, निष्कलुष, निर्दोष बालक की तरह पैदा हुए। उसी निर्दोषता में जाना जाता है। तो जब जाना जाता है तब मन अवाक हो जाता है। तुम अवाक होना सीख जाओ तो तुमने जानने की कला सीख ली।
धरती गगन पवन नहीं पानी पावक चंद न सूर।
रात-दिवस की गम नहीं जहां ब्रह्म रहा भरपूर।।
और कहते हैं दरिया, वहां न तो धरती है, न गगन है, न पानी है, न पवन है, न अग्नि है, न चांद है, न सूरज है। वहां सब भिन्न-भिन्न बातें एक अभिन्न में खो जाती हैं। वहां सारी सीमाएं जो हमने अलग-अलग कर रखी हैं कि यह रही धरती यह रहा आकाश... ।
तुमने कहीं देखी जगह, जहां धरती और आकाश अलग होते हैं? कहां अलग होते हैं? आकाश धरती में समाया है, धरती आकाश में है। अलग कहां है? यहां अलग कुछ है ही नहीं। सभी चीजें जुड़ी हैं। अभी वृक्ष पर एक फल लगा, कल तुम उसका भोजन कर लोगे। अभी जो वृक्ष में था वह कल तुम में हो जाएगा। फिर एक दिन तुम मरोगे। और तुम्हारी लाश जमीन में दबा दी जाएगी। और वृक्ष खड़ा है, राह देख रहा है कि तुमने उसके फल खाए, वह अब तुम्हारे फल खा ले। वह जल्दी से तुम्हारी लाश में से जो-जो पाने योग्य है, चूस लेगा। क्या अलग है? यहां हम जुड़े हैं। मैंने श्वास ली, कहता था मेरी श्वास, कह भी नहीं पाया कि तुम्हारी हो गई। तुमने श्वास ली, अभी तुम ले भी न पाए थे कि बाहर निकल गई; दूसरे की हो गई, पड़ोसी की हो गई। हम जुड़े हैं। यह सारा अस्तित्व एक साथ तरंगित है। यह एक ही सागर है।
धरती गगन पवन नहीं पानी पावक चंद न सूर।
सारे भेद गिर गए। अब तय करना मुश्किल है कि क्या अग्नि है, और क्या वायु है और क्या धरती है और क्या आकाश!
कबीर ने कहा हैः एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आग। यही बात कही है। कबीर अपने ढंग से कहते हैं। कबीर के ढंग बड़े अनूठे हैं, उलटबांसी हैं--एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आग! नदिया में आग लगी! अब नदिया में हमने आग लगी कभी नहीं देखी। किसी ने भी नहीं देखी। नदिया में कहीं आग लगती है? तो कबीर यह कह रहे हैं, जिनका अभी मिलन नहीं होता है, उनको मिलते देखा है।
जिनको कभी मिलते नहीं देखा, उनको मिलते देखा है। जीवन और मृत्यु को साथ नाचते देखा है--एक अंचभा मैंने देखा, नदिया लागी आग।
धरती गगन पवन नहीं पानी पावक चंद न सूर।
रात-दिवस की गम नहीं जहां ब्रह्म रहा भरपूर।।
और जहां ब्रह्म भरपूर है, वहां इतनी भी जगह नहीं है कि रात और दिन का द्वैत भीतर प्रविष्ट हो जाए। दो की वहां जगह नहीं है। रात और दिन प्रतीक हैं दो के, द्वैत के, द्वंद्व के। चाहे जीवन और मृत्यु कहो, चाहे सुख-दुख कहो, चाहे रात-दिन कहो, चाहे सर्दी-गर्मी कहो। दो की वहां कोई गुंजाइश नहीं है। इतनी भी जगह नहीं है दो को कि जरा सी जगह पा जाएं और सरक जाएं भीतर। जहां ब्रह्म रहा भरपूर! जहां ब्रह्म की पूरी वर्षा होती है वहां दो की कोई जगह नहीं। वहां बस एक है।

शबे फुरकत में सदा, मायले बेदाद रहे
मूरित-ए-जुल्मो सितम खस्ता औ बरबाद रहे
इश्क के गम में सदा, बादिल-ए-नाशाद रहे
हालत-ए-रंजो अलम, क्यों न हमें याद रहे
आंख से लख्ते जिगर हमने टपकते देखे
तेरे हर रंग में एक नाज है, रानाई है नक्श हर दिल में तेरे सूरते-ए-इकताई है

देखता हूं जिसे मैं वह तेरा सौदाई है एक आलम तेरे इस हुस्न का सेदाई है जिसपे मोती से पसीने के चमकते देखे मेरे दिल में निहां आतिश-ए-उल्फत तेरी मेरे रग-रग में है पैबस्ता मुहब्बत तेरी मैं समझता हूं अदाएं है कमायत तेरी
मुझ पे रोशन है हकीकत तेरी, ताकत तेरी दिल हजारों तेरी उल्फत में कसकते देखे
साकिया, जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको
मय-ए-गुलरंग के सागर वो पिला दे मुझको
अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे
साकिया, जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको

ओ साकी, मिलन की मदिरा मुझे पिला दे। मिलाप की मदिरा मुझे पिला दे। जहां आलिंगन घटित हो जाए, जहां हम मिलें और एक हो जाएं, ऐसी शराब मुझे पिला दे।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको

जैसे दो प्रेमी किसी प्रेम के गहन क्षण में एक हो जाते हैं--वस्ल! ऐसा
घट जाए। ऐसी बेहोशी मुझे पिला दे। क्योंकि मेरे होश में तो न घटेगा। मेरे होश में तो न घटेगा। मेरे होश में तो मैं दूरी बनाए रखूंगा।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको

यह होश तो महंगा है, यह तू ले ले। यह होश तो मेरी मुश्किल है, यह तू ले ले। इस होश के कारण ही तो मैं अलग-अलग बना हुआ हूं, यह तू ले ले। यह होश की समझदारी मुझसे छीन ले। मुझे बेहोशी की नासमझी दे दे। भक्त ने यही मांगा है सदा, मुझे बेहोशी की नासमझी दे दे। यह समझदारी तू रख। यह तू ही सम्हाल। यह ज्ञान तू सम्हाल। मुझे अज्ञान दे दे। मुझे निर्दोष अज्ञान दे दे।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको
साज को छेड़ कर एक गीत सुना दे मुझको
मय-ए- गुलरंग के सागर वो पिला दे मुझको
रंगीन मदिरा में मुझे डुबा दे
अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे
अगर तुम परमात्मा की महफिल को गौर से देखो तो सब तरफ तुम्हें मदिरा छलकती हुई दिखाई पड़ेगी। सिर्फ आदमी चूका जाता है।
अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे

फूल में उसकी मदिरा है। पक्षियों के कंठ में उसकी मदिरा है। आदमी को छोड़ कर सारा जगत उसकी मदिरा में तल्लीन है। सारा जगत उसके गीत को सुन रहा है, आदकी को छोड़ कर।
आदमी की क्या अड़चन है? आदमी का क्यों ऐसा दुर्भाग्य है? जो सौभाग्य हो सकता था वही दुर्भाग्य बन गया है। सौभाग्य हो सकती थी यह बुद्धि, अगर यह तुम्हें और आश्चर्य की तरफ ले जाती। यह बुद्धि दुर्भाग्य बन गई क्योंकि इसने सारे आश्चर्य को खंडित कर दिया। यह बुद्धि तुम्हें आश्चर्य के द्वार से परमात्मा तक ले जाने का परम राज बन सकती थी। मगर अधिक लोगों के लिए यह बुद्धि ही परमात्मा के और मनुष्य के बीच दीवाल बन गई। यह बुद्धि दुधारी तलवार है। यह तुम्हें बचा भी सकती थी, यह तुम्हें काट भी सकती है। जैसे

छोटे बच्चे के हाथ में कोई तलवार दे दे, खतरा ही होगा, लाभ नहीं होने वाला। ऐसी ही कुछ हालत आदमी के साथ है। अभी तक आदमी बुद्धि का ठीक उपयोग नहीं सीख पाया। बुद्धि से सिर्फ अहंकार को निर्मित करता है। बुद्धि से सिर्फ अकड़ को निर्मित करता है। बुद्धि से और दूर होता जाता है विराट से। बुद्धि से धीरे-धीरे एक छोटा सा संकीर्ण द्वीप बन जाता है। महाद्वीप हो सकता था, मगर वह महाद्वीप होना तो विराट के साथ ही घटता है।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको
साज को छेड़ कर एक गीत सुना दे मुझको
मय-ए-गुलरंग के सागर वो पिला दे मुझको
अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे

जहां ब्रह्म रहा भरपूर। दरिया कहते हैंः अब एक ही बचा, बस ब्रह्म ही बचा है। रात गई, दिन गया, सुख गए, दुख गए, शांति-अशांति गई, अपने-पराए गए, जीवन-मृत्यु गई। अब वहां दो का कोई प्रवेश नहीं, जहां ब्रह्म रहा भरपूर। पाप-पुण्य सुख-दुख नहीं जहां कोई कर्म न काल।
जन दरिया जहां पड़त है हीरों की टकसाल।।
पाप-पुण्य सुख-दुख नहीं। अब कोई द्वंद्व नहीं बचा। न कुछ पाप है, न कुछ पुण्य है।
यह वचन क्रांतिकारी है। क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं कि धार्मिक आदमी पुण्यात्मा! धार्मिक आदमी पुण्यात्मा नहीं, धार्मिक आदमी पुण्य के भी पार है। पुण्यात्मा तो इसी जगत का हिस्सा है। पापी की दुनिया का ही हिस्सा है क्योंकि द्वंद्व का हिस्सा है। पुण्यात्मा, अभी पूरा-पूरा धार्मिक नहीं है। पापी किसे कहते हो? जिसने बुरा किया। पुण्यात्मा किसे कहते हो? जिसने भला किया। बुरे करने की भी अकड़ होती है और भले करने की भी अकड़ होती है। दोनों से अहंकार निर्मित होता है।
सच तो यह है, दुर्भाग्य की बात, मगर सच है, कि अकसर भला करने से ज्यादा अहंकार निर्मित होता है। पापी तो थोड़ा सा संकोच भी करता है, डरता भी है, भयभीत भी होता है, कहीं कोई कांटा चुभता भी है। पुण्यात्मा को तो कोई कांटा नहीं चुभता। उसका अहंकार तो बिल्कुल शिखर पर बैठा होता है। इतने उपवास किए, इतने व्रत किए, इतना दान किया, इतना मंदिर मस्जिद बनाए, अब क्या अड़चन है उसको अहंकार की घोषणा करने में? उसका अहंकार तो सिंहासन पर विराजमान होता है। उसके हाथ में जंजीरें हैं, मगर सोने की। पापी के हाथ में जंजीरें हैं लोहे की। लोहे की जंजीरे तो अखरती हैं क्योंकि जंजीरें मालूम होती हैं। सोने की जंजीरें तो आभूषण मालूम होने लगती हैं। इसलिए लोग सोने की जंजीरों में जिस बुरी तरह जकड़ते हैं, उतनी बुरी तरह लोहे की जंजीरों में नहीं जकड़ते।
तुमने सुना होगा, तुमने पढ़ा होगा। सारे मनुष्य-जाति के इतिहास में ऐसी घटनाएं और कहानियों के उल्लेख हैं। जब कभी-कभी पापी क्षण भर में मुक्त हो गया। लेकिन मैंने बहुत खोजा, मुझे एक ऐसी घटना नहीं मिली जिसमें पुण्यात्मा क्षण भर में मुक्त हो गया हो, मैं बड़ा चकित हुआ। मैं खोजता रहा हूं। सारे पुराण छान डाले कि कभी तो ऐसा हुआ हो जैसे कि वाल्मीकी हुआ। हत्यारा, पानी, खूनी, लुटेरा और वाल्या से एकदम ऋषि वाल्मीकी हो गया। एक क्षण में हो गया?
और अंगुलिमाल हुआ बुद्ध की कथाओं में। महा हत्यारा! नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले थे। और मार ही नहीं डाले थे, उनकी अंगुलियां अपने गले में पहनता था इसलिए नाम अंगुलिमाल पड़ गया था। और एक हजार का व्रत लिए बैठा था कि एक को और मारना है। कोई उसके पास नहीं जाता था। उसकी मां तक डरती थी उसके पास, जाने में क्योंकि वह ऐसा आदमी था कि अगर उसको एक की कमी पड़ रही हो और दूसरा कोई न मिले तो वह मां को मार डाले। यह अंगुलिमाल बुद्ध के मिलन से एक क्षण में रूपांतरित हो गया। एक क्षण में!

लेकिन ऐसी कोई कथा मुझे पुण्यात्मा की न मिली। मैं बड़ा हैरान होता रहा की बात क्या है? कथा लिखने वालों ने पुण्यात्माओं के साथ बड़ी ज्यादती की। मगर कारण है; पुण्यात्मा एक क्षण में मुक्त हो नहीं सकता। उसकी जंजीरें सोने की हैं। वह छोड़ना भी चाहेगा तो एक मन पकड़ना चाहेगा। वह छोड़ते-छोड़ते भी पकड़ता रहेगा। वह आखिरी दम तक उन्हें बचाने की कोशिश करेगा। कोई उपाय हो बचाने का तो बचाले उसका कारागृह महल का कारागृह है, बहुमूल्य है। पापी तो छोड़ने को तैयार ही हो जाता है क्योंकि उसमें कुछ पा ही नहीं रहा, सिवाय दुख के।
लेकिन गौर से देखना, पापी भी अकड़ रखता है अपनी। अगर तुम कभी जेलखाने जाओ, तो तुम्हें पता चले कि वहां लोग अपने-अपने जुर्मों की बड़ी बढ़-चढ़ कर बात करते हैं। जितना नहीं किया उतनी बढ़-चढ़ कर बात करते हैं। जिसने एकाध चोरी की वह कहता है, अरे, हजारों कर चुके! जिसने किसी एकाध को मार डाला, वह कहता, यह तो अपने बाएं हाथ का काम है। जिसको कहो उसको क्षण भर में उड़ा दें। अगर कभी तुम अपराधियों के पास बैठो तो चकित होओगे। वे भी अपने अपराध की खूब बढ़-चढ़ कर बात करते हैं वैसे, जैसे तुम्हारे महात्मा करते हैं अपने पुण्य की बढ़-चढ़ कर बात। हिसाब-किताब वे भी रखते हैं और वह भी खूब बढ़ा-चढ़ा कर रखते हैं।
क्या कारण होगा? अपराधियों के बीच बड़ा अपराधी होने का मजा है। जैसे महात्माओं के बीच बड़ा महात्मा होने का मजा है। बात तो वही है, तर्क तो वही है, गणित तो वही है, तराजू भी वही है, मन वही है। अगर यही होड़ लगी हो कि कौन सबसे बुरा आदमी है तो तुम सबसे ज्यादा बुरे आदमी होना चाहोगे। अगर यह होड़ लग जाए कि कौन सबसे भला आदमी है तो तुम सबसे भले आदमी होना चाहोगे। जो होड़ लग जाए उसी में आदमी पड़ जाता है मगर एक बात हम जीवन भर चेष्टा करते हैं कि मैं कुछ विशिष्ट हूं। मैं कुछ खास हूं, मेरे जैसा कोई और दूसरा नहीं। मैं अद्वितीय हूं। यह जो अहंकार की धारणा है कि मैं अद्वितीय हूं, यही परमात्मा से नहीं मिलने देती। उससे तो वही मिलते हैं, जो झुकते हैं। जो अपने इस मैं को उतार कर रख देते हैं।
पाप-पुण्य सुख-दुख नहीं जहां कोई कर्म न काल।
जन दरिया जहां पड़त है हीरों की टकसाल।।
दरिया कहते हैंः वहां न तो कोई पाप है, न कोई पुण्य है। परमात्मा को देखा, न वहां कोई पाप देखा, न कोई पुण्य देखा। न कोई सुख देखा, न दुख देखा। उसी अवस्था में आनंद झरता है, जहां सुख-दुख नहीं होते। तुम्हारे शब्दकोशों में आनंद का अर्थ लिखा हैः सुख, महासुख, खूब सुख, बहुत सुख! मगर सुख और आनंद में कोई ऐसा भेद नहीं है कि सुख छोटा सुख और आनंद बड़ा सुख। भेद परिमाण का नहीं है, भेद गुण का है। आनंद बात ही और है। वहां सुख नहीं है, जैसे दुख नहीं है। सुख-दुख दोनों गए तब जो परम शांति विराजमान हो जाती है। जहां न दुख की तरंगें उठती हैं, न सुख की तरंगें उठती हैं। क्यों? क्योंकि दुख की तरंगें भी दुख देती हैं और सुख की तरंगें भी दुख देती हैं। तुम ज्यादा देर सुखी भी नहीं रह सकते क्योंकि सुख भी उत्तेजना है। तुम गौर से देखो! आज तुम्हें लाटरी मिल जाए ठीक है, लेकिन हर महीने दो महीने में लाटरी मिलने लगे, तुम्हारा हार्ट फेल होगा। पहले तो डर यही कि पहली दफा में हो जाएगा। अगर बच गए किसी तरह, तो दूसरी दफे में हो जाएगा।
मैंने सुना है, एक रूसी कहानी है। एक दर्जी है, गरीब आदमी। बस उसका एक
ही शौक है कि हर महीने एक रुपया वह लाटरी में लगा देता। ऐसा वर्षों से लगा रहा, कोई बीस साल बीत गए। न कभी उसे मिली, न उसे अब कोई ख्याल है कि मिलेगी, मगर आदतन हर महीने जब उसको उसकी तनख्वाह मिलती, एक रुपया वह लाटरी में लगा देता। यह एक धार्मिक कृत्य हो गया उसके लिए कि लगा देना एक। होगा तो होगा, नहीं होगा तो नहीं होगा। जाता भी कुछ नहीं।
एक दिन हैरान हुआ, सांझ को द्वार पर लोग आए, रथ रुका। हंडे भरे हुए रुपये आए। वह तो घबड़ा गया। उसने कहा कि महाराज, यह क्या मामला है? उन्होंने कहाः तुम्हें लाटरी मिल गई। उसे दस लाख रुपये मिल गए। उस रात तो सो नहीं सका। हर रात आराम से सोता था। उस रात तो करवट ले, बहुत सोने की कोशिश की, न सो सका। दस लाख! पगलाने लगा। सुबह तो आकर उसने अपना दुकान-

87

दरवाजा बंद कर दिया, ताला लगा कर उसने चाबी कुएं में फेंक दी कि अब करना ही क्या है, बात खत्म हो गई, अब मजा करेंगे। उसने खूब मजा किया। मजा करने की जो धारणा है आदमी की वही किया। वेश्याओं के घर गया, स्वास्थ्य तक खराब हुआ, शराब पी। कभी बीमारियों से ग्रसित न हुआ था, सब तरह की बीमारियां आने लगीं। जुआ खेला। जो-जो उसको ख्याल में था सुख... ।
तुम भी सोचो, अगर तुमको दस लाख मिल जाएं तो तुम क्या करोगे? तत्क्षण तुम्हारे सामने पंक्तिबद्ध विचार खड़े हो जाएंगे। कि फिर ऐसा है, तो फिर ये कर गुजरें। और तुम भी वही करोगे जो दर्जी ने किया। वही... थोड़े हेर-फेर से। जुआ खेलोगे, शराब पीओगे, वेश्याओं के पास जाओगे। और करोगे क्या? और सुख है भी क्या? यही कुछ दो-चार बातें तो सुख मालूम होती हैं। बढ़िया से बढ़िया कार खरीद ली, बढ़िया से बढ़िया मकान खरीद लिया, बढ़िया से बढ़िया वस्त्र बना लिए। साल भर में दस लाख फूंक डाले। और साल भर में अपना स्वास्थ्य भी फूंक डाला और अपनी शांति भी फूंक डाली। साल भर के बाद कुएं में उतरा अपनी चाबी खोजने क्योंकि अब फिर दुकान चलानी पड़ेगी। कभी इतना दुखी नहीं था, जैसा दुखी हो गया। किसी तरह चाबी खोज कर लाया। अपनी दुकान खोली, फिर दर्जीगिरी शुरू हुई। अब मन भी न लगे। पहले तो कभी अड़चन न आई थी। सीधा-साधा आदमी था, ज्यादा कोई कमाई भी न थी, उपद्रव भी कोई ज्यादा नहीं हो सकता था। सामान्य जिंदगी थी, सब ठीक से चलता था, यह साल भर में जो देखा--यह दुख-स्वप्न! कहोगे तो तुम इसको सुख-स्वप्न लेकिन है यह दुख-स्वप्न। जो साल भी में देखा यह उसकी जिंदगी क्षार-क्षार कर गया। अब मन भी न लगे।
अब तो उसने कसम खा ली कि अब दुबारा लाटरी मिलेगी तो लूंगा ही नहीं। मगर पुरानी आदत और पुराना रस! यही तो आदमी की झंझटें है। तुम कसम भी खा लो तो वही किए जाते हो जो तुम करते रहे हो। वह एक रुपया लगाता रहा हर महीने। और साल बीतते-बीतते जब किसी तरह फिर से व्यवस्थित हुआ जा रहा था। काम-धंधा फिर ठीक चलने लगा था। स्वास्थ्य भी जरा ठीक हुआ था। सब शांति बननी शुरू हो रही थी। फिर एक दिन वह आकर रथ रुक गया द्वार पर। उसने अपनी छाती पीट ली कि मारे गए! आदमी की अड़चन समझो--मारे गए कहता है। कि फिर... हे भगवान! फिर! अब जानता भी है कि जो हुआ था उस साल में वह फिर से होगा। मगर इनकार भी नहीं कर सकता है। लाटरी फिर ले ली। फिर द्वार पर ताली लगा दी, फिर कुएं में फेंक दी और अब जानता है कि ज्यादा साल भर से चलने का नहीं है। और फिर उतरना पड़ेगा कुएं में।
यही तो हम सब कर रहे हैं! जो रोज-रोज किया है, रोज-रोज दुख पाया है। फिर
भी करते हैं। कल भी क्रोध किया था, आज भी करोगे। कल भी लोभ किया था, आज भी करोगे। कल भी कष्ट पाया था, आज भी पाओगे। और छाती पीट रहा है और घबड़ा भी रहा है और लाटरी देने वाले उससे पूछ रहे हैं अगर तू इतना परेशान है तो न ले। दान कर दे। उसने कहाः अब यह भी नहीं होता। मगर मारे गए! हे प्रभु, ये तूने दिन क्यों दिखाया? ऐसी आदमी की दशा है। और साल भर में वह मारा गया। साल भर में बहुत बुरी हालत हो गई उसकी। और जब दुबारा कुएं में उतरा तो फिर निकला नहीं। शरीर ज्यादा खराब हालत में हो गया था। कुएं में गए सो गए!
सोचना इस पर, विचारना इस पर। दुख की तो हम जानते हैं बात दुखद है, लेकिन सुख भी कोई बहुत सुखद है? सुख भी बड़ा दुखदायी है। सुख भी बड़ी उत्तेजना से भरा हुआ है, सुख की भी अपनी पीड़ा है, कितनी ही मीठी लगे पीड़ा लेकिन सुख भी जहर रखता है अपने में। जहर कितना ही मीठा हो, मिठास तो ऊपर-ऊपर होती है, भीतर तो प्राणों को काट जाता है। परमात्मा का अनुभव न तो सुख का अनुभव है, न दुख का अनुभव। परमात्मा का अनुभव शांति का अनुभव है। उस परम शांति का नाम है आनंद। वह गुणात्मक रूप से सुख-दुख दोनों से भिन्न है। वहां द्वंद्व नहीं है। वहां एक का वास है।
... जहां कोई कर्म न काल।
और वहां कोई कर्म भी नहीं है, कोई कर्ता भी नहीं है। वहां कोई कर्म नहीं है कोई समय भी नहीं है। कोई मृत्यु भी नहीं है। वहां कोई जीवन और जन्म भी नहीं है। जो-जो हमने यहां जाना है, वहां कुछ भी नहीं है। जो-जो हमने जाना है, वहां कुछ भी नहीं है। जो-जो हमने जाना है, सब शांत हो जाता है। और बिल्कुल अनजान का अनुभव होता है इसलिए तो मन अवाक हो जाता है।

दरिया तहां कीमत नहीं उनमन भया अवाक।
रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
जन दरिया जहां पड़त है हीरों की टकसाल।
तो फिर यह परमात्मा क्या है? यह टकसाल है, जहां से सब आता है। जैसे टकसाल से हीरे आते हैं या टकसाल से सिक्के आते हैं। जहां से सब सिक्के आते हैं। जहां से सब सिक्के ढाले जाते हैं। और फिर जहां सारे सिक्के वापस पिघल जाते हैं।
तुमने देखा टकसाल में? रुपये ढाले जाते हैं, फिर जब रुपये खराब हो जाते हैं, घिस-पिस जाते हैं, फिर वापस लौट जाते हैं फिर टकसाल में जाकर उनको पिघला लिया जाता है। फिर नये सिक्के ढाल दिए जाते हैं। टकसाल का अर्थ है, जहां सारे सिक्के ढलते हैं और जहां सारे सिक्के फिर बिखर जाते हैं।
फिर-फिर ढाले जाते हैं। परमात्मा परम स्रोत है। वहीं से सब आता है और वहीं सब वापस लौट जाता है।
जीव जात से बीछड़ा धर पंचतत्त का भेख।
दरिया निज घर आइया पाया ब्रह्म अलेख।।
मनुष्य बिछड़ा है परमात्मा से क्योंकि उसने इस पंचतत्व के रूप का बहुत ज्यादा अपने साथ तादात्म्य कर लिया है। वह सोचता है, मैं देह हूं। यह जो पांच तत्वों से बनी हुई देह है, यही मैं हूं। इस अति आग्रह के कारण कि मैं देह हूं, वह उस परमतत्व से अलग हो गया। अलग हुआ नहीं है एक क्षण को भी। हो नहीं सकता है। अलग होकर जाएगा कहां? अलग होने का कोई उपाय नहीं है सिर्फ भ्रांति पैदा होती है कि मैं अलग हूं। सिर्फ एक ख्याल है कि मैं अलग हूं। जीव जात से बीछड़ा...
दरिया कहते हैं, हम सब की जात ब्रह्म है। हम सब ब्रह्म हैं। हम सब परमात्मा हैं। वह हमारी मूल जात है। न ब्राह्मण, न हिंदू, न शूद्र, न क्षत्रिय, न वैश्य, न मुसलमान, न ईसाई। हमारी जात है, ब्रह्म।
जीव-जात से बीछड़ा धर पंचतत्त का भेख।
यह जो पांच-तत्वों का भेष रख लिया है और इस भेष को ही अपना सब कुछ समझ लिया है इसी के कारण हम अलग हो गए।
ऐसा हुआ, ऐसा अक्सर हो जाता है। तुम जब नाटक में किसी पात्र का अभिनय करते हो तुम थोड़ी देर को उसी पात्र के साथ एक हो जाते हो। तुम यही सोचने लगते हो कि मैं यही हूं। अच्छा अभिनेता वही होता है जो बिल्कुल डूब जाए और सोचने लगे कि यही मैं हूं। तो ऐसी स्त्री के प्रति प्रेम दिखलाता है जिसके प्रति कोई प्रेम नहीं है। घृणा भी हो सकती है, मगर प्रेम दिखलाता है। आंख से हर्ष के आंसू बहे जाते हैं--हर्ष के! आनंदमग्न होकर उस स्त्री की तरफ आंखें उठाता है। प्रेम के वचन बोलता है। रोआं-रोआं उसका प्रेम से पुलकित मालूम होता है। यह सब अभिनय है। यह सब ऊपर-ऊपर है। लेकिन अभिनेता इसमें भरोसा न करे तो अच्छा अभिनेता सिद्ध नहीं होता। इसको पूरी तरह भरोसा कर लेता है।
ऐसे ही हमने भरोसा कर लिया है। और कितनी दफा हमारा अभिनय बदला है। फिर
भी हम चूकते नहीं। तुम छोटे थे, बच्चे थे। आज अगर तुम्हारा बचपन तुम्हारे सामने खड़ा हो जाए, तुम पहचान भी न सकोगे कि यह मैं हूं। मगर उस वक्त तुम वही थे। मां के पेट में थे। मांस का बस एक पिंडमात्र थे। आज तुम्हारे सामने वैसा मांस का पिंड रख दिया जाए, तुमसे कहा जाए यह तुम हो, तुम कहोगे, पागल हो गए? मगर एक दिन मां के पेट में तुमने यही अपने को माना था कि यही मैं हूं। फिर एक दिन जवान थे तब तुमने समझा कि मैं जवान हूं। फिर एक दिन बूढ़े हो गए और तुमने समझा कि मैं बूढ़ा हूं। और कभी तुम सफल हुए और तुमने समझा कि मैं सफल हूं। और कभी विफल हुए और तुमने समझा कि मैं विफल हूं। और कभी लोगों ने सम्मान दिया, सिर पर उठाया तो तुम सम्मानित हो गए थे। और कभी अपमान दिया और तुम्हारे ऊपर सड़े टमाटर और छिलके फेंके और तब तुम समझे कि मैं अपमानित हूं।
और ऐसे तुम कितने अभिनय कर चुके! फिर भी एक बात तुम्हें समझ में नहीं आती कि ये अभिनय तो बदलते जाते हैं। तुम जरूर इनसे भिन्न होओगे, तुम इनके साथ एक नहीं हो सकते। अगर तुम बच्चे ही होते तो जवान नहीं हो सकते थे फिर।

अगर जवान ही होते तो बूढ़े कैसे हुए? और अगर जिंदगी ही तुम होते तो मरोगे कैसे? और यह सब बहा जाता है। यह पंचतत्त का भेख; यह तो कपड़ों जैसा है। कभी सुंदर कपड़े पहन लिए, समझे कि सुंदर हो गए। और कभी बेढंगे कपड़े पहन लिए तो समझे कि बेढंगे हो गए।
कपड़ों के साथ इतना लगाव बन जाता है कि तुम भूल ही जाते हो मैं कौन हूं? मगर तुम जो हो वही हो! तुम्हारी जात तो ब्रह्म है।
दरिया निज घर आइया पाया ब्रह्म अलेख।
जिस दिन कपड़ों से नजर हटेगी और अपने को देखोगे, जिस दिन तत्वों को देखोगे, और भेष को छोड़ोगे उस दिन तुम पाओगे--
दरिया निज घर आइया पाया ब्रह्म अलेख।
जिसकी कोई सीमा नहीं है उस असीम को पाया। अपने घर में बैठे पाया, अपने भीतर बैठे पाया। अपना स्वरूप पाया।
आंखों से दीखै नहीं सब्द न पावै जान।
मन बुद्धि तहां पहुंचे नहीं कौन कहै सेलान।।
अलेख इसलिए कहते हैं कि उसका निशान कौन बताए?
आंखों से दीखै नहीं...
आंखें जो बाहर है उसे देखती हैं, भीतर को तो कैसे देखेंगी? आंखों का तो सारा उपाय बाहर है। तुम जो भी आंखों से देखोगे वह तुम्हारा स्वरूप नहीं हो सकता। तुम तो आंख के भीतर छिपे हो। ऐसे ही समझो जैसे अपने घर की खिड़की पर खड़े हो और खिड़की के बाहर झांक कर देख रहे हो तो खिड़की से तुम बाहर देख रहे हो। तुम तो खिड़की के पीछे खड़े हो। ऐसे ही आंख के भी पीछे तुम खड़े हो। आंख तुमको न देख सकेगी।
तुम अपनी आंख पर चश्मा लगाते, तो चश्मे से तुम सारी दुनिया को देख लेते। अब तुम चश्मे को निकाल कर और चश्मे से अपने को देखने की कोशिश करो तो तुम नहीं देख पाओगे। चश्मा मुर्दा है ऐसे ही आंख भी मुर्दा है। आंख पीछे लौट कर नहीं देख सकती। आंख बाहर ही देख सकती है। कान बाहर की आवाज सुन सकते हैं, भीतर की आवाज नहीं सुन सकते। हाथ से तुम जो बाहर है उसे छू सकते हो, जो भीतर है उसे कैसे छुओगे? गंध तुम्हें दूसरे की आ सकती है; स्वयं की, अंतर्तम की, कैसे तुम्हें गंध आएगी? नाक वहां व्यर्थ है।
इंद्रियां सब बाहर के लिए हैं। बाहर के द्वार हैं। भीतर की तरफ कोई इंद्रिय नहीं जाती। वहां तो वही जाता है जो सारी इंद्रियों को छोड़ कर शांत हो जाता है। आंख बंद कर लेता, कान बंद कर लेता, नाक बंद कर लेता--इसको ही तो ज्ञानियों ने गुप्ति कहा है। इस अवस्था को ही संयम कहा है। आंख देखती नहीं, कान सुनता नहीं, नाक सूंघती नहीं, हाथ छूते नहीं। सब तरह अपने भीतर सिकुड़ जाता है--जैसे कछुआ अपने अंगों को भीतर सिकोड़ लेता है। यह जो कछुए की स्थिति है ऐसी ही स्थिति समाधिस्थ की हो जाती है।
आंखों से दीखै नहीं सब्द न पावै जान।
मन बुद्धि तहां पहुंचे नहीं कौन कहै सेलान।।
इंद्रियां नहीं पहुंचती वहां। मन भी नहीं पहुंचता वहां। क्योंकि मन एकदम अवाक होकर रुक जाता है। और बुद्धिमत्ता भी वहां नहीं चलती। होशियारी भी वहां काम नहीं आती। समझदारी भी काम नहीं आती। वहां समझदारी भी नासमझी हो जाती है। वहां तो आदमी को बिल्कुल निर्दोष होकर पहुंचना पड़ता है, सब तरह के जंजाल को छोड़ कर--बुद्धि के, मन के, सोच-विचार के, तर्क के। तुम्हारी जो-जो बातें समझदारी की हैं, बाहर काम आती हैं। वहां कोई काम नहीं आतीं। वहां तो जाते समय यह सारा उपद्रव छोड़ देना पड़ता है। यह सारा बोझ उतार कर रख देना पड़ता है। वहां तो निर्भार होता है जो, वही पहुंचता है।
मन बुद्धि तहां पहुंचे नहीं कौन कहै सेलान।
मन और बुद्धि का भेद समझ लेना। मन का अर्थ होता हैः मनन की प्रक्रिया, सोच-विचार। बुद्धि का अर्थ होताः इस सोच-विचार की प्रक्रिया को जो जाग कर देखता है। अवेयरनेस। बुद्धि का अर्थ होता है साक्षी। अब यह बड़ा अनूठा सूत्र है। साधारणतः यही कहा जाता है, साक्षी बनो! बनने से यह घटना घटती है कि तुम मन के पार हो जाते हो। फिर साक्षी के भी पार होना पड़ता है क्योंकि तुम स्वयं के साक्षी नहीं हो सकते। वहां कैसे दो होंगे? साक्षी का तो मतलब

होता है तुम और किसी के साक्षी बन रहे हो तुम। तो यह सूत्र जिसको कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं, जिसको ज्ञानियों ने साक्षीभाव कहा है, विटनेस उसके भी पार जाता है।
दरिया कहते हैंः मन तो वहां चलता ही नहीं, यह बात सच है। मन तो जा नहीं सकता। सोच-विचार का धुआं वहां रहेगा, तो तुम देख ही न पाओगे। बादल घिरे रहेंगे, सूरज का दर्शन न होगा। यह तो बात ठीक है। यह तो सभी ने कही है लेकिन एक कदम और ऊपर उठाते हैं। वे कहते हैं, वहां साक्षी भी नहीं जाता। साक्षी ही रह जाता है तो फिर साक्षी कैसे बनोगे? मात्र साक्षी बचता है तो किसके साक्षी? अब तो दो नहीं बचे। ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहा। द्रष्टा और दृश्य का भेद नहीं रहा। अब तो एक ही बचा तो किसके साक्षी? कौन साक्षी? और किसका? तो साक्षी भी गया।
मन बुद्धि तहां पहुंचे नहीं कौन कहै सेलान।
तो अब खबर कैसे दें उसकी कि उसका रूप क्या? उसका रंग क्या? उसका स्वाद क्या? उसका लक्षण कैसे बताएं? उसकी खबर कैसे लाएं? इसीलिए तो आदमी गूंगा हो जाता है। गूंगे का गुड़ हो जाता है। जान लेता है, पहचान लेता है, अनुभव कर लेता है और एकदम गूंगा हो जाता है। और तुम उससे पूछो तो एकदम गुमसुम बैठ जाता है, बोलता ही नहीं, और अगर बोलता है तो बोलता है केवल विधि के संबंध में, परमात्मा के लक्षण के संबंध में नहीं। कैसे पहुंचा यह बता देता है। किस-किस मील के पत्थर को राह पर मिलना हुआ था, यह बता देता है। कैसा-कैसा मार्ग बीता, यह बता देता है। कहां-कहां से गुजरना पड़ा यह बता देता है। लेकिन लक्ष्य! लक्ष्य की बात छूट जाती है। नहीं कही जा सकती। कौन कहै सेलान। उसकी लक्षणा कौन करे? उसका निशान और रूप कौन बताए?
माया तहां न संचरै जहां ब्रह्म का खेल।
यह सब तो माया का ही हिस्सा है--इंद्रियां, आंखें, कान, मन, बुद्धि, यह
सब माया का ही खेल है।
माया तहां न संचरै जहां ब्रह्म का खेल।
और जहां ब्रह्म का खेल शुरू हुआ, वहां माया नहीं प्रवेश कर पाती।
जन दरिया कैसे बने रवि-रजनी का मेल।
बड़ी प्यारी बात कही है।
जन दरिया कैसे बने रवि-रजनी का मेल।
सूरज निकले और रात से मेल कैसे बने?
मैंने सुना है, एक बार अंधेरे ने जाकर परमात्मा को कहा कि तुम अपने सूरज को कहो, मेरे पीछे क्यों पड़ता है? मुझे क्यों परेशान करता है? मैंने इसका कुछ कभी बिगाड़ा नहीं। जहां तक मुझे याद पड़ता है, मैंने कभी इसका कोई नुकसान नहीं किया और मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है। दिन भर मुझे भगाता है। रात में किसी तरह लेट भी नहीं पाता कि फिर सुबह हाजिर हो जाता है। विश्राम भी नहीं कर पाता। अगले दिन की थकान भी नहीं मिट पाती कि सुबह फिर हाजिर हो जाता है, फिर भगाता है। यह मामला क्या है? यह अन्याय हो रहा है। और मैंने बहुत प्रतीक्षा कर ली। और मैंने तो सुनी थी कहावत कि चाहे देर हो वहां, अंधेर नहीं। लेकिन देर भी हो गई और अंधेर भी हो रहा है। कितनी सदियां बीत गई और यह सूरज मेरे पीछे पड़ा ही है, हाथ-धोकर पड़ा है। आप इसे रोको।
बात तो परमात्मा को भी जंची कि इस बेचारे अंधेरे ने सूरज का बिगाड़ा क्या है? यह अन्याय हो रहा है। सूरज को बुलाया। सूरज से पूछा कि तू अंधेरे के पीछे क्यों पड़ा है? उसने कहाः कैसा अंधेरा! मेरी कोई पहचान ही नहीं। पीछे कैसे पडूंगा? दोस्ती ही नहीं बनी तो दुश्मनी कैसी बनेगी? अभी तक मेरी मुलाकात ही नहीं हुई। तो नाराजगी कैसे होगी? आप एक कृपा करें, अंधेरे को मेरे सामने बुला दें। तो मैं देख तो लूं कौन अंधेरा है? पहचान तो लूं कि कौन अंधेरा है? किसका मैं पीछा कर रहा हूं यह तो मैं पहचान लूं। अभी तो पीछा कैसे करूंगा? मेरी मुलाकात ही नहीं हुई। और कहते हैं कि तबसे ईश्वर भी परेशान है। फाइल वहीं की वहीं पड़ी है। वह अंधेरे को ला नहीं सकता सामने। और जब तक अंधेरे को सामने नहीं लाएं, जब तक दोनों वादी-प्रतिवादी अदालत में खड़े न हों तब तक निर्णय भी कैसे हो? कहते हैं, ईश्वर परम

शक्तिवान है, सर्व शक्तिवान है, लेकिन वह भी यह नहीं कर पा रहा कि अंधेरे को सूरज के सामने ले जाए।
जन दरिया कैसे बने रवि-रजनी का मेल।
कैसे हो मुलाकात? यह नहीं होने वाली। तो जब तुम्हारे भीतर का सूरज प्रकट होगा, तब तुम्हारे बाहर जिसको तुमने अब तक जीवन जाना था, वह मात्र अंधेरा था। वह उसके सामने टिकेगा नहीं। तुम्हारी सब धारणाएं पिघल कर बह जाएंगी। तुम्हारे सारे विचार बह जाएंगे। तुम बह जाओगे। तुमने जो कल तक जाना था, वह कोई भी काम न आएगा। आमूल-चूल तुम बह जाओगे। और जो शेष रह जाता है, वह अवाक कर देता है।
रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक।।
जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता हैं राम।
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम।।
अपूर्व वचन है। गांठ बांध कर रख लेना। इससे बहुमूल्य हीरा न पाओगे।
जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता हैं राम।
हमारा होना ब्रह्म से आया। हम उससे उपजे हैं इसलिए वही हमारी जात है।
हम उससे उपजे इसलिए वही हमारी मां है, वही हमारा पिता है। बाकी सब माता- पिता औपचारिक हैं। बाकी सब जातियां व्यावहारिक हैं। असली जात ब्रह्म है असली माता-पिता परमात्मा।
गिरह हमारा सुन्न में--और हमारा घर शून्य में है। बाकी तुम जितने घर बना रहे हो, सब व्यर्थ जाएंगे। जब तक शून्य को न खोज लो तब तक असली घर न मिलेगा। गिरह हमारा सुन्न में। शून्य में हमारा असली घर है। शून्य यानी-- जहां विचार थक कर गिर गए, जहां मन उनमन हो गया, जहां बुद्धि भी गई, जहां कुछ भी न बचा, शून्य सन्नाटा रह गया सिर्फ। सब जो तुम जानते थे, अनुपस्थिति हो गया। सब हट गया। एक कोरा आकाश रह गया। असीम आकाश।
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम।
और वहां कोई सीमा नहीं असीम है। अनहद। उसकी कोई हद नहीं है। वहीं विश्राम है। उसके पहले तकलीफ है। उसके पहले बेचैनी है। उसके पहले तनाव है।
शून्य में पहुंच कर ही परम विश्राम उपलब्ध होता है। उसके पहले तुम लाख उपाय करो--धन कमाओ, पद-प्रतिष्ठा, लाख संबंध बनाओ, प्रेमी-प्रियजन; परिवार बसाओ, सब उजड़ जाएगा। आज बनाओगे, कल मिट जाएगा। बनाने में तकलीफ झेलोगे और बन भी न पाएगा, फिर मिटने की तकलीफ झेलनी पड़ेगी। इधर बनाया उधर मिटने की शुरुआत हो जाती है। दोहरी तरह की तकलीफ है। पहले बनाने का कष्ट, बनाने की झंझटें और फिर जब उखड़ने लगती हैं, जब चीजें बिखरने लगती हैं फिर उसका कष्ट। ऐसे तुम रोते ही रोते गुजारते हो। एक रोने से दूसरे रोने में चले जाते हो बस, और कुछ फर्क नहीं पड़ता।
थोड़ी देर राहत मिलती है, जरूर मिलती है। एक रोने से जब तुम दूसरे रोने में जाते हो, थोड़ी देर के लिए आंसू थम जाते हैं, बीच में राहत मिलती है। कहते हैं कि जब लोग आदमी को मरघट ले जाते हैं, किसी लाश को मरघट ले जाते हैं, अरथी उठाते हैं तो रास्ते में कंधा बदल लेते हैं। इस कंधे पर रखे थे, इस कंधे पर रख लिया था। थोड़ी देर के लिए राहत मिल जाती है। यह कंधा थक गया, दूसरे कंधे पर अभी थकान नहीं; मगर थोड़ी देर में दूसरा कंधा थक जाता है फिर इस कंधे पर रख लिया। ऐसे ही जिंदगी है तुम्हारी जैसे लोग मरघट ले जाते वक्त अरथी को कंधा बदलते हैं। बस, तुम कंधा बदल रहे हो। एक दुख से घबड़ा गए, दूसरा दुख मोल ले लिया। जब मोल लेते हो। तब वह सुख का आश्वासन देता है। थोड़ी देर में ही पहचान होती है। फिर दुख प्रकट हो जाता है।
कितने जन्मों से ऐसे ही, ऐसे दुख तुम बदलते रहे। कब तुम जागोगे? कब तुम शून्य के घर को खोजोगे? शून्य के घर को खोजना ही ध्यान है, समाधि है। कब तुम अनहद में विश्राम करोगे? या कि तुम्हें श्रम ही करते रहना है? या कि तुम्हें घर बनाने और मिटाने हैं? या कि तुम्हें रेत के घर ही बनाने में रस है? या कि तुम्हें ताश के घर बनाने में रस है? तुम कब तक ये कागज की नावें तैराते रहोगे और डुबाते रहोगे? जागो। शून्य में ही पहुंच कर आदमी अपने घर

आता है। और उस घर को बनाने की जरूरत नहीं है, वह घर बना ही हुआ है। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। एक क्षण को तुमने उसको खोया नहीं। जरा दृष्टि बदले तो तुम अपने शून्य घर को पा लो, उस परम घर को पा लो जिसको कोई निर्वाण कहता है, कोई मोक्ष कहता है, कोई ब्रह्म कहता है; वह सब नाम के भेद हैं, मगर वह घर शून्य का है। समझ कर जाओगे तो अच्छा होगा।
कल रात एक युवक आया जर्मनी से। वह बहुत डरा हुआ है। सत्रह साल की उमर में अनायास उसे शून्य का अनुभव हो गया है। अनायास तो कुछ होता नहीं। पिछले जन्मों की कमाई होगी। जन्मों-जन्मों में इस शून्य को खोजा होगा। बात पूरी नहीं हो पाई होगी, अटकी रह गई होगी। बीज पड़ गया होगा। इस जीवन में फसल आई। तो इस जीवन में तो बिल्कुल अनायास हुई। सत्रह साल के युवक को घट जाए शून्य आकस्मिक तो घबड़ाहट तो हो ही जाएगी। न खोजते थे, न आकांक्षा थी, अचानक घट गया। तो इतना घबड़ा गया है, उसकी बात करते हुए भी हाथ-पैर उसके कंप रहे थे। उसकी बात करते हुए सिर उसका घूमने लगा। होश जाने लगा। उसकी बात करते-करते उसकी आंख बंद होने लगी। घबड़ा गया है। वह चाहता नहीं कि फिर कभी वैसा हो जाए। अब एक अपूर्व घटना थी लेकिन एक घबड़ाहट आ गई। अब घबड़ाहट आ गई तो वह ध्यान करने में डरता है। अब वह संन्यास लेने में डर रहा था। क्योंकि उसे लग रहा है, एक दफा शून्य की छोटी सी झलक उसको मिली है, वह इतना घबड़ा गया, और यहां तो सारी शून्य की ही बात हो रही है, तो वह डर रहा है। जा भी नहीं सकता क्योंकि यद्यपि वह शून्य से घबड़ा गया लेकिन उस शून्य में उसे सत्य का भी दर्शन हुआ। यह भी वह कहता है--जो मैंने जाना है वही परम सत्य है। मगर वह परम सत्य मैं फिर नहीं जानना चाहता। कोई अर्थ नहीं है जीवन में फिर। फिर महत्वाकांक्षा में कोई सार नहीं है। फिर यह करने और वह करने में कोई प्रयोजन नहीं है। शून्य ही सब कुछ है। तो वह घबड़ा भी गया है। रस भी आया, घबड़ा भी गया। व्याख्या भी उसने बड़े डर के कर ली।
कल उसकी तरफ देखते हुए मुझे दिखाई पड़ना शुरू हुआ कि जरूर वह कभी अतीत में किसी बौद्ध परंपरा का हिस्सा रहा होगा। बौद्धों ने शून्य को बड़ा बल दिया है। अब व्याख्या की बात है। पश्चिम में शून्य की कोई चर्चा ही नहीं करता। ईसाइयत शून्य से बहुत डरती है। इस्लाम भी डरता है। पश्चिम में पैदा हुआ, ईसाइयत के ख्याल उसके मन में रहे होंगे और जब उसने यह शून्य देखा तो वह बहुत घबड़ा गया। अगर पूरब में पैदा हुआ होता, अगर बुद्ध की हवा उसके आस-पास रही होती तो उसके पास दूसरी व्याख्या होती। शून्य देखता तो नाच उठता, मगर हो जाता। शून्य देखता तो कहताः
रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक।।
फिर तो नाच बंद ही न होता। फिर तो जो गीत का झरना बहता, बहता ही चला जाता। लेकिन चूक गया। व्याख्या ने अड़चन डाल दी। व्याख्या ने डरवा दिया। पश्चिम में तो लोग समझते हैं शून्य होने का मतलब शैतान। शून्य यानी शैतान से पर्यायवाची है। शून्य का अर्थ ही नहीं समझे है। शून्य का अर्थ ही समझतें हैं नकारात्मक; कुछ भी नहीं। शून्य है सब कुछ। शून्य है ब्रह्मभाव। शून्य ना-कुछ नहीं है।
लेकिन उस युवक का डर मैं समझता हूं। उसको किसी तरह फुसला कर संन्यासी बना लिया है। उसे फुसला कर ध्यान में ले जाएंगे। अब की बार आशा की जा सकती है कि जब फिर दुबारा शून्य घटेगा तो उसके पहले वह तैयार हो जाएगा। अब की बार शून्य उसे पगलाएगा नहीं। अब की बार शून्य उसे परम स्वास्थ्य दे जाएगा। अब की बार शून्य से उसकी ऐसी ही पहचान हो जाएगी--
जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता हैं राम।
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम।।
और एक बार अनहद में विश्राम आ गया फिर तुम कहीं भी रहो, फिर हजार संसार तुम्हारे चारों तरफ शोरगुल मचाता रहे, तुम्हारे भीतर कोई तरंग नहीं पहुंचती। तुम निस्तरंग बने रहते हो। तुम अपने घर आ गए। तुमने शाश्वत से सगाई कर ली।
इन सूत्रों पर ध्यान करना। ये सूत्र विचार करने के नहीं हैं, ध्यान करने के हैं। एक-एक शब्द पर ठिठकना। एक-एक शब्द का स्वाद लेना। आंख बंद

करके डुबकी लगाना। एक-एक शब्द के साथ मगन होना। एक-एक शब्द के साथ थोड़ा- थोड़ा मन छोड़ना। थोड़े-थोड़े उनमन होना। एक-एक शब्द के साथ आश्चर्य की पुलक से भरना, रोमांचित होना। एक-एक शब्द के साथ ज्ञान छोड़ना, निर्दोष अज्ञान में उतरना। एक-एक शब्द के साथ तादाम्य शरीर से, इंद्रियों से छोड़ना ताकि धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर के ब्रह्म से पहचान फिर से बन जाए; पुनः पहचान हो जाए। पुनर्खोज है ब्रह्म। क्योंकि खोया तो कभी नहीं। मौजूद तो है ही। तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। तुम जब चाहो, घर लौट आओ। तुम उसे वहां घर में बैठा हुआ पाओगे।
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम।

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
छठवां प्रवचन

शून्य-शिखर में गैब का चांदना

पहला प्रश्नः एक प्रचलित पद है--
हरि से लगे रहो रे भाई, बनत-बनत बनि जाई।
क्या ऐसा ही है?

प्रार्थना के दो अंग हैंः एक प्रार्थना और दूसरा प्रतीक्षा। और दूसरा अंग पहले अंग से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। प्रार्थना तो बहुत लोग कर लेते हैं, प्रतीक्षा थोड़े लोग कर पाते हैं। और जो प्रतीक्षा कर पाते हैं। उनकी ही प्रार्थना पूरी होती है। प्रतीक्षा का अर्थ है, मैंने प्रार्थना कर ली। लेकिन मेरी प्रार्थना इसी क्षण पूरी हो ऐसी आकांक्षा नहीं है। पूरी हो ऐसी आशा तो है लेकिन अपेक्षा नहीं। तैयारी हो, धैर्य हो कि अनंत भी प्रतीक्षा करनी होगी तो करेंगे। आज न हो, कल न हो, परसों न हो, इस जन्म में न हो, अगले जन्म में न हो, कितना ही समय बीते, धैर्य न चुका देंगे।
ऐसे अनंत धैर्य से जो प्रार्थना करता है उसकी इसी क्षण भी पूरी हो सकती है। और जिसने अधैर्य किया हो उसकी कभी पूरी न होगी। क्योंकि धैर्य प्रार्थना का प्राण है। जब तुमने प्रार्थना की और धीरज न रखा तो प्रार्थना न रही, मांग हो गई। चूक गए। मांग में वासना है, अधैर्य है, जल्दबाजी है, अभी होना चाहिए। मांग में बचकानापन है। जैसे छोटे बच्चे कहते हैं, अभी, इसी वक्त। आधी रात में खिलौना चाहिए। मांग में प्रौढ़ता नहीं है। मांग में जिद है, हठ है, दुराग्रह है। प्रार्थना में कोई हठ नहीं है, न कोई मांग है, न कोई दुराग्रह है। दुराग्रह तो दूर, प्रार्थना में सत्याग्रह भी नहीं है। क्योंकि सत्याग्रह भी दुराग्रह का ही अच्छा नाम है।
प्रार्थना में आग्रह ही नहीं है, प्रार्थना में केवल निवेदन है, केवल निमंत्रण है। तुमने पाती भेज दी अपनी तरफ से, अब प्रभु को जब आना हो आए। तुम्हारी पाती इतनी ही खबर देती है कि जब भी प्रभु आए, तुम्हारा दरवाजा खुला होगा। जब भी प्रभु आए, तुम्हारे हृदय के द्वार बंद न होंगे। तुम्हारा हृदय-मंदिर खुला होगा। तुम प्रतीक्षा करोगे। और प्रतीक्षा में बड़ा सुख है। क्योंकि प्रतीक्षा में बड़ी शांति है, अधैर्य में दुख है, अधैर्य में तनाव है, चिंता है। अधैर्य में बेचैनी है, होगा कि नहीं होगा, द्वंद्व है। धैर्य का अर्थ ही यही होता है कि होगा। निश्चित होगा। देर कितनी ही हो। और जो देर हो वह भी अन्याय नहीं है। वह भी मेरी पात्रता के बनने के लिए समय है। बीज बो दिया, फूटेगा। ठीक ऋतु आने दो, समय पकने दो, बीज फूटेगा, वृक्ष बनेगा। बीज बो देने के बाद पानी सींचते रहो और राह देखो। जल्दबाजी में सब बिगड़ जाए।
इस पद का यही अर्थ हैः हरि से लगे रहो रे भाई, बनत-बनत बनि जाई। तुम अपनी तरफ से लगे रहो। तुम अपनी तरफ से हरि का पीछा करते रहो। तुम अपनी तरफ से निमंत्रण भेजते ही रहो अथक। तुम अपनी तरफ से पुकारते ही रहो। तुम्हारी आंखें प्रेम के आंसू गिराती रहें। और तुम्हारे पैर घुंघरू बांध कर प्रेम के नाचते रहें। तुम अपनी तरफ से सब पूरा कर दो। तुम अपनी तरफ से कुछ कमी न करो। तुम अपनी तरफ से रत्ती भर भूल-चूक न करो।
जिस घड़ी भी मौसम पक जाएगा और तुम तैयार हो जाओगे उसी घड़ी घटना घट जाती है। अगर नहीं घट रही है अभी तो उसका केवल एक ही अर्थ है। शिकायत मत करना, मत कहना कि परमात्मा नाराज है। मत कहना कि मेरे साथ नाराज है। मत कहना कि औरों के साथ घट रहा है, मेरे साथ क्यों नहीं घट रहा? मत कहना कि अन्याय हो रहा है। अगर परमात्मा तुम्हारे साथ नहीं घट रहा तो सिर्फ एक ही अर्थ है, बस केवल एक ही अर्थ है कि तुम अभी तैयार नहीं हो।
तो तैयारी में लग जाओ। अगर आज तुम्हारे द्वार परमात्मा नहीं आया तो तैयारी में लग जाओ। कल घर-द्वार को और झाड़ो, और बुहारो, और साफ करो, दीया जलाओ, धूप जलाओ, फूल लगाओ। कल फिर प्रतीक्षा करो। अगर न आए तो इतना ही समझो

कि अभी कहीं थोड़ी भूल-चूक और है। जिस क्षण भी भूल-चूक पूरी हो जाती है, घटना ऐसे घटती है, जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है। अगर निन्यानबे डिग्री तक भाप नहीं बना है तो इसका यह मतलब नहीं है कि परमात्मा नाराज है। इसका इतना ही मतलब है कि सौ डिग्री पानी जब तक गर्म न हो तब तक भाप नहीं बनता। थोड़ी और लकड़ियां लगाओ चूल्हे में और थोड़ा ईंधन जलाओ। थोड़े और जोर से पुकारो, थोड़े और पागल होकर उन्मत्त होकर चीखो। थोड़े और दीवाने बनो। गीत और थोड़ा गुनगुनाओ! आता ही होगा।
हरि से लगे रहो रे भाई, बनत-बनत बनि जाई।
बनत-बनत, होते-होते होता है। होता निश्चित है। जो भी उसकी तरफ गए, पहुंच जाते हैं। देर-अबेर। तुम्हारे कदमों की ताकत पर निर्भर है। कैसे तुम चलते हो! दिशा ठीक हो बस इतना ही ख्याल रहे, फिर धीमे चलनेवाले भी पहुंच जाते हैं, जल्दी चलनेवाले भी पहुंच जाते हैं, तेज धावक भी पहुंच जाते हैं। दिशा भर ठीक हो।
और प्रार्थना ठीक दिशा है। दिशा गलत हो तो खतरा है। तुम धीमे चलो तो
भी भटकोगे, तेज चलो तो और भी ज्यादा भटकोगे। अगर बहुत ही भागने वाले हुए तब तो बहुत निकल जाओगे। दिशा भर ठीक हो। तो प्रार्थना दिशा को ठीक कर देती है। प्रार्थना का अर्थ होता है, समर्पण। प्रार्थना का अर्थ होता है, मेरे किए कुछ न होगा, तू कर। तुमसे गलती हो सकती है, उससे गलती नहीं होती। यह ठीक दिशा हो गई। जब तक तुम करोगे तब तक भूल-चूक हो सकती है। तुमसे भूल-चूक ही होगी। तुमसे और होने की आशा भी कहां है? इस अंधेरे मन को लेकर ठीक कैसे करोगे? इस बुझे दीये को लेकर राह कैसे खोजोगे? संभावना भटक जाने की है, संभावना पहुंचने की नहीं है। प्रार्थना का अर्थ होता है, मेरे किए तो जो हो जाता है गलत हो जाता है। जहां ‘मैं’ आया वहां गलती हो जाती है। मेरी मौजूदगी गलती का सबूत है। मेरा भाव कि ‘मैं’ मेरी सबसे बड़ी गलती है। प्रार्थना का अर्थ हैः ‘मैं’ को उतार कर रखता हूं। कहता हूं, तुम, तू। जलालुद्दीन की प्रसिद्ध कविता हैः
प्रेमी ने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी
और भीतर से आवाज आई,
कौन है तू?
और उसने कहा,
मैं। अरे! पहचानी नहीं?
मेरी आवाज नहीं पहचानी?
मेरे पैरों की आवाज नहीं पहचानी?
लेकिन फिर भीतर सन्नाटा हो गया, कोई उत्तर न आया। बहुत द्वार पर उसने सिर पीटा लेकिन फिर पीछे से कोई प्रश्न भी नहीं पूछा गया। घर में जैसे कोई हो ही न। जब बहुत चीखा-चिल्लाया तो भीतर से इतनी ही आवाज आई, इस घर में दो न समा सकेंगे। यह प्रेम का घर है, यहां दो न समा सकेंगे।
प्रेमी समझा। तीर लग गया है हृदय पर। चला गया वनों में। कई चांद आए और गए। कई सूरज उगे और मिटे। वर्ष पर वर्ष बीते। उसने अपने ‘मैं’ गलाया मिटाया, पिघलाया। जिस दिन उसका मैं बिल्कुल पिघल गया, जिस दिन नाममात्र भी न रहा, जिस दिन उसने भीतर झांककर देख लिया और परम शून्य को विराजमान पाया, जिसमें ‘मैं’ की कोई धुन न उठती थी। आया, द्वार पर दस्तक दी।
फिर वही प्रश्नः
कौन है?
अब प्रेमी ने कहाः अब कौन? तू ही है।
और द्वार खुल गए।
यह रूमी की छोटी सी कविता, भक्त की सारी भाव-दशा है।
अगर तुम्हारी प्रार्थना में मैं का स्वर है तो द्वार-दरवाजे बंद रहेंगे परमात्मा के। लाख सिर पटको, मैं के लिए द्वार न कभी खुला है, न कभी खुलेगा। मैं ही तो ताला है उस द्वार पर। तुम्हारा मैं उसके द्वार पर ताला है। और परमात्मा तुम्हारे मैं को नहीं खोल सकता। ताला तुम लगाते हो, तुम ही खोल सकोगे और तुम्हारा मैं हट जाए, तुम्हारे मैं का ताला गिर जाए तो

द्वार खुला ही है। द्वार कभी बंद नहीं था। तुम्हारी आंख पर ही पर्दा है, परमात्मा पर कोई पर्दा नहीं है।
लोग सोचते हैं परमात्मा कहीं छिपा है। परमात्मा कहीं भी नहीं छिपा है। तुम आंख बंद किए खड़े हो। यह तुम्हारा मैं तुम्हारे चारों तरफ एक काली दीवार बन गया है। प्रार्थना का अर्थ है, मैं गिर जाए, यह भाव मिट जाए कि मेरे किए कुछ हो सकेगा। मेरे किए तो जो हुआ है, सब गलत हुआ है। मेरे किए तो संसार हुआ। मेरे किए तो देह बनी। मेरे किए तो जाल फैले। मेरे किए तो वासना उठी। मेरे किए तो कर्म का बहुत जंजाल फैला। मेरे किए जो भी हुआ, गलत हुआ। मेरे किए सारी चिंता और संताप, पीड़ा और पागलपन पैदा हुए।
प्रार्थना का अर्थ है, अब ऊब गया हूं इस मैं से और मेरे करने से। अब कहता हूं, तू कर--प्रार्थना का सारभूत। प्रार्थना से कुछ मतलब नहीं कि तुम अल्लाह-अल्लाह पुकारो कि राम-राम पुकारो। वे तो गौण बातें हैं। न भी पुकारो, चुप्पी में भी हो जाएगी प्रार्थना। मगर एक मूल बात है कि मैं को उतारकर रखो। फिर न भी पुकारे तो पुकार पहुंच जाती है। और मैं के रहते लाख पुकारते रहो तो भी पुकार नहीं पहुंचती।
और जब तुम रहे ही नहीं तो जल्दबाजी कैसी? जल्दबाजी किसकी? फिर कौन अधैर्य करेगा? और कौन कहेगा कि जल्दी हो जाए? यह भी मैं की अपेक्षा है कि जल्दी हो जाए। मैं डरा हुआ है कि समय न निकल जाए। क्योंकि मैं का समय बंधा हुआ है। मैं शाश्वत नहीं है, क्षणभंगुर है। इसलिए मैं बहुत समय के बोध से भरा हुआ है। मैं हटा कि फिर तो जो बचा, वह शाश्वत है। फिर कोई जल्दी नहीं है। आज हो, कल हो, परसों हो सब बराबर है। अनंत काल में कभी भी हो, सब बराबर है। फिर समय की जो आपा-धापी है, वह जो घबड़ाहट है कि समय बीता जा रहा है, कहीं ऐसा न हो कि मैं मर ही जाऊं और यह घटना न घटे... ।
कल मैं एक कविता पढ़ रहा था,

तू ही है बहकते हुओं का इशारा
तू ही है सिसकते हुओं का सहारा
तू ही है दुखी दिलजलों का हमारा
तू ही भटके-भूलों का है ध्रुव का तारा
जरा सींकचों में समां दिखा जा
मैं सुध खो चुकूं उससे कुछ पहले आजा आओ तुम अभिनव उल्लास भरे
नेह भरे, ज्वार भरे, प्यास भरे
अंजली के फूल गिरे जाते हैं
आए आवेश फिरे जाते हैं
जरा सींकचों में समां दिखा जा
मैं सुध खो चुकूं उससे कुछ पहले आ जा

मैं को बड़ी जल्दी है। मैं को डर यही है कि मौत आई जाती है। और मैं की मौत तो निश्चित है। मैं का होना चमत्कार है, मैं की मौत तो बिल्कुल स्वाभाविक है। मैं को कैसे सम्हाले हो यही चमत्कार है, मैं गिरा-गिरा, अभी गिरा। किसी भी क्षण गिर जाएगा। यह तो कभी भी टूटने को तत्पर है। इसे सम्हालने के लिए सारा जीवन लगाना पड़ता है फिर भी यह सम्हल तो पाता नहीं, एक दिन गिर ही जाता है। मौत इसी की होती है।
मैं की चूंकि मौत होने वाली है इसलिए मैं समय से बहुत घबड़ाया हुआ है। मैं को समय का बड़ा बोध है। जल्दी हो जाए, अभी हो जाए, इसी क्षण हो जाए।
तुम्हें क्या डर है? मैं को जरा हटा कर अपनी शक्ल तो पहचानो। मैं को जरा हटा कर अपना रूप तो देखो। तुम शाश्वत हो। तो कभी मिले, अनंतकाल में मिले तो भी अभी मिला। देर होती ही नहीं फिर। इसलिए प्रार्थना का अनिवार्य अंग है।
प्रतीक्षा। अनंत धैर्य से भरी प्रतीक्षा।
हरि से लगे रहो रे भाई, बनत-बनत बनि जाई।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि दो ही मार्ग हैं, ध्यान और भक्ति। ध्यान में प्रयत्न निहित है और भक्ति में प्रसाद। इस संदर्भ में अष्टावक्र, बोधिधर्म और कृष्णमूर्ति के दर्शन को क्या कहेंगे, जो कोई भी अनुष्ठान नहीं बताते?

सत्य को जानने, सत्य में जागने के दो ही मार्ग हैंः भक्ति और प्रेम। फिर स्वभावतः प्रश्न उठता है कि अष्टावक्र तो कहते हैं, कोई मार्ग नहीं। बोधिधर्म भी कहता है, कोई मार्ग नहीं। कृष्णमूर्ति भी कहते हैं कि कोई मार्ग नहीं।
तो वे जो प्रस्तावित करते हैं, अमार्ग है। उसकी गिनती मार्ग में नहीं
हो सकती। अमार्ग से भी पहुंचा जाता है। मगर वह अमार्ग है। मार्ग तो दो हैंः भक्ति और ध्यान। अमार्ग एक है। अमार्ग को भी समझ लेना चाहिए। वह भी बात तो बड़ी गहरी है, बड़े काम की है।
बोधिधर्म, अष्टावक्र और कृष्णमूर्ति का जोर यह है कि तुम परमात्मा से कभी बिछड़े नहीं। तुम कभी दूर गए नहीं। इसलिए उसे तुम किसी मार्ग से खोजने चलोगे तो कैसे पाओगे? तुम तो वहां हो ही। इसलिए तुम अगर सब खोज छोड़ दो तो पहुंच गए। खोज के कारण भटक रहे हो। क्योंकि खोज का मतलब ही हुआ कि कहीं दूर है। खोजते हम उसी को हैं, जो दूर है। खोजते हम पर को। खोज का मतलब ही होता है, दूसरे की खोज। अपने को तो हम खोज नहीं सकते। कहां खोजेंगे? कहां जाएंगे खोजने? स्वयं तो हम हैं ही। इसलिए यह भी एक संभावना है; मगर यह दुरूहतम संभावना है। प्रेम और भक्ति से सुगमता से बात हल होती है। ध्यान थोड़ा उससे कठिन है; अमार्ग और भी कठिन। सरल दिखाई पड़ता है, इससे चूक में मत पड़ना। सरल दिखाई ही इसीलिए पड़ता है कि बहुत कठिन है। जितना सरल हो उतना ही कठिन है। कठिन को हल किया जा सकता है, सरल को हल करना बहुत मुश्किल हो जाता है। बात तो सच है कि तुम जहां हो वहीं परमात्मा है। तुम जैसे हो वैसा ही परमात्मा है। इसलिए अब कहीं जाना नहीं है।
हम सुनते हैं, वचन प्रसिद्ध है, जिन खोजा तिन पाइयां। जिसने खोजा उसने पाया। अगर पूछो बोधिधर्म से बोधिधर्म कहेगा, जिन खोजा तिन खोया। क्योंकि खोजने का मतलब है, कहीं गए। कहीं गए तो दूर गए। दोनों सच हैं। लेकिन बोधिधर्म की बात समझना तभी संभव है जब खूब-खूब खोजा हो और न पाया हो। जब खोज-खोज कर थक गए हो और न पाया हो। जब खोज आखिरी कर ली हो जितनी कर सकते थे, अहंकार जितनी दौड़ ले सकता था ले ली हो और फिर थका-हारा गिर पड़ा हो, उसी क्षण मिल जाता है। मिलता तो उसी क्षण है, जब तुम नहीं होते।
अब तुम कैसे नहीं होओगे, इसकी ये दो विधियां हैं। या तो तुम प्रेम में
गल जाओ, नहीं हो जाओगे; या तुम ध्यान में बिखर जाओ, नहीं हो जाओगे। या फिर इतनी समझदारी हो जिसको कृष्णमूर्ति अंडरस्टेंडिंग कहते हैं, इतनी प्रज्ञा हो कि न प्रेम की जरूरत हो, न ध्यान की जरूरत हो। सिर्फ बोध में यह बात सिर्फ समझ ली जाए और घटना घट जाए। कठिन हो गई बात। बोध इतना होता तो घट ही गई होती।
इसीलिए तो कृष्णमूर्ति को बैठे लोग सुनते रहते हैं, कहीं पहुंचते इत्यादि नहीं। और बात कृष्णमूर्ति ठीक ही कहते हैं, सो टका ठीक कहते हैं। शायद सौ टका ठीक है इसलिए चूक हो जाती है। लोग अभी वहां है जहां एक टका बात समझ में मुश्किल से आए। तुम सौ टका बात कहे चले जाते हो। लोगों पर ध्यान दो। वहां से बात करो जहां लोग खड़े हैं। तुम वहां से बात कर रहे हो जहां तुम हो। बोधिधर्म वहां से बोलता है जहां स्वयं है। अष्टावक्र वहां से बोलते हैं जहां स्वयं हैं। सुननेवाले की चिंता नहीं करते।
अगर में वहां से बोलूं जहां मैं हूं, फिर मैं तुम्हारे किसी काम का नहीं। फिर मेरे तुम्हारे बीच इतना फासला हो जाएगा कि तुम सीढ़ी न लगा सकोगे। अनंत दूरी हो जाएगी। मुझे वहां से बोलना है जहां तुम हो। धीरे-धीरे तुम्हें सरकाना है, फुसलाना है। किसी दिन वहां ले आना है। जहां मैं हूं। लेकिन अगर मैं वही कहूं जहां मैं हूं तो तुम्हारे लिए बेबूझ हो जाएगा। कितने लोग अष्टावक्र को समझ पाए, कितने लोग? कृष्ण की गीता ज्यादा लोगों तक पहुंची। करोड़ों जनों तक पहुंची। अष्टावक्र की गीता क्यों नहीं पहुंची?

कृष्ण की गीता में सुनने वाले की स्थिति का ख्याल है। आदमी कहां खड़ा है, वहां से शुरू करो। वहीं से उसकी यात्रा होगी। अष्टावक्र को इसकी फिकर नहीं है।
तो कोई जनक समझ लिया बात, ठीक है। लेकिन जनक कितने हैं? एक आदमी मिल गया यह भी चमत्कार है। कृष्णमूर्ति को अभी तक एक भी जनक नहीं मिला। मिल सकता नहीं। उसके कारण हैं। अष्टावक्र को भी कैसे मिला, यह भी जरा संदिग्ध है। मिला कि सिर्फ कहानी है। क्योंकि जो जनक होने की क्षमता रखता हो, वह बिना अष्टावक्र के पहुंच जाएगा। जनक होने की क्षमता का अर्थ ही यह है कि निन्यानबे डिग्री पर उबल रहा है आदमी। वही तो समझ सकेगा सौ डिग्री के पार की बात। उसके लिए करीब एक कदम बात हो जाने वाली। शायद एक कदम भी नहीं, जरा सी चहलकदमी, जरा सी गति, जरा सा धक्का! वह किनारे पर खड़ा है; खाई-खड्ड के बिल्कुल किनारे पर खड़ा है, जरा सा हवा का झोंका काफी है। न भी आता हवा का झोंका तो वह खुद भी कूद जाता। सामने ही खड़ा था परमात्मा। परमात्मा सामने ही फैला था। अष्टावक्र न भी मिलते तो जनक पहुंच जाते।
अष्टावक्र उसी के काम के हैं जिसको न भी मिलते तो पहुंच जाता। तो बड़े काम के नहीं हैं। वक्तव्य बहुत महान है। लेकिन काम का नहीं, उपयोगी नहीं। कृष्ण अर्जुन की बात बोल रहे हैं, अर्जुन जहां खड़ा है। इसलिए अष्टावक्र की गीता में पुनरुक्ति है। पुनरुक्ति ही पुनरुक्ति है क्योंकि वह एक ही बात है। बोलने को। एक ही डिग्री का मामला है। वह एक ही बात बोले चले जाते हैं। फिर-फिर दोहराते हैं, फिर-फिर दोहराते हैं। खुद भी वही दोहराते हैं शिष्य भी वही दोहराता है। अष्टावक्र की पूरी गीता एक पृष्ठ में लिखी जा सकती है, एक पोस्टकार्ड पर लिखी जा सकती है। क्योंकि जो अष्टावक्र कहते हैं, वही जनक दोहराते हैं। फिर जनक दोहराते हैं, फिर अष्टावक्र दोहराते हैं। वह सिर्फ दोहराना है। बार-बार दोहराना है। क्योंकि कुछ और तो कहने को है नहीं। एक ही सत्य है वहां। उसी एक सत्य को बार-बार कहना है।
कृष्ण बहुत सी बातें कहते हैं--ज्ञान की, भक्ति की, कर्म की। कृष्ण सारे मार्गों की बात कहते हैं। क्योंकि अर्जुन ऐसे बिबूचन में पड़ा है। इसको पक्का पता भी नहीं कि यह कहां खड़ा है? यह बीच बाजार में खड़ा है, जहां से बहुत रास्ते निकलते हैं। सभी रास्ते इसको समझाते हैं। यह नहीं जंचा दूसरा समझाते हैं, यह नहीं जचा दूसरा समझाते हैं। किसी भी रास्ते से आ जाए। कृष्ण को इसकी कोई चिंता नहीं कि किस रास्ते से आता है। कृष्ण का किसी मार्ग से कोई मोह नहीं है। और कृष्ण को यह फिक्र नहीं है कि मैं जहां खड़ा हूं वह बात इसे आज समझ में आ जाए। यह अपेक्षा जरा ज्यादा है, यह जरूरत से ज्यादा है।
इसलिए कृष्णमूर्ति को तुम पाओगे, बड़े बेचैनी में हैं। समझाते-समझाते
थक गए हैं। पचास साल से समझा रहे हैं। बोलते-बोलते सिर पीट लेते हैं। क्योंकि दिखाई ही नहीं पड़ता कि किसी को समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा। वे ही लोग बैठे सुन रहे हैं। उनमें कई पचास साल से सुनने वाले भी हैं, जो कृष्णमूर्ति जैसे बूढ़े हो गए हैं। उनको सुनते-सुनते बूढ़े हो गए हैं। और फिर भी कुछ क्रांति नहीं घटी। पचास साल में बड़ी यात्रा हो सकती थी। लेकिन बात वहां से शुरू होनी चाहिए, जहां आदमी खड़ा हो।
तो अमार्ग का मार्ग तो करोड़ में एकआध के लिए है। इसलिए उसको मार्ग भी क्या कहना?
चीनी कथा है कि लाओत्सु ने एक बार अतीत साहित्य और समृद्धि की बहुत चर्चा करने के लिए कनफ्यूशियस का मजाक उड़ाया था। कनफ्यूशियस उससे मिलने आया था। लाओत्सु ने उससे कहा था, तुम्हारे सारे प्रवचन उन वस्तुओं से संबद्ध हैं जो धूल में छोड़े गए चरण-चिह्नों से ज्यादा नहीं हैं। और जानते हैं कि चरण-चिह्न जूतों से बनते हैं लेकिन वे जूते ही नहीं होते? कहते हैं, लाओत्से की हंसी की आवाज गूंजती ही रही सदियों में। कनफ्यूशियस कुछ जवाब भी नहीं दे सका था।
लाओत्सु के लिए तो जो भी वास्तविक मार्ग है--अमार्ग कहें--वह ऐसा है, जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, कोई चरण-चिह्न नहीं छोड़ते। पक्षी उड़ जाता

है, कोई रेखा नहीं छूट जाती। कोई मार्ग नहीं बनता है। जमीन पर चलने जैसा नहीं है सत्य, आकाश में उड़ने जैसा है।
जमीन पर तो मार्ग बनता है। तुम चलोगे तो मार्ग बनता है, पगडंडी बनती है। कई लोग गुजरेंगे तो मार्ग और सघन हो जाता है। मार्ग बनता है। इतने भक्त गुजरे हैं, अनंतकाल में तो भक्ति का एक मार्ग बन गया है। इतने ध्यानी हुए हैं अनंतकाल में कि ध्यान का एक मार्ग बन गया है। लेकिन ये अष्टावक्र, बोधिधर्म, लाओत्सु, कृष्णमूर्ति, इनका कोई मार्ग नहीं। वे कहते हैं आकाश में उड़ने जैसा है सत्य। ठीक है, मगर आकाश में उड़ने वालों के लिए ठीक है। जो अभी जमीन पर चल रहे हैं, इनके संबंध में क्या? चल भी नहीं रहे हैं,
जो जमीन पर घसिट रहे हैं, इनके संबंध में क्या? जिन्होंने जमीन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जाना है, इनके संबंध में क्या? जिनको अपने पंखों का कोई पता ही नहीं है, इनके संबंध में क्या? इनको बहुत दूर का आकाश दिखाई दे भी जाए तो भी सिर्फ ये तड़फेंगे, उड़ न सकेंगे। इन्हें पता ही नहीं इनके पास पंख हैं। इनके पंखों को धीरे-धीरे जगाना होगा। सोए पंखों को धीरे-धीरे जगाना होगा। इनके सोए पंखों को धीरे-धीरे उकसाना होगा। इन्हें धीरे-धीरे राजी करना होगा। क्रमशः धीरे-धीरे, इनकी हिम्मत बढ़ जाए। पंख इनके पास हैं, परमात्मा इनके पास है, अगर ये आंख खोल सकें तो अभी पास हैं। मगर आंख ही नहीं खोलते, वही तो झंझट है। आंख तो भींचे हुए बैठे हैं। इन्हें धीरे-धीरे राजी करना होगा। आहिस्ता-आहिस्ता ये आंख खोलें। आहिस्ता-आहिस्ता खोलने का नाम मार्ग है। तत्क्षण खोल देने का नाम अमार्ग है।
कहते हैं कि कबीर जब युवा थे तब की घटना है। कुछ लोग उनसे ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग पूछने आए थे। वे बौद्धिक रूप से उसके रहस्यमय पथ के संबंध में मार्ग-निर्देश चाहते थे। रवींद्रनाथ ने इस पर टिप्पणी की है। रवींद्रनाथ ने लिखा है, कबीर ने इतना ही कहा, मार्ग दूरी को प्रस्तावित करता है। समझना। मार्ग दूरी को प्रस्तावित करता है, पर वह यदि निकट हो तो कोई भी मार्ग आवश्यक नहीं। सच, मुझे बहुत हंसना आता है कि मछली सागर में ही प्यासी है।
पाथ प्रिसपोजेज डिस्टेंस,
इफ ही बी नियर, नो पाथ नीड अस दाउ एट ऑल
बेयरली इट मेकेथ मी स्माइल, टू हियर ऑफ ए
फिश इन ए वाटर इ.ज थर्सटी।
मार्ग का मतलब ही है कि दूर। मार्ग दूरी को प्रस्तावित करता है। अगर पास ही है तो कैसा मार्ग? और अगर तुम ही हो तो इंच भर फासला नहीं, तो मार्ग कहां बनाओगे? तो जितना तुम चलोगे उतने भटक जाओगे।
बात बिल्कुल तर्कयुक्त है कि जितना चलोगे उतना भटक जाओगे। चलो मत, जागो। होश जगा लो। जहां हो वहीं दीया जला लो। और सब हो जाएगा। लेकिन यह बात तुम्हारे कानों पर ऐसे पड़ेगी, जैसे बहरे कानों पर पड़ी। यह बात कुछ अर्थ न रखेगी। सुन भी लोगे, भाषा समझते हो तो समझ भी लोगे, मगर फिर इससे कुछ द्वार न खुलेगा।
भक्त कहता हैः अभी तो दूरी है।
जब जागोगे तो पाओगे, कोई दूरी न थी।
अभी तो दूरी है। अभी तो बड़ी दूरी है। अभी तो अनंत दूरी है। माना कि अनंत दूरी झूठ है, लेकिन अभी है। झूठ ही सही, अभी है।
तुम अगर डरे हुए हो तो भला तुम झूठे भूत से डरे हुए हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? भय तो सच्चा है। एक अंधेरी रात में तुम एक मरघट से गुजरते हो। तुम डरे हुए हो कि भूत-प्रेत सताएंगे। भूत-प्रेत कोई भी नहीं है। हो सकता है मरघट मरघट ही न हो, सिर्फ तुम्हें ख्याल है; या किसी ने मजाक कर दिया है कि जरा संभल कर निकलना, रास्ते में मरघट है, लेकिन तुम्हें ख्याल आ गया, कि मरघट है, अब तुम डरे हुए हो। अब जरा पत्ता खड़कता है तो तुम्हें लगा कि आया भूत। जरा कुत्ता निकल जाता है, पक्षी फड़फड़ाता है, तुम्हें लगा आ गया। तुम भागने लगे। तुम्हारी छाती धड़क रही है, तुम्हारे हाथ-पैर कांप रहे हैं, तुम पसीने से तरबतर हो। तुमने होश खो दिया है एक पत्थर से चोट खा गए, समझा कि गए! गिर पड़े कि बेहोश ही हो गए।

भूत झूठ है, सच; लेकिन यह जो तुम्हें घट रहा है, यह पसीना बहना और छाती
की धड़कन और यह होश खो देना, यह तो सब सच है। भूत झूठ हो कि सच इससे क्या फर्क पड़ता है? जो घट रहा है वह तो सच है। इसलिए असली सवाल यह नहीं कि भूत है या नहीं। अब कोई आदमी वहां तुम्हें समझाए कि तुम व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो, भूत है ही नहीं। तो तुम इस बात को सुन भी लो तो भी समझ न पाओगे। तुम्हारे लिए कोई उपाय चाहिए। तुम्हारे लिए कोई उपाय चाहिए जो झूठे भूतों से तुम्हें मुक्त करा दे। माना कि उपाय भी झूठा होगा। क्योंकि झूठ केवल झूठ से कटता है। झूठ को काटने के लिए सच की जरूरत नहीं होती। झूठ केवल झूठ से कट जाता है। लेकिन अभी काटने के लिए कोई उपाय चाहिए होगा। और एक बार कट जाए झूठ तो तुम भी समझ लोगे कि मरघट भी नहीं है, भूत भी नहीं है। मैं व्यर्थ ही घबड़ा रहा था। घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। तब तुम भी हंसोगे। तुम भी राजी हो जाओगे कि बात तो ठीक थी, सब झूठ का ही जाल था।
भक्ति और ध्यान मनुष्य के प्रति ज्यादा करुणापूर्ण हैं। अमार्ग की बात करुणापूर्ण नहीं है। सत्य तो है लेकिन करुणा नहीं है, दया नहीं है। बड़ी कठोर है। इसलिए कृष्णमूर्ति कठोर मालूम होंगे। इसलिए कृष्णमूर्ति गुरु नहीं हो सके। इतनी कठोरता से गुरु नहीं हुआ जा सकता।
गुरु के लिए अपार करुणा चाहिए। इतनी करुणा चाहिए कि वह उन घाटियों में चला जाए जहां उसके शिष्य भटक रहे हैं। इतनी करुणा चाहिए कि उन्हीं अंधेरे रास्तों पर पहुंच जाए जहां उसके शिष्य अटक रहे हैं। उनका हाथ पकड़े, उन्हें वापस पहाड़ के शिखर की तरफ ले चलने लगे रास्ता कठिन होगा। और शिष्य इनकार करेंगे ऊपर चढ़ने से। हर तरह की बाधाएं डालेंगे। बार-बार वापस खाई खड्ड में भाग जाना चाहेंगे। बार-बार उसे लौट कर आना होगा। बार-बार उनका हाथ पकड़ना होगा। शिष्य उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे। क्योंकि उनके वह नाहक पीछे पड़ा है। वे मजे से सो जाना चाहते हैं, वह जगा रहा है। वे संसार में थोड़ा और रस ले लेना चाहते हैं और वह उन्हें विरस किए दे रहा है। वे चाहते थे कि घर-गृहस्थी बना लें और वह सब उजाड़े दे रहा है। अभी तो उनको यह ऐसा लगेगा कि यह दुश्मन है। शिष्यों को गुरु दुश्मन जैसा मालूम होगा। और गुरु है कि लौट-लौट कर आएगा और उन्हें वापस ले चलने लगेगा।
एक आदमी वह भी है, जो पहाड़ के शिखर पर पहुंच गया, वहां से खड़े होकर चिल्ला देता है कि घाटी के लोगो, सुन लो बात ऐसी है, सत्य ऐसा है। मगर घाटी के लोग बहुत दूर हैं, वहां तक न तो आवाज पहुंचती है, और आवाज भी पहुंच जाए तो अर्थ नहीं पहुंचता। और अर्थ तो पहुंच ही कैसे सकता है? क्योंकि वे तो तुम्हारे शब्दों का जो अर्थ करेंगे वह उनका ही होगा; वह अर्थ घाटी का होगा, वह शिखर का नहीं हो सकता। उन्होंने शिखर कभी देखा नहीं। शिखर की भाषा से वे परिचित नहीं हैं।
इसलिए मार्ग तो दो ही हैंः भक्ति और ध्यान। अमार्ग एक और है। अगर तुम अमार्ग को भी मार्ग में गिनना चाहो तो तीन मार्ग गिन लो। मगर वह चूंकि अमार्ग है इसलिए मैं उसकी गिनती नहीं करता। और चूंकि कभी कोई उससे पहुंचता है, उसको छोड़ा जा सकता है। उसका हिसाब रखने की कोई जरूरत नहीं। और जो उससे पहुंचता है वह ऐसा बिरला व्यक्ति है कि उसको हम अपवाद मान ले सकते हैं। उसको नियम बनाने की जरूरत नहीं है।
अमार्ग के मार्ग पर गुरु नहीं होता। अमार्ग के मार्ग पर कोई विधि नहीं होती। अमार्ग के मार्ग पर यह पूछना कि कैसे करें, गलत प्रश्न पूछना है। अमार्ग के मार्ग पर प्रश्न ही पूछना गलत है। क्योंकि अमार्ग का मार्ग तो यह मानकर चलता है कि तुम वहां हो ही। बस आंख खोलो और देख लो। और बात सच है। बात जरा भी गलत नहीं है। मगर करुणा शून्य है। जरा भी भाव-भीनी नहीं है। रूखी-सूखी है--मरुस्थल जैसी।
भक्ति भी वहीं पहुंचाती है लेकिन तुम पर दया करती है। धीरे-धीरे।
मैंने सुना है कि जंगल में लोमड़ियां एक तरह का प्रयोग करती हैं। वही भक्ति और वही ध्यान का प्रयोग है। लोमड़ी के ऊपर कभी-कभी मधुमक्खियां बैठ जाती हैं, या मक्खियां बैठ जाती हैं। उनसे कैसे छुटकारा पाए? मुंह हिलाती है तो वे पीछे बैठ जाती हैं, पूंछ पकड़ लेती हैं। पूंछ हिलाती है तो सिर पर बैठ जाती हैं। सिर और पूंछ दोनों हिलाए तो बीच में बैठ जाती हैं। भागे तो

भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वे मक्खियां बैठी रहती हैं। उसके ऊपर उड़ती हैं। वे उसे बड़े कष्ट में डाल देती हैं।
तो लोमड़ी क्या करती है? जिन लोगों ने लोमड़ियों का अध्ययन किया है वे कहते हैं, वह बड़ी कुशलता का काम करती है। वह क्या करती, नदी में या तालाब में उतर जाती। उलटी उतरती--पूंछ की तरफ से पहले। पहले उसकी पूंछ डूब जाती पानी में तो मक्खियां उसकी पूंछ छोड़ देती। फिर उसकी पीठ डूब जाती तो मक्खियां उसकी पीठ छोड़ देतीं फिर उसकी गर्दन भी डूबने लगी तो मक्खियां उसकी गर्दन भी छोड़ देती। और भी लोमड़ी बड़ा होशियारी का काम करती है, एक पत्ता मुंह में पकड़ लेती है। फिर वह और बिल्कुल डुबने लगी तो उसका सिर भी डूबने लगा। तो वे सारी मक्खियां उसकी नाक पर आ जातीं। फिर आखिरी झपके में वह अपनी नाक को भी डुबकी मार देती है। तो सारी मक्खियां पत्ते पर आ जाती हैं। वह पत्ते को छोड़ देती है। पत्ता नदी में बह जाता है।
क्रमशः, धीरे-धीरे एक-एक कदम। घटना तो एक ही क्षण में घटती है यह सच है। क्योंकि जब तक मक्खियां उसकी नाक पर बैठी हैं तब तक सब मक्खियां बैठी हैं। पूंछ पर नहीं हैं, पीठ पर नहीं हैं मगर लोमड़ी पर तो हैं ही। अभी नाक पर बैठी हैं। अभी मक्खी एक भी गई नहीं है। आखिरी क्षण तक भी सब मक्खियां उस पर बैठी हैं। जाती तो एक ही क्षण में हैं। जब वह आखिरी डुबकी मारती है, एक क्षण में पत्ते पर सारी मक्खियां हो जाती हैं और पत्ता बह जाता है, मक्खियों को ले जाता है। क्रमशः नहीं घटती बात--याद रखना।
यह मत सोचना कि भक्त क्रमशः भगवान के करीब आता है। और यह भी मत सोचना
कि ध्यानी क्रमशः समाधि के करीब आता है। नहीं, घटना तो आकस्मिक ही है। घटना तो अनायास ही है। घटता तो एक क्षण में ही घटती है। मगर घटना की तैयारी क्रमिक होती है। इस भेद को ठीक से समझ लेना। अमार्ग के मार्गी कहते हैं कि एक क्षण में घटती है। ठीक कहते हैं, एक ही क्षण में घटती है। मगर तैयारी... तैयारी में कभी वर्षों लगते हैं, कभी जन्म भी लग जाते हैं।
और यह ध्यान रखना कि जब तक घटी नहीं है तब तक जिसने तैयारी की है और जिसने तैयारी नहीं की है, दोनों एक से ही अंधकार में खड़े हैं। मगर जिसने तैयारी की है वह निन्यानबे डिग्री पर उबल रहा हो, और जिसने तैयारी नहीं की है, वह हो सकता है चालीस डिग्री उबल रहा हो, कि तीस डिग्री पर, कि कुनकुना मात्र हो कि अभी ठंडा ही हो कि बर्फ ही हो। कोई भी नहीं अभी भाप बना है। लेकिन जो निन्यानबे डिग्री के पास आ गया है वह भाप बनने के करीब है। भाप तो एक क्षण में बनेगी। सौ डिग्री--और छलांग।
भक्त भी जानते हैं कि छलांग ही लगती है। मगर छलांग की वे बात नहीं करते। वे कहते हैं वह तो जब लगनी है, लग जाएगी। उसकी क्या बात करनी! तुम तैयारी तो करो। तुम मक्खियों को धीरे-धीरे धीरे-धीरे नाक तक तो ले आओ कि फिर पत्ता ही बचे उनको बचने के लिए। फिर पत्ते को छोड़ देना, जैसे ही वे पत्ते पर छलांग लगा जाएं, एक क्षण में मुक्त। मक्खियों से छुटकारा हो जाए।

तीसरा प्रश्नः शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वेद कितेब के गम नाहीं
खुले जब चश्म, हुस्न सब पश्म है
दिन और दूनी से कम नाहीं
शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
तत्व झंकार ब्रह्मांड माहीं
कहत कमाल कबीर जी को बालका
योग सब भोग त्रिलोक नाहीं

पूछा है नानक देव ने।
प्यारे वचन हैं। अर्थपूर्ण वचन हैं। समझो।
शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वह जो रहस्य का चांद है--गैब का चांदना। वह जो परम रहस्य की ज्योति है,
वह शून्य में जल रही है। अगर उस परम रहस्य में उतरना है तो शून्य में उतरना पड़े। शून्य के शिखर में। शून्य के शिखर पर चढ़ना पड़े। अहंकार की घाटी छोड़नी

पड़े। यह अहंकार के अंधेरे, खाई खड्ड छोड़ने पड़ें। शून्य के शिखर पर उठना पड़े। धीरे-धीरे मिटना है। जो मिटता है वही परमात्मा को पाने का अधिकारी होता है।
शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वेद कितेब के गम नाहीं
वहां न वेद जाते हैं, न किताब जाती है। वहां इनकी गति नहीं है। वह तो अगम है। वहां किसी की गति नहीं है। वहां तुम भी नहीं जा सकते। वहां कोई नहीं जा सकता। वहां तो जब शून्य हो जाते हो तब जाते हो। शून्य ही जाता है शून्य की ही गति है शून्य में।
परमात्मा के पास वही पहुंचता है जो सब भांति मिट गया। जिसने अपने को बचाया ही नहीं। जिसने बचाने के सारे आयोजन छोड़ दिए। सुरक्षा के सब उपाय छोड़ दिए। परमात्मा में पहुंचना एक तरह का आत्मघात है। असली आत्मघात! जिसको तुम आत्मघात कहते हो वह तो शरीर-घात है। उसमें तो आदमी का शरीर मर जाता है। दूसरा शरीर हो जाएगा। आत्मघात नहीं है वह। उसको आत्मघात नहीं कहना चाहिए। आत्मघात तो समाधि में घटता है। जब तुम बिल्कुल ही मिट गए। बचे ही नहीं। रूपरेखा भी न रही।
शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वेद कितेब के गम नाहीं
वहां शब्द नहीं जाते। वहां सिद्धांत नहीं जाते। वहां शास्त्र नहीं जाते। वहां हिंदू-मुसलमान ईसाई की तरह तुम न जा सकोगे। वहां हिंदुस्तानी- चीनी-जापानी की तरह तुम न जा सकोगे। वहां गोरे और काले की तरह तुम न जा सकोगे। वहां स्त्री-पुरुष की भांति तुम न जा सकोगे। वहां जवान बूढ़े की भांति तुम न जा सकोगे। वहां ज्ञानी-अज्ञानी की भांति तुम न जा सकोगे। जब तक तुमने कोई भी अपनी परिभाषा पकड़ रखी है, कोई भी तुमने सीमा बांध रखी है, तुम न जा सकोगे। जब तुम सारी परिभाषाएं छोड़ दोगे, सीमों छोड़ दोगे, तुम जानोगे ही नहीं कि मैं हूं, ऐसा शून्य तुम्हारे भीतर जगमगाएगा, थर-थराएगा तब तुम जा सकोगे।
खुले जब चश्म, हुस्न सब पश्म हैं
और असली बात आंख के खुलने की है। जब आंख खुल जाए तो सब दिखाई पड़ जाता है।
खुले जब चश्म, हुस्न सब पश्म हैं
फिर उसका सौंदर्य सब तरह दिखाई पड़ता है। दूर नहीं है, निकट से भी निकट है; पास से भी पास है। हर घड़ी मौजूद है। पर बात इतनी है कि आंख बंद है। अंधे हैं हम और सूरज द्वार पर खड़ा है। और हम पूछ रहे हैं कि सूरज कहां? हम पूछते हैं, रोशनी कहां? अंधे हैं हम, असली बात तो नहीं पूछते कि आंख कैसे खुले? पूछते हैं कि सूरज है या नहीं? सूरज होता है या नहीं? प्रमाण क्या है सूरज के होने का? और जो हमें प्रमाण देते हैं, वे अंधों से भी गए-बीते हैं। किसी ज्ञानी ने परमात्मा के लिए कोइ्र प्रमाण नहीं दिया है? जिन्होंने दिया वे सब अज्ञानी हैं। परमात्मा के लिए प्रमाण दिया ही नहीं जा सकता। वह तो ऐसा ही होगा जैसे अंधे आदमी को तुम प्रकाश का प्रमाण दो कि प्रकाश है। क्या प्रमाण दोगे?
बुद्ध के पास एक अंधे को लाया गया था। बड़ा तार्किक था अंधा। गांव भर
को परास्त कर चुका था। गांव के पंडितों को हरा दिया था। सभी उसको बुद्ध के पास ले आए थे कि हम तो हार गए। आप आए हैं, कृपया करके इसे थोड़ा समझा दें। यह कहता है कि प्रकाश होता ही नहीं। और हम इसे तर्क के द्वारा नहीं समझा पाते। यह बड़ा तार्किक है। ऐसा तार्किक हमने देखा नहीं। यह कहता है, अगर प्रकाश हो तो लाओ, मेरे हाथ में रख दो, मैं छू कर देख लूं। अगर प्रकाश हो, तुम कहते हो कि छुआ नहीं जा सकता तो जरा उसे बजाओ, मैं उसकी आवाज सुन लूं। अगर आवाज भी न होती हो, जरा मुझे चखाओ, मैं उसका स्वाद ले लूं। अगर स्वाद भी न होता हो तो मेरे नासापुटों के करीब ले आओ, मैं जरा उसकी गंध ले लूं।
अब न तो प्रकाश में कोई गंध होती, न कोई स्वाद होता, न उसे छुआ जा सकता
और न उसको चोट मारकर कोई संगीत पैदा किया जा सकता, कोई आवाज, झनकार पैदा की जा सकती। तो यह अंधा हंसता है। यह कहता है, खूब रही। तो तुम मुझे बुद्धू

बनाने चले हो? तुम भी अंधे हो पागलो। और प्रकाश इत्यादि कहीं होता नहीं। अफवाहें हैं, झूठे लोगों ने उड़ा रखी हैं। और इन सबका एक ही प्रयोजन है कि तुम यह सिद्ध करना चाहते हो कि मैं अंधा हूं; हालांकि तुम सब अंधे हो। आंख किसी के भी पास नहीं है। कहां है प्रकाश? मुझे प्रमाण दो।
बुद्ध ने सुनी सारी बात। वह अंधा बड़ा अकड़ कर बैठा था। उसने कहा कि आपके पास कोई प्रमाण हो तो बताइए, मैं एक-एक प्रमाण को खंडन करूंगा। बुद्ध ने कहा, मैं इन पागलों जैसा पागल नहीं हूं। तुझे प्रमाण की जरूरत ही नहीं। मैं एक वैद्य को जानता हूं--बुद्ध का खुद का वैद्य था--जीवक के पास चले जाओ। जीवक उस वैद्य का नाम था। वह अपूर्व कुशल वैद्य है। वह कुछ करेगा। तुम्हें प्रमाण की जरूरत नहीं, औषधि की जरूरत है। तुम्हारी आंख खुलनी चाहिए। प्रकाश का प्रमाण और कुछ होता नहीं है। आंख खुल जाए तो प्रकाश है, आंख बंद तो पंकाश नहीं। हो लाख, इससे क्या फर्क पड़ता है? आंख बंद तो नहीं है! तो तुम जाओ।
वह आदमी भेजा गया। बुद्ध के वैद्य ने बड़ी मेहनत की। छह महीनों में उस आदमी की आंखों का जाला कट गया। वह अंधा तो था नहीं। अंधा कोई भी नहीं है। जाला है आंख पर; जन्मों-जन्मों का जाला है, कट गया। आंख खोली उसने तो देखा, सारा जगत प्रकाश से भरा है। एक-एक पत्ते पर प्रकाश नाच रहा है। एक-एक कंकड़ प्रकाश से नहा रहा है। सारा जगत आलोकमंडित है।
वह नाचता बुद्ध के चरणों में आया। उसकी आंखों में आनंद के आंसू बह रहे हैं। वह रोमांचित हो उठा। वह बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध ने कहा, कहो क्या ख्याल है प्रमाण के संबंध में? उस आदमी ने कहा, मुझे क्षमा करें। और मेरे गांव वालों से भी मैं क्षमा मांगता हूं कि मुझे क्षमा करें। मैं अंधा था लेकिन मैं यह मानने को राजी नहीं था कि मैं अंधा हूं। वह मेरे अहंकार के विपरीत जाता था कि मैं अंधा, और सब आंख वाले? इस अहंकार को बचाने का एक ही उपाय था कि मैं सिद्ध करूं कि प्रकाश नहीं है। इसलिए मैं प्रकाश नहीं है, प्रकाश नहीं है इसकी धुन लगाए रहता था।
जितने लोग जगत में कहते हैं ईश्वर नहीं है, वे अपने अहंकार को बचाने
की कोशिश में लगे हैं। ईश्वर है तो अहंकार मिटेगा। तो यही उचित है कि कह दो कि ईश्वर नहीं है। कहां का ईश्वर! कैसा ईश्वर! प्रमाण क्या है? और ईश्वर के लिए कोई प्रमाण नहीं होता। अनुभव ही प्रमाण है।
खुले जब चश्म हुस्न सब पश्म है
आंख खुल जाए तो उसका सौंदर्य सब तरफ जाहिर है। हर तरफ से उसी के इशारे हैं। हर तरफ से वही झांकता हुआ पाओगे तुम। हर तरफ से वही बुलाता है। कोयल के कंठ में भी वही है। मोर के नाच में भी वही है। बादल जब घिर आते हैं आकाश में तो वही घिरता है। रात-चांद-तारों में भी वही है, पशु-पक्षियों में भी वही है, मनुष्यों में भी वही है। चारों तरफ वही है। एक का ही विस्तार है। एक के ही अनंत रूप हैं। एक का ही खेल है।
खुले जब चश्म हुस्न सब पश्म है
दिन और दूनी से कम नाहीं
और फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। आंख खुली हो तो दिन में भी है, रात में भी है। प्रकाश में भी है और अंधेरे में भी। आंख खुली हो तो सब हालत में है, हर हालत में है। फिर कोई शर्त की जरूरत नहीं होती। फिर संन्यासी को भी है और गृहस्थ को भी है। फिर ऐसा नहीं होता कि संन्यासी को ही है और गृहस्थ को नहीं है। फिर बुद्धिमान को भी है और बुद्धू को भी है। फिर बच्चों को भी है और बूढ़ों को भी। सुंदर-असुंदर सभी को। स्त्री-पुरुष को सभी को। फिर कोई शर्त नहीं है, फिर बेशर्त है।
शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
लेकिन तुम बड़ा छिपाए हुए हो उसको अपने भीतर और चोट नहीं लगने देते। चोट से तुम तिलमिलाते हो। जहां चोट लगती हो वहां तुम जाते नहीं। तुम तो वहां जाते हो जहां तुम्हारी दीवाल को और फुसलाया जाता हो और समझाया जाता हो कि और जरा दीवाल उठा लो। जहां तुम्हें सांत्वना दी जाती है, जहां तुम्हें संतोष दिया जाता है। वहां तुम जाते हो। सत्य जहां हो वहां तुम जाते नहीं। वहां से तुम दूर भागते हो क्योंकि सत्य की तो चोट होती है।

सदगुरु से तो तुम बचते हो। सब तरह आंख चुराते हो क्योंकि वह तुम्हारी दीवाल को, तुम्हारे कोट को, तुमने जो किला बना रखा है उसको तोड़ेगा। वह टूटे तो ही तुम्हारे भीतर छिपे हुए परमात्मा का आविर्भाव हो।
शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
वह शब्द तुम्हारे भीतर पड़ा है। वह प्यारा तुम्हारे भीतर बैठा है। वह अनाहत नाद तुम्हारे भीतर अभी भी गूंज रहा है मगर तुम किले में छिपे हो। और किले के कारण वह प्रकट हो पा रहा है। और तुमने कितने किले बना रखे हैं--धन के, पद के, प्रतिष्ठा के। इन झूठे किलों में तुम छिपे हो
शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
तत्व झंकार ब्रह्मांड माही
और मजा यह है कि उसी की झनकार हो रही है सारे ब्रह्मांड में, मगर तुम ऐसी दीवालें बना कर बैठे हो कि न तुम्हें भीतर सुनाई पड़ती है उसकी आवाज, न बाहर सुनाई पड़ती उसकी आवाज। तुम्हें सिर्फ ईश्वर की आवाज नहीं सुनाई पड़ती, और तुम्हें सब सुनाई पड़ता है। कामवासना की आवाज सुनाई पड़ती है, लोभ की आवाज सुनाई पड़ती है, मोह की आवाज सुनाई पड़ती है। सब तरह की आवाजें सुनने में तुम कुशल हो, बस एक आवाज नहीं सुनाई पड़ती उस परम तत्व की; और जिसकी झनकार सब तरफ है।
कहत कमाल कबीर जी को बालका
योग सब भोग त्रिलोक नाहीं
और जिसको तुम योग समझ बैठे हो वह भी भोग मात्र है। वह भी त्रिलोक नहीं है। जिसको तुम योग समझ बैठे हो... लोग किस बात को योग समझ बैठे हैं? कोई शरीर के आसन लगा रहा है और सोचता है, आसन-सिद्धि हो गई। तो कहीं पहुंच गए। शरीर की सिद्धि आत्मसिद्धि तो नहीं बन सकती। शरीर को खूब आड़ा-तिरछा करो, सर्कस के कर्तब सीखो, इससे कुछ होने वाला नहीं। हां, इससे अच्छा स्वास्थ्य हो जाएगा। मगर वह तो भोग ही है। अच्छा स्वास्थ्य, उससे योग का क्या लेना-देना है? थोड़े लंबे जीओगे। दूसरे अस्सी साल में मर जाएंगे, तुम सौ साल जीओगे कि डेढ़ सौ साल भी जी जाओगे। इससे क्या होगा?
बड़ी इस बात की महिमा होती है, कोई महात्मा आ जाएं गांव में कि डेढ़ सौ साल उमर है। बड़े तुम प्रभावित होते हो। मगर यह सब भोग की ही भाषा है। तुम भी डेढ़ सौ साल जीना चाहते हो इसलिए प्रभावित होते हो।
मैंने सुना है, हिमालय में एक योगी था, वह समझा रहा था लोगों को कि उसकी उम्र सात सौ साल है। एक अंग्रेज भी पहुंच गया था, यात्री था। वह भी सुन रहा था भीड़ में खड़े होकर। सात सौ साल उसे जंची नहीं। सत्तर साल से ज्यादा यह आदमी मालूम होता नहीं था। सात सौ साल! वह जरा घूमा-फिरा, पता लगाया उसने। लोगों ने कहा, भई हमें तो कुछ पता नहीं। वे कहते हैं सात सौ साल तो ठीक ही कहते होंगे। महात्मा पुरुष हैं। यह तो सदा ही से योगी ऐसा चमत्कार करते रहे हैं। तो फिर उसने उस महात्मा के शिष्य से पूछा। एक शिष्य था, होगा मुश्किल से कोई तीस साल की उमर का--लड़का ही था। महात्मा के हाथ पैर दबाना और भोजन वगैरह बना देना यह उसका काम था। उसको उसने मिलाया-जुलाया, रात एकांत में उससे मिला। बोला, भाई तू इनके पास रहता है। तू तो बता इनकी उम्र क्या? उसने कहा, मैं कुछ भी नहीं कह सकता। मैं केवल तीन सौ साल से इनके पास हूं। सात सौ साल की मैं कैसे कहूं? ये बातें हमें खूब प्रभावित करती हैं। क्यों? तुम भी जीना चाहते हो। अगर सात सौ साल जीने की कोई तरकीब मिल जाए तो आहा! तुम गदगद हो जाओ। तो अगर कोई सात सौ साल जी रहा है तो तुम्हारे भीतर आशा बलवती होती है कि अगर यह आदमी जी रहा है तो हम भी इससे जड़ी-बूटी ले लेंगे, कि कोई मंत्र ले लेंगे, कि कोई सिद्धि ले लेंगे। मगर यह तो भोग की ही भाषा है।
योग शाश्वत की बात करता है, समय की बात नहीं। वह असली योग तो न हुआ जो सात सौ साल जीने की तरकीबें बता रहा हो।
योग सब भोग त्रिलोक नाहीं
फिर कोई बैठे हैं और भीतर देख रहे हैं, कि कुंडलिनी जग रही है और रीढ़
पर कुंडलिनी चढ़ रही है, मगर ये सब भी मन के ही खेल हैं। यह भी कुछ असली बात नहीं। फिर कोई देख रहा है कि भीतर सिर में रोशनी हो गई है, कमल खिल रहे हैं,

मगर ये सब कल्पनाएं हैं। अच्छी कल्पनाएं हैं। किसी की हत्या करने की कल्पना, उससे यह कल्पना बेहतर है कि कुंडलिनी चढ़ रही है। खूब धन बना लेने की कल्पना और रुपये ही रुपये इकट्ठे होते जा रहे हैं, उससे यह बेहतर है कि भीतर रोशनी प्रकट हो रही है, तीसरा नेत्र खुल रहा है कि कमल खिल रहा है। ये कल्पनाएं बेहतर हैं। सुंदर कल्पनाएं हैं, धार्मिक कल्पनाएं हैं मगर हैं तो कल्पनाएं; है तो सब मन का ही जाल।
योग क्या है? योग शून्य-भाव है।
शून्य के शिखर में गैब का चांदना
न कोई ऊर्जा उठ रही है, न कोई कुंडलिनी जग रही है, न कोई कमल खिल रहे हैं, न सहस्रदल पैदा हो रहा है, न कोई रोशनी है, न कोई अंधकार है, परम शून्य है। सब भांति स्थिति सम हो गई। कोई दृश्य नहीं बचा, मात्र द्रष्टा बचा है। फिर से दोहरा दूं। कोई दृश्य नहीं बचा, मात्र द्रष्टा बचा है। कोई अनुभव नहीं बचा, मात्र अनुभव करने की शुद्ध क्षमता बची। अनुभव मात्र समाप्त हो गए। अनुभव संसार है। इसलिए परमात्मा का कोई अनुभव नहीं होता, जब सब अनुभव से छुटकारा हो जाता है तो जो शेष रह जाता है उसको ही हम परमात्मा का अनुभव कहते हैं।
कहत कमाल कबीर जी को बालका
कबीर का बेटा हुआ कमाल। कबीर ने उसे नाम दिया कमाल। वह कमाल का बेटा था। आदमी कमाल का था। कभी-कभी कबीर से बाजी मार ले जाता था। कबीर का ही बेटा था इसीलिए कमाल नाम दिया था।
तुमने एक प्रसिद्ध वचन सुना होगा, उसके बड़े गलत अर्थ लगाए जाते हैं। लोग समझते हैं कि कबीर कमाल पर नाराज थे। नाराज नहीं थे। नाराज हो ही नहीं सकते। कहानी है। क्योंकि कमाल ऐसे काम कर देता था जो साधारण नीति, साधारण व्यवस्था के अनुकूल नहीं होते। वह कमाल ही था। वह कुछ साधारण किस्म, मर्यादा का आदमी नहीं था।
तो कबीर को थोड़ी अड़चन होती होगी। कबीर उसे समझते थे कि वह कहां है, ठीक जगह है। लेकिन फिर भी कबीर मानते थे कि मर्यादा में ही जीना चाहिए क्योंकि लोग दिक्कत में पड़ जाएंगे। अगर सभी संत मर्यादा के बाहर जीने लगें... एकाध कृष्ण ठीक, राम भी चाहिए। मर्यादा पुरुषोत्तम भी चाहिए नहीं तो लोग बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। इसलिए लोग पूजते तो कृष्ण को हैं, मानते राम को हैं। पूजा इत्यादि करनी हो तो कृष्ण की कर लेते हैं। मगर कृष्ण को मानते इत्यादि नहीं। कृष्ण की मान कर कौन झंझट में पड़ेगा? ज्यादा देर न लगेगी, पुलिस पकड़ ले जाएगी। मानते राम को हैं, आचरण राम के जैसा करते हैं। लेकिन हिंदुओं ने हिम्मत की बात तो की कि कृष्ण को पूर्णावतार कहा है, राम को अंशावतार। वह मर्यादा ही बाधा है।
मगर मर्यादा लोगों को तो चाहिए। लोग तो ऐसी अंधेरी गली में जी रहे हैं, कि वहां तो टिमटिमाती रोशनी भी बहुत रोशनी है। जो सूरज के शिखर पर जीते हैं उनकी वे जानें, लेकिन इन लोगों के लिए तो कुछ नियम चाहिए, व्यवस्था चाहिए, मर्यादा चाहिए।
कमाल कृष्ण जैसा आदमी था। वह कोई मर्यादा इत्यादि मानता नहीं था। मर्यादा की उसे कोई चिंता भी न थी। वह भी एक अभिव्यक्ति है संतत्व की। वह आखिरी अभिव्यक्ति है। मगर कबीर व्यवस्था में थोड़ा अर्थ देखते थे। अंधों के लिए हाथ में लकड़ी चाहिए। तुम आंख वाले भी हो गए तो भी अंधों की लकड़ी मत छीन लो, इतना ही कबीर का कहना था। माना कि लकड़ी की कोई जरूरत नहीं है मगर आंख पहले होनी चाहिए, तब लकड़ी की कोई जरूरत नहीं है। नीति चली जाती है; धर्म पहले आ जाना चाहिए। मगर नीति छीन लो लोगों से और धर्म आए न, तो तुमने उन्हें और अड़चन में डाल दिया। अंधे तो थे, हाथ की लकड़ी भी गई। बीमार तो थे, औषधि भी गई, स्वास्थ्य का तो कुछ पता नहीं है।
इसलिए कबीर कभी-कभी कमाल को डांटते-डपटते रहे होंगे। फिर आखिर में तो ऐसी हालत आ गई कि कबीर ने कह दिया कि तू अलग ही रहने का इंतजाम कर ले क्योंकि वह उन्हीं के पास रहता। कबीर कुछ कहते, वह कुछ कह देता। कबीर के शिष्यों को बातें बता देता ऐसी कि वे गड़बड़ा जाते।

मगर कबीर नाराज नहीं थे। वचन तुमने सुना होगा, कबीर का वचन प्रसिद्ध
हो गया है। लोग यही सोचते हैं, कबीरपंथी भी यही सोचते हैं कि कबीर ने नाराजगी में कहा। कबीर नाराज तो हो नहीं सकते। उनको लोगों पर भी दया है। वे लोगों को समझते हैं इसलिए मर्यादा की भी बात करते हैं। वे कमाल को भी समझते हैं क्योंकि वे खुद भी उसी शून्य के शिखर पर खड़े हैं। वे कमाल को नाराज तो हो ही नहीं सकते। उन्होंने कहाः बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।
लोग समझते हैं कि यह नाराजगी में कहा है कि मेरा वंश नष्ट कर दिया है
इस कमाल ने पैदा होकर। नाराजगी में नहीं कहा है। इस वचन को समझो--‘बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।’ लोग समझते हैं, शायद पूत व्यंग में कहा है। जैसा हम कहते हैं न, किसी कपूत को कहते हैं सपूत। कि ये सपूत चले आ रहे हैं। कि ये सपूत क्या पैदा हो गए, डुबा दी; सब मर्यादा डुबा दी। नाव डुबा दी। इन सपूत के कारण सब वंश नष्ट हो गया।
ऐसा मतलब नहीं है। मतलब ऐसा है जैसा कि पुरानी बाइबिल में है। पुरानी बाइबिल शुरू होती है, ईश्वर ने अदम को बनाया, अदम के बेटे हुए, बेटों के बेटे हुए, बेटों के बेटे हुए, उनके नाम हैं, वंशावली है--जेनेसिस। ऐसी लंबी फेहरिस्त है। फिर जोसेफ पैदा हुआ और जोसेफ ने मरियम से विवाह किया और मरियम का बेटा जीसस हुआ। और वहां जाकर वंशावली समाप्त हो गई क्योंकि जीसस का फिर कोई बेटा नहीं हुआ। लंबी वंशावली जीसस पर आकर समाप्त हो जाती है। जीसस आखिरी शिखर आ गया। बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल। आखिरी बात हो गई। अब इसका कहां बेटा? यह तो आखिरी फूल खिल गया। अब इसमें से और शाखाएं प्रशाखाएं नहीं निकलतीं। जीसस पर आकर पूरी पुरानी बाइबिल की वंशावली समाप्त हो गई। शिखर आ गया, अब और कहां गति?
यही मतलब है कबीर का--बूड़ा वंश कबीर का। यह बेटा ऐसा कमाल का पैदा हुआ
कि अब यह वंश तो बसाएगा नहीं। अब यह संसार तो चलाएगा नहीं। अब तो यह विवाह भी नहीं करने वाला, इसके बेटे भी नहीं होने वाले इसलिए कबीर ने कहा है। लेकिन यह पूत व्यंग में नहीं कहा है, यह बड़े आदर में कहा है; मगर इसे समझा नहीं जा सका।
ऐसा हुआ कि काशी नरेश को पता चला कि लोग जाते हैं, कबीर को भेंट करते हैं तो कबीर तो कह देते थे रुपये-पैसे का हम क्या करेंगे--जैसा साधु-संत को कहना चाहिए--कि हम क्या करेंगे? ले जाओ। उधर बाहर बैठा रहता कमाल। वह कहता, अब ले ही आए हो तो कहां ले जाते हो? चलो, रख दो। नाहक इधर तक ढोया, अब नाहक फिर घर तक ढोओगे। छोड़ो भी। कहां बोझ लिए फिरते हो! तो लोगों को शक होता। लोग कहते, कबीर तो महात्मा हैं, मगर यह... यह तो लोभी दिखता है। यह तरकीब की बातें करता है कि कहां ले जाते हो। रखवा लेता है।
तो कबीर ने कहा कि तू भाई अलग ही एक कोठरी बना ले। तू अलग ही एक झोपड़ी बना ले। तू जान, तेरा काम जान। क्योंकि मेरे पास रोज शिकायतें आती हैं कि हम लिए जा रहे थे, आपने तो कह दिया... अब तुम थोड़ा समझना, लोग भी जब पैसे देते हैं किसी महात्मा को तो सोचते यही है कि महात्मा इनकार करे। अब यह बड़े मजे की बात है। तो देने ही काहे को गए थे? सोचते तो यही हैं कि अगर असली महात्मा होगा तो इनकार करेगा। इनकार ही नहीं करेगा, और कुछ इसके पास होगा तो मिला कर देगा कि भई पैसे-लत्ते का हम क्या करेंगे? तो तुम देने किसलिए गए थे? और जब महात्मा इनकार कर देता है, तुम बड़े प्रसन्न होते हो। महात्मा और थोड़ा बड़ा हो जाता है। तुम पैसे से ही महात्मा को भी तौलते हो।
तो कमाल लोगों को समझ में न आता होगा। वह आदमी ही कमाल का था। वह असली बात तो वही कह रहा है। कबीर से ज्यादा असली बात कह रहा है। कबीर कहते हैं, पैसे में क्या रखा है? यह बात तुम्हें जंच गई कि पैसे में क्या रखा है। और कमाल भी तो यही कह रहा है कि पैसे में क्या रखा है? कहां लिए जा रहे हो? अब नहीं जंचती। अब तुम्हें लगता है, यह बात नहीं है। कबीर की बात जंच गई क्योंकि पैसे तुम्हें वापस मिल गए। कबीर को कहने दो, क्या रखा है। चलो महात्मा बड़े हैं। अपने पैसे बचे।
पैसे में तुम्हें रखा तो कुछ है ही। अगर तुम कबीर की बात ही समझ गए थे
तो वहीं छोड़ देते पैसे। तुम कहते, जब कुछ रखा ही नहीं तो मैं भी क्यों ले

जाऊं? अगर तुम कबीर की बात समझ गए थे तो तुम कहते, अगर कुछ रखा ही नहीं है तो आप इनकार ही क्यों करते हैं? जब कुछ रखा ही नहीं है... क्योंकि पहले कभी मैं फूल लाया था, आपके चरणों में रखे, आपने इनकार न किया। आज नोट लाया हूं तो आप इनकार करते हैं। अगर कुछ रखा ही नहीं तो कागज ही हैं। चलो, मेरा खेल, मेरा भाव, रख लो। छोड़ जाने दो। तुम्हारा क्या बिगड़ेगा? कुछ है तो है नहीं। हवा उड़ा ले जाएगी या कोई उठा ले जाएगा, या कुछ होगा। तुम क्यों चिंतित? फूल चढ़ाए, तुम कुछ न बोले। कागज चढ़ाता हूं, तुम क्यों बोलते हो बोलने की जरूरत क्या है, जब कुछ रखा ही नहीं?
अगर तुम्हें समझ में आ जाए तो तुम कहोगे, फिर मैं क्यों ले जाऊं? फिर मैं न ले जाऊंगा। लेकिन समझ में तो तुम्हें कुछ आता नहीं। तुम होशियार हो। तुम चालाक हो। तुम कहते, बढ़िया! आदमी बहुत बड़ा है, बहुत ऊंचा है। पैसे- लत्ते से ऊपर उठ गया। जल्दी से अपना नोट सम्हाल कर खीसे में रख लेते हो कि चलो पैसा भी बचा, और इस पैसे के बचने की वजह से महात्मा बड़ा हो गया। अब तुम्हें डर भी न रहा। अब दुबारा तुम दुगुने नोट भी ला सकते हो और तुम पक्का भरोसा रख सकते हो कि महात्मा तो लेंगे नहीं। देने का मजा भी ले लेंगे और पैसा भी बच जाएगा। घर भी लौट आएंगे। पुण्य का भी लाभ मिला, पैसा भी बचा। दोनों हाथ लूटिए। यह तो लूट ही लूट है। इसमें तो कोई नुकसान ही नहीं है। परमात्मा को वक्त जब आएगा तो कह देंगे कि हम तो गए थे साहब। और हमने तो दिए थे। अब कबीर साहिब ने न लिए तो हम क्या करें? हमने तो दान किया था तो दान भी हुआ और पैसे भी बचे।
लेकिन कमाल की बात लोगों को नहीं जंचती थी। कमाल कहता, चलो भाई अब ले
ही आए, इतनी दूर ढोया, बेकार का सामान ढोते फिरते हो। अब छोड़ दो यहीं। रखा क्या है? तब तुम्हें अड़चन होती है। बात तो यह भी वही कह रहा है लेकिन यह उस जगह से कह रहा है, जहां तुम्हारे लोभ के विपरीत पड़ती है। बात तो ठीक वही है जो कबीर की है। और अगर तुम मुझसे समझो तो कबीर से ज्यादा गहरी है। क्योंकि कबीर के कारण तुम्हारा लोभ नहीं मिटा। यह तुम्हारे लोभ को ही मिटा डालेगा। यह तुम्हें ठीक चोट कर रहा है।
शिकायतें पहुंचने लगी होंगी, तो कबीर ने कहाः तू भाई अलग झोपड़ा कर ले। वहां कोई तुझे दे जाए, तू ले ले। यहां तो ऐसा लगता है, लोग सोचते हैं कि यह कबीर की ही जालसाजी है। बेटे को बिठा रखा है बाहर, खुद कहते हैं, क्या रखा है? और बेटा ले लेता है। यह तो बड़ी तरकीब हो गई। बेटा छोड़ता नहीं और बाप कहता है कि क्या रखा! और बेटा बाहर बैठा रहता है, वह सब रखवा लेता है। तो यह तो कुछ जालसाजी है। तो लोग सोचते हैं, जालसाजी है। तू अलग ही कर ले। गलती है तेरी, ऐसी कबीर ने कहा नहीं। कबीर कैसे कह सकते हैं? अगर कबीर कहें कि गलती है तो फिर कौन कहेगा कि ठीक है? कबीर को तो दिखाई पड़ता है।
काशी नरेश एक दिन मिलने आए, उनको भी खबर लग गई थी कि कबीर ने कमाल को अलग कर दिया। तो वह एक बड़ा हीरा लेकर आए थे। कबीर से पूछा कि कमाल दिखाई नहीं पड़ता तो कबीर ने कहा, ऐसा है, अब वह बड़ा भी हो गया, अब कोई साथ रहने की जरूरत भी नहीं है। वह पास ही एक झोपड़ा बना दिया है, वहां रहता है।
तो सम्राट उससे मिलने गए। खबरें सुनी थी बहुत, तो उन्होंने हीरा निकाला, कमाल को दिया। कमाल ने कहाः लाए भी तो पत्थर! न खाने का, न पीने का। क्या करूंगा इसका? कुछ फल लाते, मिठाई लाते तो भी ठीक था। पत्थर ले आए। उम्र हो गई, होश नहीं आया?
तो सम्राट ने सोचा, अरे, लोग तो कहते हैं कि पैसे रखवा लेता है और यह इतनी गजब की बात कह रहा है। तो वह अपना हीरा खीसे में रखने लगा। कमाल ने कहाः अब काहे के लिए खीसे में रख रहे हो? जिंदगी भर पत्थर ही ढोते रहोगे? तब सम्राट ने समझा कि लोग ठीक ही कहते हैं। यह आदमी होशियार है! यह आदमी चालबाज है। महात्मा भी बने रहे और हीरा भी नहीं छोड़ता। तो सम्राट ने पूछाः वह तो परीक्षा ही लेने आया था--कि कहां रख दूं? कमाल ने कहाः अब कहां रखने की पूछते हो कि फिर ले ही जाओ। क्योंकि कहां रखने का मतलब है, तो तुम्हें अभी भी हीरा दिखाई पड़ रहा है। पत्थर को कोई पूछता है, कहां रख दूं? अरे, कहीं भी डाल दो। यह झोपड़ी बड़ी है। इसमें कहीं भी पड़ा रहेगा। कभी-कभी मोहल्ले-पड़ोस के बच्चे आ जाते हैं। खेलेंगे या कोई ले जाएगा। कभी-कभी चोर

इत्यादि भी आ जाते हैं, उनके काम पड़ जाएगा। अब इसमें पूछना क्या है कि कहां रख दूं? रख दो कहीं भी। पत्थर ही है।
पर सम्राट पूरी परीक्षा ही लेना चाहता था, तो उसने कमाल को दिखा कर उसके झोपड़े का जो छप्पर था सनोलियों का बना हुआ, उसमें वह हीरा सनोलियों में घोंप दिया--उसको दिखा कर, ताकि उसे ख्याल रहे। आठ दिन बाद सम्राट वापस आया, उसे तो पक्का पता था कि मैं इधर बाहर निकला कि हीरा इसने निकाल लिया होगा। अब तक बिक भी गया होगा बाजार में।
आठ दिन बाद आया, इधर-उधर की बात की, आया तो मतलब और से था। फिर असली बात पूछी, उस हीरे का क्या हुआ? कमाल ने कहाः कमाल की बात है। तुम हीरा ही हीरा लगाए हुए हो? तुम अंधे हो, तुम्हें कब दिखाई पड़ेगा? पत्थर लाए थे, हीरे की बात कर रहे हो? सम्राट ने कहाः छोड़ो ज्ञान की बातें। मैं यह पूछता हूं, उसका हुआ क्या? कमाल ने कहाः जहां रख गए थे, अगर कोई न निकाल ले गया हो तो वहीं होगा। सम्राट ने सोचा, है तो बहुत कुशल! अगर कोई न निकाल गया हो। तो निकाल तो इसने लिया ही होगा। उठा, सनोलियों में खोजा, हीरा वहां का वहां था। तब उसकी आंखें खुलीं। यह आदमी जो कहता है, ठीक ही कहता है--कि अगर कोई न निकाल ले गया हो। तब चरणों पर गिरा।
फिर जाकर कबीर को कहाः आपने ठीक नहीं किया, इस बेटे को अलग किया। तब कबीर ने यह वचन कहाः बूढ़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल। यह निंदा में नहीं कहा है, मगर कबीरपंथी समझते हैं कि अस्वीकार कर दिया बेटे को इस वचन को बोल कर। नहीं; इस वचन को बोल कर परम धन्यता प्रकट कर दी।
ये थोड़ी सी पंक्तियां उसी कमाल की हैंः

कहत कमाल कबीर जी को बालका
योग सब भोग त्रिलोक नाहीं
शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वेद कितेब के गम नाहीं
खुले जब चश्म, हुस्न सब पश्म है
दिन और दूनी से कम नाहीं
शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
तत्व झंकार ब्रह्मांड मांही

सब तरफ मौजूद है, तुम जरा सूनी आंख से देखो। तुम भरी आंखों से देख रहे
हो इसलिए चूक रहे हो। शून्य की आंख को जगाकर देखो। शून्य यानी समाधि।

चौथा प्रश्नः प्रति दिन के प्रवचन के बाद घंटे डेढ़ घंटे तक कुछ नशा सा
छा जाता है। उस बीच बात करना तो दूर, किसी को देखने की ख्वाहिस भी नहीं होती। और अजीब मुस्कुराहट प्रकट होती है। और कभी-कभी रोना भी आता है और फिर अकेला रहना चाहता हूं। उस समय किसी के छेड़ने पर चिड़चिड़ाहट महसूस होती है। आप कुछ कहें। ठीक हो रहा है। ऐसा ही होना चाहिए। यह कोई मंदिर नहीं है, यह मधुशाला है। यहां अगर नशा न आया तो कुछ भी न आया। यहां अगर मस्त न हुए तो चूक ही गए। यहां कोई शास्त्रों पर प्रवचन चल रहा है। यहां तो शराब ढाली जा रही है। यहां तो पियक्कड़ों का काम है। यहां तो कमजोरों की गति नहीं है।

यहां तुम मुझे पीयो। और यहां तुम इस तरह डूबो कि तुम्हारे सब होश खो जाएं। बेहोश हो गए तो भक्त हो गए। और अंगूरों की शराब तो पीयो तो एक दिन उतर जाती है। आज पीयो, सुबह उतर जाएगी, कल उतर जाएगी, सांझ उतर जाएगी। यह असली शराब है, चढ़ी तो फिर उतरती नहीं। धीरे-धीरे इसमें डुबकी लो।
ठीक हो रहा है। घंटे-डेढ़ घंटे नशा रहता है अभी, धीरे-धीरे और बढ़ेगा। घबड़ाओ मत। डरो मत। डरोगे तो चूकोगे। नशा जब छाए, आंखें जब भारी होने लगें, मन जब मगन लगे, गीत जब भीतर अंकुरित होने लगे तो स्वभावतः अकेलापन चाहा जाएगा। क्योंकि दूसरे की मौजूदगी तुम्हारी इस तरंगायित दशा में बाधा बनेगी। दूसरे की मौजूदगी तुम्हें खींचेगी, तुम भीतर जा रहे हो; इसलिए चिड़चिड़ाहट पैदा होगीः यह शुरू-शुरू में होता है। एक ऐसी घड़ी आ जाती है बाद

में नशे की, कि फिर सारा संसार मौजूद रहा है तो कोई फर्क नहीं पड़ता। पर नशा उस सीमा तक पहुंच जाने दो। तब तक बीच के समय कभी-कभी जब नशा चढ़ा हो तो एकांत खोज लेना। पड़े रहना। बैठ जाना किसी मस्जिद में, किसी मंदिर में जाकर बैठो जहां कोई नहीं जाता। कौन जाता मंदिर-मस्जिदों में अब? गुरुद्वारे में कहीं बैठ जाना एक कोने में या निकल जाना गांव से दूर नदी के किनारे। या अपने ही घर में कोठरी बंद करके रह जाना।
जब नशा चढ़े तो उस नशे का सम्मान करो। उस समय बात करनी, बातचीत में समय गंवाना एक चिड़चिड़ाहट पैदा करेगा। चिड़चिड़ाहट ही नहीं, एक भीतर द्वंद्व भी पैदा करेगा। भीतर ऊर्जा जा रही है आत्मा की तरफ और बाहर की बातचीत बाहर खींच रही है। तो तुम दो दिशाओं में गतिमान हो जाओगे, खेंचतान होगी, तनाव पैदा होगा, कष्ट पैदा होगा। और जो लाभ होना था वह चूक जाएगा।
जब भीतर गति हो रही हो, प्रवाह आया तो फिर बह जाओ। फिर सब भूल-भाल कर डुबकी लगा लो। एक क्षण को भी अगर भीतर तक पहुंच गए तो परम सौभाग्य है। यह संक्रमण काल की ही बात है। धीरे-धीरे जब नशा थिर हो जाएगा। यह सिक्खड़ों के लिए कह रहा हूं, जिन्होंने अभी शराब पीनी शुरू-शुरू ही की है; जब अभ्यस्त हो जाएगी फिर कोई अड़चन न आएगी। फिर भीतर भी बहते रहोगे और किसी से बात भी कर लोगे।
ऐसा ही समझो न कि तुम कार ड्राइव करना सीखते हो तो शुरू-शुरू में बड़ी अड़चन होती है। बड़ी झंझट आती है। स्टेयरिंग पर नजर रखो तो एक्सीलरेटर से पांव खिसक जाता है। एक्सीलरेटर पर नजर रखो तो ब्रेक लगाना भूल जाते। ब्रेक पर पैर रखो तो क्लच स्मरण में नहीं रहता। और इन सबकी कैसे इकट्ठी याद रखो? बड़ी बेचैनी होती, बड़े पसीने-पसीने हो जाते हो।
फिर एक दफा डरइविंग आ गई तो इनकी कुछ याद ही रखना पड़ती? यह सब अपने आप यंत्रवत होने लगता है। पैर फिकर कर लेते हैं क्लच और एक्सीलरेटर और ब्रेक की। और हाथ--एक ही हाथ, दो हाथ की भी जरूरत नहीं रह जाती--एक ही हाथ स्टेयरिंग व्हील को सम्हाल लेता है। और तुम गीत गा सकते हो या रेडियो सुन सकते हो, या तुम हजार तरह के विचार सोच सकते हो, कल्पना कर सकते हो, सपने देख सकते हो। बहुमत कुशल ड्राइवरों के संबंध में तो कहा जाता है, वे झपकी भी ले लेते हैं। एकाध मिनट को अगर आंख भी झपक गई तो कुछ खास फर्क नहीं पड़ता--अगर शरीर बिल्कुल कुशल हो गया है तो।
ठीक ऐसा ही इस नशे के बाबत भी सच है। सीख रहे हो अभी, तो अभी चिड़चिड़ाहट पैदा होगी। यह अच्छा लक्षण है। इससे इतना ही पता चलता है कि एक नई बात पैदा हो रही है और कोई उखाड़ने आ गए। अब तुम भीतर जा रहे हो कोई बाहर की बात करने लगे, वह कहने लगे, फलानी फिल्म बड़ी अच्छी चल रही है। अब तुम्हें चिड़चिड़ाहट न पैदा हो तो क्या बड़ा आनंद आए? या वह कहने लगा कि सुना, कि मुरार जी देसाई की तरफ खींच रहा है!
तो अड़चन होगी, चिड़चिड़ाहट होगी। बचना। इस चिड़चिड़ाहट को लाने की जरूरत नहीं है। जब ऐसी मस्ती छाए तो थोड़ी देर डुबकी लगा लो। पूरी तरह हो जाने दो। और कभी-कभी तो एक क्षण में घटना हो जाएगी। एक क्षण में तुम डुबकी खा जाओगे, बाहर आ जाओगे, ताजे हो जाओगे, तरोताजा हो जाओगे। और फिर दिन भर तुम पाओगे एक ताजगी, एक मस्ती, एक गुनगुनाहट।

दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल सुनहले
दृग गूगल में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले
मधुबनों ने सुरा पी ली सुरभि वेणी हुई ढीली
प्रस्तरों को बेधती हैं रेशमी किरणें नुकीली
अब न कोई बच सकेगा, यम-नियम क्रम रच सकेगा
बेखुदी में डूब तू भी ज्योत्स्ना की बांह गह ले दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले चांदनी ने चिटक तोड़े लाज के बंधन निगोड़े निर्वसन अंबर दिगंबर से गांठ जोड़े
इस धुले वातावरण में झिलमिलाते मधु रक्षण में एक पल को ही सही पर अमी-सरी में मुक्त बह ले

दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले

एक क्षण को ही सही, एक पल को ही सही, पर अमी-सरी में मुक्त बह ले। यह जो अमृत की थोड़ी सी धारा, यह झरना पैदा होता है इसमें एक क्षण को ही सही, एक पल को ही सही, पर अभी-सरी में मुक्त बह ले।

दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले

तब उस समय व्यर्थ बातों में न पड़ो। तब उस समय अपने में डूब जाओ, डुबकी लगा लो। उस क्षण द्वार-दरवाजे बंद कर दो बाहर के। उस क्षण अंतर्यात्रा में पूरे-पूरे संलग्न हो जाओ। इसी की तो हम यहां कोशिश करते हैं कि किसी तरह तुम भीतर चलने लगो। और रोज-रोज तुम अगर भीतर गए और रोज-रोज तुमने अपने बाहर से चिड़चिड़ाहट पाई तो नुकसान हो जाएगा। चिड़चिड़ाहट का अभ्यास न हो जाए कहीं, यह डर है। और यह केवल संक्रमण की बात है। यह सदा नहीं रहेगी। एक दफा अभ्यस्त हो गए, फिर नहीं रहेगी।
एक शराबी मेरे पास रहते थे। बड़े अभ्यस्त शराबी हैं। पता लगाना ही मुश्किल है कि वे शराब पीए हैं, ऐसा अभ्यास है। जो जानता है वही जानता है कि काफी पीए हैं अन्यथा बातचीत में बिल्कुल कुशल, तर्कयुक्त। जरा भी तुम हिसाब ले लगा सकोगे कि ये नशे में हैं। कई दिनों तक मेरे पास रहे, मुझे पता ही नहीं था कि ये नशे में हैं। उनकी पत्नी ने मुझसे कहा, आपको पता है कि ये चौबीस घंटे पीए रहते हैं? मैंने कहा, कुछ पता नहीं चला।
उनको पत्नी ने कहा, मुझे भी पता नहीं चला, तीन साल तक, जब मेरा इनके साथ विवाह हुआ। वह तो एक दिन ये बिना पीए घर आ गए, तब चला। ऐसा अभ्यास हो जाता है कि एक दिन बिना पीए गए तक पता चला कि कुछ गड़बड़ है। तब पता चला कि बाकी दिन ये पीए थे। तब उसने पूछताछ की, मामला क्या है? आज तुम कुछ उखड़े-उखड़े लगते हो। आज जमे-जमे नहीं मालूम होते। आज बात कुछ बेतुकी सी करते हो। आज चित्त कुछ तुम्हारा उदास लगता है। बात क्या है? और तुम्हारे पास जो एक खास तरह की गंध आती थी, आज नहीं आ रही। मामला क्या है? तब उसे पता चला। तब उन्होंने जाहिर किया, मैं जरा पीने का आदी हूं। और खूब पीने का आदी हूं। ऐसा ही होगा। जब तुम पीने के खूब आदी हो जाओगे तक किसी को पता भी नहीं चलेगा, तुम भीतर विराजमान हो। तुम बाहर दुकान भी चला लोगे, बाजार भी चला लोगे, सामान खरीद लोगे-बचे दोगे, दफ्तर भी हो आओगे, पत्नी-बच्चे भी सम्हाल लोगे। किसी को पता भी नहीं चलेगा। लेकिन अभी शुरू-शुरू में तो अभ्यास की बात है। अभी डूबो। शुभ घड़ी आई है, उसे खो मत देना।

रंगों पर रंग केवल रंग
उड़ती हुई हवा में रंगों के रंग
आंखों में आज तुम्हें फिरी संग-संग
रंगों के लिए हुए रंग
इन्हीं दिनों बढ़ आई नदिया को कूल दिया तुमने
इन्हीं दिनों ओठों और नैनों का फूल दिया तुमने
इन्हीं दिनों भींजी में बार-बार
यहां-वहां, जहां-तहां, कहां-कहां
कितने युगों में बार-बार
जीए हम संग-संग
घड़ी प्यारी आ रही है, जहां तुम्हारा मुझसे संग बैठ जाएगा। सत्संग की घड़ी आ रही है।
कितने युगों में बार-बार
यहां-वहां, जहां-तहां, कहां-कहां
जीए हम संग-संग

एक बार इस मधुरस में पूरे उतर जाओ तो संग साथ पूरा हो गया। फिर तुम हजारों मील मुझसे दूर रहो तो भी फर्क न पड़ेगा। मैं इस देह में न रहूं, तुम

इस देह में न रहो तो भी फर्क न पड़ेगा। जिस घड़ी यह शराब तुम्हें पकड़ लेगी, मैं तुम्हें पकड़ लूंगा। जिस घड़ी तुम इस शराब में मदमस्त हो जाओगे, तुम मेरे करीब आ जाओगे।
डरना मत। डरना बिल्कुल स्वाभाविक है। ऐसी घड़ियों में डरना उठता है। लगता है, क्या हुआ जा रहा है? कुछ अस्वाभाविक तो नहीं हो रहा है? कुछ ऐसा तो नहीं हो रहा, जो किसी खतरे में ले जाए? कोई झंझट तो सिर पर नहीं आ जाएगी? ऐसे भाव उठने बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि तुम एक ढंग का जीवन जीए हो, अब यह उसमें एक नई मस्ती आने लगी। कुछ नया होना शुरू हुआ तो मन डरता है। मन पुराने से राजी रहता है, नये से घबड़ाता है। मगर परमात्मा नया है, बिल्कुल नया है। तुम नये से धीरे-धीरे राजा होओगे तो ही एक दिन परमात्मा के लिए मार्ग बनेगा। और यह मस्ती उसी की मस्ती है।
जिसने पूछा है, भक्ति उसका मार्ग है; वह ख्याल में रख ले। जिसको भी नशे में डुबकी लग रही हो, भक्ति उसका मार्ग है। ध्यानी होश से जाता परमात्मा की तरफ, भक्त बेहोशी से जाता है। ध्यानी सम्हल-सम्हल कर जाता, भक्त डगमगाता हुआ मस्त डोलता हुआ जाता। ध्यानी चुप जाता, भक्त गुनगुनाता जाता। ध्यानी का एक-एक कदम सावधान होता। भक्त को चिंता ही नहीं होती। भक्त को सावधानी इत्यादि नहीं लगती। भक्त शराबी की तरह झूमता, नाचता हुआ जाता। पूछा है स्वामी वेदांत भारती ने। तुम्हारे भीतर उठते हुए नशे से बड़ी साफ खबर मिलती है कि भक्त छिपा बैठा है। तुम्हारे भीतर मीरा का जन्म हो सकता है या चैतन्य का जन्म हो सकता है। तुम्हारे भीतर बड़े नाच की संभावना छिपी है। जरा हिम्मत करना। जरा साहस रखना। घबड़ाना मत। एक अपूर्व अवसर बहुत करीब है। हिम्मत की तो घट जाएगा।

भटकी हवाएं जो गाती हैं
रात की सिहरती पत्तियों से
अनमनी झरती वारि-बूंदें जिसे टेरती हैं
फूलों की पीली प्यालियां
जिसकी ही मुसकान छलकाती हैं
ओट मिट्टी की असंख्य रसातुरा शिराएं जिस मात्र को हेरती हैं
वसंत जो लाता है, निदाघ तपाता है
वर्षा जिसे धोती है, शरद संजोता है
अगहन पकाता और फागुन लहराता
और चैत काट, बांध, रौंद, भर कर ले जाता है
नैसर्गिक संक्रमण सारा, पर दूर क्यों?
मैं ही जो सांस लेता हूं, जो हवा पीता हूं
उसमें हर बार
हर बार, अविराम, अक्लान, अनप्यायत
तुम्हें ही जीता हूं

हर घड़ी परमात्मा को ही हम जी रहे हैं। या तो होश आ जाए तो बात समझ में आ जाए, या बेहोशी आ जाए तो बात समझ में आ जाए। होश की बात तो बुद्धि के पकड़ में भी आ जाती है। बेहोशी की बात बड़ी कठिन हो जाती है।
कल संध्या एक संन्यासी ने आकर कहा... वह घबड़ाया हुआ था। यहां तीन महीने
से ध्यान करता था, फिर एक महीने के लिए आज्ञा लेकर हिमालय चला गया। ध्यान में रस आने लगे तो फिर हिमालय में भी रस आता है। और जैसी हवा हिमालय पर है वैसी कहीं भी नहीं है। और जैसी पवित्रता हिमालय पर है वैसी कहीं भी नहीं। और अभी भी सन्नाटा हिमालय पर वैसा है जैसा सदियों पहले सारी पृथ्वी पर था। हिमालय अकेला ही बचा है जहां अब भी शाश्वत और सनातन का राज है।
तो उसके मन में बड़ी हूक उठी, हिमालय की अचानक हूक उठी। मैंने उसे कहा,
तू जा, वहां ध्यान कर। वहां से लौटा। द्वार पर दो-चार दिन पहले सुबह के प्रवचन में आता होगा, खड़े-खड़े बेहोश हो गया, गिर गया। दो घंटे बेहोश रहा।
सोमेन्द्र उसे उठा कर अपने कमरे में ले गया। दो घंटे उसकी सेवा की। दो

घंटे बाद वह होश में आया। दो घंटे का उसे पता नहीं कि कहां चला गया। स्वभावतः घबड़ा गया। जो लोग आस-पास थे, उन सभी ने कहा, मालूम होता है तुम्हें मिर्गी की बीमारी है। एपिलेक्टिक फिट आ गया। उसे भी बात जंची कि और क्या हो सकता है? दो घंटे बेहोशी! मगर थोड़ी शंका भी मन में रही क्योंकि उसे कभी, जिंदगी हो गई, एपिलेप्टिक फिट नहीं आया, कभी मिर्गी हुई नहीं। आज अचानक हो गई?
कल वह रात पूछने आया था कि क्या यह मिर्गी थी? नहीं, मिर्गी नहीं थी। उसे पहली दफा भाव-समाधि हुई। उसे पहले दफा भक्त की घड़ी आई उसके जीवन में। रामकृष्ण को ऐसा रोज होता था। डाक्टर तब भी कहते थे मिर्गी की बीमारी है। डाक्टर अब भी कहते हैं कि रामकृष्ण को एपिलेप्टिक फिट आते थे।
रामकृष्ण को हिस्टीरिया था। डाक्टर की अपनी पकड़ है; बहुत गहरी नहीं जाती।
और एक लिहाज से डाक्टर भी ठीक ही कहता है क्योंकि बाहर से भाव-समाधि और एपिलेप्टिक फिट के लक्षण बिल्कुल एक जैसे होते हैं। यह भी अड़चन है। डाक्टर भी क्या करे? भाव-समाधि तो कभी करोड़ में एकाध को लगती है, एपिलेप्टिक फिट बहुतों को आते हैं। और लक्षण दोनों के बिल्कुल एक हैं। मुंह से फसूकर गिरने लगता है, हाथ-पैर अकड़ जाते हैं। होश खो जाता है। घंटों के बाद जब होश वापस लौटता है तो जितनी देर बेहोशी रही उसका कुछ पता नहीं रहता है कि क्या हुआ, जैसे सब बिल्कुल अंधकार हो गया। चैतन्य बिल्कुल खो गया।
तो रामकृष्ण तक को वे कहते रहे कि इनको मिर्गी की बीमारी है। रामकृष्ण हंसते थे। वे कहते थे, धन्य भाग्य मेरे कि मुझे मिर्गी की बीमारी है। और सबको भी हो जाए। जब बेहोश हो जाते थे तो घंटों--कभी छह घंटे भी बेहोश हो जाते थे। एक बार तो छह दिन बेहोश रहे। छह दिन लंबा वक्त है। भक्त तो घबड़ा गए। रोना-पीटना शुरू हो गया, भक्त तो सोचे कि अब लौटना नहीं होगा। डाक्टरों से पूछा, उन्होंने कहा, यह तो कोमा है। यह तो अब शायद ही लौटें। महीनों भी रह सकते हैं कोमा में। लौटेंगे कि नहीं कहा नहीं जा सकता। छह दिन के बाद रामकृष्ण लौटे। और लौटते ही क्या कहा--पता है? लौटते ही छाती पीटने लगे और रोने लगे और कहने लगे कि वहीं बुला ले वापस; यहां कहां भेजता है? इधर भक्त रो रहे हैं कि अच्छे लौट आए। बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि बड़ी कृपा की कि लौट आए, हमारी याद रखी। और रामकृष्ण कह रहे हैं, नासमझो! तुम्हें कुछ पता ही नहीं कि मैं क्या चूका जा रहा हूं। मुझे फिर वहीं बुला लो, जल्दी करो, यहां मन नहीं लगता।
ऐसी ही घटना इस संन्यासी को घटी। मगर पहली दफा घटी तो अभी उसे कुछ समझ नहीं है। यहां समाधि के बहुत रूप घटने वाले हैं, बहुतों को घटने वाले हैं। किसी को ध्यान-समाधि लगेगी, किसी को भाव-समाधि लगेगी। इसलिए सावधान रहो। वेदांत को भाव-समाधि लग सकती है। अगर यह नशे को बढ़ने दिया तो एक न एक दिन डाक्टर कहेंगे कि एपिलेप्टिक फिट। एक न एक दिन वह अपूर्व मिर्गी घटेगी जिसके घट जाने के बाद ही पता चलता है कि जीवन का सार क्या, अर्थ क्या, प्रयोजन क्या?

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
सातवां प्रवचन

दरिया लच्छन साध का

दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या भेख।
निहकपटी निरसंक रहि बाहर भीतर एक।
सत सब्द सत गुरुमुखी मत गजंद-मुखदंत।
यह तो तोड़ै पौलगढ़ वह तोड़ै करम अनंत।
दांत रहै हस्ति बिना पौल न टूटे कोए।
कै कर धारै कामिनी कै खेलारा होए।
मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुआ गिन अंधेरी रात।।
सीखत ग्यानी ग्यान गम करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चांदनी भीतर काली रात।
दरिया बहु बकवाद तज कर अनहद से नेह।
औंधा कलसा ऊपरे कहा बरसावै मेह।।
जन दरिया उपदेस दे भीतर प्रेम सधीर।
गाहक हो कोई हींग का कहां दिखावै हीर।।
दरिया गैला जगत को क्या कीजै सुलझाय।।
सुलझाया सुलझै नहीं सुलझ-सुलझ उलझाय।।
दरिया गैला जगत को क्या कीजै समझाय।
रोग नीसरै देह में पत्थर पूजन जाय।
कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है सांच सांच सो सांच।।
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।
देखेजानिए यह क ंचन यह कांच।।

दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या भेख।
निहकपटी निरसंग रहि बाहर भीतर एक।।
--साधुता की परिभाषा। संन्यास की व्याख्या।
ऐसे तो संन्यास की व्याख्या हो नहीं सकती। ऐसे तो संन्यास बस अनुभव
की बात है। फिर भी जो उस अदृश्य में नहीं गए, जिन्होंने उस अगम में गति नहीं की उनके लिए कुछ शब्द का सहारा चाहिए; उन्हें कुछ इशारे चाहिए।
चांद को बताती हुई अंगुलियां चांद तो नहीं है लेकिन फिर भी चांद की तरफ इशारा तो हैं। और जिन्होंने कभी आंखें चांद की तरफ उठाई ही न हो, उनके लिए वे अंगुलियां भी सहयोगी हैं यद्यपि कोई भूल से भी यह न समझे कि चांद की तरफ उठाई गई अंगुली चांद है। अंगुली में कहां चांद? अंगुली में कैसे चांद? लेकिन फिर भी दूर आकाश के चांद की तरफ इशारा हो सकता है।
आज के सूत्र बड़े इशारे के सूत्र हैं। मील के पत्थरों की भांति हैं। अगर ठीक से समझे तो ये पड़ाव बन जाएंगे तुम्हारी अनंत यात्रा के।
पहला सूत्रः
दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या भेख।
साधु का लक्षण क्या है? घर में हो कि घर के बाहर, इससे भेद नहीं पड़ता-- क्या गिरही क्या भेख। संन्यासी हो कि गैरिक वस्त्रों में संन्यासी हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। घर में हो कि मंदिर में हो, इससे भेद नहीं पड़ता। बाजार में हो कि हिमालय पर हो, इससे भेद नहीं पड़ता। कहां है इससे भेद नहीं पड़ता, क्या है इससे भेद पड़ता है। कैसे कपड़े पहने है, इससे कैसे भेद पड़ सकता है? कैसी अंतरात्मा है, कैसी चेतना का प्रवाह है, कैसा बोध है?
तो न तो कपड़ों से भेद पड़ता, न तो घर-द्वार छोड़ने से भेद पड़ता, न बाजार-दुकान छोड़ने से भेद पड़ता, न बच्चे परिवार छोड़ने से भेद पड़ता। ये तो धोखे हैं। इनसे जिसने भेद डाल लेना चाहा, वह बड़ी मूढ़ता में पड़ गया। घर द्वार छोड़ कर भाग जाओगे, मन कहां छोड़ोगे, जो घर-द्वार को पकड़ता था? मन तुम्हारे साथ चला जाएगा। और मन साथ रहा तो तुम कहीं फिर घर द्वार बसा लोगे। मन साथ रहा

तो तुम फिर कहीं कुछ पकड़ने लगोगे। पकड़ने की मूल भित्ति तो तुम्हारे भीतर है।
पत्नी के कारण तुम संसार में नहीं हो, न पति के कारण संसार में हो। तुम्हारा मन अकेला नहीं रह सकता इसलिए तुम संसार में हो। अकेले में भयभीत होते हो। अकेले में डरते हो। अकेले में अंधेरा घेर लेता है। किसी का संग-साथ चाहिए। इसलिए संसार में हो। तो पत्नी को छोड़ कर जाओगे इससे क्या फर्क पड़ेगा? कोई और संग-साथ खोज लोगे। संग-साथ तुम्हें खोजना ही पड़ेगा। वह जो मन तुम्हारे भीतर बैठा, जो अकेले में डरता है, जो अकेला नहीं होना चाहता, जो कहता है कोई तो संगी हो, कोई साथी हो; जीवन की राह पर अकेला कैसे चलूं? अकेले चलने की हिम्मत नहीं है, इसलिए संसार है। संसार के कारण संसार नहीं है, अकेले होने का साहस नहीं है इसलिए संसार है। इसलिए पत्नी भी हो, बच्चे भी हों और अगर तुम अकेले होने को राजी हो गए तो संसार मिट गया। पत्नी पास बैठी रहे, पत्नी न रही। पति पास बैठा रहे, पति न रहा। पति का रहना पति के होने में नहीं है, पति का रहना तुम्हारी आकांक्षा में है कि कोई संगी चाहिए, कोई साथी चाहिए। इस दुर्बलता में है कि मैं अकेला काफी नहीं हूं। मैं अकेला दुख में पड़ जाऊंगा। मेरा सुख दूसरे पर निर्भर है, इसमें संसार है। दूसरे से मुझे सुख मिल सकता है। मैं अकेला कैसे सुखी होऊंगा? फिर यह दूसरा कौन है इससे फर्क नहीं पड़ता। अ को बदलोगे तो ब होगा, ब को बदलोगे तो स होगा। मगर कोई दूसरा मौजूद रहेगा। और जहां तक दूसरे की मौजूदगी जरूरी है, वहां तक संसार है।
दरिया लच्छन साध का...
साधु की क्या लक्षणा?
दरिया कहते हैंः क्या गिरही क्या भेख। घर में हो कि घर के बाहर हो, संसारी हो कि संन्यासी हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
निहकपटी निरसंक रहि बाहर भीतर एक।
फिर किस बात से फर्क पड़ता है? निष्कपटी। कपट का अर्थ होता है, कुछ है भीतर, कुछ दिखाते हैं बाहर। भीतर कुछ और छिपा है। मुख में राम--मुंह पर तो राम है। मुंह में तो राम का स्मरण चल रहा है। बगल में छुरी। कुछ है भीतर, कुछ दिखाते हैं बाहर। भीतर और बाहर में भेद ही नहीं है, विरोध है। भीतर दुख है, बाहर मुस्कुराते हैं। तो कपट हो गया। भीतर मुस्कुराहट है, बाहर आंसू गिराते हैं तो कपट हो गया।
कपट का अर्थ है, भीतर और बाहर में द्वंद्व है, द्वैत है। भीतर और बाहर
दो अलग खंडों में बंटे हैं, अखंड नहीं है, तो कपट हो गया। और कपटी बड़ा दुख झेलता है। और आश्चर्य यह है, इस आशा में दुख झेलता कि कपट से शायद सुख मिले। लेकिन झूठ से कभी सुख मिलता नहीं। झूठ से ही सुख मिल जाए तो फिर तो रेत से भी निचोड़ो तो तेल निकल आए। झूठ से सुख नहीं मिलता। सुख तो सत्य की छाया है। सुख तो सहजता में फलता है। और जो आदमी कपटी है, कैसे सहज होगा? वह सारी दुनिया को प्रवंचना में रखना चाहता है। अंततः स्वयं प्रवंचना में पड़ जाता है। जो गड्ढे तुमने दूसरों के लिए खोदे हैं उनमें तुम गिरोगे। दुख पाओगे बहुत।
दुख है ही इसीलिए जगत में, क्योंकि हमने सुख का सार-सूत्र नहीं समझा। सुख का सार-सूत्र है सहजता, और दुख का सार-सूत्र है कपट। सहज का अर्थ होता है, बाहर भीतर एक। जैसा भीतर है, वैसा ही बाहर है। तुमने उसे बाहर से पढ़ लिया तो उसकी अंतरात्मा को पढ़ लिया। रत्तीभर भेद न पाओगे उसके बाहर भीतर में।
छोटे बच्चों में ऐसी सहजता होती है। इसलिए तो संतों का एक लक्षण सदा कहा गया है कि वे फिर वे छोटे बालकों की भांति हो जाते हैं। बच्चा नाराज हो गया है तो फिर वह नाराजगी प्रगट करेगा। पैर पटकेगा, खिलौना तोड़ देगा, दीवाल से सिर मार लेगा। उस छोटे से क्षण में, उस छोट से बालक में ऐसा क्रोध लपटों की तरह उठेगा, जैसे सारे संसार को नष्ट कर देगा। और क्षण भर बाद क्रोध आया भी और गया भी। बादल आए और बरस गए। और वह तुम्हारी गोद में बैठा है और प्रसन्न है। और बड़े प्यार की बातें कर रहा है। तुम जानते हो, जब वह

क्रोध में था तो पूरे क्रोध में था। और जब अब प्रेम में है तो पूरे प्रेम में है। छोटा बच्चा जहां भी होता है पूरा होता है; यह उसकी सहजता है। इसलिए छोटे बच्चों के चेहरे पर एक सौंदर्य है, जो बड़ों के चेहरों पर
खो जाता है। बड़ों के चेहरे पर सौंदर्य खो जाता है। क्योंकि बड़ों का एक चेहरा नहीं है। बड़ों के बड़े चेहरे हैं; बहुत चेहरे हैं; चेहरों पर चेहरे हैं; मुखौटों पर मुखौटे लगाए हुए हैं। एकाध चेहरा तुमने ओढ़ा है ऐसा भी नहीं है, तुम न मालूम कितने चेहरे साथ लिए चलते हो। स्पेयर चेहरे तुम अपने पास रखते हो। कब कहां, कैसी जरूरत पड़ जाए। दिन में हजार बार तुम्हें चेहरे बदलने पड़ते हैं।
जब तुम अपने मालिक से मिलते हो दफ्तर में तो एक चेहरा रखते हो। जब तुम अपने नौकर की तरफ देखते हो तब दूसरा चेहरा। और यह भी हो सकता है कि नौकर एक तरफ खड़ा हो, और मालिक एक तरफ खड़ा हो। तो तुम एक तरफ एक चेहरा दिखाते हो, दूसरी तरफ दूसरा चेहरा दिखाते हो। मालिक की तरफ एक मुस्कुराहट होती है, नौकर की तरफ एक उदासीनता होती है, उपेक्षा होती है। नौकर में तुमने आत्मा थोड़े ही कभी मानी है। इसलिए नौकर जब तुम्हारे कमरे में प्रवेश करता है, तुम अखबार पढ़ते हो तो पढ़ते ही रहते हो, जैसे कोई नहीं आया। जैसे कोई भी नहीं गया। नौकर है, नौकर की कोई गिनती आदमी में थोड़े ही आत्मा में थोड़े ही! तुम ऐसे उदासीन बैठे रहते हो जैसे कमरे में कोई न आया, न कोई गया। पत्नी की तरफ एक चेहरा है तुम्हारा। प्रेयसी की तरफ दूसरा चेहरा है तुम्हारा। बच्चों की तरफ एक चेहरा है, बड़ों के प्रति दूसरा चेहरा है। अपनों के प्रति एक चेहरा है, परायों के प्रति दूसरा चेहरा है।
रास्ते पर चलते हुए किसी दिन तुम जरा अपने चेहरों की संख्या तो करना।
कितनी बार तुम बदल लेते हो। जिस आदमी से तुम्हें काम है, जिस आदमी से तुम्हें मतलब है, उससे तुम कैसे मिलते हो। कैसे प्रेम भाव से मिलते हो! और यह वही आदमी है जिसकी तरफ कल तुमने आंख भी न उठाई थी। कल कोई काम ही न था। और यह वही आदमी है, कल फिर तुम आंख न उठाओगे, जब काम न रह जाएगा।
देखते न, राजनेता जब तुमसे मत लेने आता है, वोट लेने आता है, तो कैसा चरणों का सेवक हो जाता है! तुम्हें लगता है ऐसा, जैसे बस तुम्हारी सेवा करने के लिए ही इस आदमी का जीवन बना है। एक बार यह सत्ता में पहुंच गया फिर तुम्हें पहचानेगा भी नहीं; फिर तुम्हारी तरफ आंख भी न उठाएगा। तुमसे कोई मतलब न रहा। तुमसे कोई प्रयोजन न रहा। और ऐसा मत समझना यह राजनेता की ही बात है, तुम्हारी भी यही बात है। सबकी यही बात है।
कपट का अर्थ हैः पाखंड। कपट का अर्थ हैः बहुत चेहरे। और इन बहुत चेहरों में तुम्हारा मौलिक चेहरा तो खो ही गया। परमात्मा ने जो चेहरा बनाया था तुम्हारा, उसका तो कुछ पता ही नहीं चलता इस भीड़-भाड़ में चेहरे की-- कहां खो गया, कहां भटक गया। उसे तुम, पहचान भी न पाओगे। तुम खुद भी नहीं जानते कि तुम्हारा असली चेहरा कौन सा है! दर्पण के सामने भी जब तुम खड़े होते हो तब तुम दूसरों को ही धोखा देते हो ऐसा नहीं है, अपने को भी धोखा दे लेते हो। दर्पण के सामने खड़े होकर तुम अपने को भी धोखा दे लेते हो। धोखा ऐसा गहरा हो गया है, ऐसा खून में मिल गया है, ऐसा हड्डी-मांस-मज्जा में प्रविष्ट हो गया है, कि दर्पण के सामने भी तुम वही नहीं होते जो तुम हो। निष्कपटी! कोई चेहरा न हो। या बस एक ही चेहरा हो, जो परमात्मा ने तुम्हें दिया।
झेन फकीर कहते हैं अपने साधकों कोः मौलिक चेहरा खोजो। उस चेहरे को खोजो, जो जन्म के पहले तुम्हारे पास था, मां के गर्भ में तुम्हारे पास था। तब तो कोई पाखंड नहीं हो सकता क्योंकि मां के गर्भ में न कोई लेना, न देना; न मिलना, न जुलना; न कोई मालिक, न कोई नौकर। जीवन का विस्तार वहां नहीं, जंजाल वहां नहीं। तो मां के पेट में नौ महीने जो तुम्हारा चेहरा था उसमें कोई भी रेखा न रही होगी धोखे की। कोई था ही नहीं जिसको धोखा देना हो। उस चेहरे को खोजो।
मुखौटे उतारना ध्यान की अनिवार्य शर्त है।
ध्यान की घड़ी में जिस दिन तारतम्य बैठ जाता है उस दिन अचानक एक झलक मिलती है तुम्हारे असली चेहरे की। वह अपूर्व है। उसके सौंदर्य की कोई

तुलना नहीं। वह चेहरा तुम्हारा नहीं है, परमात्मा का ही चेहरा है। तुम्हारे चेहरे तो वे हैं जो तुमने बनाए हैं। एक ऐसा भी चेहरा तुम्हारे पास है, जो तुम्हारा बनाया हुआ नहीं है; वही असली है। कहो, वही असली में तुम्हारा है। तुम्हारे बनाए तो तुम्हारे नहीं हैं।
तो दरिया कहते हैंः
दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या भेख।
निहकपटी निरसंक रहि...
जिसकी शंका तिरोहित हो गई, जो श्रद्धा को उपलब्ध हुआ है वही साधु। श्रद्धा को समझो। हम तो जो भी करते हैं जीवन में, शंका बनी ही रहती है। करते भी जाते हैं और शंका भीतर बनी भी रहती है। इसलिए कोई भी बात कभी तन मन से नहीं कर पाते। कोई भी बात कभी समग्रता से नहीं कर पाते। शंका के कारण समग्र कैसे होओगे? करते भी हो तो एक मन तो कहे ही चला जाता है कि गलत कर रहे हो। और ऐसा नहीं कि गलत में ही यह मन कहता हो, यह ठीक में भी मन यही कहता है। मन की यह आदत है। मन का यह स्वभाव है कि वह कभी भी अविभाजित नहीं होता, विभाजित रहता है।
तुम चोरी करने जाओ, तो मन कहता है, अरे, चोरी कर रहे, शर्म नहीं आती, संकोच नहीं खाते? क्या कर रहे हो? मत करो। तुम यह मत सोचना कि यह मन चोरी करते वक्त ऐसा कहता है तो हमारा साथी है। इस मन की तो यह आदत है। तुम जो कहोगे... ।
तुम दान देने लगोगे तो यह मन कहता है, यह क्या कर रहे हो? कैसी मूढ़ता
कर रहे हो। अरे वे जमाने गए देनेवालों के। और यह धोखेबाज खड़ा है। जिसको तुम दे रहे हो। धोखा मत खाओ। ऐसे चालबाजों की बातों में मत आओ। इससे दुनिया में भिखमंगी बढ़ती है। इससे आदमी बिना मेहनत किए खाने की तरकीबें खोजने लगता है। तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और दान दे रहा है?
तुम यह मत सोचना कि मन जब बुरा करते हो तभी रोकता है, तभी शंका खड़ी करता है। नहीं, मन की शंका करने की वृत्ति है। तुम जो भी करोगे, मन शंका करेगा। जैसी वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में शंकाएं लगती हैं। मन शंकालु है।
श्रद्धा मन का हिस्सा ही नहीं। श्रद्धा का अर्थ होता है, मन को तुमने हटा कर अलग कर दिया। तुमने कहा, तू द्वंद्व मत खड़ा कर। मुझे निर्द्वंद्व रहने दे। कुछ तो मुझे जीवन में ऐसा करने दे जिसमें मैं पूरा-पूरा हूं। जिसमें कोई हां और ना नहीं। जिसमें कुछ विवाद नहीं, निर्विवाद कुछ तो मुझे करने दे। प्रेम करने दे निर्विवाद। कम से कम प्रार्थना करने दे निर्विवाद। कम से कम किसी के चरणों में तो मुझे निर्विवाद बैठने दे। किसी मंदिर में किसी मस्जिद में, किसी गुरुद्वारे में कहीं तो मुझे थोड़ी देर को अविभाजित छोड़ दे, विभाजित मत कर। कहीं तो मुझे अनकटा छोड़ दे, काट मत। टुकड़े-टुकड़े मत कर वे जो थोड़े से क्षण तुम्हारे जीवन में अनकटे होते हैं अखंड होते हैं, वहीं श्रद्धा का आविर्भाव होता है।
श्रद्धा अखंड चेतना की सुवास है।
कभी-कभी हो जाता है। और जब भी हो जाता है तब तुम परमात्मा के अति निकट होते हो। तब तुम साधु होते हो। अगर तुम मुझसे पूछो तो कभी-कभी सामान्य जीवन में भी ऐसी बात घट जाती है। तुम उस पर ध्यान नहीं देते। अगर ध्यान दो तो बड़े रहस्य खुल जाएं। तुम्हारे हाथ कुंजी आ जाए।
कभी किसी सुबह प्रभात की बेला में, प्राची के लाली को देख कर उगते सूरज को उठता देख कर, पक्षियों की चहचहा सुन कर... सुबह की ताजी हवा! रात भर का विश्राम! तुम्हारी आंखें नई-नई खुली हैं। फिर से तुमने जीवन को देखा। यह किरणों का जाल, ये सागर की लहरें, यह सुबह का संगीत, यह तरो-ताजगी। और एक क्षण को तुम्हारे भीतर कोई हां ना नहीं होती। कोई शंका नहीं होती। यह सौंदर्य अप्रतिम रूप से तुम्हें घेर लेता है। एक क्षण को तुम श्रद्धा से भर जाते हो, हालांकि तुमने इसे कभी श्रद्धा नहीं कहा है--समझना, इसीलिए तुम चूकते जा रहे हो। एक क्षण को श्रद्धा जन्मती है। उसी श्रद्धा में परमात्मा के तुम करीब होते हो।

तो जिन्होंने सूर्य नमस्कार खोजा था, इसी श्रद्धा के कारण खोजा था, सुबह के सूरज को देखकर जो श्रद्धा उठी थी, तो नमस्कार न करते तो क्या करते? जिन्होंने ब्रह्ममुहूर्त की प्रशंसा में गीत गाएं हैं, इसी कारण गाए हैं। रात भर के विश्राम के बाद रात भर की गहरी निद्रा में डुबकी लग जाने के बाद... क्योंकि जब गहरी नींद होती है और स्वप्न भी खो गए होते हैं तब तुम वहीं पहुंच जाते हो जहां साधु समाधि में पहुंचता है। क्योंकि फिर तुम अखंड हो जाते हो। गहरी नींद में जहां स्वप्न बंद हो गए, मन भी समाप्त हो गया।
इसलिए पतंजलि ने कहा है, समाधि और सुषुप्ति में एक बात समान है कि दोनों में मन नहीं रह जाता। फर्क क्या है! फर्क इतना है कि सुषुप्ति में तुम बेहोश होते हो, समाधि में तुम जागरूक होते हो। मगर एक बात समान है कि दोनों में ही मन नहीं रह जाता। गहरी सुषुप्ति में जब स्वप्न की तरंगें भी नहीं हैं, तुम कहां होते हो? तुम श्रद्धा में होते हो, क्योंकि अखंड होते हो कोई बांटने वाला नहीं बचा वह राजनीतिज्ञ मन जो सदा बांटता था और बांट-बांट कर तुम पर हुकूमत करता था, तुम्हें दो टुकड़े में तोड़ देता था और उसी के कारण तुम्हारा मालिक हो जाता था; दोनों टुकड़ों को लड़ाता था और तुम्हें कमजोर कर देता था, वह राजनीतिज्ञ गया। गहरी निद्रा में तुम अखंड हो जाते हो।
इसलिए अभागे हैं वे लोग जो सुषुप्ति में नहीं उतर पाते हैं। रात भर जो करवटें लेते हैं और सपनों में ही डूबे रहते हैं। सुबह उठकर पाते हैं कि वे और भी थके-मांदे हैं--उससे भी ज्यादा, जितनी रात सोते समय गए बिस्तर पर तब थे; उससे भी ज्यादा थके-मांदे हैं। उन्हें सुषुप्ति नहीं मिली। उन्हें जो अचेतना में थोड़ी देर के लिए परमात्मा का सान्निध्य मिल जाता था वह भी न मिला। चेतना में तो परमात्मा से कोई संबंध जुड़ ही नहीं रहा है, अचेतना में भी संबंध टूट गया है। इसलिए अनिद्रा से पीड़ित आदमी बड़ा दयनीय आदमी है। उतनी तो प्रकृति ने ही सुविधा दी है कि चौबीस घंटे अगर तुम परमात्मा के पास न जा सको कोई हर्ज नहीं, लेकिन गहरी रात, गहरी नींद में तो थोड़ी देर को पहुंच जाना। होश तो नहीं रहेगा, लेकिन उसके पास पहुंचने से उस परम स्रोत में डुबकी लगाने से जो लाभ होना है वह तो हो ही जाएगा। इसलिए सुषुप्ति के बाद सुबह तुममें एक अलग बात होती है। जब पहली दफा तुम आंख खोलते हो गहरी नींद के बाद, तुममें थोड़ी सी श्रद्धा होती है। इसलिए सारे धर्मों ने कहा है, प्रार्थना सुबह, भोर में कर लेना।
सांझ तक तो तुम संसार में रह-रह कर इतने विभाजित हो जाते हो। संसार के धोखे खा-खा कर और धोखे दे-दे कर, तुम इतने विषाद से भर जाते हो, सांझ होते- होते तो तुम इतने थक जाते हो कि कैसे प्रार्थना करोगे, बहुत मुश्किल हो जाएगा प्रार्थना करना। दिन भर की बेईमानियां, धोखे-धड़ियां, कार-गुजारियां, तुम्हें इतना तोड़ जाएंगी कि सांझ तुम बिल्कुल बिखर गए। कहां श्रद्धा, कहां निशंक भाव, कहां अखंडता! कोई तुम्हें धोखा दे गया उसकी भी चुभन, किसी को तुमने धोखा दिया उसकी भी चुभन, किसी को तुम धोखा नहीं दे पाए उसकी भी चुभन। हजार तरह के कांटे छिद गए।
इसलिए तुम देखते हो, भिखमंगे सुबह आते हैं, सांझ नहीं आते। क्योंकि जानते हैं सांझ कौन देगा? सांझ तो भिखमंगा डरता है कि किसी से मांगा तो झपट्टा मारकर जो मेरे पास है, वही न छीन ले। सांझ तक तो हालत लोगों की पागलपन की हो जाती है। सुबह भिखमंगे आते हैं। सुबह थोड़ा भरोसा किया जा सकता है कि आदमी झपट्टा नहीं मारेगा। और सुबह थोड़ी शायद दया उमगे। सुबह शायद थोड़ी करुणा हो। सुबह शायद थोड़ा श्रद्धा का भाव हो तो दे भी सके कुछ, बांट भी सके कुछ। सांझ तो कठिन है। सांझ तो हर आदमी डाकू हो जाता है।
यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सांझ जब तुम घर लौटते हो तो अनिवार्य रूप से पत्नी से झगड़ पड़ते हो। दिन भर के थके-मांदे, दिन भर की परेशानियों से भरे हुए, दिन भर के बाजार से परेशान जब तुम सांझ लौटते हो तो तुम होश में नहीं होते। तुम्हारे भीतर कोई श्रद्धा नहीं होती। और प्रेम हो कि प्रार्थना हो, सभी श्रद्धा के अंग हैं। इधर पत्नी भी दिन भर बैठी-बैठी परेशान हो गई है। इधर पत्नी भी दिन भर में थक गई है। बच्चे हैं और नौकर है,

और बिजली काम नहीं करती और फोन बिगड़ा है। दिन भर में पत्नी भी थक गई है, दिन भर में पत्नी भी परेशान हो गई है, दिन भर में पत्नी का परमात्मा भी खंडित हो गया है। जैसे तुम्हारा परमात्मा खंडित हो गया। ये दो खंडित व्यक्ति जब सांझ को मिलते हैं तो एक दूसरे पर क्रोध से भर जाते हैं।
पश्चिम में एक नई हवा पैदा हो रही है, उसमें बड़ा सार है। उसे अभी लोगों
ने इस तरह से देखा नहीं है। शायद जो उस हवा में उतरे हैं उनको भी इस बात का पता नहीं है। सारी दुनिया में मनुष्य-जाति के इतिहास में स्त्री और पुरुष रात को ही प्रेम करते रहे हैं। लेकिन अमरीका में एक नई हवा पैदा हो रही है। सुबह प्रेम करने की। अभी तो अमरीका के मनोवैज्ञानिकों को भी साफ नहीं है कि बात क्या है। लेकिन सांझ प्रेम की संभावना ही कम होती चली गई है। अब तो सुबह ही प्रेम किया जा सकता है। वहीं थोड़ी सी श्रद्धा रहती है। वहीं थोड़ा एक-दूसरे के संग-साथ होने की संभावना रहती है क्योंकि अपने संग-साथ जब कोई होता है, जब अपने भीतर रस-विमुग्ध होता है, जब अपने भीतर तरंग उठती होती है शांति की, मौन की, सुख की तो ही तो किसी दूसरे को प्रेम दे सकता है या दूसरे से प्रेम ले सकता है। तभी तो थोड़ी सी देर के लिए हम एक दूसरे में डूब सकते हैं। एक दूसरे में डूबना भी परमात्मा में ही डूबना है। वह भी उलटी तरफ से कान पकड़ना है, मगर है तो कान का ही पकड़ना। दूसरे में डूब कर भी डूबते तो हम अपने में ही हैं। सुबह का मूल्य है क्योंकि सुबह थोड़ी शंका कम होती है। सुबह हां कहने का मन ज्यादा होता है, ना कहने का मन कम होता है।
तुम जरा जांचना, अपना ही जीवन जांचना, सुबह तुम बहुत सी बातों में हां
कह दोगे, उन्हीं बातों में सांझ शायद तुम हां न कह पाओ। और सांझ जिन बातों में तुम ना कह दोगे, सोचना कि अगर किसी ने सुबह पूछा होता तो... तो शायद तुम हां कह देते। सांझ होते-होते सभी लोग नास्तिक हो जाते हैं। ना पैदा होने लगती है। ना यानी नास्तिक। नहीं कहने की जिद्द आ जाती है। सांझ होते-होते! सुबह सभी आस्तिक होते हैं। आस्तिक यानी हां कहना सहज मालूम होता है। कोई अड़चन नहीं मालूम होती।
दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या भेख।
निहकपटी निरसंक रहि बाहर भीतर एक।।
तो दो लक्षण बताते हैं। कि उसके जीवन में कोई कपट न हो, और उसके जीवन में कोई शंका न हो। श्रद्धा अखंड हो। उसका भीतर व्यक्तित्व अविभाजित हो-- बाहर भीतर एक। ऐसा ही व्यक्ति बाहर भीतर एक होता है।
तो खंड दो तरह के होते हैं, इसलिए दो लक्षण बताए। एक तो खंड होता है कि बाहर अलग, भीतर अलग। यह एक प्रकार का खंड हुआ। इसको हम कहते हैं पाखंड। एक तरह का खंड है। बाहर कुछ, भीतर कुछ। यह एक दिशा में दो टुकड़े हो गए। यह एक तरह का खंड है।
दूसरी तरह का खंड यह है कि बाहर कुछ, भीतर कुछ, यह तो ठीक ही है, भीतर भी
एक नहीं है। भीतर भी अनेक। तब तो और भी खंड हो गए। तब तो तुम्हारे भीतर एक भीड़ हो गई। तुम व्यक्ति न रहे अविभाजित, तुम तो एक भीड़ हो गए। तुम्हारे भीतर एक कोलाहल हो गया। इसी कोलाहल में हम जीते हैं। इस कोलाहल से मुक्त हो जाने का नाम साधु। यह अपूर्व व्याख्या हुई। साधु की तरफ यह गहरी लक्षणा हुई।
सत सब्द सत गुरुमुखी मत गजंद-मुखदंत।
यह तो तोड़ै पौलगढ़ वह तोड़ै करम अनंत।।
सत सब्द सत गुरुमुखी...
अगर ऐसी श्रद्धा में बैठ कर किसी ने साधुभाव से गुरु का वचन सुना हो, गुरु का शब्द सुना हो, ऐसी श्रद्धा में--तो ही सुना जा सकता है, स्मरण रहे। शंका में तो गुरु का शब्द सुना नहीं जा सकता। शंका से तो गुरु का कोई संबंध ही नहीं बनता। शंकालु के पास तो सेतु ही नहीं होता कि गुरु से जुड़ जाए। शंकालु ने तो अपनी शंका के कारण सब सेतु सिकोड़ लिया। गुरु से तो जुड़ता वही है जो निःशंक है। जो बाहर भीतर अलग-अलग है वह तो गुरु से कैसे जुड़ेगा?
तुम जाकर गुरु के चरणों में सिर भी झुका देते हो मगर तुम्हारा अहंकार पीछे अकड़ा खड़ा रहता है--यह बाहर भीतर अलग-अलग हो तुम। खोपड़ी तो झुक रही है, शरीर तो झुक रहा है मगर अहंकार मन तो खड़ा है; अकड़ा हुआ खड़ा है। सिर के साथ

असली सिर भी झुक जाए, अहंकार भी झुक जाए तो संबंध जुड़ता है। उसी क्षण में संबंध जुड़ जाता है। गुरु के साथ होना किसी विवाद की घड़ी में नहीं हो सकता। संवाद की घड़ी चाहिए, जहां गुरु और तुम्हारा हृदय एक साथ धड़के। जहां तुम अलग-अलग धड़क रहे, अलग-अलग नाच रहे, अलग-अलग सोच रहे, वहां गुरु से संबंध न हो सकेगा। जहां गुरु की तरंग और तुम्हारी तरंग एक साथ हो गई, जहां तुमने गुरु के साथ जरा भी अमैत्री भाव न रखा, जरा भी शत्रुता का भाव न रखा। विवाद में शत्रुता है। विवाद का मतलब है, मुझे मेरी रक्षा करनी है। पता नहीं यह आदमी कहां ले जाए, क्या करे। मुझे मेरा अपना खुद हिसाब रखना है। जो जंचेगी बात, मान लूंगा। जो नहीं जंचेगी, नहीं मानूंगा।
यह साधारणतः हमारी मनोदशा होती है कि जो मुझे जंचेगी वह मैं मानूंगा। तुम्हें सत्य का पता है? पता ही हो तो किसी की तुम्हें मानने की जरूरत ही क्या है? यह तो ऐसा हुआ कि तुम बीमार हो और चिकित्सक के पास गए हो और तुम कहो कि जो औषधि मुझे जंचेगी वह मैं लूंगा। तुम्हें चुनाव की स्वतंत्रता है, चिकित्सकों में चुन लो तुम्हें जो चिकित्सक चुनना हो। चुनने के पहले तुम्हें स्वतंत्रता है कि तुम अ के पास जाओ, कि ब के पास, कि स के पास। तुम बुद्ध को पकड़ो, कि मोहम्मद को, कि नानक को, कि कबीर को, कि दरिया को, तुम्हें स्वतंत्रता है। चिकित्सक बहुत हैं दुनिया में। कोई चिकित्सकों की कमी नहीं है। चिकित्सक तुम चुन लो लेकिन एक बार तुमने चिकित्सक चुन लिया, फिर उसके साथ अपनी तरंग जोड़नी पड़ती है। फिर तो वह जो कहे, उसमें हिसाब नहीं रखना पड़ता कि यह दवा मैं लूंगा और यह मैं नहीं लूंगा। और यह मैं इतनी मात्रा में लूंगा और यह मैं इतनी मात्रा में नहीं लूंगा। एक बार गुरु को चुना तो फिर तुमने समर्पण किया। अगर ऐसा समर्पण न हो तो गुरु के वचनों का कोई परिणाम नहीं होगा।
सत सब्द सत गुरुमुखी...
गुरु के मुख से जो निकल रहा है वह तो सत्य है। वह तो परम सत्य है। वह बड़ा शक्तिशाली है।
... मत गजंद-मुखदंत।
ज्यादा शक्तिशाली है उस हाथी से भी, जो धक्के मार कर बड़े से बड़े किले
के द्वार को तोड़ देता है। जो अपने दांतों से बड़े से बड़े किले के द्वार को हिला देता है, गिरा देता है।
गुरु के सत्य वचन उस मतवाले हाथी से भी ज्यादा शक्तिशाली हैं। तुम्हारे अंधकार को गिरा देने की क्षमता है लेकिन--यह तो तोड़ै पौलगढ़ वह तोड़ै करम अनंत। तुम पर निर्भर है। तुम उसे अंगीकार करो तो ही यह क्रांति घट सकती है। तुम स्वीकार करो तो ही क्रांति घट सकती है।
हाथी तो केवल किले का द्वार तोड़ सकता है, लेकिन गुरु के वचन तुम्हारे जन्मों जन्मों में बनाई गई तुम्हारी जो अपनी ही निर्मित व्यवस्था है, जिसको तुम जीवन कहते हो--जो जीवन तो नहीं है, मृत्यु से भी बदतर है। और जिसे तुम अपना घर कहते हो--जो तुम्हारा घर तो नहीं है महा कारागृह है। जो तुमने किला अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया है, जिसमें तुम खुद ही फंस गए हो और दुखी हो रहे हो और पीड़ित हो रहे हो, और तड़फ रहे हो। जो जाल तुमने अपने चारों तरफ रच लिया है और खुद ही जिसमें तुम उलझ गए हो--हाथी, मस्त हाथी तो केवल किले का द्वार तोड़ सकेगा लेकिन गुरु की मस्ती और भी गहरी है। वह परमात्मा के रस को पीकर मस्त हुआ है।
हाथी को तो शराब पिला देते हैं। जब हाथी से कोई दरवाजा तुड़वाना हो किले का तो उसको शराब पिलानी पड़ती है। बिना शराब पीए तो वह भी जाकर किले के दरवाजे पर चोट नहीं करेगा। यह तो पागल मस्ती में ही कर पाएगा वह। नहीं तो सोचेगा हजार बार, शंका उठेगी, विचार करेगा। और फिर ऐसा ही थोड़े ही होता है किले का दरवाजा। किले के दरवाजे पर भाले लगे होते हैं। उसमें सिर मारना-- भालों से चुभने की तैयारी चाहिए। हाथी डरेगा। उसे पहले शराब पिला देते हैं। शराब पीकर मस्त हो जाता है तो फिर वह फिकरनहीं करता--न भालों की, न खतरों की; वह जूझ जाता है।
सदगुरु परमात्मा की शराब पीए है, इसलिए तुमसे जूझता है; नहीं तो तुमसे जूझेगा भी नहीं क्योंकि तुम्हारा किला खूब प्राचीन है और बड़े भाले लगे

हैं। और तुमसे टकराना सिर्फ मस्तों के लिए संभव है। जिनका गणित ही छूट गया है, जिन्होंने हिसाब किताब छोड़ दिया है, तर्क छोड़ दिया है। ऐसी मस्ती में जो डूबे हैं, वही तुमसे टकराएंगे; वही तुम्हें तोड़ पाएंगे। किसी मस्त का सान्निध्य मिल जाए तो सौभाग्य। क्योंकि मस्त की ही सहायता से तुम बाहर निकल पाओगे, अन्यथा तुम निकलने वाले नहीं हो। होशियार आदमी तो तुमसे बच कर चलेंगे। चालबाज आदमी तो कहेगा, कहां की झंझट में पड़ना! तुम्हारा किला बड़ा है क्योंकि जन्मों जन्मों के कर्मों से तुमने उसे निर्मित किया है।
यह तो तोड़ै पौलगढ़ वह तोड़ै करम अनंत।
गुरु जूझ जाता है। मगर जूझता तभी है जब उसके पास सत्य हो।
दांत रहै हस्ति बिना पौल न टूटे कोए।
देखते हो न? हाथीदांत से टूट जाता है किले का दरवाजा, लेकिन इससे यह मत सोचना कि अकेले हाथीदांत को लेकर गए तो किले का दरवाजा खोल लोगे। हाथी चाहिए पीछे, नहीं तो हाथीदांत लेकर पहुंच गए किले के दरवाजे को ठकठोरने से, उससे कुछ खुलेगा नहीं।
दांत रहै हस्ति बिना पौल न टूटे कोए।
फिर कोई दरवाजा न खुलेगा, न कोई किले की दीवाल टूटेगी। अकेले दांत की
तो जो स्थिति होगी, वह क्या होगी--
कै कर धारै कामिनी...
अकेले दांत से या तो स्त्रियां आभूषण बना लेंगी और हाथों में पहन लेंगी।
... कै खेलारां होए।
या बच्चे खिलौना बना लेंगे और खेलेंगे। उससे फिर किले नहीं टूटते।
दरिया यह कह रहे हैं कि सदगुरु के वचन से किला तभी टूटता है जब उसके पीछे आत्मानुभव हो। हाथी हो पीछे, परमात्मा हो पीछे तभी। पंडित से नहीं टूटेगा। पंडित वे ही वचन बोलता है जो सदगुरु बोलता है। वचनों में कोई भेद नहीं। पंडित के पास सिर्फ दांत है, हाथी नहीं है। सदगुरु के पीछे हाथी है। वह मतवाला परमात्मा उसके साथ जुड़ा है। उसने अपने को परमात्मा से जोड़ लिया है। अब वह अकेला नहीं है।
मैंने सुना है, एक ईसाई फकीर औरत थेरेसा चर्च बनाना चाहती थी। उसने सारे गांव को इकट्ठा किया। उसने कहाः एक चर्च बनाना है। जीसस का बड़े से बड़ा चर्च इस गांव में बनाना है। लोग हंसने लगे, उन्होंने कहाः हम गरीब आदमी हैं, यह चर्च कैसे बनेगा? तुझे कोई खजाना मिल गया है थेरेसा, जो चर्च बनाएगी? उसने कहाः हां, खजाना मुझे मिल गया है। यह देखो। उसने खीसे से पैसे निकाले--दो पैसे।
लोग हंसने लगे। उन्होंने कहाः हमें सदा से ही शक था कि तेरा दिमाग खराब है। अब तू बिल्कुल पागल हो गई। दो पैसे से दुनिया का सब से बड़ा चर्च बनाना है? उसने कहाः तुम्हें दो पैसे ही दिखाई पड़ते हैं, और पीछे जो परमात्मा मेरे साथ है वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। दो पैसे शुरू करने के लिए काफी हैं। फिर बाकी परमात्मा तो है ही; वह फिकर लेगा।
लोग तो हंसे लेकिन चर्च बना। और दुनिया का बड़े से बड़ा चर्च आज वहां खड़ा है। दो पैसे के बल बना। लेकिन थेरेसा ने जो बात कही, बड़ी प्यारी कही। कि तुम्हें सिर्फ दो पैसे दिखाई पड़ते है, तुम्हें मेरे भीतर जो परमात्मा खड़ा है वह दिखाई नहीं पड़ता। मैं उस खजाने की बात कर रही हूं। यह तो थेरेसा का संबंध हुआ--दो पैसे। यह तो थेरेसा की संपत्ति--दो पैसे। और फिर परमात्मा धन परमात्मा, उसकी कितनी संपत्ति? उसे जोड़ लो। चर्च बनेगा।
कहते हैं, अबू बकर ने मोहम्मद के संस्मरणों में लिखा है कि दोनों भागते हुए दुश्मन से बचने के लिए एक गुफा में चले गए। दुश्मन पीछे आ रहे हैं, अबू बकर बहुत घबड़ाया हुआ है। घोड़ों की टाप सुनाई पड़ने लगी। टाप करीब आती जाती है। अबू बकर पसीना-पसीना हो रहा है, मोहम्मद बड़े शांति से बैठे हैं। आखिर उसने कहाः आप शांत क्यों बैठे हैं? आखिरी घड़ी आई जा रही। कुछ परमात्मा से प्रार्थना वगैरह करनी हो तो कर लो। अब ज्यादा देर नहीं है। यह श्वास थोड़ी देर की और है। घोड़ों की टाप बढ़ती जा रही है। दुश्मन करीब आ रहा है। और हम केवल दो हैं और दुश्मन हजारों हैं।

मोहम्मद ने कहाः वहां तू गलती करता है। हम दो नहीं हैं, हम तीन हैं, गिनती ठीक से कर। अबू बकर ने गौर से देखा कि कहीं मैं घबड़ाहट में गिनती तो नहीं भूल गया। देखा तो दो ही हैं। छोटी सी गुफा में दो बैठे हैं। अबू बकर ने कहाः आप होश में हैं हजरत? डर के मारे कहीं आप घबड़ा तो नहीं गए हैं? तीन गिन रहे हैं दो को? मोहम्मद ने कहाः तुम परमात्मा को गिनते नहीं, जो सदा हमारे साथ है। हम तीन हैं--दो हम और एक परमात्मा। दुश्मन हजारों हों, कोई फिकर न कर। उस एक की मौजूदगी काफी है। और जब मोहम्मद यह बात कर रहे थे तभी आवाज घोड़ों के टाप की कम होने लगी। ठीक उसी क्षण वे किसी और रास्ते पर मुड़ गए। थोड़ी ही देर में टापों की आवाज बंद हो गई। दुश्मन कहीं दूर निकल गए। दांत रहै हस्ति बिना पौल न टूटे कोए।
अकेले दांत से नहीं टूटता है किले का दरवाजा, पीछे हाथी चाहिए। हाथी
भी साधारण नहीं चाहिए, मस्त चाहिए; मतवाला चाहिए, शराब में डूबा हुआ चाहिए। नहाया हुआ चाहिए शराब में। रोआं-रोआं शराबी का हो तो टूटता है।
कै कर धारै कामिनी...
अकेले हाथी दांत लिए घूमना। यही तो लोग करते हैं जो शास्त्र लिए घूम रहे हैं--अकेले हाथी दांत। यही तो लोग करते हैं जो सिद्धांतों की चर्चा करते रहते हैं--बिना किसी स्वानुभव के, बिना किसी आत्म-साक्षात्कार के, बिना परमात्मा से आंख मिलाए जो परमात्मा की बात करते रहते हैं। जिन्होंने समाधि का जरा भी रस नहीं चखा, और समाधि की शास्त्रीय व्याख्या करते रहते हैं। जो कभी प्रार्थना में नहीं उतरे और प्रार्थना पर शास्त्र लिखते रहते हैं, उनसे सावधान रहना।
कै कर धारै कामिनी...
वह जो हाथी दांत लिए हैं, आज नहीं कल किसी स्त्री के हाथ में या तो आभूषण बन जाएगा।
... कै खेलारां होए।
या खिलौना बन जाएगा। कोई बच्चा उससे खेलेगा। इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। कोरे शब्दों का कोई भी मूल्य नहीं है।
और ख्याल रखना कि कोरे शब्द भी ठीक वैसे ही दिखाई पड़ते हैं जैसे भरे शब्द। शब्दों में कोई फर्क नहीं है। हाथीदांत तो वे ही हैं, पीछे हाथी हो कि न हो। अगर तुम हाथीदांत को ही देखते हो तो क्या फर्क करोगे? दोनों हालत में हाथीदांत हाथीदांत है। अगर तुम हाथीदांत को ही काट कर रासायनिक परीक्षण करवाओगे तो दोनों में एक सा ही रासायनिक परीक्षण मिलेगा; कोई फर्क न होगा।
दरिया बोलते हैं, कोई पंडित बोलता हो, दोनों की भाषा का अगर जाकर भाषाशास्त्री से विश्लेषण करवाओगे तो वह कहेगा कि दोनों की भाषा एक ही जैसी है। दोनों एक ही बात कह रहे हैं। एक ही बात नहीं कह रहे हैं; हालांकि एक जैसे ही शब्दों का उपयोग हो रहा है। बात बड़ी फर्क है। बात बड़ी भिन्न है। तुम तोते को रटवा दो तो तोता भी बोल देता है। मगर तोता जब कुछ बोलता है
तो सिर्फ दांत। भीतर कोई हाथी नहीं है। तोते को पता ही नहीं है कि अर्थ भी क्या है। तोता सिर्फ पुनरुक्त कर देता है। तोता सिर्फ नकल कर रहा है। तोते को हिंदू के घर में होता है तो लोग सिखा देते; राम-राम हरे राम। तो तोता राम-राम हरे राम कहने लगता। इससे यह मत समझना कि तोता हिंदू हो गया। मुसलमान घर में होता तो अल्लाह-अल्लाह कहता। ईसाई घर में होता तो कुछ और कहता। जैन घर में होता तो नमोकार मंत्र पढ़ता। यह तोता यही होता। यह तोते को कुछ लेना-देना नहीं है।
और दुख की बात तो यह है कि आदमियों में बहुत लोग तोतों की भांति हैं पंडित तो बिल्कुल पोपट, तोता। दांत ही भर उसके पास हैं। उसके दांतों से धोखे में मत आ जाना। दरिया कहते हैंः सदगुरु खोजो जहां मस्ती हो; जहां शब्दों में रसधार बह रही हो; जहां शब्दों के पीछे निःशब्द खड़ा हो। और ऐसा गुरु मिल जाए तो निःशंक भाव से उससे जुड़ जाना। तो फिर निष्कपट भाव से उसके साथ एक हो जाना। फिर हिम्मत कर लेना। फिर दुस्साहस कर लेना। फिर जोखम उठा लेना। जोखमियों का धंधा है धर्म। जुआरियों का धंधा है धर्म। यह कमजोरों का, हिसाब-किताब लगाने वालों का, दुकानदारों का नहीं है। जो दो-दो कौड़ी का

हिसाब लगाते रहते हैं, वे कभी धार्मिक नहीं हो पाते। जो छलांग लगाने को राजी हैं। जो कहते हैं ठीक है, या तो इस पार या उस पार; केवल उनका है।

मेरे पैरों के निशां अब भी परेशां हैं यहां
खाक छानी है इन्हीं राहों की बरसों मैंने
वक्त आया तो गदागर से भी बदतर निकले
तमकनत देखी थी जिन साहों की बरसों मैंने
बन के जंजीर गला घोंट रही हैं मेरा
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने
इनकी गरमी से पसीजे न पसीजे वो मगर
आग तापी है इन्हीं आहों की बरसों मैंने
बन के जंजीर गला घोंट रही हैं मेरा
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने

तुम जिंदगी में बहुत जगह उलझ गए हो। जिन बाहों की तुमने बरसों राह देखी थी, वही तुम्हारी जंजीरें बन गई हैं; वही तुम्हारी गले की फांसी बन गई हैं। जिस धन को तुमने सोचा था, धनी बना देगा, उसी ने तुम्हें निर्धन बना दिया है। और जिस पद को तुमने सोचा था, आकाश में उठा देगा, उसने ही तुम्हें भिखमंगा बना दिया है। जिस ज्ञान से तुम सोचते थे, सत्य मिल जाएगा, उस ज्ञान से तुम तोते हो गए हो। और जिन संप्रदायों, मंदिरों, मस्जिदों से तुमने नाता जोड़ा था और सोचा था कि इनसे मार्ग मिल जाएगा, उनके ही कारण मार्ग मिल भी सकता था तो मिलना मुश्किल हो गया है।

बन के जंजीर गला घोट रही हैं मेरा
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने

जागो थोड़े। थोड़े समझना शुरू करो। मुर्दा मंदिरों से राह नहीं जाती, कोई जिंदा गुरु चाहिए। किताबों से मार्ग नहीं मिलता, कोई धड़कता हुआ हृदय चाहिए।
लेकिन कुछ कारण हैं कि हम मुर्दा किताबों से ज्यादा आसानी से संबंध जोड़ लेते हैं। उसका कारण साफ है। मुर्दा किताब तुम्हें बदलती नहीं; बदल नहीं सकती। वही सुरक्षा है। रखे बैठे हैं कुरान कि गुरुग्रंथ, कि वेद, कि बाइबिल। क्या करेगी बाइबिल तुम्हारा? दो फूल चढ़ा दिए, वह भी तुम्हारी मस्ती। कभी चढ़ा दिए, तो चढ़ा दिए, नहीं चढ़ाए तो नहीं चढ़ाए। क्या करेगी बाइबिल तुम्हारा? फिर कभी पढ़ ली, इधर-उधर उलट ली, फिर जो मतलब निकालना चाहा वह मतलब निकाल लिया।
तो किताब तो तुम्हारी गुलाम हो जाती है। किताब तुम्हें क्या बदलेगी! तुम्हीं किताब को बदल देते हो। इसलिए किताब की तो पूजा लोग करते हैं। मर गए गुरु की हजारों साल तक पूजा होती है। बुद्ध को गए ढाई हजार साल हो गए, अब पूजा चलती है। बुद्ध जब जिंदा थे तो यही लोग उनसे बच कर भागते थे। क्योंकि जिंदा बुद्ध आग हैं। जिंदा बुद्ध के पास जाओगे तो जलोगे। और जलोगे तो ही निखरोगे भी। जलोगे तो ही तुम्हारा कचरा जलेगा और तुम्हारा सोना कुंदन बनेगा, शुद्ध होगा। इसलिए लोग राख की पूजा की करते हैं। आग से बचते हैं, राख की पूजा करते हैं। राख में खतरा नहीं है, राख में बड़ी सुरक्षा है।
कल ही एक युवक ने मुझे आकर कहा कि मैं जब दूर जर्मनी में होता हूं तो आपकी बड़ी याद आती है और आप बड़े प्यारे लगते हैं। और चौबीस घंटे आपके ही रस में रहता हूं। और जब यहां आता हूं तो डर लगने लगता है, भय लगने लगता है। आपके पास आने से घबड़ाने लगता हूं। हजार-हजार विचार बाधाएं डालने लगते हैं। तो उसने कहाः मैं बड़े पशोपेश में हूं। यह बात क्या है? और ऐसा दो चार बार हो गया है। जर्मनी लौट जाता हूं, पहुंचते ही जर्मनी सब ठीक हो जाता है।
यहां आया नहीं कि फिर गड़बड़ शुरू हो जाता है।

उसके पशोपेश को समझो। उसका पशोपेश अधिक लोगों का पशोपेश है। उसकी उलझन अधिक लोगों की उलझन है। जब वह जर्मनी में है तब कोई अड़चन नहीं है। तब आग से तुम इतने दूर हो कि अब आग की तस्वीर ही रह गई है तुम्हारे मन में। तस्वीर तुम्हारी है। तुम जैसी चाहो, बना लो। जैसा रंग डालना चाहो उस तस्वीर में डाल दो। आग की तस्वीर तुम्हें जलाएगी नहीं। आग की तस्वीर के पास जाने से कौन डरता है? आग की तस्वीर को तो लोग अपने हृदय में लगा सकते हैं। लेकिन आग के पास जाने से तो डर लगेगा, घबड़ाहट होगी।
तो मैंने उससे कहा कि यह तो बड़ा सूचक है, यह तो बात साफ है। जब तू दूर होता है तब मेरे वचनों का जो तुझे अर्थ करना है कर लेता होगा; तब मैं तेरे हाथ में हूं। जब तू मेरे पास आता है तो तू मेरे हाथ में है और अड़चन है। इसलिए मुर्दा गुरुओं की प्रतिष्ठा चलती है, पूजा चलती है। जिंदा गुरु
का तिरस्कार, निंदा, विरोध। मुर्दा गुरु का सम्मान। और ये सब मुर्दा गुरु किसी दिन जिंदा थे, तब तुमने इनके साथ भी यही व्यवहार किया।
मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात।।
प्यारा वचन है।
मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात।
मतवाद का अर्थ होता हैः सिद्धांत की पकड़। मतवाद का अर्थ होता हैः बिना अनुभव के शब्दों का आग्रह--मेरी कुरान ठीक कि मेरी गीता ठीक। और तुम्हें ठीक का कुछ पता नहीं है। ठीक का तुम्हें कभी दर्शन नहीं हुआ। ठीक का दर्शन हो सके इसके लिए तुमने कभी आंख ही नहीं खोली। ठीक से संबंध जुड़ सके इतनी तुमने कभी हिम्मत ही नहीं की। और मेरी कुरान ठीक, और मेरी गीता ठीक, और तुम लड़ रहे हो और विवाद कर रहे हो--मतवादी! मतवाद से सावधान रहना। वह जंजीर बन जाएगी तुम्हारी।
हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, बौद्ध सब जंजीरों में ग्रसित हैं। अलग अलग नाम हैं जंजीरों के, मगर जंजीरें जंजीरें ही हैं। अगर तुम हिंदू हो तो मुसलमान की मस्जिद में जाने में तुम्हें पता चलेगा कि जंजीर है पैर में। अगर जंजीर की परख करनी हो, हिंदू हो, जरा मुसलमान की मस्जिद में जाने की कोशिश करना, तुम अचानक पाओगे, पैर रुकते हैं, कोई चीज पीछे रोकती है। यह कौन चीज रोकती होगी? दिखाई तो नहीं पड़ती है। पैर में एक सूक्ष्म जंजीर पड़ी है, वह मस्जिद में नहीं जाने देती है। मंदिर में खींच लेती है, मस्जिद में रोकती है। अगर किसी तरह हिम्मत करके चले भी गए तो मस्जिद में हाथ झुकने, सिर झुकने ही इच्छा पैदा नहीं होगी। अकड़े रह जाओगे। पीठ झुकेगी नहीं, सिर झुकेगा नहीं। कौन रोक रहा है? एक जंजीर पड़ी है, जो बड़ी अदृश्य है। मुसलमान फकीर के सामने तुम जाकर उसके चरणों में सिर न रख सकोगे। मुसलमान--और उसके चरणों में सिर रखें? और तुम ब्राह्मण या तुम जैन। और तुम शुद्ध शाकाहारी और यह मांसाहारी! इसके चरणों में सिर रखें! यह म्लेच्छ, और तुम शुद्ध--इसके चरणों में सिर रखें? कोई चीज रोक लेगी। और यह सामने जो आदमी खड़ा है, हो सकता है एक जाग्रत पुरुष हो, मगर वह जाग्रत पुरुष तुम्हें दिखाई नहीं पड़ सकता क्योंकि तुम्हें और चीजों का निर्णय करना है पहले। अगर तुम जैन हो तो एक पाखंडी जैन मुनि के चरणों में भी तुम सिर झुका दोगे और एक असली मुसलमान फकीर के चरणों में भी सिर न झुका पाओगे। इससे पता चलता है जंजीर का। और यही हालत मुसलमान की है। वह पाखंडी फकीर के पैरों में सिर झुका देगा, मदारी के चरणों में सिर झुका देगा, और किसी जैन मुनि के, जहां जीवन की सचमुच तपश्चर्या प्रकट हुई हो, जहां जलती आग हो, वहां अटका रह जाएगा। वहां अचानक पाएगा कि सब उत्साह खो गया। वहां झुकने की इच्छा नहीं होती। यह तुम्हारी इच्छा है या तुम्हारी जंजीरों की इच्छा है? यह तुम स्वतंत्र हो, तुम सोचते हो तुम मुक्त हो? तो अगर तुम मुक्त होते हो जो था, उसे देखते।
महावीर को हिंदुओं ने नहीं देखा। महावीर चले इसी जमीन पर, हिंदुओं ने नहीं देखा। हिंदुओं की किताबों में महावीर का उल्लेख भी नहीं है। इतना अपूर्व पुरुष हुआ और उसका उल्लेख भी नहीं हिंदुओं की किताबों में; बात क्या है? ऐसी उपेक्षा की? ऐसी पीठ कर ली इसकी तरफ, इस आदमी की तरफ!

जैनों ने कृष्ण को नरक में डाल रखा है अपनी किताबों में। क्योंकि जैनों के हिसाब से इसी आदमी ने युद्ध करवा दिया महाभारत का। अर्जुन तो संन्यासी हुआ जा रहा था। अर्जुन तो जैन मुनि होने की तैयारी कर रहा था। वह तो कहता था चला मैं छोड़ कर। यह हिंसा करनी, यह मारना अपने लोगों को, यह मुझसे न हो सकेगा। तो कृष्ण ने उसको समझा-बुझा कर घोंट-घांट कर गीता पिला दी। और वह बेचारा बहुत भागा, बहुत भागा, मगर ये भागने नहीं दिए और किसी तरह उसको हिंसा में उतार दिया। लाखों लोग मारे गए, हिंसा हुई। उसका जिम्मा किस पर है? तो जैनों ने कृष्ण को सातवें नरक में डाला है। उससे नीचे कोई नरक नहीं है तो सातवें में डाल दिया। और थोड़े-बहुत दिन के लिए नहीं डाला, काफी लंबे काल के लिए डाला है। जब यह सृष्टि नष्ट होगी तब छूटेंगे। तब तक तो उनको नर्क में रहना पड़ेगा।
मतवादी तो कृष्ण जैसी चेतना को भी न देख पाएगा, महावीर जैसी चेतना को
भी न देख पाएगा। क्राइस्ट को यहूदियों ने सूली पर चढ़ा दिया। यहूदी बेटा था, यहूदी घर में पैदा हुआ था, लेकिन कुछ ऐसी अनूठी बातें कहने लगा जो कि पंडितों को न जमीं। जो रबाई थे उनको न जमीं। जो धर्मगुरु थे उनको न जमी। उनके आसन डावांडोल होने लगे। इसको फांसी देनी पड़ी। इसको सूली लगानी पड़ी। यहूदी बेटे को यहूदी बापों ने मारा। यह बेटे की हत्या की। इसकी कोई ज्यादा उम्र भी न थी, तैंतीस साल की उम्र में जीसस को सूली पर लटका दिया। आग बड़ी मजबूत रही होगी, आग बड़ी प्रचंड रही होगी। घबड़ा गई होगी सारी की सारी व्यवस्था, स्थापित निहित स्वार्थ।
मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात।
दरिया कहते हैंः मतवादी मत बन जाना; नहीं तो तुम तत्व जिसने जाना है, उसकी बात न समझ पाओगे। तत्व को जानने वाला सिद्धांतों की बात नहीं करता।
तत्व को जानने वाला अनुभव की बात करता है, साक्षात्कार की बात करता है।
तत्व को जानने वाले को छोटी-छोटी भाषाओं के झगड़ों में रस नहीं होता।
मान्यताओं, सिद्धांतों, शास्त्रों में रस नहीं होता। तत्ववादी को तो सिर्फ एक बात में रस होता हैः जो है, उनको तुम जान लो। जो है, जैसा है, वैसा ही उसको जान लो। आदमी के द्वारा बनाए गए दर्शनशास्त्र किसी मूल्य के नहीं हैं। तुम्हारी आंख सभी दर्शनशास्त्रों से मुक्त होनी चाहिए।
रंजी सास्तर ग्यान की अंग रही लिपटाए।
दरिया कहते हैंः अंग पर बड़ी धूल जम गई है शास्त्र की, ज्ञान की--सास्तर ग्यान की। कोई गुरु खोजो कि उसे धो दे। कोई गुरु खोजो कि उसकी अमृत वर्षा में तुम्हारी धूल बह जाए। सदगुरु वही, जो तुम्हें शास्त्रों की धूल से मुक्त करा दे; शब्दों के आग्रह से मुक्त करा दे; तुम्हारी आंखों को निर्मल कर दे, दर्पण की तरह निर्मल--कि जो है, उसी का प्रतिबिंब बनने लगे।
मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात।
तो अगर तुम मतवाद लेकर गुरु के पास गए तो तुम समझ ही न पाओगे, क्योंकि वहीं से झंझट शुरू हो गई। वह है तत्व को जानने वाला और तुम हो केवल सिद्धांत की बकवास में लगे हुए।
मैं एक गांव में गया, दो बूढ़े मेरे पास आए। दोनों पड़ोसी हैं। एक जैन है, एक ब्राह्मण है। दोनों ने मुझसे कहा कि आप आ गए, तो अच्छा हुआ। एक बात हमें पूछनी है। हम दोनों बचपन के साथी हैं। उनकी उम्र होगी कोई सत्तर पचहत्तर साल अब तो। और बचपन से ही हममें विवाद है और हम पड़ोसी भी हैं। हम सिर लड़ा-लड़ाकर हार गए। मैं जैन हूं और यह ब्राह्मण। ये कहते हैं दुनिया को परमात्मा ने बनाया, और मैं कहता हूं किसी ने नहीं बनाया। कोई स्रष्टा नहीं है। यह तो अनादि काल से चली आ रही है। इसका बनाने वाला कोई है ही नहीं। हम थक गए हैं इसमें विवाद कर-कर के, और पास ही रहते हैं। फिर सुबह मिल जाते हैं, फिर सांझ मिल जाते हैं। अब तो दोनों रिटायर भी हो गए हैं तो कोई काम ही नहीं है। तो हम बहुत परेशान हो गए हैं। और इसमें कुछ हल भी नहीं होता। यह भी तर्क करने में बहुत कुशल हैं, मैं भी बहुत कुशल हूं। मैं भी शास्त्रों का उल्लेख देता हूं, यह भी उल्लेख देते हैं। हमारे घरवाले भी परेशान हो गए हैं। जैसे ही हम दोनों बैठते हैं कि सब लोग हट जाते हैं वहां से, कि अब इनकी

फिर बकवास शुरू हुई। और हम बैठे नहीं पास कि वह झंझट खड़ी हो जाती है। आपके पास हम आए हैं, तय कर दें कि इन दोनों में कौन ठीक है?
मैंने उनसे कहाः अगर तुम मेरी सुनो तो तुम दोनों गलत हो। कहने लगे, यह कैसे हो सकता है? दो मैं से कोई एक तो ठीक होगा ही। सीधी बात है--या तो किसी ने बनाया, या नहीं बनाया। अब इसमें दोनों कैसे गलत हो सकते हैं? मैंने कहाः तुम मेरी बात समझो। तुम दोनों गलत हो, क्योंकि तुम दोनों मतवादी हो।
मैं यह नहीं कहा रहा कि तुम्हारा सिद्धांत ठीक, उनका सिद्धांत ठीक।
तुम्हारा सिद्धांत गलत, या उनका सिद्धांत गलत। यह मैं कह ही नहीं रहा।
सिद्धांत से मुझे कुछ लेना-देना ही नहीं है, मतवाद गलत। तुम दोनों गलत हो।
क्योंकि न तुमने तत्व का दर्शन किया है, न उन्होंने तत्व का दर्शन किया।
तुम विवाद किस बात का कर रहे हो? तुमने देखा? पहले ने कहा कि नहीं, देखा तो नहीं। दूसरे से पूछाः तुमने देखा? उन्होंने कहाः यह तो नहीं कह सकता कि देखा, अब आपके सामने झूठ कैसे बोलना? देखा तो नहीं। मैंने कहाः दो अंधे विवाद कर रहे हैं कि प्रकाश कैसा होता है।
रामकृष्ण कहते थे एक कहानी, वह मैंने उनसे कही। कि एक अंधे आदमी को मित्रों ने घर बुलाया, निमंत्रण दिया और खीर बनाई। उसे खीर खूब पसंद आई। पहली दफा खीर उसने खाई। गरीब अंधा था, कभी खीर खाई न थी। वह पूछने लगाः यह खीर कैसी! बड़ी प्यारी लगती है, इसके संबंध में मुझे कुछ समझाओ। तो पास में बैठे एक पंडित ने--गांव का ही पंडित था--उसने कहाः खीर कैसी? खीर बिल्कुल सफेद है, शुभ्र, श्वेत वस्त्र जैसी। उसने कहाः अब उलझन मत बनाओ। मैं अंधा हूं। सफेद यानी क्या? पंडित तो पंडित। पंडित कोई ऐसे हारते तो नहीं। पंडित ने कहाः सफेद यानी क्या? अरे, बगुला देखा कभी? बिल्कुल बगुले की जैसी सफेद। अब यह पंडित इस अंधे से भी ज्यादा अंधा है। तुम अंधे आदमी को समझाने चले कि खीर सफेद, सफेद कपड़ों जैसी। अब सफेद की झंझट उठी तो बगुले जैसी सफेद। उस अंधे ने कहा कि आप तो मुझे और उलझाए जा रहे हैं। एक प्रश्न तो वहीं का वहीं खड़ा है, और दो प्रश्न खड़े कर दिए। यह सफेद क्या? यह बगुला क्या? यह बगुला कैसा होता है?
मगर पंडित भी पंडित था। मतवादी हारते नहीं, एक मत से दूसरा मत निकालते जाते हैं। उसने कहाः बगुला कैसा, यह भी एक झंझट है। उसने कहाः अच्छा देख। यह मेरा हाथ, इस पर हाथ रख। उसने बगुले की तरह का हाथ अपना मोड़ लिया, जैसे बगुले की गर्दन मुड़ी हो। कहाः इस पर हाथ फेर। ऐसी बगुले की गरदन होती है। अंधा बड़ा प्रसन्न हो गया। उसने कहा कि मैं समझ गया कि खीर मुड़े हुए हाथ जैसी होती है। अब मैं समझ गया, अब समझ आई बात।
मतवाद ऐसा ही है; जिसका हमें कोई अनुभव नहीं है, जिसका हमें अनुभव हो नहीं सकता क्योंकि हमारे अनुभव के द्वार अवरुद्ध हैं।
उन दोनों को समझाने में मुझे बड़ी कठिनाई पड़ी कि तुम दोनों गलत हो। वे बार-बार यही कहने लगें लौट कर कि एक होगा गलत, मगर दोनों? वे कहने लगे, आपने और झंझट कर दी। अभी तक तो हम लोगों को एक ही झंझट थी कि एक गलत होगा, एक तो सही होगा। कभी न कभी निर्णय हो जाएगा। आप कहते हैं, दोनों गलत।
मतवाद गलत है। अगर तुम ईसाई हो मतवादी की तरह तो तुम गलत। अगर हिंदू
हो मतवादी की तरह, तुम गलत। अगर तुम मुसलमान हो मतवादी की तरह, तुम गलत। तत्ववादी बनो। दरिया बड़ी ऊंची बात कह रहे हैं। दरिया कह रहे हैं, जो है उसको देखो; उसको अनुभव करो, उसकी प्रतीति करो।

आरजू ए जां निसारी वो हमारे दिल में है
क्या करें लेकिन कि खंजर, कबजा-ए-कातिल में है
अब न बहलेगा चमन में तेरे दीवाने का दिल
फिर हवस आवारगी की आज इसके दिल में है
इससे क्या मतलब कि मैं गुलशन में हूं या सहरा में हूं
आप जिस महफिल में हैं दिल मेरा उस महफिल में है
तह में है दबहरे मोहब्बत कि वह गोहर और तू
यह समझाता है कि शायद दामने साहिल में है
सादगी कहिए इसे या होशियारी जानिए

उनसे कह देते हैं जो कुछ हमारे दिल में है
जुस्तजू में जिसकी हरेक राह रो हैरान है
अश्क की मंजिल है वह और अश्क उस मंजिल में है
फेंक दे चाहे हवादिश राह से हर बार दूर
जाएगी मंजिल कहां जब जिंदगी मंजिल में है

समझो। सत्य दूर नहीं है। सत्य बिल्कुल आंख के सामने है। सामने ही क्यों, सत्य आंख में है। आंख में ही क्यों, सत्य आंख के पीछे भी है। सत्य ही है। जो है उसी का नाम सत्य है।

फेंक दे चाहे हवादिश राह से हर बार दूर

दुर्घटनाएं घट जाएं और हम राह से भटक जाएं, फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता। हम कितने ही सत्य को भूल जाएं, कुछ अंतर नहीं पड़ता।

फेंक दे चाहे हवादिश राह से हर बार दूर
जाएगी मंजिल कहां जब जिंदगी मंजिल में है

परमात्मा दूर नहीं है। दूर जा भी नहीं सकते हम उससे। जरा आंख खोल कर देख लेने की बात है।

जाएगी मंजिल कहां जब जिंदगी मंजिल में है

भटक रहे हैं हम तो भी परमात्मा में ही भटक रहे हैं। आंख बंद किए खड़े हैं तो भी सत्य के सामने ही आंख बंद किए खड़े हैं। लेकिन सत्य से हम दूर नहीं हो सकते हैं।
मतवाद आंख को बंद रखने में सहायता पहुंचाता है। मतवाद से एक भ्रांति पैदा होती है कि मुझे तो पता है। बस यही सबसे बड़ी भ्रांति है, जो मतवाद पैदा करता है। पढ़ ली किताब, पढ़ा शास्त्र, सिद्धांत समझे, तर्क सीखा और तुम्हें एक भ्रांति पैदा होती है कि मुझे पता है। और पता जरा भी नहीं। और ऐसा भी नहीं है कि जिसका तुम पता बताने की बात कर रहे हो, वह दूर है। ऐसा भी नहीं है, वह तुम्हारे सामने खड़ा है। लेकिन अगर तुम्हारी आंखें सिद्धांत और शब्दों से दबी हैं, तो तुम न देख पाओगे।

तह में है दबहरे मोहब्बत कि वह गोहर और तू
यह समझता है कि शायद दामने साहिल में है

मन यही समझाए चला जाता है कि किनारे पर ही मिलन हो जाएगा, तट पर ही मिलना हो जाएगा। शब्दों और सिद्धांतों के तट पर ही मिलना हो जाएगा। ऊपर-ऊपर की खोज, सतह-सतह पर तैरना इससे ही मिलना हो जाएगा।

तह में है दबहरे मोहब्बत की वह गोहर और तू

लेकिन जिनको हीरे खोजने हैं, जिन्हें मोती खोजने हैं उन्हें सागर की गहराई में उतरना पड़ता है। और मतवाद किनारे से अटका रहा जाता है।
मतवादी की हालत ऐसी है, जैसे एक रात कुछ शराबियों की हो गई थी। रात खूब शराब पी मधुशाला में। चांदनी रात थी, पूरा चांद आकाश में था, फिर उनको धुन आई, मस्ती आई कि चलो नदी पर चलें, नौका-विहार करें। गए नदी पर। मछुए जा चुके थे अपनी नौकाएं, बांधकर। एक नौका में उतर गए, और चले। पतवार मारी, खूब पतवार मारी, खूब मारी। रात भर पतवार चलाते रहे। सुबह-सुबह जब ठंडी हवाएं आने लगीं और थोड़ा होश लौटा, थोड़ा नशा उतरा तो उनमें से एक शराबी ने कहाः भाई, जरा नीचे उतर कर देख लो। हम कहां चले आए, पता नहीं। उत्तर कि दक्षिण, ऊपर के नीचे, कहां यात्रा हो गई? जरा किनारे पर उतर कर तो देख लो, कितनी दूर

निकल आए हों। अब घर लौटें। सुबह होने लगी। पत्नियां बच्चे राह देखते होंगे।
तो उनमें से एक किनारे पर उतरा और खूब हंसने लगा। पागल की तरह हंसने लगा। तो बाकी ने कहाः क्यों हंसते हो, बात क्या है? उसने कहाः हम वहीं के वहीं खड़े हैं। क्योंकि हम जंजीर तो खोलना भूल ही गए, जो किनारे से बंधी है। पतवार चलाने से ही थोड़े ही कहीं कोई जाता है! जंजीर भी तो खुलनी चाहिए। उसने कहाः मत घबड़ाओ, उतर आओ, घर चलें। रात भर नाहक ही मेहनत हुई। बड़ी पतवार मारी।
ऐसा ही मतवादी बड़ा विचार करता है, बड़ी पतवार मारता है, लेकिन जब आंख खुलेगी तो तुम पाओगे कि जंजीर तो खोलना भूल ही गए। जंजीर ही तो विचार की है। जब तक विचार है तुम्हारे भीतर तब तक तत्व का दर्शन न होगा। निर्विचार चित्त में तत्व का दर्शन होता है।

इससे क्या मतलब कि मैं गुलशन में हूं या सहरा में हूं
आप जिस महफिल में हैं दिल मेरा उस महफिल में है

तुम हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख होने की चेष्टा छोड़ो। यह पूरी महफिल उसकी है। यह सारा अस्तित्व उसका है। तुम उसके ही हो रहो।

आप जिस महफिल में हैं दिल मेरा उस महफिल में है

परमात्मा जहां जीता और जागता है--वृक्षों में हरा है, फूलों में लाल है, बादलों में बादल है, पक्षियों में पक्षी है, पत्थरों में पत्थर है, नदियों में नदी, यह उसकी महफिल है। आदमियों में आदमी, स्त्रियों में स्त्री, बच्चों में बच्चा, यह उसकी महफिल है। ये सारी लहरें उसकी हैं। तुम इसमें अपनी सीमाएं न बांधो। सीमाएं बांधीं तो अनहद तक कैसे जाओगे? हद बना ली तो अनहद तक कैसे जाओगे? हद बना ली तो नौका बंधी रह गई किनारे से। मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात।।
सूरज उग आता है तब उल्लू को लगता है, अंधेरी रात आ गई। ऐसी हालत मतवादी
की है।
ऐसा हुआ एक दिन। यह पास के गुलमोहर पर मैंने एक उल्लू को सुबह-सुबह आकर बैठे देखा। सुबह होने के करीब है, उल्लू आकर बैठ ही रहा है और एक गिलहरी भी वहां बैठी है। गिलहरी बड़ी प्रसन्न है, ताजगी से भरी है सुबह की। उल्लू ने उससे पूछा कि बेटी, रात हुई जाती है, विश्राम करने के लिए यह स्थान ठीक रहेगा? गिलहरी ने कहाः चाचा, आप भी क्या बातें कर रहे हैं। रात? अरे सूरज निकल रहा है। उल्लू नाराज हो गया। उल्लू ने कहाः छोटे मुंह और बड़ी बात! रात है। कौन कहता है सूरज निकल रहा है? सूरज तो ढल गया।
उल्लू को तो रात में दिखाई पड़ता है। जब उसे दिखाई पड़ता है तो स्वभावतः उसका तर्क है कि तभी दिन। जब दिखाई पड़े तक दिन। जब दिखाई न पड़े तो रात। मतवादी को शब्द और विचार और सिद्धांत में ही दिखाई पड़ता है; उसे इसी में रस है। वेद क्या कहते हैं, कुरान क्या कहती है, बाइबिल क्या कहती है।
वह इन्हीं की उधेड़बुन में लगा रहता है। यह उसका दिन है। मतवादी का जो दिन है वह तत्ववादी की रात है। और तत्ववादी का जो दिन है वह मतवादी की रात है।
सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात।
इसीलिए संतों से अगर पंडित नाराज रहे तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि पंडित को संत कहते हैं उल्लुआ।
सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात।
अगर उल्लू मिल कर फिर फांसी लगा दें तो राजी रहना चाहिए। उल्लू नहीं मिल कर लगाएंगे तो करेंगे क्या? सब उल्लू एथेंस के इकट्ठे हो गए और उन्होंने सुकरात को जहर पिला दिया। ऐसा तत्ववादी कभी-कभी पैदा होता है। सुकरात जैसा, लेकिन उल्लुओं की जमात। गिलहरी अकेली पड़ गई। और उल्लुओं की जमात... !

सीखत ग्यानी ग्यान गम करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चांदनी भीतर काली रात।।
सीखत ग्यानी ग्यान गम...
तुम्हारे सिद्धांतों की सीमा हैः गम; अगम नहीं हैं वे, उनकी परिभाषा है। सीखत ग्यानी ग्यान गम। तुम जिस ज्ञान का चर्चा कर रहे हो, जिन मतवादों की बात कर रहे हो वह सब सीमित हैं। अगम में उनकी कोई गति नहीं है। उस विराट में उन सिद्धांतों के सहारे तुम न जा सकोगे। उस विराट में तो जाना ही जिसको हो उसे सब सिद्धांत छोड़ देने पड़ते हैं; पीछे छोड़ देने पड़ते हैं। सीखत ग्यानी ग्यान गम करे ब्रह्म की बात।
सिद्धांत तो सीमित हैं और असीम की बातें करते हो?
दरिया बाहर चांदनी भीतर काली रात।
तो फिर बात ही बात रह जाती है। ऊपर-ऊपर चांदनी और भीतर अंधेरी रात। पंडित के भीतर तुम अमावस पाओगे। गहन अमावस। गहन अंधेरा। कभी-कभी तो अज्ञानी से भी ज्यादा अंधेरा। पंडित के भीतर होता है। क्योंकि अज्ञानी को कम से कम एक बात तो रहती है कि उसे पता होता है कि मुझे पता नहीं। इतना तो सत्य होता है उसके संबंध में। इतनी बात तो सच है उसके संबंध में कि उसे पता है, मुझे पता नहीं। और पंडित को पता है कि मुझे पता है, और पता जरा भी नहीं। पंडित की हालत अज्ञानी से भी बदतर है। अज्ञानी तो कभी-कभी पहुंच भी जाए, पंडित कभी नहीं पहुंच पाता है। पंडित को अज्ञानी होना पड़ेगा। उतार देना होगा सारा बोझ।
दरिया बहु बकवाद तज कर अनहद से नेह।
ये हदों की बातें छोड़ो। हिंदू-मुसलमानों की बातें छोड़ो।
दरिया बहु बकवाद तज...
यह व्यर्थ की बातें छोड़ो।
... कर अनहद से नेह।
जो असीम है, जो अनंत है, जो शाश्वत सनातन है, उससे जुड़ो। किताबें पैदा होती हैं, खो जाती हैं। सिद्धांत बनते, बिखर जाते हैं। तुम उसे खोजो जो न कभी बनता, न कभी बिखरता; जो सदा है।
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह।
और गुरु भी क्या करे! गुरु भर गया है, जैसे कि मेह से भरा हुआ बादल होता है, जैसे आषाढ़ में बादल उठते हैं, राजी होते हैं बरसने को। कोई भी लेने को राजी हो, बरसने को राजी होते हैं। तो गुरु तो मेह से भर गया तत्व के, बरसने को तैयार है। लेकिन गुरु भी क्या करे? अगर तुम अपना कलसा उलटा रखे बैठे हो, अपना घड़ा उलटा रखे बैठे हो, गुरु बरसे भी तो व्यर्थ चला जाएगा।
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह।
इसलिए सदगुरु पंडितों को जरा भी ध्यान नहीं देते।
गुरजिएफ के पास आस्पेंस्की गया, आस्पेंस्की बड़ा पंडित था। गुरजिएफ ने कहाः तू आया, ठीक; मगर एक बात पहले ही साफ कर ले। यह कागज ले, इस पर लिख--एक तरफ जो तू जानता है, और एक तरफ जो तू नहीं जानता है। जो तू जानता उसकी हम फिर कभी चर्चा न करेंगे। बात ही खत्म हो गई। तू जानता ही है। जो तू नहीं जानता उसकी चर्चा करेंगे क्योंकि जो तू नहीं जानता वह तुझे सिखाने जैसा है। जा पास के कमरे में, लिख ला। आस्पेंस्की बड़ी प्रसिद्ध किताबों का लेखक था। उसकी एक किताब तो मनुष्य-जाति के इतिहास में अपूर्व किताबों में गिनी जाती हैः टर्शियम ऑर्गनम।
कहते हैं, दुनिया में तीन बड़ी किताबें हैं। एक किताब है अरस्तू की, उसका नाम है--ऑर्गनम। सिद्धांत। दूसरी किताब है बेकन की, उसका नाम है--नोवम ऑर्गनम। नया सिद्धांत। और तीसरी किताब है आस्पेंस्की की--टर्शियम ऑर्गनम। तीसरा सिद्धांत। आस्पेंस्की यह किताब लिख चुका था, जगत-जाहिर था। गुरजिएफ को कोई जानता ही नहीं था। गुरजिएफ को लोगों ने जाना आस्पेंस्की के आने के बाद। गुरजिएफ तो अनजान फकीर था। लेकिन गुरजिएफ ने आस्पेंस्की को दिक्कत में डाल दिया। मतवादी को तत्ववादी ने बड़ी दिक्कत में डाल दिया।
वह कागज दे दिया, कहाः बगल के कमरे में चले जाओ।

मगर आस्पेंस्की भी निष्ठावान आदमी था, ईमानदार आदमी था। सोचने लगा, क्या मैं जानता हूं। ठंडी रात थी, बाहर बर्फ गिर रही थी, उसे पसीना आने लगा। पहली दफा उसकी जिंदगी में यह सवाल उठा, कि मैं सच में जानता क्या हूं? कलम हाथ में कंपने लगी। लिखने बैठता है लेकिन कुछ लिखा नहीं जाता। क्या कहूं कि क्या जानता हूं? और तब धीरे-धीरे बात उसे साफ हुई कि जानता तो मैं कुछ भी नहीं। लिखा तो मैंने बहुत, बिना जाने लिखा है। न मुझे ईश्वर का पता है और ईश्वर की मैंने खूब चर्चा की। न मुझे आत्मा का पता है और आत्मा की मैंने खूब चर्चा की।
सच तो यह है कि चर्चा करना आसान है, जब तुम्हें पता न हो। पता हो तब चर्चा करना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि जब पता होता है तब यह भी पता होता है कि शब्द में उसकी चर्चा बड़ी मुश्किल है, असंभव है। बंधती नहीं, बांधे नहीं बंधती, छूट-छूट जाती है; बिखर-बिखर जाती है। सत्य तो ऐसा है जैसे कि पारा--पकड़ो कि बिखर-बिखर जाता है; बांधो कि बिखर-बिखर जाता है; पारे जैसा है।
घड़ी बीती, दो घड़ी बीतीं, गुरजिएफ ने आवाज दी कि भई, इतनी देर कर रहा है तू। इतना बड़ा ज्ञानी! जल्दी कर, लिख कर ला। आस्पेंस्की आया, चरणों पर गिर पड़ा। कोरा कागज रख दिया और कहा कि दोनों तरफ कोरा है। कुछ भी नहीं जानता हूं। आप अ ब स से शुरू करें।
ऐसा जब गुरु मिलता है, और ऐसे गुरु को जब ऐसा शिष्य मिलता है, जो अपना कलसा सीधा करके रख देता है। कहता है, अ ब स से शुरू करें। कुछ जानता हूं अगर यह दंभ होता तो यह कलसा अभी भी उलटा रहता। दंभ का कलसा उलटा रहता है।
औंधा कलसा ऊपरे कहा बरसावै मेह।
तो गुरु भी मिल जाए तो बेकार चली जाएगी बात। एक तो मिलना कठिन, मिल भी जाए तो बेकार चली जाएगी, अगर तुम मतवादी हो तो।
जन दरिया उपदेस दे भीतर प्रेम सधीर।
सदगुरु तो उसी को उपदेश देता है जो भीतर प्रेम से लेने को तैयार हो।
जन दरिया उपदेश दे भीतर प्रेम सधीर।
जहां अनंत प्रेम भीतर लेने को, ग्रहण करने को राजी हो; जहां ग्राहकता हो, जहां पी जाने की तत्परता हो। शिष्य तो ऐसा चाहिए जैसे स्पंज। इधर गुरु से बहे कि वह पी जाए, सोख ले। जैसे स्याही सोख। इधर बूंद टपके नहीं कि वहां पी जाए।
शिष्य तो स्त्रैण होता, स्त्रैण ही हो सकता है। जैसे स्त्री गर्भ को ग्रहण कर लेती है, फिर उसके जीवन, एक नये जीवन का जन्म उसके भीतर होता है।
जन दरिया उपदेस दे भीतर प्रेम सधीर।
ग्राहक हो कोई हींग का कहां दिखावै हीर।।
और हींग खरीदने जो आए हों, उनको हीरे बताओ इससे तो कुछ सार नहीं; इसमें
तो कुछ अर्थ नहीं। जो हींग खरीदने आया हो उसको हीरा बताओ तो नाराज हो जाए।
उसे हींग चाहिए, उसे दुर्गंध भरी हींग चाहिए। उसे हीरा नहीं चाहिए।
तो सदगुरु तो तभी तुम्हें दे सकता है, जब तुम लेने आए हो। जब तुम हीरा खरीदने ही आओ तभी हीरा दिया जा सकता है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि यहां सभी को क्यों नहीं आने दिया जाता? यहां रुकावट क्यों है? यहां हींग नहीं बेची जाती। जो हीरा लेने आया हो और जो कसौटी देता हो कि हीरा ले सकता है, उसके लिए जगह है। यहां कुछ भीड़-भड़क्का नहीं करना है। कोई बाजार नहीं भरना है।
बहुत दिन तक मैं हजारों लोगों में बोलता था, लाखों लोगों में बोलता था। फिर मैंने देखा कि वे सब हीरे लेने वाले लोग नहीं हैं, हींग खरीदने वाले लोग हैं। उनसे मैं हीरे की बातें किए जा रहा हूं। सिर मारा-मारी होती, कुछ अर्थ नहीं है। सुन भी लेते हैं तो ज्यादा से ज्यादा मनोरंजन है। जीवन को दांव पर लगाने की साहस और हिम्मत है ही नहीं। कुतूहल से आ गए हैं। न जिज्ञासा है, मुमुक्षा तो बहुत दूर, कुतूहलवश आ गए हैं कि देखें क्या कहते हैं। कि शायद कुछ मतलब की बात मिल जाए। ऐसे ही चले आए हैं। नहीं गए सिनेमा, यहां आ गए। कि बैठ कर गपशप करते, कि शतरंज खेलते, चलो सोचा कि आज वहीं बैठेंगे। चलो आज वहीं सुनेंगे। लाखों लोगों के बीच रहकर मुझे यह पता चला

कि शायद थोड़े से ही लोग हीरे की तलाश में हैं। इसलिए उनके लिए ही निमंत्रण है, जो हीरे की खोज को तैयार हों।
जन दरिया उपदेस दे भीतर प्रेम सधीर।
गाहक हो कोई हींग का कहां दिखावै हीर।।
दरिया गैला जगत को क्या कीजै सुलझाए।
और यह पागल दुनिया को, पूरी पागल दुनिया को समझा-सुलझाने से भी क्या होने वाला है? यह कोई सुलझने वाली भी नहीं, समझने वाली भी नहीं।
दरिया गैला जगत को--पागल जगत को--क्या कीजै सुलझाए।
सुलझाया सुलझै नहीं सुलझ-सुलझ उलझाए।
इसको जितना सुलझाने की कोशिश करो, यह और उलझ जाता है। इसको सुलझाने के लिए जो बातें बताओ उनमें ही उलझ जाता है। इससे कहो, यह बात तुम्हें बाहर ले आएगी; वह बाहर तो नहीं लाती, यह उसी बात को विचार करने लगता है, मतवाद बना लेता है।
इसी तरह तो उलझा। मोहम्मद ने तो बात मतलब की कही थी; मुसलमान बनाने को
न कही थी। महावीर ने तो बात सुलझने को कही थी; जैन बनाने को न कही थी। बुद्ध ने तो बात बाहर निकल आने को कही थी, संप्रदाय खड़ा कर लेने को न कही थी। लेकिन हुआ यह। बुद्ध ने कहा है, मेरी मूर्ति मत बनाना और बुद्ध की सब से ज्यादा मूर्तियां हैं दुनिया में। अब यह बड़े मजे बात है। इतनी मूर्तियां बनीं बुद्ध की कि उर्दू, पर्शियन और अरबी में तो बुत शब्द जो है, वह बुद्ध का ही रूप है। इतनी मूर्तियां बनीं कि अरबी मुल्कों में पहली दफा उन्होंने जब मूर्ति देखी तो बुद्ध की ही देखी। तो बुद्ध की मूर्ति को ही उन्होंने बुत... वही मूर्ति का पर्यायवाची हो गया। बुत परस्ती का मतलब होता है बुद्धपरस्ती। और बुद्ध जिंदगी भर कहते रहे, मेरी मूर्ति मत बनाना; मगर मूर्ति बनी।
तो दरिया ठीक कहते हैं। दरिया काफी अनुभव की बात कहते हैं।
दरिया गैला जगत को क्या कीजै सुलझाए।
सुलझाया सुलझै नहीं सुलझ-सुलझ उलझाए।।
यहां जितने सुलझाने वाले आए, उन्होंने जितनी बातें सुलझाने को कहीं
वे सब उलझाने का कारण बन गईं। बच्चों के हाथ में तलवार पड़ गई। खुद को भी काट लिया, दूसरों को भी अंग-भंग कर लिया।
दरिया गैला जगत को क्या कीजै समझाए।
रोग नीसरै देह में पत्थर पूजन जाए।
ये ऐसे पागल हैं, इनको कार्य-कारण तक का होश नहीं है। चेचक का रोग निकल आता है शरीर में और जाते हैं किसी पत्थर को पूजने। काली माता को पूजने चले। इनको इतना भी होश नहीं है कि कारण-कार्य तो देखो। शरीर में बीमारी है तो शरीर की चिकित्सा करो; तो शरीर के चिकित्सक के पास जाओ। पत्थर को पूजने चले!
दरिया गैला जगत को क्या कीजै समझाए।
इन पागलों को क्या समझाने से होगा!
रोग नीसरै देह में पत्थर पूजन जाए।
इनको कार्य-कारण का संबंध तक होश में नहीं है। तो इनको परम तत्व की बात कहने से कुछ अर्थ नहीं है। ये सुन भी लें तो सुनेंगे नहीं। सुन लें, समझेंगे नहीं। समझ लें, कुछ का कुछ समझ लेंगे।
कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच।
बड़े अपूर्व वचन हैं। हृदय में सम्हाल कर रख लेना।
कंचन कंचन ही सदा कांच-कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है सांच सांच सो सांच।।
झूठ को लाख सिद्ध करो, सिद्ध नहीं होता।
मतवादों को कितना ही सिद्ध करो, कुछ सिद्ध नहीं होता। इसलिए तो कोई मतवादी जीत नहीं पाता। सदियां बीत गई हिंदू मुसलमान से विवाद कर रहे हैं, कौन जीता, कौन हारा? जैन बौद्धों से विवाद कर रहे हैं--कौन जीता, कौन हारा? नास्तिक आस्तिकों से विवाद कर रहे हैं--कौन जीता, कौन हारा? कब तक विवाद करोगे? निर्णय होता ही नहीं।

कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच।
अनुभव ले जाएगा स्वर्ण पर। यह कांचों को बैठे और विवाद करते रहने से कुछ भी न होगा। सोना सोना है, कांच कांच है।
दरिया झूठ सो झूठ है सांच सांच सो सांच।
और जो सत्य है वह सत्य है। सत्य को सिद्ध नहीं करना होता, सत्य को जानना होता है, देखना होता है, दर्शन करना होता है। सत्य का दर्शनशास्त्र नहीं बनाना होता। सत्य का दर्शन करना होता है, आंख खोलनी होती है।
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।
सिद्धांत तो कान से सुने जाते हैं; हिंदू तुम कैसे बने? कान फूंक दिया किसी ने, हिंदू बन गए। अब सुनो। दरिया कहते हैंः कानों सुनी सो झूठ सब। कान मत फुंकवाना किसी से। कान फुंकवा लिया, हिंदू बन गए। कान फुंकवा लिया, मुसलमान बन गए। सिद्धांत तो कान से सुने जाते हैं। तुम कैसे हिंदू बने? मां बाप ने कान फूंके। मंदिर में भेजा, गीता पढ़वाई, रामायण सुनवाई, सत्यनारायण की कथा करवाई। तुम कैसे बने हिंदू? कान से बने। और कान से भी कहीं कोई सत्य का अनुभव होता है?
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।
अपनी ही आंख पर भरोसा करना, किसी और पर भरोसा मत कर लेना। किसी और ने देखा होगा, देखा होगा। तुम जब तक न देख लो, तब तक रुक मत जाना। अपना देखा ही काम पड़ेगा। प्यास लगी हो तो तुम्हारे कंठ में पानी जाए तो ही बुझेगी। दूसरे ने कितना पानी पीआ है इससे क्या होगा?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि महावीर स्वामी ने ऐसा अनुभव किया। किया होगा, जरूर किया होगा, उनकी प्यास बुझ गई। उनकी प्यास बुझ गई इससे तुम्हारी प्यास बुझती? अब तुम काहे के लिए शोरगुल मचा रहे हो? तुम किस बात की डुंडी पीट रहे हो? तुम भी पीयो। कृष्ण ने पीआ होगा तो नाचे। तुम्हारे जीवन में कहीं नाच नहीं दिखाई पड़ता। कृष्ण की मूर्ति की पूजा कर रहे हो। नाचो! तुम्हारे जीवन में कुछ घटे। आंख तुम्हारी देखे।
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।
दरिया देखे जानिए यह कांचन यह कांच।।
और जब देखोगे तभी जानोगे कि क्या कंचन है और क्या कांच है। क्या असली स्वर्ण और क्या केवल पीतल। पीतल भी सोने जैसा चमकता है। लेकिन सभी चमकने वाली चीजें सोना नहीं होतीं। और कभी-कभी तो पीतल भी इस तरह चमकाया जा सकता है कि सोने को भी मात करता मालूम पड़े। ऐसा पालिश किया जा सकता है कि दूर से धोखा दे जाए। लेकिन करीब आकर अनुभव से ही पता चलता है क्या असली, क्या नकली। आंख ही निर्णायक है। कान निर्णायक नहीं हो सकता। आंख से अर्थ हैः अपना ही साक्षात्कार अपनी ही अनुभूति।
समस्त सत्पुरुषों ने एक बात पर ही जोर दिया है कि तुम स्वयं परमात्मा
को जान सकते हो। इसलिए क्यों उधार बातों में पड़े हो? किसी ने जाना इससे क्या होगा?
मैंने सुना है, एक अंधा आदमी था, बूढ़ा हो गया था। बुढ़ापे में ही अंधा हुआ। कोई अस्सी साल उसकी उम्र थी। चिकित्सकों ने कहाः आंख ठीक हो सकती है। जाला है, इलाज से ठीक हो जाएगा। आपरेशन कर दें, कट जाएगा।
लेकिन बूढ़ा बड़ा पंडित था, उसने कहाः क्या सार! अब इस बुढ़ापे में क्या सार! साल दो साल जीऊं या न जीऊं, क्या पता? अब इसमें कौन झंझट में पड़े? फिर मेरे घर आंखों की कोई कमी नहीं है। पंडित था, तर्कवादी था, मतवादी था। डाक्टर ने पूछाः क्या मतलब? उसने कहाः मतलब साफ है। मेरी पत्नी, उसकी दो आंख, मेरे आठ लड़के हैं, उसकी सोलह आंखें, आठ लड़कों की आठ बहुएं हैं, उनकी सोलह आंखें। चौंतीस आंखें मेरी सेवा में रत हैं। मुझे और दो आंख हुईं न हुईं, क्या फर्क पड़ता है?
डाक्टर भी रह गया, क्योंकि क्या कहे? बात तो ठीक ही कह रहा है। चौंतीस आंख है कि छत्तीस, कितना फर्क पड़ता है! दो आंख कम हुई, चौंतीस आंखें सेवा में लगी हैं। मगर संयोग की बात, कोई पंद्रह दिन बाद घर में आग लग गई। चौंतीस आंखें बाहर निकल गईं, बूढ़ा भीतर रह गया। तब छाती पीट कर चिल्लाने लगा, लगी लपटों में भागने लगा--इस दरवाजे, उस दरवाजे। उसे कुछ सूझे नहीं।

भयंकर आग लगी। तब उसे याद आया कि आंख अपनी ही हो तो ही काम आती है। जो चौंतीस आंखें बाहर निकल गईं, बाहर जाकर उनको याद आया कि बूढ़ा पीछे छूट गया। अब क्या करें?
मगर जब घर में आग लगा हो तो तुम्हारी आंखें तुम्हारे पैरों को दौड़ाती
है, दूसरे के पैरों को नहीं दौड़ा सकतीं। तुम्हारे पैर तुम्हारी आंखों को लेकर बाहर हो जाते हैं। जब आग लगी हो तो अपनी चिंता स्वभावतः पहले होती है। जब बाहर निकल गए--खतरे के बाहर तब उन्हें जरूर याद आई; नहीं याद आई ऐसा भी नहीं, याद आई कि बूढ़ा तो घर में रह गया लेकिन अब क्या करें? अब रोने- चिल्लाने लगे। बूढ़ा मरते वक्त जब आग में भुना जा रहा था, तब उसे समझ में आई। मगर यह बहुत देर हो चुकी थी। इतनी देर तुम्हें न हो, इतनी ही मेरी प्रार्थना है।
कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है सांच सांच सो सांच।।
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।
दरिया देखे जानिए यह कंचन यह कांच।

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
आठवां प्रवचन

निहकपटी निरसंक रहि

पहला प्रश्नः अगर कान से सुना सब झूठ है तो फिर सदगुरु के उपदेश का महत्व क्या रह जाता है?

तुम पर निर्भर है। अगर कान से ही सुना, बस कान से ही सुना तो कोई भी अर्थ नहीं है लेकिन आंख से भी सुनने का ढंग है। सदगुरु को सुनो ही मत, देखो।
सत्संग का अर्थ होता है, सदगुरु की सन्निधि अनुभव करो। सदगुरु का स्वाद लो। जो कहा जाता है वह तो कुछ भी नहीं। सागर की सतह पर उठी लहरों की भांति है। जो नहीं कहा जाता, जो नहीं कहा जा सकता है वही असली मोती है सागर की गहराई में। शब्द ही सुने तो चूक गए। शब्द के पीछे जो मौजूद है उसे देखा तो पा लिया। शब्द जहां से आते हैं वहां सीढ़ी लगाओ। सदगुरु के शून्य में उतरो। उसकी वाणी से खेलो। प्रारंभ में ठीक है, खिलौनों की तरह है। फिर धीरे-धीरे खिलौने छोड़ो। असली बात... असली बात तो सदगुरु की उपस्थिति है। असली बात तो उसका अस्तित्व है उसकी सत्ता है। उसकी सत्ता के रंग में रंगो। असली बात तो संगीत है उसका। जो बोला जाता वह तो बड़े दूर की खबर है, प्रतिबिंबों का प्रतिबिंब है। जो नहीं बोला जाता, सत्य वहां विराजमान है।
सत्संग का अर्थ सुनना नहीं होता, सत्संग का अर्थ होता है साथ होना; संग होना। सदगुरु के साथ चलो। सदगुरु के साथ डोलो। सदगुरु के लिए हृदय खोलो कि उसकी किरणें तुम्हारे अंधकार में प्रवेश कर जाएं।
यही मेरा अर्थ है, जब मैं कहता हूं आंखों से सुनो। बेबूझ लगेगी बात।
आंखों से कहीं सुना जाता है? आंखों से सुना जाता है, सुना जा सकता है। सदगुरु को पीयो। उसके अरूप को उतरने दो तुम्हारे भीतर। उसके निराकार को झनकार लेने दो तुम्हारे भीतर। अवसर दो कि उसका हाथ तुम्हारी वीणा पर पड़े।
संकोच न करो, संदेह न करो, झिझको मत, सुरक्षा मत करो। हम सब सुरक्षा में लगे रहते हैं। और मजा है कि बचाने को कुछ भी नहीं और बड़ी सुरक्षा में लगे रहते हैं।
कल दरिया ने कहा कि हाथी तोड़ देता किले के द्वार को। जैसा किले का द्वार है, ऐसा ही आदमी भी है। जैसे किले के द्वार पर भाले लगे होते हैं, बरछे लगे होते हैं कि कोई तोड़ न सके। तोड़ना दूर, द्वार के पास भी न आ सके। ऐसे ही आदमी ने भी बड़े अदृश्य बरछे अपने चारों तरफ लगा रखे हैं। कोई तुम्हारे पास न आ सके। कोई तुम्हारा द्वार-दरवाजा न खोल ले। तुम बड़े भयभीत हो। तुम चौबीस घंटे अपनी सुरक्षा में लगे हो। यही सुरक्षा छोड़ दो सदगुरु के पास, तो क्रांति घट जाए।
सदगुरु का अर्थ हैः किसी व्यक्ति में तुमने ऐसा कुछ देखा कि वहां तुम अपने को बचाना न चाहोगे। किसी व्यक्ति के पास तुमने ऐसा तुमने कुछ देखा कि वहां तुम अपने को लुटाना चाहोगे। किसी व्यक्ति के पास ऐसा कुछ देखा कि अगर वह लूट ले तो तुम्हारा धन्यभाग; अगर तुम बचा लो तो तुम अभागे।
प्रश्न सार्थक है। कई के मन में उठा होगा। दरिया कहते हैंः कानों सुनी सो झूठ सब, आंखों देखी सांच। तो फिर सदगुरु के उपदेश का क्या अर्थ? फिर तो दरिया के इस वचन का भी क्या अर्थ है? यह भी तो सुना ही होगा किसी दिन। नहीं, अर्थ है। यह तुम्हें चेताने की बात है। सच और झूठ में बहुत फासला नहीं है। फासला बहुत हो भी नहीं सकता।
किसी ने इमर्सन को पूछा कि सच और झूठ में कितना फासला है? तो उसने कहाः चार अंगुल का--आंख और कान के बीच जितना फासला है। बस चार अंगुल का फासला है। कान जो लेता है, जो ग्रहण करता है, वह प्रतिबिंब होता है। आंख जो देखती है और लेती और ग्रहण करती है, वह साक्षात्कार होता है।
सत्य और झूठ में बहुत फर्क नहीं है, इसलिए तो झूठ धोखा दे पाता है। अगर बहुत फर्क होता तो सभी लोग चौंक जाते। फर्क चार अंगुल का है। झूठ सच के बहुत करीब है। ऐसे ही, जैसे जब तुम धूप में चलते हो तो तुम्हारी छाया

तुम्हारे बहुत करीब होती है। ऐसा थोड़े ही है कि तुम्हारी छाया मीलों दूर चल रही है, तुम कहीं चल रहे हो, तुम्हारी छाया कहीं चल रही है। तुम्हारी छाया बिल्कुल झूठ है। छाया ही है, होना क्या है वहां? कोई अस्तित्व नहीं है छाया का। लेकिन तुम्हारे पैरों से सटी-सटी चलती है। एक इंच का भी फासला नहीं छोड़ती। ऐसा ही सच के साथ झूठ चलता है।
झूठ सच की छाया है। अगर तुम ठीक समझ पाओ तो झूठ सच की छाया है। इसलिए
तो धोखा दे पाता है नहीं तो धोखा भी कैसे देगा? अगर झूठ बिल्कुल ही सच जैसा न हो, जरा भी सच जैसा भी न हो तो कौन धोखे में पड़ेगा? झूठे सिक्के से तुम धोखे में आ जाते हो क्योंकि वह सच्चे सिक्के जैसा लगता है कम से कम; हो या न हो, लगता तो है। बिल्कुल सच्चे सिक्के जैसा लगता है। झूठ सच जैसा लगता है, बस लगता है। रूपरेखा बिल्कुल सच की ही होती है झूठ में भी। एक ही बात की कमी होती है, सच में प्राण होते हैं, झूठ में प्राण नहीं होते। तुम्हारी छाया का ढंग तुम्हारे जैसा ही होता है। रूपरेखा तुम्हारे जैसे ही होती है। तुम्हारी तस्वीर इसीलिए तो तुम्हारी कहलाती है। सब ढंग तुम जैसा होता है। लेकिन तस्वीर तस्वीर है, तुम तुम हो। फर्क क्या है? फर्क इतना ही है कि तुम्हारे भीतर प्राण हैं और तस्वीर के भीतर प्राण नहीं हैं। तस्वीर तुम्हारे जैसी लगती है लेकिन कैसे तुम्हारे जैसी हो सकती है?
झूठ सच की तस्वीर है। तुमने अकसर ऐसा ही सोचा होगा कि झूठ सच से बिल्कुल विपरीत है। बिल्कुल विपरीत होता तो झूठ धोखा ही न दे पाता। झूठ सच से विपरीत नहीं है, तस्वीर है। आकृति बिल्कुल सच जैसी है। सच से बिल्कुल तालमेल खाती है। ऐसा ही समझो कि रात चांद को देखा झील में; वह जो झील का चांद है, झूठ है। असली चांद जैसा है। और कभी-कभी तो असली चांद से भी ज्यादा सुंदर मालूम होता है। झूठ खूब अपने को सजाता है। झूठ खूब आभूषण पहनता है। झूठ हीरे-जवाहरातों में अपने को छिपाता है। झूठ अपने आस-पास प्रमाण जुटाता है। झूठ सब उपाय करता है कि पता न चल जाए कि मैं झूठ हूं। आकाश में चांद है वह तो सच है। झील में जो प्रतिबिंब बन रहा है वह झूठ है। लेकिन है वह सच का ही प्रतिबिंब।
जो तुमने कान से सुना है वह भी सच का ही प्रतिबिंब है। किसी ने देखा, कोई जागा, किसी ने अनुभव किया, अपने अनुभव को वाणी में गुनगुनाया। तुमने वाणी कान से सुनी। यह चांद का प्रतिबिंब बना। तुमने किसी संत में सीधा देखा। उसके शब्दों के माध्यम से नहीं, तुमने शब्द हटा कर देखा। तुमने अपने और संत के बीच में शब्दों की दीवाल न रखी, आड़ न रखी; तुमने शब्दों को सेतु न बनाया; तुमने शब्द हटा ही दिए; तुमने सीधा देखा, निःशब्द में देखा; तब तुम चांद को देख पाओगे।
इसलिए मैं कहता हूं, सच कहते हैं दरिया--
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।
आंख से सुनने का ढंग है; उसी को हम सत्संग कहते हैं।
तुम इधर मेरे पास बैठे, कुछ हैं जो मेरे शब्द को ले जाएंगे, सम्हाल कर
ले जाएंगे। कोई-कोई कभी आ जाता है वह अपनी किताब भी ले आता है, उसमें लिखता जाता है। उसका जोर शब्द पर है। वह विद्यार्थी है, शिष्य नहीं। वह अभी स्कूली दुनिया में है। जैसे कहीं कोई परीक्षा होने वाली हो। जिंदगी की कहीं कोई परीक्षा होती है? जिंदगी तो पूरी ही परीक्षा है। यहां शिक्षण और परीक्षा अलग-अलग नहीं होते। यहां तो हर घड़ी परीक्षा है। हर घड़ी शिक्षण है। हर शिक्षण में परीक्षा है, हर परीक्षा में शिक्षण है। यहां तो सब मिला- जुला है। ऐसा थोड़े ही है कि एक दिन जब तुम अस्सी साल के हो जाओगे तो कोई परीक्षा में बैठोगे कि अब जीवन की परीक्षा हो रही है; कि वहां उत्तर देने पड़ेंगे, रटे-रटाए उत्तर काम आ जाएंगे; कि बाजार में छपी हुई कुंजियां खरीद लोगे। ये कुरान और वेद और गुरुग्रंथ और बाइबल कुंजियां हैं, इनसे काम न चलेगा। तुमने अगर नानक के शब्द दोहराए तो तुम झूठ हो गए। तुम अगर नानक हो गए तो सच हो गए। तुमने अगर कबीर के शब्द दोहराए, बिल्कुल अक्षरशः दोहराए तो झूठ हो गए। तुम कबीर हो गए तो सच हो गए। फिर तुमसे भी वैसे ही शब्द निकलने लगेंगे जैसे कबीर से निकले। मगर फर्क बड़ा होगा। अब यह तुम्हारे अपने अनुभव से निकलते होंगे। अब तुम्हारा अपना झरना खुल गया है। अब ये

तुम्हारे होंगे। प्रामाणिक रूप से तुम्हारा प्राण इनके भीतर धड़कता होगा।
ये मुर्दा नहीं होंगे।
तो कोई यहां आता है विद्यार्थी की तरह, वह शब्द सम्हाल कर ले जाता है।
उसकी स्मृति में थोड़ी बढ़ती हो जाती है। उसकी जानकारी थोड़ी बढ़ जाती है। वह थोड़ी और इनफर्मेशन इकट्ठी कर लेता है। वह थोड़ा और पंडित हो जाता है। वह दूसरों को समझाने में थोड़ा और कुशल हो जाएगा। दूसरों को समझाने में--याद रखना। खुद तो चूक ही गया।
और अक्सर ऐसा होता है कि जब तुम दूसरे को समझाने में कुशल हो जाते हो
तो तुम समझते हो कि मैं समझ गया। बात ठीक उलटी है। दूसरों को समझाने में कुशल हो जाने से तुम्हारे समझने का कोई संबंध नहीं है। तुम्हारी समझ और ही बात है। तुम्हें अगर समझना है तो शिष्य की तरह, विद्यार्थी की तरह नहीं। कोई नोट्स नहीं लेने है। मेरे शब्दों को कोई कंठस्थ नहीं कर लेना है। मेरे शब्द तो याद रहें न रहें, इसका कोई प्रयोजन ही नहीं है। शब्दों के भीतर जो रस डाल रहा हूं उस रस की बूंद तुम्हारे कंठ में उतर जाए, शब्द तो भूल जाएं। शब्द तो ऐसा समझो, खोल हैं। असली बात तो भीतर है। खोल को तो फेंक देना। असली को आत्मसात कर लेना।
भोजन करते हैं न! तो जो सार-सार है, वह तुम पचा लेते हो और जो असार है वह मल-मूत्र में बाहर निकल जाता है। शब्द तो असार हैं; उसका कोई मूल्य नहीं है। जब तुम दूसरे को समझाने में उसे निकाल देते हो तब बस मल-मूत्र की तरह बाहर निकल गया, उससे तुम हल्के हो जाओगे।
इसे समझो। मुझे सुन कर तुमने शब्द इकट्ठे किए, मन भारी हो गया क्योंकि
वे शब्द इकट्ठे हो गए। अब तुम जल्दी तलाश में रहोगे कि कोई मिल जाए अज्ञानी तो उसमें उंड़ेल दूं। अब तुम जल्दी खोज करोगे। कोई भी बहाना मिल जाए। कोई किसी बात को कहीं उठा दे, कि तुम जल्दी से तत्पर होकर जो तुम बोझ ले आए हो, उसमें उंड़ेल दोगे। उंड़ेल कर तुम्हें अच्छा भी लगेगा लेकिन अच्छा इसलिए नहीं लग रहा है कि तुम दूसरे को समझाने में सफल हो गए। समझे तो तुम खुद ही नहीं हो, तो दूसरे को तो क्या समझाओगे! जो स्वयं समझ गए हैं वे भी बड़ी मुश्किल पाते हैं दूसरे को समझाने में, तो तुम तो समझाओगे कैसे? तुम तो अभी खुद भी नहीं समझे हो। मगर अच्छा लगेगा।
अच्छा दो कारण से लगेगा--एक तो बोझ हलका हुआ। इसीलिए तो लोग किसी बात
को गुप्त नहीं रख पाते। गुप्त रखने में बड़ा बोझ हो जाता है। किसी ने तुमसे कह दिया, यह कह तो रहे हैं आपसे, कृपा करके किसी और को मत कहना। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। वह निकल निकल आती है, जबान पर आ-आ जाती है बात। अब उसे सम्हालो, फिर सम्हाल कर भीतर रखो, उसका बोझ बढ़ता जाता है। इसलिए लोग बात को गुप्त नहीं रख पाते। बड़ा मुश्किल है बात को गुप्त रखना। मन उसे फेंक देना चाहता है। ये फेंकने की तरकीबें हैं। जब तुम दूसरे से बात करते हो, इससे हलकापन आता है; इससे मन का कचरा थोड़ा कम हुआ। दूसरे का बढ़ा, वह जाने। वह किसी और पर फेंकेगा। तुम्हारा तो कम हुआ। तुम तो निर्भार हुए।
तो एक तो अच्छा लगता है निर्भार होना; और दूसरा अच्छा लगता है ज्ञानी होने का अहंकार कि देखो, मैं जानता, तुम नहीं जानते। मैं ज्ञानी, तुम अज्ञानी। जब भी तुम किसी आदमी को अज्ञानी सिद्ध कर पाते हो किसी भी कुशलता से, तब तुम्हारे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। तो कोई भी बात के द्वारा तुम सदा सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहते हो--मैं ज्ञानी, दूसरा अज्ञानी। इन दो बातों के कारण मजा आ जाता है। उस मजे को तुम समझ मत समझ लेना। और उस मजे से तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति घटित न होगी, आनंद के द्वार न खुलेंगे।
विद्यार्थी होकर जो आया है, वह कचरा बीन कर ले जाएगा। सार-सार छोड़ देगा, असार-असार पकड़ लेगा। शब्द असार है, निःशब्द सार है। शून्य सार है, मौन सार है। नहीं बोला गया, नहीं बोला जा सकता जो, उसमें सार है। विराट को बांधोगे भी कैसे शब्दों में? शब्द बड़े छोटे हैं। यह तो चम्मचों में सागर को समाने की कोशिश है। सागर चम्मचों में नहीं समाता। और जो चम्मच में समा जाता है उसका स्वाद अगर सागर का भी हो, नमकीन भी हो, तो भी वह सागर नहीं है। उसमें तूफान नहीं उठेंगे। उसमें बड़ी तरंगें नहीं आएंगी। उसमें जहाज नहीं

चलेंगे। उसमें मछलियां नहीं तैरेंगी। उसमें तुम डूब न सकोगे। तो माना कि चम्मच में जो भर आया है--दो चार दस बूंद सागर की, उनका स्वाद तो नमक का है, स्वाद से धोखा मत खा जाना। सागर के और भी गुण हैं स्वाद के अतिरिक्त, वे कोई भी वहां नहीं हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि जिसमें तुम डूब जाओ वही सत्य है, वही सागर है।
शब्द में कैसे डूबोगे? वह तो चुल्लू भर पानी में डूब मरने जैसा है। शब्द में कोई कभी डूबा है? शब्द इतना छोटा है, उसमें तुम लाख उपाय करो तो न डूब सकोगे। निःशब्द में डूबता है कोई।
तो एक तो है जो अपनी स्मृति को थोड़ा सा बढ़ा कर, अपने ज्ञान को थोड़ा बढ़ा कर, पांडित्य के तराजू पर थोड़ी और गरिमा रखकर चला जाएगा; वह चूक गया। जो यहां से पंडित होकर गया वह चूक गया। लाभ की जगह हानि हो गई। उसने और थोड़ा उपद्रव अपने जीवन में बढ़ा लिया, कम न किया।
जो यहां शिष्य की तरह आया है, जिसे शब्दों में अब कोई रस नहीं है, जो देखने आया है, जो अनुभव करने आया है, जो मेरे साथ अज्ञात की यात्रा पर जाने को तैयार है, जो कानों से मुझसे नहीं जुड़ रहा है, आंखों से जुड़ रहा है, वही कुछ पा सकेगा--केवल वही।
इसलिए कहता हूं कान से सुनना बस सुनना मात्र है। आंख से सुनना असली बात है। गुरु को पीओ। गुरु पर आंखें टिकाओ। गुरु की रोशनी तुम्हारी आंख की रोशनी बने। गुरु का प्रेम तुम्हारी आंख से उतरे और तुम्हारे हृदय को भरे। तो दरिया ठीक ही कहते हैं; कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।
जिस दिन तुम गुरु को ठीक से देखने लगोगे उस दिन तुम दो बातें जानोगेः

जीना भी आ गया मुझे और मरना भी आ गया
पहचानने लगा हूं अब तुम्हारी नजर को मैं

गुरु के साथ होने का अर्थ है, जीना भी आ गया और मरना भी। अहंकार के तल
पर मिटने की कला आ गई और आत्मा के तल पर जीने की कला आ गई। असली में जीने का सूत्र पकड़ में आ गया और नकली में मरने का सूत्र पकड़ में आ गया। नकली की तो चिता बना ली। नकली को तो जला दिया, राख कर डाला। नकली को तो सूली पर चढ़ा दिया। असली को सिंहासन पर बिठा दिया।

जीना भी आ गया मुझे और मरना भी आ गया
पहचानने लगा हूं अब तुम्हारी नजर को मैं

नजर को पहचानो। आंख को पहचानो। गुरु के अस्तित्व से जुड़ो। गुरु की सन्निधि में डूबो।

दूसरा प्रश्नः आपको प्रेमपूर्वक समझ पाता हूं, औरों को समझा भी पाता हूं, फिर वही समझ जीवन में प्रामाणिकता ऑथेंटिसिटी लाने में सहायक क्यों नहीं हो पाती है? कि जिसके न होने की वजह से सतत अंदर और बाहर विघटन बना रहता है। कहां भूल हुई जा रही है? कृपा कर दृष्टि दें।

पहली तो बात दूसरों को समझा पाते हो, इसे समझने का सूत्र मत समझ लेना।
यह काफी नहीं है। इससे तृप्त मत हो जाना। यह दूसरे को समझाना तो ऐसे ही है जैसे कि पोस्टमैन लाकर चिट्ठियां दे जाता है। मुझे सुना, तुम पोस्टमैन बन गए। चिट्ठियां सम्हालीं और दे आए दूसरों को। पोस्टमैन के हाथ तो कुछ भी नहीं पड़ता। पोस्टमैन तो यहां से वहां चिट्ठियां ले जाता रहता है। इन चिट्ठियों में कई बहुमूल्य होती हैं। इनमें मनीआर्डर भी होते हैं, इनमें धन भी छिपा होता है, इनमें प्रेम भी छिपा होता है। मगर पोस्टमैन तो लादता है अपने बस्ते में, अपने झोले में। एक जगह से लाद लेता है, दूसरी जगह जाकर उतार देता है, बांट आता है। पोस्टमैन के हाथ कुछ भी नहीं पड़ता। न तो प्रेम पत्रों का प्रेम पड़ता है, न धन का एक कण पड़ता है; कुछ भी नहीं पड़ता।

तो पोस्टमैन बनो कि प्रोफेसर, फर्क नहीं है बहुत। मुझे सुन कर तुम दूसरे को समझा पाओगे इससे कुछ हल न होगा। तुम नाहक ही पोस्टमैन बन गए। इसे तो भूल ही जाओ। असली बात तो स्वयं समझना है। और स्वयं समझने का प्रमाण क्या है। प्रामाणिकता का पैदा हो जाना ही प्रमाण है। अगर तुमने मुझे ठीक से सुना, आंख से सुना तो सुनते-सुनते ही तुम्हारे भीतर क्रांति हो जाएगी। इसे अलग से करने की जरूरत पड़े तो समझना कि सुना नहीं, चूक गए। सत्य की यही तो गरिमा है कि अगर तुम समझ लो तो समझते ही मुक्त हो जाते हो। जीसस ने कहा है, सत्य मुक्त करता है। सत्य को सुन लेने से ही मुक्ति हो जाती है।
तुम दो और दो पांच जोड़ रहे थे अब तक, फिर मैंने तुम्हें कहा, दो और दो पांच नहीं होते, दो और दो चार होते हैं। तुमने सुना। क्या तुम अब यह पूछोगे कि अब मैं क्या करूं कि दो और दो चार हो जाएं? क्योंकि मैं तो दो और दो पांच जोड़ता रहा हूं। तुम यह पूछोगे ही नहीं। तुमने सुना, समझा कि दो और दो चार होते हैं, बस दो और दो चार हो गए। दो और दो चार होते ही थे। तुम जब दो और दो पांच कर रहे थे तब भी दो और दो चार ही होते थे। तुम्हारे किए से पांच नहीं हो रहे थे। इसलिए अब कुछ करना थोड़े ही है! वह तो चार थे ही, सिर्फ तुम्हारी भूल थी।
संसार मात्र गणित की भूल है, समझ की भूल है। ऐसा समझो, तुम जिसको पत्नी
कह रहे हो, सदगुरु को सुन कर तुमने समझा कि कौन पत्नी, कौन पति? यहां कौन किसका? फिर तुम थोड़ी पूछने आते हो कि अब मैं कैसे पत्नी को छोडूं? अगर पूछने आओ कि कैसे पत्नी को छोडूं और कैसे इसे जीवन में लाऊं तो तुम समझे ही नहीं। सदगुरु ने तो सिर्फ इतना कहा था, दो और दो चार होते हैं, दो और दो पांच नहीं होते। तुम लाख मानो कि यह तुम्हारी पत्नी है, तुम्हारा पति है, इससे कुछ फर्क पड़ता नहीं। तुम्हारे मानने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। न कोई पति है, न कोई पत्नी है। सुनते ही समझ में नहीं आती बात कि कौन पत्नी कौन पति? धारणा है। सात फेरे लगा लिए तो पति पत्नी हो गए हैं? एक दिन तो पति पत्नी नहीं थे, आज हो गए हैं? कल तलाक ले सकते हैं, फिर नहीं हो सकते हैं। तो यह होना तो केवल एक तरह का एग्रीमेंट, एक तरह का कांट्रेक्ट, एक तरह का समझौता है, एक तरह की कानूनी बात है। अस्तित्व में इसका कोई अर्थ नहीं है। अस्तित्व में न कोई पति है, न कोई पत्नी है।
अब अगर इसको समझ कर तुम आए और बोले कि समझ में तो आ गया, अब कैसे पत्नी
से छुटकारा हो? तो समझ में आया ही नहीं। क्योंकि अब किससे छुटकारा मांग रहे हो? जो तुम्हारी कभी थी ही नहीं उससे छुटकारा कैसे मांगोगे? जानने में छुटकारा हो गया। अब भागना थोड़े ही पड़ेगा कि यह मेरी पत्नी नहीं है तो भागूं!
सुना है मैंने, स्वामी रामतीर्थ अमरीका से लौटे। उनके शिष्य थे, सरदार पूर्णसिंह। तो दोनों हिमालय में कुछ दिन के लिए रहने के लिए गए। टिहरी गढ़वाल का नरेश उनका भक्त था, उसने उनके लिए दूर पहाड़ पर इंतजाम कर दिया। सरदार पूर्णसिंह उनके सचिव का काम भी कर देते थे। कोई आता तो मिला- जुला देते, चिट्ठी-पत्री लिख देते। अनेक लोग आते। पुरुष भी आते, स्त्रियां भी आतीं। एक दिन रामतीर्थ की पत्नी मिलने आ गई दूर पंजाब से। वर्षों उसे छोड़े हो गए। रामतीर्थ छोड़ कर चले गए तो पत्नी को बड़ी तकलीफ थी। बच्चे, बेपढ़ी-लिखी स्त्री! किसी तरह चक्की चला कर, आटा पीस कर लोगों के बर्तन मांज कर बच्चों का पालन-पोषण कर रही थी। सुना कि रामतीर्थ वापस लौट आए हैं तो दर्शन करने आई। लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं, लोग बड़ी खबर लाते हैं। अमरीका में बड़ा प्रभाव पड़ा है, ऐसी खबरें उसके गांव तक आती होंगी तो वह उनका दर्शन करने आई। दर्शन करने आने के लिए पैसा भी नहीं था, वह भी उसने आस-पास के लोगों से उधार मांगा कि चुका दूंगी धीरे-धीरे करके। तो जब वह मिलने आई और रामतीर्थ ने देखा कि पत्नी आ रही है अपनी कोठी पर से, तो उन्होंने सरदार पूर्णसिंह को कहा कि मेरी पत्नी आ रही है, दरवाजा बंद कर दो। और इसको किसी तरह समझा-बुझा कर भेज देना। मैं मिलना नहीं चाहता।
सरदार पूर्णसिंह को तो बड़ी चोट लगी। उन्होंने तो कहाः तो फिर निर्णय
हो जाए। अगर आप अपनी पत्नी से नहीं मिलना चाहते तो मुझे भी छुट्टी दें। मैं भी चला। बात ही खतम हो गई। इतनी स्त्रियां आती हैं, इतने पुरुष आते

हैं, किसी से आपने कभी नहीं मिलना चाहता हूं ऐसा नहीं कहा। आपकी पत्नी का क्या कसूर है? क्या आप उसे अब भी अपनी पत्नी मानते हैं?
तब रामतीर्थ को समझ आई। तो गणित के प्रोफेसर थे रामतीर्थ, उनको बात समझ में आ गई कि दो और दो जब चार हो गए तो अब मैं पांच किस हिसाब से मान रहा हूं? जब एक दफा समझ लिया कि कोई पत्नी नहीं, कोई पति नहीं, कोई बेटा नहीं, कोई मां नहीं। यहां सब संबंध नदी-नाव संयोग हैं। रास्ते पर मिल गए हैं, फिर बिछड़ जाएंगे। अलग-अलग रास्ते आ जाएंगे, अपनी अपनी यात्रा पर फिर निकल जाएंगे। दो घड़ी के लिए साथ हो लिए हैं। दो घड़ी के लिए संगी हो गए हैं। दो घड़ी सुख-दुख में मैत्री बना ली है। लेकिन भूल जाने की कोई जरूरत नहीं है कि जल्दी ही रास्ते अलग हो जाएंगे। पत्नी मरेगी तो पति नहीं मरेगा। पति मरेगा तो पत्नी नहीं मरेगी। जल्दी से रास्ते अलग हो जाएंगे। तो हमारी यात्रा तो व्यक्तिगत है, निजी है। दूसरे से संग-साथ तो रास्ते पर मिल गए। तुम घर से निकले, पड़ोसी भी निकला, दोनों रास्ते पर मिल गए। पड़ोसी को बाजार जाना है, तुम्हें स्टेशन जाना है। थोड़ी दूर तक साथ रहा। चौराहा आया, नमस्कार हो गई। कोई स्टेशन चला गया, कोई बाजार चला गया। बात खत्म हो गई। बस ऐसा ही है जीवन की इस अनंत यात्रा पर।
जब सरदार पूर्णसिंह ने यह कह कहा तो रामतीर्थ को बड़ी चोट लगी और होश
भी आया कि बात तो सच है। जब मैंने यह समझ ही लिया कि मेरी कोई पत्नी नहीं तो आज मैं उसे रोक कर जो... रोकने की चेष्टा कर रहा हूं वह तो बड़ी भ्रांति की है। इसका अर्थ है मैं अभी तक समझा नहीं। उन्हें इतनी पीड़ा हुई, इतनी पीड़ा हुई, कि सरदार पूर्णसिंह ने लिखा है कि वे बहुत रोए। पत्नी को बुलाया, मिले। बड़े भाव से मिले। और उसी दिन से उन्होंने गैरिक वस्त्र छोड़ दिए। सरदार पूर्णसिंह ने पूछाः यह आपने क्या किया? आप सफेद कपड़े क्यों पहनने लगे? तो उन्होंने कहाः शायद अभी मैं असली संन्यासी नहीं। शायद मैं अभी योग्य पात्र नहीं गैरिक वस्त्रों का। तुमने मुझे चेताया। तुमने मुझे ठीक चेताया। अच्छा किया तुमने चोट की। तुमने मेरे दंभ को खूब गिराया, मैं तो यही समझ बैठा था कि सब पा लिया। इस छोटी सी घटना ने सब उघाड़ दिया।
वे आदमी बड़े सरल थे। दंभी होते तो सरदार पूर्णसिंह को निकाल कर बाहर करते कि तू शिष्य होकर गुरु को चेताने चला है? पहले खुद तो चेत! दंभी होते तो जो कर रहे थे उसको सिद्ध करने के लिए सब तरह का तर्कजाल खड़ा करते। नहीं, स्वीकार कर लिया। न केवल स्वीकार कर लिया, उस दिन से गैरिक वस्त्र न पहने। उस दिन से सफेद वस्त्र ही पहनने लगे। क्यों? कि मैं इनके शायद अभी योग्य नहीं। ये वस्त्र तो अग्नि के रंग के वस्त्र हैं। ये वस्त्र तो जब सारी नासमझी जल जाए, तभी सार्थक हैं। ऐसी विनम्रता साधु का लक्षण है।
तो सवाल यह नहीं है कि तुम दूसरे को समझा सको। सवाल यह है कि तुम स्वयं समझ सको। और स्वयं अगर समझ लो तो फिर यह प्रश्न नहीं उठता कि अब मैं प्रामाणिक कैसे होऊं? समझ अगर ठीक-ठीक बैठ गई तो प्रामाणिक तुम हो गए। प्रामाणिक होना परिणाम में हो जाएगा।
पूछा तुमनेः ‘आपको प्रेमपूर्वक समझ पाता हूं।’
अब दो बातें हैं। कुछ लोग हैं जो यहां आते हैं, उनका मुझसे कोई प्रेम नहीं है। समझदार लोग हैं। समझने की चेष्टा करते हैं लेकिन प्रेम न होने की वजह से चूक जाते हैं। ये बातें ऐसी हैं कि प्रेम में पगे होकर सुनोगे तो ही समझ में आएंगी, नहीं तो नहीं समझ में आएंगी। इन बातें को समझने के लिए बड़ी सहानुभूति, बड़ी श्रद्धा चाहिए। अपूर्व श्रद्धा हो तो ही यह संपदा तुम्हारी हो सकेगी।
तो कुछ लोग हैं जो बुद्धि से सुनते हैं, जिनके हृदय में कोई प्रेम की तरंग नहीं। वे चूक जाते हैं। फिर कुछ लोग हैं जो प्रेम से सुनते हैं लेकिन समझ का अभाव है। बोध नहीं है। मगन होकर सुनते हैं, डूब जाते हैं मगर जिसमें डूब रहे हैं वह क्या है, इसका साक्षीभाव नहीं है। तो उनके जीवन में क्रांति तो हो जाएगी डूबने से लेकिन वे किसी दूसरे को समझाने में कभी सफल न हो पाएंगे। उनके भीतर रूपांतरण तो हो जाएगा। उनका खुद का तो काम हो जाएगा। वे परम शिष्य तो बन जाएंगे लेकिन कभी गुरु न बन पाएंगे।

गुरु होने के लिए दो बातें जरूरी हैं। शिष्य जब तुम थे तब प्रेम से सुना हो और समझ और साक्षी से भी। इधर हृदयपूर्वक सुना हो और उधर पूरी प्रतिभा को, बुद्धि को जगा कर रखा हो तो जो तुम्हारे हृदय में घटता हो वह सिर्फ हृदय में ही न घटे, उसकी झनक, उसकी भनक अंकित होती चली जाए तुम्हारी बुद्धि में भी। तो ही तुम दूसरे को समझाने में सफल हो पाओगे। इसलिए बहुत लोग ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं लेकिन सभी लोग सदगुरु नहीं हो पाते हैं। ज्ञान को उपलब्ध हो जाना एक बात है। तुमने जान लिया, तुमने अनुभव कर लिया तुम डुबकी मार गए। मगर तुम चुप हो जाओगे। तुम मौन हो जाओगे। तुम बोल भी न पाओगे क्योंकि जब तुमने डुबकी मारी तब तुमने सिर्फ हृदय से मार ली। और हृदय बोलता नहीं। हृदय तो चुप है। हृदय समझा नहीं सकता। हृदय समझ तो लेता है लेकिन समझाने में असमर्थ है।
अब इस फर्क को ख्याल में लेना। बुद्धि न भी समझे तो भी समझाने में समर्थ है और हृदय समझ भी ले तो समझाने में समर्थ नहीं है। और सदगुरु तो वही बन सकता है जिसका हृदय और जिसकी बुद्धि एक संतुलन में आ जाएं। जिसके भीतर यह परम समन्वय घटित हो, यह सिंथिसिस घटित हो। जिसकी प्रतिभा और जिसका प्रेम समतोल हो।
तुम कहते होः ‘आपको प्रेमपूर्वक समझ पाता हूं।’
तुम्हारी समझ तुम्हारे काम नहीं आ रही, इसलिए समझ नहीं हो सकती। और तुम्हारा प्रेम भी तुम्हारी धारणा है। अगर यह प्रेम वस्तुतः हो तो कम से कम तुम्हारे काम तो आ जाए। अभी तुम्हारे काम बात नहीं आ रही तुम दूसरों को समझा पाते हो। तुम कुशल हो गणित में, तर्क में। तुम निष्णात हो भाषा में। तो तुम दूसरे को समझा पाते हो। मगर दूसरे को समझाने से क्या होगा? और कैसे तुम दूसरे को समझाओगे जो तुम्हारे जीवन में नहीं जला, जो तुम्हारे जीवन में नहीं उमगा? जो फूल तुम्हारे जीवन में नहीं खिला उसकी सुगंध की चर्चा करके किसको समझाओगे? बात में से बात निकलती जाएगी। न सुगंध तुम्हारे पास थी, न सुनने वाले को मिलेगी। और सुनने वाला किसी और को समझाएगा। ऐसे सदियों तक रोग के कीटाणु फैलते चले जाते हैं। ऐसे सदियों तक हम अपनी बीमारियां एक-दूसरे को देते चले जाते हैं। इसे रोको। दूसरे को समझाने की तब तक चेष्टा ही मत करना, जब तक तुम्हें समझ में नहीं आ गया।
और तुम्हें समझ में आने का प्रमाण क्या है? तुम्हें समझ में आने का प्रमाण यही है कि जब तुम मुझे सुन रहे हो, सुनते ही तत्क्षण कोई बात की चोट पड़े और तुम्हें दिख जाए। बिजली कौंधे और तुम्हें दिख जाए कि हां, ऐसा है। ऐसा ही है। और उस ऐसे ही है के अनुभव में तुम्हारा जीवन कल से दूसरा हो जाएगा। फिर कल से दो और दो चार होने लगे। कल से क्यों, अभी से, इसी क्षण से दो और दो चार होने लगे। फिर दो और दो पांच दुबारा न होंगे।
‘आपको प्रेमपूर्वक समझ पाता हूं, औरों को समझा पाता हूं, फिर वही समझ जीवन में प्रामाणिकता लाने में सहायक क्यों नहीं हो पाती है?’
यह समझ समझ नहीं है। यह समझ का धोखा है। यह समझदारी है, समझ नहीं। यह जानकारी है, ज्ञान नहीं। इसमें बोध नहीं है। बुद्धि होगी बहुत, विद्वत्ता होगी, लेकिन बोध नहीं है, बुद्धत्व नहीं है।
तुम्हें मेरी बातें चोट करेंगी। तुम थोड़े बेचैन होओगे। क्योंकि मैं
यह कह रहा हूं कि तुम्हारे भीतर अभी जो प्रेम है वह भी मन की धारणा है। और तुम जिसे समझ समझ रहे हो वह केवल शब्दों का खेल है। निश्चित ही तुम्हारा मन बड़ा उदास होगा, बड़ा हताश होगा। लेकिन मैं जानकर ही ये बातें कह रहा हूं। तुम्हें हताश और उदास करना जरूरी है ताकि तुम्हें झटका लगे। नहीं तो तुम इसी रौ में बहते चले गए तो तुम मुझसे चूक ही जाओगे। तुम पहले इस हीरे को अपने भीतर डुबा लो। तुम पहले इस किरण को अपने भीतर उतार लो। जल्दी न करो। किसको समझाना है? किससे क्या लेना-देना है? जब तुम्हारे फूल खिलेंगे तो सुगंध दूसरों तक पहुंच जाएगी। पहुंची तो ठीक, न पहुंची तो ठीक। यह तुम्हारा कुछ कर्तव्य नहीं है कि पहुंचनी ही चाहिए।
सुना नहीं? दरिया कहते हैं कि इस पागल संसार को समझाने से क्या होगा?
यह तो कितना ही समझाओ, समझ समझ कर और उलझ जाता है। जितना सुलझाओ उतना उलझ जाता है। यह संसार पागल है। तुम पागलों को समझाने में सिर न फोड़ो। तुम

इतना ही करो कि अपने पागलपन के बाहर आ जाओ। तुम्हारा पागलपन के बाहर आ जाना ही तुम्हारे द्वारा होने वाली बड़ी से बड़ी सेवा है। फिर जो भी तुम्हारे साथ आ जाएगा, जो भी तुम्हारे पास पड़ जाएगा, जो भी कभी जाने-अनजाने तुम्हारे पास से गुजर जाएगा उसको तुम्हारी सुगंध मिलेगी, तुम्हारा संगीत मिलेगा। उसके भीतर की वीणा कंपित होगी। उसके नासापुट भी किसी अनिर्वचनीय सुगंध से भरेंगे। वह भी शायद अनंत की यात्रा पर निकलने को जिज्ञासु हो जाए।
पर समझाने का गोरखधंधा मत करो। तुम पहले खुद ही पा लो। उस पाने से अगर कुछ किसी को समझाना निकलता हो, ठीक। लेकिन पहले पक्का कर लो कि मुझे मिला। अपनी सारी शक्ति नियोजित कर दो समझने में।
प्रामाणिकता सुन कर पैदा नहीं होती। कान से सुनकर पैदा नहीं होती। प्रामाणिकता का अर्थ होता है, बाहर-भीतर एक। जैसा दरिया ने कहा, साधु का लक्षण बताया कि बाहर-भीतर एक। जैसा भीतर, वैसा बाहर। जिसके भीतर बहुत-बहुत पर्तें नहीं, जिसके भीतर बहुत मन नहीं, जिसके भीतर एक ही धारा है, अनेक-अनेक खंडों में बंटी हुई धारा नहीं है, जिसके भीतर बहुत स्वर नहीं है, भीड़ नहीं है, और जिसके चेहरे पर कोई मुखौटे नहीं हैं, जिसके पास मौलिक चेहरा है--वही जो परमात्मा ने उसे दिया, वही जो उसका अपना है। बस, निज पर ही जिसका भरोसा है। यह प्रामाणिकता है।
लेकिन यह प्रामाणिकता कैसे पैदा हो? तुमने अगर इसको कैसे से जोड़ा तो अड़चन में पड़ जाओगे। क्योंकि प्रामाणिकता तुम्हारे पैदा करने की बात ही नहीं। तुम जो भी पैदा करोगे वह अप्रामाणिक होगा। अब इसे खूब सम्हाल कर हृदय में रख लो। तुम जो भी पैदा करोगे वह अप्रामाणिक होगा। तुम पैदा करोगे वह प्रामाणिक कैसे हो सकता है? प्रामाणिक तो परमात्मा पैदा कर चुका है। तुम पूछते हो, मैं असली चेहरा कैसे लगाऊं? असली चेहरा लगाया नहीं जाता। असली चेहरा तो है ही। नकली चेहरे लगाए जाते हैं। तो तुम जो भी लगाओगे वह नकली होगा। जो लगाया जा सकता है वह नकली होगा। तो यह तो पूछो मत कि ठीक, अब नकली चेहरा नहीं लगाऊंगा; तो असली कैसे लगाऊं! मगर तुम लगाने की बात पकड़े ही हुए हो। तुम कहते हो लगाऊंगा तो ही। चलो, नकली न लगाएंगे, असली लगाएंगे। मगर असली लगाया जाता है? असली तो वही है जो तुम्हारे बिना लगाए लगा हुआ है। तुम जिसे निकालना भी चाहो, अलग भी करना चाहो तो न अलग कर सकोगे वही असली है। जिसको हम कभी नहीं चूकते और जिसको हम कभी नहीं खोते और जिससे हम कभी अलग नहीं होते वही असली है; वही प्रामाणिक है। तो करना क्या है? सिर्फ नकली को देख लेना है कि नकली है। बस, फिर हाथ रुक जाएंगे नकली को लगाने से। कृष्णमूर्ति कहते हैंः जिसने नकली को नकली की तरह देख लिया उसको असली उपलब्ध हो जाता है। असार को असार की तरह देख लेना सार को पा लेना है। अंधेरे को अंधेरे की तरह पहचान लेना बस पर्याप्त है रोशनी की तरफ जाने के लिए।
तो तुम प्रामाणिक होने की चेष्टा तो मत करना, चेष्टा मात्र अप्रामाणिकता में ले जाती है। प्रामाणिकता साधी नहीं जाती। प्रामाणिकता तो तुम जब सब साधना छोड़ देते हो तब जो बच रहती है, वही है। प्रामाणिकता घटती है, घटाई नहीं जाती। प्रामाणिकता कोई आयोजन नहीं की जाती। उसकी कोई व्यवस्था नहीं होती, कोई विधि-विधान नहीं होता। वह तो हो ही चुका है। वह तो तुम लेकर ही आए थे। असली चेहरा तो तुम मां के पेट से लेकर आए थे। उसके लिए किसी स्कूल किसी विद्यालय, किसी विद्यापीठ की कोई जरूरत नहीं है। तुमने जो सीख लिया उसे अनसीखा हो जाने दो। और तुम अचानक पाओगे, जो तुम्हारा है वह उभर कर ऊपर आ गया। नकली की... नकली के साथ तुम्हारी जो आसक्ति है वह टूट जाए। और कैसे नकली के साथ आसक्ति टूटेगी? आसक्ति क्यों है? क्योंकि तुम नकली को असली मानते हो। जिस दिन नकली नकली दिख जाए उसी दिन आसक्ति टूट जाती है।
तुम एक पत्थर का टुकड़ा हीरा मान कर अपनी तिजोरी में सम्हाल कर रखे थे। सोचते थे हीरा है। परख तो थी नहीं हीरे ही। पारखी तो तुम थे नहीं, जौहरी तो तुम थे नहीं। रास्ते पर पड़ा मिल गया था; चमकता था तो तुमने सोचा हीरा है।
तो तुमने सम्हाल कर रख लिया। डर के मारे किसी को बताया भी नहीं कि कहीं पता

चल जाए, कि चोरी इत्यादि की झंझट खड़ी हो कि कहां से लाए, किसका है, कैसे मिला? तो किसी को बताया भी नहीं। जल्दी से तिजोड़ी में सम्हाल कर रख दिया। अब तुमने इसकी फिकर करनी शुरू की कि असली है या नकली। तुम किसी जौहरी से दोस्ती कर लिए। सत्संग करने लगे। जौहरी के दुकान पर बैठने लगे। देखने लगे, कैसे परखता है हीरे को! असली हीरे की परख क्या है! धीरे-धीरे जौहरी की दुकान पर बैठते-बैठते तुमको भी समझ में आने लगा कि असली क्या, नकली क्या, कांच के टुकड़े क्या हैं। तुमको भी समझ में आने लगा। जो दरिया कहते हैंः कांच कांच सो कांच, सांच सांच सो सांच। तो तुम पहचानने लगे कि सांच क्या है, कांच क्या है। फिर एक दिन आए, अपनी तिजोड़ी खोली, देखा उठा कर वह कांच का टुकड़ा था।
अब इसका त्याग करने के लिए कुछ आयोजन करना होगा? इसको छोड़ने के लिए कोई जलसा, गांव को निमंत्रण करना होगा? इसके त्याग के लिए कोई जुलूस, कोई शोभायात्रा निकालनी पड़ेगी? डुंडी पिटवाओगे, अखबार में खबरें छपवाओगे कि एक हीरे का त्याग कर रहे हैं? यह कांच का टुकड़ा है, बात खत्म हो गई। अब तुम किससे पूछने जाओगे कि हीरे को कैसे छोड़ें? अगर तुम पूछते हो हीरे को कैसे छोड़ें तो अभी तिजोड़ी में सम्हाल कर रख लो। अभी हीरा है, छोड़ोगे कैसे? अगर कांच का टुकड़ा दिखाई पड़ गया तो बात खतम हो गई। अब पूछना क्या है? किससे पूछना है? तुम एक क्षण भी यहां वहां न जाओगे। बच्चों को दे दोगे कि खेलो। तिजोड़ी बंद करके सोचोगे, कहां इतने दिन तक कचरे को तिजोड़ी में रखे रहे! बात खतम हो ही गई। जिस दिन तुम्हें कांच-कांच की तरह दिख गया उस दिन बात खत्म हो गई।
मेरी बातें सुनते-सुनते, तुम ऐसे प्रश्न अपने मन में कभी मत उठाओ कि कैसे इन्हें साधें? बस, वहां चूक हो रही है। तुम मेरी बातों को ठीक से सुन लो। आंख से सुन लो। ठीक से परख लो, क्या कहा जा रहा है, क्यों कहा जा रहा है। उसकी सब भाव-भंगिमाएं पहचान लो। यह तो जौहरी की दुकान है। इस पर बैठे-बैठे, बैठे-बैठे, आते-जाते, सत्संग करते-करते तुम्हें समझ आ जाएगी कि असली हीरा क्या, नकली हीरा क्या, फिर नकली हीरा तुम फेंक दोगे। और जब सब नकली हीरे फेंक दिए जाते हैं तब तुम्हारे भीतर जो असली है ही, वह प्रकट हो जाता है। नकली के ढेर में खो गया है असली। असली लाना नहीं है। असली लाया नहीं जा सकता। असली तो तुम हो। असली हीरा तो तुम हो। तुम ही हो, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। खोजने वाले में ही खोज का अंतिम लक्ष्य छिपा है। साधक में ही सिद्ध बैठा है। तुम्हारे भीतर परमात्मा का वास है। पर तुमने अपनी तिजोड़ी में इतना कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया है। जो मिला सो उठा लाए, जो मिला सो उठा लाए, जहां मिला सो उठा लाए।
मैं एक सज्जन के घर में कुछ वर्षों तक रहा। उनका ढंग यह था कि उनको कोई
भी चीज कहीं पड़ी मिल जाए तो उठा लाएं। नया-नया था तब तो मैं देखता रहा कि बात क्या है। वह थोड़ा संकोच भी करते थे फिर जब मैं कई महीने वहां रहा तो उन्होंने फिर संकोच भी छोड़ दिया। फिर तो वे बेधड़क मेरे सामने ही उठा कर ले आते थे सड़क पर। पैसेवाले आदमी थे, बड़ा उनका बंगला था, मगर कोई भी चीज उठा लाते।
एक दिन मैंने देखा कि एक साइकिल का टूटा हुआ हैंडल कचरे-घर में किसी
ने फेंक दिया होगा, वह उठा कर उसको साफ करते चले आ रहे हैं। मैंने उनसे पूछा कि मुझे पूछना तो नहीं चाहिए, मगर अब जरा हद्द हो गई। यह साइकिल का हैंडल क्या करोगे? उन्होंने कहाः अरे कुछ मत पूछो। पैडल में पहले ही रखे हुए हूं और हैंडल भी आ गया। इसी तरह धीरे-धीरे करके पूरी साइकिल आ जाएगी। पैडल वे पहले ही कभी एक उठा लाए हैं, कह रहे हैं। आज हैंडल भी हाथ आ गया। किसी दिन फ्रेम भी मिल जाएगा, फिर किसी दिन कैरियर मिल जाएगा। ऐसी आशा में इकट्ठा करते जा रहे हैं। धीरे-धीरे जब उनसे मेरी पहचान भी बढ़ गई, ऐसे तो मैं उनका किराएदार था लेकिन वह कभी मुझे घर में नहीं बुलाते थे। घर में वे किसी को नहीं बुलाते थे। जब पहचान बढ़ गई तो कभी उन्होंने मुझे घर में बुलाया। घर में देखा तो मैं हैरान हो गया। वह तो कबाड़खाना था। वहां तो ऐसी- ऐसी चीजें देखीं जिनका कोई भरोसा ही नहीं करे कि किसलिए आदमी रखे होगा। घर में जगह ही नहीं थी। सब तरह का कूड़ा-करकट भरा हुआ था। अब अगर तुम सड़कों से

उठा-उठा लाओगे इस तरह की चीजें--इस आशा में कि पैडल भी मिल गया, अब हैंडल भी मिल गया, अब इसी तरह एक दिन साइकिल भी बन जाएगी। इस आशा में साइकिल बनाओगे तो तुम्हारे घर की हालत तुम समझ सकते हो।
मैंने उनसे पूछा कि इस कूड़े-कबाड़ में रह रहे हो, इस शानदार बंगले में
रह सकते थे। इस कचरे में रह रहे हो। वे हंसे। वे इस तरह हंसे जैसे समझदार नासमझों की बातों पर हंसता है। उसने कहा, आप क्या समझो! अव्यावहारिक आदमी हो आप, यह व्यवहार की बात है। आप देखना धीरे-धीरे, इनमें से एक-एक चीज काम में आ जाएगी। वे उसी कचरे में रहते-रहते मर गए। उनके मरने के बाद जब उनकी पत्नी ने सफाई की उस घर की तो उसमें कुछ भी बचाने योग्य नहीं था। वह भी मैंने अपनी आंख से देखा कि एक ठेला भरके कूड़ा-कबाड़ सब तरह का निकालना पड़ा। उसमें कुछ भी बचाने योग्य नहीं था।
तुम अगर अपनी जिंदगी में गौर से देखोगे तो तुमने बहुत सा कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया है। भीतर तुम कचरा ही कचरा इकट्ठा किए बैठे हो। इस कचरे के कारण जो असली है, दिखाई नहीं पड़ रहा। असली दब गया कचरे में। असली को पाना नहीं है, असली तो मिला ही हुआ है। सिर्फ नकली से छूट जाना है। अब नकली से छूटने के लिए क्या करना होता है? नकली नकली है ऐसी समझ भर आ जाए, पर्याप्त। इतनी ही समझ सदगुरु के पास आ जाती है। सत्संग का इतना ही सार है।
तुम यह तो पूछो मत कि प्रामाणिकता कैसे लाऊं? अगर तुम्हें अप्रामाणिकता की बात समझ में आ गई कि अप्रामाणिक होने में दुख है, तुम्हें समझ में आ गया कि अप्रामाणिकता आदमी को विक्षिप्तता की तरफ ले जाती है; बाहर कुछ, भीतर कुछ--तो तुम दो आदमी हो गए। और इन दोनों आदमियों में निरंतर संघर्ष होगा, निरंतर कलह होगी, निरंतर झंझट होगी। कुछ कहोगे, कुछ करोगे। तुम्हारा सारा जीवन झूठ का एक व्यवसाय हो जाएगा। फिर तुम्हें याद रखनी पड़ेगी कि किससे क्या कहा।
सत्य के साथ एक सुविधा है, सत्य को याद नहीं रखना पड़ता। कह दिया, बात खतम हो गई। फिर अगर कोई दस वर्ष बाद भी पूछेगा तो भी तुम सत्य ही तो कहे हो तो फिर सत्य कह दोगे। लेकिन अगर झूठ कहा तो फिर याद रखना पड़ता है। कहीं भूल न जाओ। झूठ बोलने वाले को याद रखना पड़ता है कि यह झूठ बोला। फिर एक झूठ बोलने के लिए दस झूठ बोलने पड़ते हैं। क्योंकि उसे छिपाने के लिए दस का इंतजाम करना पड़ता है। दस के लिए सौ बोलने पड़ते हैं, सौ के लिए हजार। और ऐसे झूठ की भीड़ बढ़ती चली जाती है। और फिर सब याददाश्त... ।
रूस में एक कहावत है कि झूठ बोलने वाले की स्मृति बहुत अच्छी होती है। होनी ही चाहिए। सच बोलने वाले को स्मृति से क्या लेना-देना! न भी हुई तो चलेगा। झूठ बोलने वाले के पास तो अच्छी याददाश्त चाहिए ही। पत्नी से कुछ बोले, बेटे से कुछ बोले, नौकर से कुछ बोले, दफ्तर में कुछ बोले, बाजार में रास्ते पर कोई मिल गया उससे कुछ बोले। अब सब हिसाब रखो। सावधानी होना चाहिए। सबका हिसाब रखो कि किससे क्या बोले। और फिर किस-किस से क्या-क्या झूठ और बोलनी है आगे। एक की झूठ दूसरे से पकड़ में न आ जाए। और दूसरा तीसरे से न कह दे। और कोई जाल न खड़ा हो जाए। तो आदमी इस जाल से बचने के लिए जाल को बड़ा करता चला जाता है। धीरे-धीरे तुम झूठ के पहाड़ में दब जाते हो। तुम्हारी छाती पर मैं झूठ का हिमालय रखा हुआ देखता हूं। उस हिमालय के नीचे तुम्हारी छोटी सी जो धारा थी कल-कल झरने की, वह जो तुम्हारी जीवंत धारा थी चेतना की, वह दब गई है, अवरुद्ध हो गई है।
प्रामाणिक होने का अर्थ हैः अप्रामाणिक होने में दुख दिखाई पड़ जाए। अप्रामाणिक होने में कष्ट, उलझन, दुविधा, बेचैनी, तनाव, विक्षिप्तता दिखाई पड़ जाए। अप्रामाणिक होने में नरक बन रहा है यह दिखाई पड़ जाए। बस, बात खत्म हो गई। फिर तुम क्यों नरक बनाओगे? तुम तो इसी आशा में बना रहे हो कि यह स्वर्ग है। दिखाई पड़ जाए कि नरक है, तुम बनाना बंद कर दोगे। दिखाई पड़ जाए कि नरक है, तुम तत्क्षण इसके बाहर आ जाओगे। इसको ही मैं संन्यास कहता हूं। मेरे संन्यास की परिभाषा इतनी ही है कि तुम्हें दिखाई पड़ गया कि कैसे तुम नरक बनाते हो। अब नरक नहीं बनाएंगे। और जो बना लिया है उसकी घोषणा कर देंगे कि भई अब उससे हमें क्षमा कर दो। जो कहा-सुना था, सब झूठा था। अब हम उस झंझट में नहीं रहे, बाहर हो गए। अब आज से हम सीधा और सरल रेखाबद्ध जीवन

जीएंगे। आज से हम वही कहेंगे जो सच है। और वही जीएंगे जो सच है--चाहे जो परिणाम हो। क्योंकि झूठ का परिणाम देख लिया।
झूठ बड़ी आशाएं दिलाता है। झूठ बड़ा अदभुत सेल्समैन है। वह बड़ी आशाएं दिलाता है। झूठ बड़ा राजनीतिज्ञ है। वह बड़े भरोसे दिलाता है कि यह करेंगे, यह करेंगे, ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे। एक बार मुझे वोट भर दे दो। एक बार मेरे साथ खड़े हो जाओ। झूठ बड़े आश्वासन देता है लेकिन कभी पूरे नहीं करता। एक भी आश्वासन झूठ पूरा नहीं कर सकता। झूठ ने कभी कोई आश्वासन पूरा नहीं किया है। सिर्फ लटकाए रहता है आश्वासनों के आधार पर। झूठ तो ऐसा है जैसे मछली को पकड़ते हैं कांटे पर आटा लगा कर। तो झूठ तो कांटा है और आश्वासन आटा है। झूठ कहता है, ऐसे-ऐसे सुख के सब्ज-बाग दिखाता है। स्वर्ग बनाएंगे, बहिश्त बनाएंगे तेरे लिए। इतना ऊंचा जीवन ला देंगे। जरा हमारे साथ चल। वह स्वर्ग कभी आता नहीं, आता नरक है। आता दुख है। आता विषाद, संताप है। इसमें जाग कर जो देख लिया... इतना ही यहां तुम्हें घट जाए कि इतना ही तुम्हें दिखाई पड़ने लगे कि अब और झूठ के घर नहीं बनाने हैं।
बुद्ध को जब पहली दफा ज्ञान हुआ, समाधि पहली दफा लगी तो उन्होंने जो पहले वचन बोले वे बड़े बहुमूल्य हैं। उन्होंने आकाश की तरफ सिर उठा कर कहा कि हे मेरे गृह कारक! मेरे घर बनाने वाले! अब तुझे मेरे लिए और घर न बनाने पड़ेंगे। अब मैं मुक्त हो गया। किससे कह रहे हैं वे कि हे गृह कारक, हे मेरे घर बनाने वाले, अब तुझे मेरे लिए और घर न बनाने पड़ेंगे? अब मैं मुक्त हो गया। अब मैं स्वतंत्र हो गया। अब मेरे लिए और देह न बनानी पड़ेंगी। और मेरे लिए नरक न बनाने पड़ेंगे। और मेरे लिए कारागृह न बनाने पड़ेंगे और मेरे लिए जन्म नहीं है अब। अब बात खतम हो गई। मैंने देख लिया। जैसा है, उसे देख लिया। अब मैं तेरे आश्वासनों में, और तेरी आशाओं में न पडूंगा।
बुद्ध ने कहा हैः धन्यभागी हैं वे, जिनकी आशा मर जाती है। बड़ी अजीब सी बात है। धन्यभागी हैं जो परिपूर्ण रूप से निराश हो जाते हैं। क्यों? निराशा में धन्यभाग? समझोगे तो बड़ी बहुमूल्य बात है। क्योंकि जो बिल्कुल निराश हो गया, जिसने देख लिया कि आशा यहां पूरी होती ही नहीं, उसको फिर झूठ धोखा नहीं दे पाएगा। फिर कोई आश्वासन झूठ देकर उसे फुसला न पाएगा। फिर झूठ कोई बिक्री न कर पाएगा, कुछ बेच न पाएगा उसे। उसकी आशा ही छूट गई। आशा को ही हम फुसला लेते हैं। आशा के ही साथ झूठ का संबंध जुड़ जाता है। जो परम निराश हो गया--चाहे इसे तुम विराग कहो, चाहे नैराश्य कहो, चाहे उदासीनता कहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। बात एक ही है। जिसने देख लिया कि यहां कुछ भी मिलता नहीं। बस बातें हैं।
मैंने सुनी है एक कहानी। एक आदमी ने बहुत दिन तक शिव की भक्ति की। वर्षों की तपश्चर्या के बाद शिव प्रकट हुए और पूछाः तू चाहता क्या है? वह आदमी अपना शंख बजा रहा था। वर्षों से बजा रहा था भगवान के समाने बैठ-बैठ कर। तू चाहता क्या है? तो उसने कहा कि मुझे कोई वरदान दे दें। क्या वरदान चाहता है? तो उसने कहा कि यह मेरा शंख रहा, यही मुझे वरदान दे दें कि इस शंख से जो भी मैं मांगूं वह मुझे मिल जाए। शिव ने कहाः तथास्तु। वे तो तिरोहित हो गए।
वह आदमी अपने शंख से जो भी मांगता उसे मिल जाता। लाख रुपये चाहिए और छप्पर फूटता और लाख रुपये गिर जाते। बड़ा मकान चाहिए और सुबह आंख खोलता और मकान खड़ा हुआ। वह बड़ा प्रसन्न रहने लगा। उसकी बड़ी कीर्ति फैल गई दूर-दूर तक। दूर-दूर से लोग उसके दर्शन करने आने लगे कि यह बड़ा चमत्कारी पुरुष है। कैसे यह घट रहा है? इसको कौन सा अटूट खजाना मिल गया है।
एक संन्यासी भी आया। संन्यासी रात रुका। रात जब संन्यासी अपने कमरे में अकेला था, उसने अपने झोले से एक शंख निकाला--बड़ा शंख। वह गृहस्थ भी बगल के कमरे में था, उसके पास छोटा शंख था। उस संन्यासी ने अपने शंख से कहाः लाख रुपये चाहिए। उसके शंख ने कहाः लाख में क्या होगा, दो लाख ला दूं? गृहस्थ चौंका कि यह तो गजब हो गया। मैं मांगता हूं लाख तो लाख ही देता है मेरा शंख। यह असली चीज तो इसके पास है। लाख मांगो, दो लाख बताता है। कहता है, दो लाख ला दूं? उसने सुबह संन्यासी के चरण छुए। कहाः महाराज, आप संन्यासी, वीतरागी पुरुष! आप यह किसलिए रखे हुए हैं? मुझ गरीब को दे दें।

हम तो लोभी, कामी। और ऐसा भी नहीं कि मैं आपको कुछ न दूंगा। मैं आपको अपना शंख दे देता हूं। यह मेरा शंख है। मगर यह शंख है, आपके पास महाशंख है, बदल लें। संन्यासी ने कहाः जैसी तुम्हारी मर्जी। हम तो संन्यासी आदमी। चलो छोटा ही शंख ले लेंगे।
छोटा शंख लेकर संन्यासी नदारद हो गया। रात हुई, गृहस्थ ने अपना महाशंख निकाला, उससे कहा कि लाख रुपये। महाशंख बोलाः लाख में क्या होता, दो लाख ले ले। उसने कहाः चलो दो लाख। महाशंख बोलाः चार ले लेना। उसने कहाः चल चार। उसने कहाः अरे आठ! मगर वह शंख आगे ही बढ़ता जाए, दे इत्यादि कुछ भी नहीं। तब वह घबड़ाया। तब वह घबड़ाया, उसने कहाः भई कुछ देगा भी? उसने कहाः लेना-देना किसको, लेना-देना किसको? तू जितना मांगेगा, दुगुना हम देंगे। लेना-देना बिल्कुल नहीं, बस दुगुना हम देंगे। तू मांग, जितना तुझे मांगना हो। तब उसने छाती पीट ली।
झूठ महाशंख है। झूठ बड़े आश्वासन देता है। अप्रामाणिकता के बड़े आश्वासन हैं। तुम्हें यह समझ में आ जाए तुम अप्रामाणिकता से निराश हो जाओ, बस पर्याप्त। कुछ करने को नहीं है। धीरे-धीरे अप्रामाणिकता तुम्हारे हाथ से छूटकर गिर जाएगी। वह जाल फिर सक्रिय न रह जाएगा। फिर जो बचेगी जीवंत धारा वही प्रामाणिकता है।

तीसरा प्रश्नः कभी-कभी रात में आपसे मुलाकात हो जाती है। क्या यह सपना है? और कभी-कभी ऐसा स्वाद अनुभव होता है जैसा कभी नहीं जाना था। तो यह क्या है?

पहली बात, जीवन जितना तुम जानते हो उससे बहुत ज्यादा है। जीवन जितना तुम पहचानते हो, उससे बहुत बड़ा है। इसलिए अगर इसी जीवन को तुमने सच मान लिया तो फिर और कोई भी नई घटना घटेगी तो तुम्हें लगेगी सपना है। तुमने बड़ी सीमित परिभाषा कर ली जीवन की। तुमने अगर यही मान लिया कि जीवन में बस कंकड़-पत्थर ही होते हैं तो किसी दिन अगर कोहिनूर मिल जाएगा तो तुम कहोगे, सपना है। हो कैसे सकता है? तुमने अगर दुख ही दुख को जीवन मान लिया है तो सुख ही किरण उतरेगी तो तुम्हें लगेगा सपना है। हो कैसे सकता है?
ऐसा रोज घटता है यहां। लोग दुख पर तो बड़ा भरोसा करते हैं, सुख पर उनका बिल्कुल भरोसा नहीं रहा। और बात भी साफ है। सुख जाना ही नहीं कभी, तो भरोसा कैसे हो? जब यहां किसी को ध्यान करते-करते, पकते-पकते स्वाद आना शुरू होता है तो उसे बड़े प्रश्नों के जाल उठने लगते हैं उसके भीतर। मेरे पास लोग आकर पूछते हैं, बड़ा सुख मिल रहा है। क्या यह सपना है? ये वे ही लोग हैं जिन्होंने बड़ा दुख पाया और कभी नहीं पूछा था कि बड़ा दुख मिल रहा है, क्या यह सपना है?
दुख पर तुम्हारी बड़ी आस्था है। दुख पर तुम जरा भी संदेह नहीं करते। सुख पर तुम्हारी जरा भी आस्था नहीं है। स्वभावतः जिस पर तुम्हारी आस्था है उसी से तुम्हारा मिलना हो जाता है, बार-बार आस्था के कारण ही। वही मेहमान तुम्हारे घर आता है, वही अतिथि तुम्हारे घर आता है, जिसको तुम पुकारते हो। सुख आ भी जाए तो तुम दरवाजा बंद कर लेते हो। तुम कहते हो, कहीं यह सपना तो नहीं है? सुख और मेरे घर? पूछा है पुष्पा ने। क्या, सुख को स्वीकार करने में ऐसी क्या अड़चन है?
मैंने सुना है, एक मनोरोगी अपने मनोचिकित्सक के पास वर्षों से विश्लेषण करवा रहा था। और रोज-रोज नये-नये दुख लाता था कि ऐसा दुख हो रहा है, वैसा दुख हो रहा है। आज यह दुख, कल वह दुख। मनोविश्लेषक भी थक गया था, ऊब गया था इसकी बकवास सुनते-सुनते। और इसका कोई अंत ही नहीं था। पागलपन का कभी कोई अंत ही होता नहीं। पागलपन बड़ा ही अन्वेषक है। वह रोज-रोज नई चीजें खोज लेता है। बड़ा आविष्कारक है पागलपन। थकता नहीं। मनोवैज्ञानिक थक गया, बीमार नहीं थका था। आखिर मनोवैज्ञानिक ने उससे पिंड छुड़ाने के लिए कहा कि भई, तू एक दो-तीन सप्ताह के लिए पहाड़ चला जा; उससे बड़ा लाभ होगा। इसको होगा कि नहीं होगा इससे मतलब नहीं था, लेकिन दो-तीन सप्ताह के लिए इससे छुटकारा हो, तो मनोवैज्ञानिक को कुछ लाभ हो। समझा-बुझा कर उसको किसी तरह पहाड़

भेजा। चला गया स्विटजरलैंड। पैसे वाला आदमी! आखिर पैसे वाला होना ही चाहिए नहीं तो आदमी इतना पागलपन कैसे चलाएं? सुविधा तो होनी ही चाहिए, संपदा तो होनी ही चाहिए। गरीब तो पागल नहीं हो सकते। अमीर ही पागल हो सकते हैं।
इसलिए जो देश जितना अमीर हो जाता है उतना पागलपन से ग्रस्त हो जाता है। अब मनोवैज्ञानिक गरीब को तो मिल ही नहीं सकता विश्लेषण करने को। महंगा काम है। पश्चिम में तो लोग अकड़ बताते हैं कि हम फलां मनोवैज्ञानिक के पास जाते हैं। तुम किसके पास जाते हो? गरीब आदमी तो मनोवैज्ञानिक के पास जा ही नहीं सकता। उसकी बड़ी महंगी फीस है। तो यह भी एक आभूषण है।
वह स्विटजरलैंड चला गया। दूसरे दिन ही उसका तार आया मनोवैज्ञानिक के पास। मनोवैज्ञानिक तो निश्चिंत हो रहा था कि अब झंझट नहीं। आज ये सज्जन न आएंगे। मगर तार आ गया उनका। तार में उसने लिखा थाः फीलिंग वेरी हैप्पी, वॉय? बड़ी खुशी मालूम पड़ती है। क्यों? जवाब चाहिए। तुरंत जवाब दो।
अगर जीवन में सुख मिल रहा है तो क्यों पूछते हो क्यों? दुख को तो कभी नहीं पूछते। क्रोध आता है तो क्यों नहीं पूछते, यह सपना तो नहीं है? कभी पूछा? मैंने अब तक आदमी नहीं पाया जिसने पूछा हो कि यह क्रोध उठता है, यह कहीं सपना तो नहीं है? यह मेरे भीतर घृणा उठती है, यह सपना तो नहीं है? यह किसी आदमी को मार डालने का भाव आता है, यह सपना तो नहीं है? यह सब सच है। इसमें तुम कभी शक ही नहीं करते। तुम्हारी श्रद्धा भी बड़ी अजीब है। उलटी खोपड़ी मालूम होती है तुम्हारी। जब सुख की किरण आती है, तत्काल संदेह खड़ा हो जाता है। सुख की किरण को अंगीकार करो। तुम जिसे अंगीकार करोगे वह बढ़ेगा। तुम जिसे स्वीकार करोगे वह रोज-रोज आएगा। तुम जिसे श्रद्धा से हृदय खोल कर अतिथि की तरह अभिनंदन करोगे, उसके आने की संभावना बढ़ती जाएगी। दुख पर संदेह करो। संसार सपना है, परमात्मा नहीं। मगर लोग संसार को सच मानते हैं और परमात्मा को सपना मानते हैं। परमात्मा परम आनंद है; आनंद ही आनंद है, सच्चिदानंद है। इसलिए तो लोग कहते हैं, परमात्मा कहां? आनंद ही नहीं जाना। आनंद दूर, सुख नहीं जाना। सुख दूर, शांति नहीं जानी। कैसे परमात्मा को मान लें? पत्थरों को मान सकते हैं, परमात्मा को नहीं मान सकते। पत्थर सच मालूम पड़ते हैं।
इसको बदलो। इस बदलाहट की बड़ी जरूरत है। जब सुख की किरण आए तब भरोसा करो। जब प्यार उमगे, भरोसा करो। जब शांति लहराए, भरोसा करो। यही श्रद्धा है। श्रद्धा का अर्थ यह नहीं होता कि हिंदू हो जाओ, मुसलमान हो जाओ। श्रद्धा का यह अर्थ नहीं होता कि मंदिर में जाकर सिर पटक आए कि मस्जिद में जाकर कुरान की आयतें दोहरा लीं। श्रद्धा का अर्थ होता है, जब परमात्मा द्वार खटखटाए, स्वीकार करो। अनूठे ढंग से आता है परमात्मा; तुम्हारी बंधी- बंधाई लकीरों से नहीं आता। परमात्मा के आने के ढंग बड़े रहस्यपूर्ण हैं। अब यह पुष्पा ने पूछा हैः ‘कभी-कभी रात में आप से मुलाकात हो जाती है।’
तो हो जाने दो। कुछ बुरा नहीं हो रहा। अच्छा ही हो रहा है। रात में क्यों हो रही है? दिन में तुम्हारा संदेह से भरा हुआ मन बहुत ज्यादा मौजूद है। दिन में तुम मुझे मौका न दोगे। रात में ही चोरी-छिपे तुममें प्रवेश हो सकता है। दिन में तो तुम बड़े सजग रहते हो पहरा देते। दिन में तो तुम बंदूक लिए खड़े रहते। दूसरों की तो बात छोड़ो, तुम मुझे भी दिन में अपने भीतर प्रवेश नहीं होने दोगे। तुम कहते, कहां चले। भीतर मत जाइए, बाहर ही बैठिए। यह बैठकखाना रहा। सबने बैठकखाने बना लिए हैं, वहां से अंदर नहीं जाने देते। बैठकखाने से भीतर प्रवेश नहीं करने देते। खोपड़ी तुम्हारा बैठकखाना है। बस वह बैठने के लिए है; वह ठहरने के लिए नहीं है ध्यान रखना। वह जिनको दो मिनट में बिठा कर और विदा कर देना है... ।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन अपने घर का दरवाजा खोला। सज्जन एक प्रवेश किए--मित्र थे, बड़े दिनों बाद आए थे--तो जल्दी से वह मुड़ा। मित्र ने पूछा कि कहीं जा रहे थे? वह हाथ में छड़ी लिए, टोपी लगाए। उसने कहा कि नहीं यह मेरी तरकीब है। उसने कहाः क्या मतलब? मुल्ला ने कहाः यह मेरी तरकीब है। जब भी कोई आता है, मैं जल्दी से टोपी लगा कर छड़ी हाथ में लेकर दरवाजा खोलता हूं। उसने कहाः मैं समझा नहीं। इस बात का मतलब क्या है? उसने कहा कि मतलब यह है

कि अगर देखा कि इन सज्जन से नहीं मिलना है तो मैं कहता हूं, मैं बाहर जा रहा हूं। और अगर इनसे मिलना है तो मैं कहता हूं, मैं बाहर से आ रहा हूं। और यह छड़ी और टोपी इसका सबूत होती है। दोनों हालत में काम आती है।
फिर जिनको सदा के लिए नहीं ठहरा लेना है उनको हम बैठकखाने में बिठाते हैं। बैठकखाने का मतलब ही यह होता है कि आए, बड़ी कृपा की। अब जल्दी कृपा करो और जाओ भी। बड़ी खुशी हुई, आए। इससे भी ज्यादा खुशी होगी, जाओ। बैठकखाने का मतलब ही होता है सिर्फ बैठो। बैठ भी न पाओ ठीक से, बस।
सिर तुम्हारा बैठकखाना है। दिन में तो तुम मुझे सिर से ज्यादा गहरे नहीं जाने देते। रात कभी-कभी जब तुम बेहोश हो जाते हो, जब तुम्हारा पहरेदार सो जाता है, जब तुम्हारी सजगता, तुम्हारी सावधानी, सावचेती काम नहीं करती, तब कभी तुम्हारे हृदय के करीब आने का मौका मिलता है।
इसलिए पुष्पा, रात में मुलाकात होती होगी। अगर होती रही रात में तो दिन में भी होनी शुरू हो जाएगी। मगर अभी रात में हो रही है, यह भी सौभाग्य। रात में तुम ज्यादा सरल होते हो।
इसलिए तो मनोवैज्ञानिक के पास अगर तुम जाओगे तो वह तुम्हारे सपनों की पूछता है, तुम्हारे दिन की नहीं पूछता। वह यह नहीं कहता कि दिन में तुमने क्या किया, क्या सोचा। दिन में तो तुम इतने झूठे हो, दिन में तो तुम इतने पाखंडी हो कि तुम्हारी दिन की बातों का कोई हिसाब रखने की जरूरत ही नहीं है। मनोवैज्ञानिक पूछता है, रात सपने क्या देखे?
क्यों? मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचा है कि तुम्हारे सपने तुम्हारे जागने से ज्यादा सच होते हैं। क्यों? क्योंकि सपनों में तुम धोखा नहीं देते। सपनों में तुम धोखा दे नहीं सकते। सपने में कैसे धोखा दोगे? तुम तो सो गए होते, तब सपना होता है। सपना तुम्हारी असलियत को ज्यादा जाहिर करता है। अब यह हो सकता है दिन में तुम बड़े साधु हो और सपने में चोर। सपना ज्यादा असली है। दिन में तुम बड़े त्यागी और सपने में बड़े भोगी। और दिन में किया था उपवास और सपने में बैठ गए होटल में जाकर और जो-जो खाना था वर्षों से खा रहे हैं। और खाते ही चले जा रहे हैं। दिन का उपवास झूठा था, रात का सपना सच है। रात का सपना तुम्हारी असली स्थिति की खबर देता है। तुम्हारी वास्तविकता की खबर देता है कि असलियत तो यह है कि तुम्हें भूख लगी है। और नकलीपन यह है कि तुम उपवास कर रहे हो क्योंकि पर्युषण आ गए हैं और अब सभी कर रहे हैं, पड़ोसी कर रहे हैं। और अब धार्मिक दिन आ गया, और न करो तो भी बेइज्जती होती है। और करने से प्रतिष्ठा भी मिलती है, सम्मान भी मिलता है, आदर भी मिलता है, अहंकार भी पुजता है कि इन सज्जन ने देखो, उपवास किया। तो कर रहे हो, मगर करना नहीं चाहते हो।
सपना ज्यादा सत्य की झनकार देता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक तुमसे यह नहीं पूछता है कि दिन में क्या सोचा? तुम्हारा सोचना इतना झूठा है कि उसकी कोई जरूरत नहीं। वह पूछता है, तुमने रात सपने क्या देखे? सपने की डायरी बनवाता है। धीरे-धीरे सपनों में झांक-झांक कर तुम्हारी बीमारी खोजता है। सपने में उतर-उतर कर, सपनों की व्याख्या कर-कर के सपनों के प्रतीकों को खोल-खोल कर देखता है, और तुम्हारे हृदय की खबर लाता है। तुम्हारे अचेतन में पड़े हुए विचारों की खबर लाता है, जो कि तुम्हारी वास्तविकता है।
ठीक वैसी ही घटना यहां भी घटती है। पहले तो तुम्हारा और मेरा संबंध रात में ही होगा। पहले तो तुम्हारा मेरा संबंध तुम्हारे सपने में ही होगा। क्योंकि तुम्हारे सपने तुम्हारी सचाई से ज्यादा सच हैं। और तुम्हारे सपनों में तुम ज्यादा भोले-भोले हो, तुम ज्यादा निर्दोष हो। तो घबड़ाओ मत। और सपना कह कर इसका तिरस्कार मत करना। संसार सपना है, परमात्मा सत्य है। लेकिन परमात्मा अभी सपना मालूम हो रहा है और संसार सत्य मालूम हो रहा है। तुम शीर्षासन कर रहे हो।
मैंने सुना है, जब पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे तो एक गधा उनसे मिलने पहुंच गया। ऐसे तो गधे ही प्रधानमंत्रियों से मिलने जाते हैं और कोई जाता भी नहीं। एक गधा मिलने पहुंच गया। संतरी झपकी खा रहा था। सुबह-सुबह का वक्त। रात भर का थका-मांदा था, ड्यूटी बदलने की राह देख रहा था। और फिर कोई आदमी होता तो रोकता भी। गधे को क्या रोकना! गधा क्या बिगाड़ लेगा? न

तो गधे हथियार लेकर चलते हैं, न बंदूक तलवार लेकर चलते हैं। न गोली मार सकते हैं। और गधों को क्या लेना-देना! जाने भी दो। वह झपकी मारता रहा, गधा अंदर प्रवेश कर गया। पंडित नेहरू सुबह-सुबह शीर्षासन कर रहे हैं अपने बगीचे में। उस गधे को देख कर उन्होंने कहाः भाई, गधे तो बहुत देखे हैं लेकिन तू उलटा क्यों खड़ा है? उस गधे ने कहाः महाराज, आप शीर्षासन कर रहे हैं। मैं उलटा नहीं खड़ा हूं। मैं तो बिल्कुल सीधा ही खड़ा हूं।
आदमी शीर्षासन कर रहा है। तुमने सारी चीजें उलटी कर ली हैं। तो सपना
सच मालूम होता है और सच सपना मालूम होता है। तुम जरा इन मधुर सपनों को मौका देना। अभी सपने ही मालूम हों, चलो सपने ही सही। मगर ये सपने तुम्हारी सचाइयों से ज्यादा मूल्यवान हैं और अंततः बड़ी सचाई की तरफ तुम्हें ले जाएंगे।
‘और कभी-कभी ऐसा स्वाद अनुभव होता है जैसा कभी नहीं जाना था!’
फिर भी मुझसे पूछते हो? जब स्वाद भी अनुभव होता है तो फिर उतरो, डुबकी लो। फिर छोड़ो यह फिकर कि क्या है! फिर यह विश्लेषण करने की बात ही छोड़ो। फिर यह लेबल मत लगाओ कि सपना है कि सच है कि झूठ है कि रात है कि दिन है। छोड़ो। स्वाद... स्वाद को निर्णय लेने दो। स्वाद को ही निर्णायक होने दो। ‘और कभी-कभी ऐसा स्वाद अनुभव होता है जैसा कभी नहीं जाना था तो यह क्या है?’
बुद्धि को बीच में मत लाओ। क्या है पूछा कि बुद्धि बीच में आई। और बुद्धि अड़ंगे डालेगी। जो बुद्धि की समझ में नहीं आता उसमें बुद्धि बड़े अड़ंगे डालती है। स्वाभाविक! जो उसकी समझ में नहीं आता, बुद्धि कहती है यह हो ही नहीं सकता। बुद्धि कहती है जो मेरे समझ में आता है वही सच है। और बुद्धि की सीमा को सत्य की सीमा मत समझ लेना। यही बहुत लोगों ने किया है। यही उनकी जिंदगी का सब से बड़ा दुर्भाग्य है। बुद्धि की बड़ी छोटी सीमा है। यह तो ऐसा ही है जैसा टार्च लेकर अंधेरी रात में तुम चले और टार्च की छोटी सी रोशनी... जरा सा एक रोशनी का चकता पड़ता है। बस, उतना ही सत्य नहीं है। सत्य बहुत विराट है। इस तुम्हारी बुद्धि की टार्च की रोशनी कितनी है? यह टिमटिमाती रोशनी, यह छोटा सा चकता, इसमें कुछ चीजें दिखाई पड़ती है। सब कुछ थोड़े ही इसमें समाता है! सब कुछ को जानना हो तो बुद्धि से नहीं जाना जाता है। सब कुछ को जानना हो तो बुद्धि के अतीत होकर जाना जाता है। सब कुछ को जानना हो, विराट को पहचानना हो तो क्षुद्र-क्षुद्र चश्मे उतार देने होते हैं।
तो तुम यह पूछो ही मत कि यह क्या है? स्वाद मिल रहा है तो तुमने और स्वादों के संबंध में तो कभी नहीं पूछा। तुम बैठे किसी फल का रस पी रहे हो, स्वादिष्ट है, तब तुम नहीं पूछते यह क्या है? पूछा तुमने कभी? मुझसे तो अभी तक किसी ने नहीं पूछा। और मुझसे जितने प्रश्न लोगों ने पूछे हैं, दुनिया में शायद ही किसी से पूछे हो। तुम आइस्क्रीम खा रहे हो, बड़ा स्वाद आ रहा है। पूछा कभी कि यह क्या है? स्वाद को जरूरत ही नहीं है प्रश्न की। स्वाद पर्याप्त है। स्वाद अपना प्रमाण है, स्वाद काफी है। लेकिन परमात्मा के स्वाद को ही क्यों पूछते हो?
कारण है। वहां तुम्हें डर लगता है। वहां लगता है कि तुम सीमा के बाहर चले। यह कुछ बेबूझ होने लगा। यह अपनी पकड़ के भीतर नहीं हो रहा है। यह अपने नियंत्रण के बाहर होने लगी बात। इसमें अपनी मालकियत चली जाएगी। यह स्वाद तुमसे बड़ा है, यही खतरा है। तुम छोटे हो। आइस्क्रीम कि फल का रस, कि मिठाइयां, कि शराब, वे सब स्वाद तुम्हारे हाथ के भीतर हैं, तुम्हारी मुट्ठी में हैं। यह स्वाद तुमसे बड़ा है। इस स्वाद में तुम डूब जाओगे, खो जाओगे। उन स्वादों में तुम डूबते नहीं, खोते नहीं। क्षण भर को आते, चले जाते हैं। तुम्हारी मालकियत कायम रहती है। तुम्हारा अहंकार डगमगाता नहीं। तुम्हारा अहंकार सिंहासन पर आरूढ़ रहता है। तुम्हारे अहंकार को उनसे कोई चोट नहीं लगतीं। यह स्वाद अहंकार से बड़ा है इसलिए सवाल उठता है, क्या है? सूझ-बूझ कर लो, हिसाब-किताब लगा लो, पक्का पता कर लो, फिर ही इसमें उतरो। और तुमने अगर पक्का पता लगाने की कोशिश की तो तुम उतर न सकोगे। और बिना उतरे किसी को पक्का पता लगा नहीं है।

तो अब तुम सोच लो। अगर पक्का पता लगाना हो तो उतर जाओ, पूछो मत। पूछना हो, ज्यादा पूछताछ करनी हो तो फिर एक बात पक्की है कि कभी पक्का पता न लगेगा। क्योंकि तुम उतर ही न पाओगे। बुद्धि बड़ी अटकाती है। जहां-जहां परमात्मा से मेल का मौका आता है, बुद्धि अटकाती है। जहां-जहां क्षुद्र से मेल का मौका आता है, बुद्धि बड़ी सहायता करती है। बुद्धि क्षुद्र की सेवक है, क्षुद्र की दासी है। इस सत्य को पहचानो।
ध्यान में रस आता है... लोग मेरे पास आ जाते हैं, वे कहते हैं, क्या हो रहा? घबड़ाए आ जाते हैं, आनंदित नहीं आते। रस मिल रहा है लेकिन उनके चेहरे पर चिंता मालूम पड़ती है। कौन सी चिंता इन्हें पकड़ ली? क्या बात है जिससे यह परेशान हो गए हैं? और ध्यान के लिए आए थे, ध्यान में रस लेने के लिए आए थे। इसीलिए आए थे मेरे पास; और जब आना शुरू हो जाता है तो बड़े बेचैन हो जाते हैं। बेचैनी का कारण है। यह इतना अनजाना रस है कि यह तुम्हारी पुरानी जानकारी से मेल नहीं खाता। यह इतना अभिनव है, यह इतना अज्ञात है कि तुम्हारे पास न कोई तराजू है तौलने को, न कोई कसौटी है कसने को, तुम्हारा सारा अब तक का जाना हुआ एकदम असंगत हो जाता है। और उसी से तुम नाप करते हो, उसी से तुम परख करते हो। तुमने जो अब तक जाना है। बहुत स्वाद तुमने जाने हैं लेकिन ध्यान का स्वाद तो जाना नहीं। अब यह स्वाद आया तो तुम्हारे पास न कोई तराजू है, न कोई भाषा है। कहां इसे रखो? किस कोटि में रखो? कौन सा लेबल लगाओ? किस डिब्बे में बिठाओ? तुम्हारी सब कोटियां छोटी पड़ जाती है। तुम्हारे सब डिब्बे ओछे पड़ जाते हैं। और इससे एक बेचैनी खड़ी होती है। आदमी को बड़ी बेचैनी होती है जब वह लेबल नहीं लगा पाता। बड़ी बेचैनी होती है। जैसे ही उसने लेबल लगा दिया, निश्चिंत हो जाता है। लेबल लगाने से लगता है जान लिया। फूल तुमने देखा, बड़ी बेचैनी होने लगती है। किसी ने कह दिया गुलाब है, चंपा है, चमेली है, तुम निश्चिंत हो गए, जैसे कि जान लिया। गुलाब शब्द से क्या खाक जान लिया! कि चंपा किसी ने कह दिया तो जान लिया। ट्रेन में तुम सफर करते हो, पास में पड़ोस में बैठा एक आदमी अजनबी है। तुम जल्दी बेचैनी अनुभव करने लगते हो। उसको अजनबी रहने देना खतरे से खाली नहीं है। चोर हो, लफंगा हो, पता नहीं किस तरह का आदमी हो। तुम पूछते हो भई, कहां जा रहे? तुमने सिलसिला शुरू किया। वह भी राह देखता था कि तुमसे पूछे कि भई कहां जा रहे? कहां से आ रहे? क्या काम करते हो? क्या नाम है? इस तरह तुम बारीकी से अब पता लगाने लगे कि कैसा आदमी है, क्या करता है। अगर वह आदमी कह देता है कि भई दुकानदार हूं, तुम जरा निश्चिंत हुए। वह आदमी कह दे चोर हूं, तुम जरा सरक कर बैठ गए। हालांकि शब्द ही बोल रहा है। और पता नहीं, चोर बता सकता है कि मैं दुकानदार हूं; अक्सर बताएगा। उसने कह दिया कि ब्राह्मण हूं तो तुम और पास आ गए। तुम भी ब्राह्मण हो। और उसने कह दिया शूद्र हूं तो बस संबंध टूट गया। बात खत्म हो गई। एक लेबल लग गया। अब तुमने जान लिया कि बात खतम हो गई।
ऐसा हुआ, एक दफा मैं बंबई ट्रेन में चढ़ा। बहुत मित्र छोड़ने आए थे। तो जिस एअरकंडिशंड डब्बे में मैं था, एक सज्जन और थे। उन्होंने देखा इतने लोग छोड़ने आए तो समझा होगा, कोई महात्मा हैं। जैसे ही मैं डब्बे में अंदर गया, वे एकदम साष्टांग दंडवत लेट कर उन्होंने मेरे पैर छुए। मैंने कहाः भई, आप बड़ी गलती कर रहे हैं। पहले पूछ तो लें कि मैं कौन हूं? उन्होंने कहाः वे थोड़े बेचैन हुए, क्योंकि ऐसा कोई पूछता है? ऐसा कोई कहता है? उन्होंने कहाः आप कौन है? मैंने कहा, मैं मुसलमान हूं। मेरी दाढ़ी से उनको थोड़ा भरोसा भी आया। यह तो बड़ा बुरा हो गया। मुसलमान के पैर छू लिए। ब्राह्मण थे वे। मगर उनको... ।
बैठ गए, थोड़े उदास भी हो गए। फिर मुझसे पूछे कि नहीं-नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। अब अपने को समझाने का कोशिश करने लगे कि नहीं कहीं, आप मजाक कर रहे हैं। आप मुसलमान नहीं हो सकते। और जो लोग आपको छोड़ने आए थे उनमें कोई मुसलमान नहीं मालूम हो रहा। नहीं-नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। तो मैंने उनसे कहा कि मजाक ही कर रहा हूं। जल्दी से मेरे पास आकर बैठ गए। ज्ञान की बातें पूछने लगे। थोड़ी देर बाद मैंने उनसे कहा कि कुछ शराब इत्यादि पीएंगे? उन्होंने कहाः क्या मतलब? महात्मा होकर... । मैंने कहाः अब यहां कौन देखता

है? पी भी लो। वह मेरी... आकर सीट पर बैठ गए थे, जल्दी से उठ कर अपनी सीट पर चले गए और कहने लगे, आप आदमी किस तरह के हैं? वह ब्रह्मज्ञान की चर्चा उन्होंने बंद कर दी, अपना अखबार पढ़ने लगे। अखबार वे कई दफा पढ़ चुके थे। वह अखबार तो सिर्फ मुझे बचाने को कि मैं दिखाई न पडूं। मैंने उनसे कहाः अरे भाई, छोड़ो भी। मैं सिर्फ मजाक कर रहा हूं। कैसी शराब! मैं तो परमात्मा के रस की बात कर रहा था। मैं यह कह रहा था कि कुछ परमात्मा का रस पीयोगे? उन्होंने कहाः अब मैं समझा। आप भी खूब धक्का मार देते हैं और घबड़ा देते हैं। वे फिर मेरे पास आकर बैठ गए।
ऐसा आदमी लेबल से जीता है। जैसे शब्द सब है! सब कुछ शब्दों में भरा है।
बस एक दफे लेबल लगा दिया, बात खत्म हो गई। तो तुम निश्चिंत हो जाते हो कि चलो।
जब मैंने उनसे फिर मजाक की तो वह घबड़ा गए। इगतपुरी पर जब टिकट कलेक्टर आया, उससे बाहर जाकर उन्होंने कहाः मुझे दूसरे कमरे में। यह आदमी कुछ अजीब सा मालूम होता है क्योंकि बदल-बदल जाता है। और मैं रात यहां नहीं सो सकता। मुझे थोड़ी बेचैनी मालूम होती है। वे बदल लिए कमरा।
तब से तो मुझे तरकीब हाथ मिल गई। जब भी मैं अकेला होना चाहता... क्योंकि काफी सफर करता था। महीने में कोई बीस दिन सफर करता था। भीड़-भाड़ से छूट कर बस ट्रेन में ही मुझे सुविधा थी अकेले होने की। तो यह तरकीब उस दिन से मुझे मिल गई। फिर तो किसी को भी डिब्बे से हटाना हो, बड़ा आसान हो गया। वे अपने आप हट जाते। उनको कुछ कहना न पड़ता।
तुम्हारा एक अतीत है। तुम्हारी अतीत की जानकारियां हैं। तुम्हारे पास शब्दों की एकशृंखला है। जब भी कोई नई चीज घटती है, तुम अपने अतीत ज्ञान में उसको कोई जगह बिठाना चाहते हो। बैठ जाए तो तुम निश्चित हो जाते हो, बेचैनी नहीं होती। न बैठे तो मुश्किल होती है।
तो जब ध्यान का स्वाद आएगा तब तुम मुश्किल में पड़ोगे। यह आइस्क्रीम
का स्वाद नहीं है; न यह शराब का स्वाद है, न यह प्रेम का स्वाद है, न यह सौंदर्य का स्वाद है। यह वह स्वाद ही नहीं है जो तुमने जाने हैं। यह कुछ बड़ा अनूठा स्वाद है। और यह तुम्हारी जीभ पर नहीं घटता, यह तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व में घटता है। सिर से लेकर पैर के अंगूठे तक इसका कंपन होता है। यह कुछ बात ही और है। यह तुम्हें पागल कर देने वाली बात है। तुम बड़े घबड़ाओगे।
यह दर्शन, यह अनुभूति, यह भाव-दशा इतनी नई है कि तुम्हारा मन हजार तरह
के प्रश्न उठाने लगता है। मन कहता है संदेह करो, शंका करो, प्रश्न-चिह्न लगाओ। इसमें आगे मत जाना। पागल तो नहीं हुए जा रहे? सपना तो नहीं देख रहे? कोई धोखा तो नहीं खा रहे? किसी ने सम्मोहित तो नहीं कर लिया है? लौट चलो अपनी पुरानी दुनिया में। जानी-मानी थी। दुख था, ठीक था। लेकिन कम से कम जाना पहचाना था। आदमी जाने पहचाने की सीमा के बाहर नहीं जाना चाहता।
तो पुष्पा, अगर स्वाद मिलता, जैसा तूने कभी नहीं जाना था तो अब प्रश्न
मत उठा। अब निष्प्रश्न भाव से इस को भोग ले। छोड़ अतीत को। भविष्य को गह। भूल जाने को, अनजान का हाथ पकड़। अपरिचित मार्ग पर जाना ही पड़ता है खोजी को। जीवन कोई रेल की पटरियां नहीं है कि बंधे-बंधाए दौड़ते रहे एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन और शंटिंग करवाते रहे। जीवन बड़ी अज्ञात की खोज है। जीवन तो ऐसा है जैसे हिमालय से निकली कोई सरिता। पता नहीं कहां जाएगी? कौन सा मार्ग लेगी? किन खाई-खड्डों में गिरेगी? किन मैदानों से गुजरेगी? किन नदियों से मिलेगी? किन झरनों को आत्मसात करेगी? किन घाटों को पार करेंगी? किन लोगों के बीच से गुजरेगी? किस सागर में गिरेगी? कुछ भी पता नहीं। कोई रेल की पटरी थोड़े ही है कि बंधी-बंधाई, टाइम टेबल के साथ घूमती रहेगी। अज्ञात है। जीवन की खोज, जीवन का विकास अज्ञात है। तुम ज्ञात को छोड़ते चलो, अज्ञात में उतरते चलो।

आखिरी प्रश्नः जो है, है। वही सत्य है; फिर झूठ कहां से आया, जो नहीं है? प्रकाश है, अंधेरा नहीं है। अंधेरा कहां से आया?

अंधेरा आ ही नहीं सकता क्योंकि अंधेरा है नहीं। आने के लिए तो होना चाहिए। अंधेरा न आता, न जाता। अंधेरा होता भी नहीं। अंधेरा सिर्फ प्रकाश का अभाव है। अंधेरे का होना न होना प्रकाश के होने न होने पर निर्भर है। जब तुम अंधेरा कहते हो, तो असल में तुम यह थोड़े ही कहते हो कि कोई अंधेरे जैसी चीज है! तुम इतना ही कहते हो कि प्रकाश नहीं है। इसको ठीक से समझो। भाषा से अड़चन आ जाती है। भाषा बड़ी भ्रांतियां खड़ी कर देती है। तुम कहते हो अंधेरा है; इससे ऐसा लगता है कुर्सी है, मकान है, मंदिर है, ऐसे ही अंधेरा है। भाषा तो वही है--कुर्सी है, मकान है, मंदिर है, अंधेरा है। तो तुम पूछते हो कहां है अंधेरा? कैसा है अंधेरा? कितना वजन होता है अंधेरे का? कहां से आता है, कहां जाता है? भाषा ने सब झंझट खड़ी कर दी।
जब तुम कहते हो अंधेरा है तो उसका केवल इतना ही मतलब होता, प्रकाश नहीं है; और कुछ मतलब नहीं होता। और मतलब होता ही नहीं। अंधेरे में कुछ सार होता ही नहीं, कोई सत्ता होती ही नहीं। अंधेरे का कोई अस्तित्व होता ही नहीं। इसीलिए तो तुम अंधेरे को निकाल नहीं सकते। तुम्हारे कमरे में अंधेरा भरा है, ले आओ तलवार और टूट पड़ो अंधेरे पर--वाह गुरुजी का खालसा! और काटने लगो अंधेरे को और देने लगो धक्का कि निकाल बाहर करेंगे। कुछ कर न पाओगे तुम। अंधेरा अपनी जगह रहेगा तुम इसे धक्के मार कर निकाल न पाओगे, न तलवार से काट सकोगे। यह है ही नहीं। इसको तलवार से काटोगे कैसे? इसको धक्के मारोगे कैसे? तुम चाहे दारासिंह को बुला लो और चाहे मोहम्मद अली को। इसमें धक्के से काम नहीं चलेगा। जो धक्का मारेगा वह हारेगा। जो धक्का मारेगा वह टूटेगा। जो धक्का मारेगा वह शिथिल होगा, थकेगा, गिरेगा। और जब दारासिंह मार-मार धक्के गिर जाएगा तो वह भी सोचेगा कि बड़ा मजबूत अंधेरा है। मार डाला मुझे। निकलता नहीं। मुझसे ज्यादा ताकतवर है।
नहीं, अंधेरे में न ताकत है, न अंधेरे में कोई बल है। अंधेरे से ज्यादा नपुंसक कोई स्थिति नहीं है। अंधेरा है ही नहीं। तो करो क्या? सिर्फ दीया ले आओ, प्रकाश ले आओ, और अंधेरा चला जाता है। अंधेरे को निकाला नहीं जा सकता। या तुम समझो कि दुश्मन के घर पर अंधेरा लाकर डालना हो तो डाल ही नहीं सकते। कि टोकरी में भर लाए अंधेरा और डाल दिया पड़ोसी के घर में कि ले बेटा, अब भोग! तुम टोकरी में भर कर अंधेरा ला भी नहीं सकते, डाल भी नहीं सकते किसी के घर में।
अगर तुम्हें अंधेरे के साथ कुछ भी करना हो तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ेगा। इस बात को ख्याल में रखो। अंधेरे के साथ सीधा कुछ किया ही नहीं जा सकता, अगर अंधेरा लाना है तो प्रकाश बुझाओ। अगर अंधेरा हटाना है, प्रकाश जलाओ। प्रकाश है, अंधेरा नहीं है। अंधेरा केवल अभाव है।
ठीक वैसी ही बात सत्य और असत्य की है। सत्य है, असत्य अभाव है। असत्य होता नहीं। इसीलिए तो उसको असत्य कहते हैं क्योंकि वह होता नहीं--असत।
इसलिए तो असत्य कहते हैं कि वह है नहीं। वैसा है ही नहीं, सिर्फ सत्य का अभाव है। इसलिए असत्य से जो लड़ते हैं वे हारेंगे; वे बुरी तरह हारेंगे।
असत्य से लड़ो मत, सत्य का दीया जलाओ। बुराई से लड़ो मत, भलाई का दीया जलाओ।
पाप से लड़ो मत, पुण्य का दीया जलाओ। संसार से लड़ो मत, परमात्मा को पुकारो।
यह मेरा मौलिक आधार है। संसार से लड़ो ही मत क्योंकि संसार है ही नहीं केवल परमात्मा का अभाव है। दुकान से मत लड़ो, मंदिर को खोजो। पत्नी से मत लड़ो, बच्चों से मत लड़ो, ध्यान को खोजो। संसार से मत भागो, संन्यास को खोजो। संन्यास आ जाए, संसार नहीं है। और तुम दुकान में ही रहो, घर में ही रहो, कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए तो दरिया ने कहा कि गृही हो कि संन्यासी हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। दीया भीतर का जल जाए।
विधायक बनो। नकारात्मक से मत जूझते रहो। वह जूझना गलत है; उसमें सिर्फ हार होती है, पराजय होती है। विजेता तो बनता है आदमी विधायक के साथ। ‘जो है, है। वही सत्य है; फिर झूठ कहां से आया, जो नहीं है?’
झूठ आया भी नहीं, गया भी नहीं। झूठ है भी नहीं। जब सत्य छिपा होता है
तो झूठ होता है। जब सत्य प्रकट हो जाता है, झूठ नहीं हो जाता।

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
नौवां प्रवचन

पारस परसा जानिए

पारस परसा जानिए, जो पलटे अंग-अंग।
अंग-अंग पलटे नहीं, तो है झूठा संग।।
पारस जाकर लाइए जाके अंग में आप।
क्या लावे पाषान को घस-घस होए संताप।।
दरिया बिल्ली गुरु किया उज्वल बगु को देख।
जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरु भेख।।
साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरु सांच।
मोती-मोती फेर बहु इक कंचन इक कांच।।
पांच-सात साखी कही पद गाया दस दोए।।
दरिया कारज ना सरै पेट-भराई होए।।
बड़ के बड़ लागे नहीं बड़ के लागे बीज।
दरिया नान्हा होएकर रामनाम गह चीज।
माया-माया सब कहे चीन्हे नाहीं कोए।
जन दरिया निज नाम बिन सब ही माया होए।

है को संत राम अनुरागी, जाकी सुरत साहब से लागी।
अरस-परस पिव के संग राती होए रही पतिबरता।
दुनिया भाव कछू नहिं समझे ज्यों समुंद समानी सरिता।।
मीना जायकर समुंद समानी जहं देखे तहं पानी।
काल-कीर का जाल न पहुंचे निर्भय ठौर लुभानी।
बावन चंदन भंवरा पहुंचा जहं बैठे तहं गंधा।
उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा निसदिन करत अनंदा।।
जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोई।
पारस-परस भया लोह कंचन बहुर न लोहा होई।।

पारस परसा जानिए, जो पलटे अंग-अंग।
अंग-अंग पलटे नहीं, तो है झूठा संग।।
सदगुरु की पहचान क्या? फिर सदगुरु के साथ सत्संग हुआ इसकी पहचान क्या? तुम सदशिष्य बने, इसकी पहचान क्या? किस कसौटी पर परखते चलोगे? किस तराजू पर तौलते चलोगे कि दिशा ठीक है, कि मार्ग ठीक है?
चलने से ही तो तय नहीं होता कि पहुंच जाओगे क्योंकि चलना तो गलत दिशा में भी हो सकता है। कुछ करते रहने से ही तो तय नहीं होता कि सफल होओगे, कि सुफल होओगे। क्योंकि करना असंगत हो सकता है।
राह अंधेरी है, घनी अमावस है, तुम रोशनी की तरफ यात्रा कर रहे हो इसकी कुछ न कुछ कसौटी तो होनी चाहिए। कहीं ऐसा तो नहीं है, और अंधेरी रात में प्रवेश करते जाओ! सूरज न भी दिखाई पड़े लेकिन पूरब की तरफ चल रहे हो इतना तो पक्का हो। सूरज आज नहीं कल दिखाई पड़ेगा लेकिन यात्रा प्राची की तरफ हो रही है, आंखें पूरब की तरफ लगी हैं इतना तो साफ होना ही चाहिए। पैर पूरब की तरफ चल रहे हैं--अंधेरे में सही। तुम पश्चिम की तरफ चलते रहो तेजी से भी तो भी सूरज के पास न पहुंचोगे। सूरज से दूर निकलते जाते हो। और पूरब की तरफ तुम धीमे-धीमे भी चलो, या न भी चलो, अगर पूरब की तरफ मुंह उठाकर खड़े भी रहो तो सूरज खुद आ जाएगा।
तो दिशा ठीक है या नहीं, यह अत्यंत अनिवार्य है। तुम एक बगीचे की तरफ चलते हो, अभी बगीचे के हरे वृक्ष, अभी बगीचे की हरी झाड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। तुम अभी दूर हो लेकिन फिर भी कुछ प्रतीक, कुछ लक्षण मिलने शुरू हो जाते हैं। हवा ठंडी होने लगती है। वह जो ताप था बाजार का, कम होने लगता है। वह जो भीड़-भाड़ का शोरगुल था वह कम होने लगता। और हवाओं में धीरे-धीरे गंध के रेशे फैलने लगते हैं। थोड़ी-थोड़ी गंध कभी-कभी आ जाती है। फूलों की गंध,

बगीचे की ठंडक, हवा में तुम्हें खबर देने लगती है। कि तुम ठीक दिशा में हो। बगीचा अभी दिखाई नहीं पड़ता लेकिन तुम पुलक से भर सकते हो कि मार्ग ठीक है तो पहुंच जाओगे; पहुंच ही रहे हो। एक-एक कदम तुम बढ़ रहे हो, एक-एक कदम मंजिल तुम्हारी तरफ बढ़ी आ रही है।
जैसे-जैसे करीब पहुंचोगे वैसे-वैसे हवा और भी शीतल हो जाएगी, और भी सुवासित हो जाएगी। जैसे-जैसे करीब पहुंचोगे, मनुष्यों की आवाज और शोरगुल और बाजार का गोरखधंधा शांत होने लगेगा, पक्षियों की कलकलाहट, झरनों का कलरव उसकी जगह लेने लगेगा। ये लक्षण होंगे। अभी शायद बगीचा दिखाई भी न पड़ा हो लेकिन तुम आनंदित हो सकते हो कि देर-अबेर पहुंच जाओगे।
आज के सूत्र कसौटी के सूत्र हैं। आज के सूत्र तुम्हारे बड़े काम के हैं। क्योंकि जीवन में ऐसा रोज देखा जाता है, बहुत लोग श्रम करते हैं, फल तो बहुत कम लोगों को मिलता है। ऐसा नहीं कि प्रार्थना लोग नहीं करते, लेकिन प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचे तब न! अक्सर तो तुम प्रार्थना करते वक्त ही कुछ ऐसी बाधाए खड़ी कर देते हो कि प्रार्थना पहुंच ही नहीं सकती। तुम्हारी प्रार्थना में ही बुनियादी चूक है। प्रार्थना में मांग खड़ी है। प्रार्थना करते ही हो मांगने के लिए। भिखमंगे की तरह प्रार्थना करते हो। तो यह प्रार्थना परमात्मा तक नहीं पहुंचेगी। परमात्मा तक तो उनकी आवाज पहुंचती है। जिनके भीतर का सम्राट पुकारता है, भिखमंगा नहीं। भिखमंगों का कहीं समादर नहीं है; परमात्मा की दृष्टि में तो बिल्कुल नहीं। कैसे हो? क्योंकि उसने तुम्हें सम्राट बना कर भेजा है, उसने तुम्हें सम्राट होने को भेजा है। उससे कम अगर तुम हो तो तुमने परमात्मा को धोखा दिया। उससे कम अगर तुम हो तो तुमने अपना दायित्व न निभाया। उससे कम अगर तुम हो तो तुम भटके हो।
भिखमंगे की तरह प्रार्थना करते हो, प्रार्थना चूक जाती है। प्रार्थना में मांग आई कि प्रार्थना मर गई, मांग ही रह गई। मांग कोई प्रार्थना थोड़े ही है! फिर जैसे भिखमंगा स्तुति करता है, खुशामत करता है, ऐसे ही तुम अपनी मांग को पूरा कराने के लिए स्तुति करते हो।
और ध्यान रखना, जिसकी भी तुम स्तुति करते हो किसी हेतु से, वह स्तुति प्रार्थना नहीं बन सकती। परमात्मा खुशामद-पसंद नहीं है। अगर परमात्मा भी खुशामद-पसंद हो तो फिर तो इस जगत में प्रेम संभव ही न रह जाएगा। फिर तो प्रेम असंभव हो जाएगा। फिर तो प्रार्थना किस द्वार पर करोगे? फिर तो सभी जगह खुशामद-पसंद लोग बैठे हैं।
परमात्मा के साथ तो खुशामद मत करो। खुशामद का मतलब होता है, परमात्मा
को खूब बढ़ा-चढ़ा कर बताओ, फुलाओ, मक्खन लगाओ। तुम जैसे यह सोच रहे हो कि परमात्मा आदमियों जैसा आदमी है। कि तुम उसके अहंकार को फुसला लोगे; कि तुम उसके अहंकार को फुसला कर कर उसको अपनी मांगों पूरा करने के लिए राजी कर लोगे। तुम्हारी चेष्टा से ही गलत हो गई। प्रार्थना शुरू ही न हुई और मर गई; गर्भपात हो गया।
प्रार्थना बहुत लोग करते हैं, किसी एकाध की हो पाती है। और तपश्चर्या
भी लोग नहीं करते ऐसा भी नहीं है। लोग तपश्चर्या भी करते हैं। लेकिन तपश्चर्या से सुगंध नहीं उठती, दुर्गंध उठती है। तपश्चर्या से अहंकार उठता है--मैं तपस्वी, मैं त्यागी। यह मैं तुम्हारी गर्दन पर फांसी है। इस मैं के कारण तुम हो नहीं पाते। यह ‘मैं’ तुम्हें अटकाए हुए है। यह मैं जाना चाहिए।
तो बड़ी से बड़ी तपश्चर्या वही है जिसमें मैं गलता हो। वह कसौटी होनी चाहिए कि मैं गल रहा है तो ठीक रास्ते पर हो, मैं बढ़ रहा है तो गलत रास्ते पर हो। मैं बढ़ता जाए तो तुम संसार की तरफ उन्मुख हो। मैं घटता जाए तो तुम परमात्मा की तरफ उन्मुख हो; तो तुम राम-सन्मुख हुए। राम के सन्मुख खड़े होओगे और मैं बचेगा? जरा सी याद भी आ जाए राम की तो मैं खो जाता है। अपने घर की याद आ गई। असली घर की याद आ गई। तो जहां तुम ठहरे हो वह घर उसी क्षण धर्मशाला हो जाता है--उसी क्षण! जब तुम्हें असली घर की याद आ जाती है।

कफस में रोता हूं मैं अपने हमसफीरों को

यह कौन कहता है मुजतिर हूं मैं चमन के लिए

इसलिए थोड़े ही रोता है भक्त कि सुख चाहता है। इसलिए रोता है कि, स्वरूप चाहता है। इसलिए रोता है कि मैं जो हूं वही हो जाऊं। इसलिए रोता है कि मैं अपने मूल स्रोत से मिल जाऊं। इसलिए रोता है कि मैं जहां से आया हूं वहां वापस पहुंच जाऊं।

कफस में रोता हूं मैं अपने हमसफीरों को

वे जो मेरे साथी, मेरे संगी, वह जो मेरा स्वभाव, वह जो मेरा स्वरूप छूट गया है, वह जो मेरा घर छूट गया है वह मुझे वापस मिल जाए।

कफस में रोता हूं मैं अपने हमसफीरों को

इस संसार के पिंजड़े में बंद मैं अपने उन मित्रों के लिए रोता हूं, जो पीछे छूट गए हैं।

यह कौन कहता है मुजतिर हूं मैं चमन के लिए

स्वर्ग के लिए थोड़े ही रोते हैं, सुख के लिए थोड़े ही रोते हैं। भक्त स्वर्ग थोड़े ही मांगता है। भक्त तो इतना ही मांगता है, मुझे वापस दे दो मेरा लोक। यहां मैं अजनबी हूं। यहां मैं परदेसी हूं। यह मेरा घर नहीं है। यहां कितना ही बनाऊं, गिरेगा। यहां सब बड़े से बड़े घर, मजबूत से मजबूत, पत्थर से बनाए गए घर भी ताश के घर सिद्ध होते हैं। यहां क्षणभंगुर है। मुझे मेरा शाश्वत दे दो।

मेरे वजूद से महफिल उदास रहती थी
मेरा वजूद मुसीबत था अंजुमन के लिए
चमन में था तो कफस के लिए तड़फता था
कफस में हूं तो हूं बेताब मैं चमन के लिए

और आदमी का मन ऐसा है, तुम भगवान में थे जरूर तुम भगवान से दूर होने के लिए तड़फे होओगे; नहीं तो दूर कैसे हो जाते?

चमन में था तो कफस के लिए तड़फता था
कफस मैं हूं तो मैं बेताब मैं चमन के लिए

ऐसा आदमी का मन है। जहां हो वहीं का नहीं हो पाता। चमन में था तब चमन
का न हो पाया तो कफस का तो हो कैसे सकता है? स्वतंत्र था तब स्वतंत्रता का न हो पाया और हजार ढंग से जंजीरें बना लीं। अपनी जंजीरें खुद ढाल लीं। जब स्वतंत्रता का भी न हो सका तो इस कारागृह का तो कैसे हो सकता है? जब तुम परमात्मा के भी न हो सके और वहां से भी हट आए तो संसार के तो हो ही कैसे सकोगे?
लेकिन परमात्मा को खोना पड़ता है; पाने के पहले खोना पड़ता है। कोई और उपाय नहीं है। जब तक तुम खोओ न, तब तक उसका मूल्य ही पता नहीं चलता। मछली जब तक सागर में होती है तब तक सागर का पता ही नहीं चलता। एक बार मछली को सागर के तट पर जाना ही होता, तड़फना ही होता है पानी के बाहर; तभी उसे समझ आती है, तभी बोध आता है, तभी सागर की स्मृति आती है और सागर के प्रति कृतज्ञता का भाव आता है। फिर जब लौटकर वह सागर में गिरती है तो जानती है कि यह सागर है। यह मेरा घर।
यह तुम्हें बेबूझ लगेगा, लेकिन अपना घर पाने के लिए खोना पड़ता है।
स्वयं को पाने के लिए स्वयं को खोना पड़ता है। संसार का कुछ और अर्थ नहीं

है। संसार का इतना ही अर्थ है, मछली सागर में रहते-रहते सागर को न पहचान पाई, तट पर तड़फ रही है।

चमन में बायस-ए-राहत था, आशियां न रहा
चमन न मेरे लिए, अब न मैं चमन के लिए
यह मुख्तसर सी है यह अश्क दास्ताने-फिराक
रही है वख्व मेरी जां गमो-मिहन के लिए
यह छोटी सी कहानी है हमारी जिंदगी की।
यह मुख्तसर सी है यह अश्क दास्ताने-फिराक
रही है वख्व मेरी जां गमो-मिहन के लिए

हम न मालूम किन-किन अनजान रास्तों से दुख दर्द को खोजते रहे।

रही है वख्व मेरी जां गमो-मिहन के लिए

हमारे प्राण दुख के लिए तड़फते रहे हैं। क्यों? क्यों ऐसा होगा कि हम दुख के लिए तड़फते रहे हैं? हमने क्यों दुख निर्माण किया है? कारण है। जब दुख निर्मित होता है तो तुम निर्मित होते हो। सुख में खो जाते हो, दुख में हो जाते हो। दुख में अहंकार मजबूत खड़ा हो जाता है। इसीलिए तो लोग दुख को पकड़ते हैं।
मेरे पास हजारों लोग आते हैं, मगर शायद ही कभी कोई आदमी मुझे दिखाई पड़ता है जो सच में सुखी होना चाहता है। इससे तुम हैरान होओगे क्योंकि वे सभी यही कहते आते हैं कि हम सुख की तलाश में हैं। वे सभी यही कहते आते हैं कि हमें दुख से कैसे छुटकारा मिले? हम दुख के बाहर कैसे हों? लेकिन मैं उनकी आंखों में झांकता हूं, उनके हृदय में टटोलता हूं और दुख से वे छूटना नहीं चाहते। कहते जरूर हैं। शायद यह कहना भी एक नये दुख को पैदा करने की तरकीब है। इस दुख पैदा करने की तरकीब कि मुझे सुख नहीं है। मुझे सुख चाहिए। यह सुख चाहने की बात सुख चाहने की नहीं मालूम होती, यह एक और नया दुख पैदा करने की होती है कि मुझे सुख नहीं है।
ख्याल करो इस बात पर। इस पर ठीक से नजर दो। तुम सच में सुख चाहते हो? अगर सुख चाहते हो तो तुम्हें कौन रोक सकता है? एक क्षण को भी तुम कैसे रोके जा सकते हो? सुख तुम्हारा स्वभाव है। इधर चाहा, उधर हुआ।
मैं तुमसे एक अजीब सी बात कहना चाहता हूं। सुख पाना तो बहुत सरल है,
दुख पाना बहुत कठिन है। क्योंकि दुख स्वभाव के विपरीत है। दुख स्वाभाविक नहीं है इसलिए कठिन है। कठिन को तो तुमने कर लिया है और सरल की तुम पूछते हो, कैसे हो? तुमने अति कठिन को करके दिखला दिया है। आत्मा को दुख हो ही नही सकता। वह भी तुमने बना कर दिखला दिया है। उसका भी तुमने आत्मा को धोखा दे दिया है। और सुख का झरना तो बह ही रहा है भीतर। सुख को पाना नहीं होता, सिर्फ दुख को पकड़ना छोड़ते ही सुख हो जाता है। यह जो कफस है, यह पिंजड़ा है संसार का, इसने तुम्हें बंद किया है इस ख्याल में मत पड़ना। हालत उलटी ही है, तुम इसमें खुद ही अपने हाथ से बंद हो गए हो।
मैंने सुना है, एक पहाड़ी घाटी में ऐसी घटना घटी, एक छोटी सी सराय थी।
उस सराय के मालिक के पास एक तोता था। सराय कामालिक ने उसे एक बात सिखा रखी थी। सराय के मालिक स्वतंत्रता का बड़ा प्रेमी था। प्रेम झूठ-मूठ का ही रहा होगा नहीं तो तोते को कैसे बंद करता? लोग मोक्ष की आकांक्षा रखते हैं और तोते को बंद कर देते हैं। और तोते को मोक्ष की बातें सिखा देते हैं, राम-राम जपना सिखा देते हैं। कम से कम तोते को तो छोड़ो। तुम जब छूटोगे तब छूटोगे। इस गरीब को क्यों बांधा? तुम बंधे हो, इसको भी बांध लिया।
मालिक जो था, स्वतंत्रता का बड़ा प्रेमी था। कहते हैं बड़ा क्रांतिकारी था। तो उसने अपने तोते को सिखा रखा था, वह एक ही शब्द जानता था तोताः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! दिन में हजारों बार चिल्लाता था। उसकी आवाज घाटी में गूंजती थी--स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!

एक रात एक आदमी मेहमान हुआ। सूरज के ढलते समय जब घाटी बड़ी सुंदर थी, वह तोता चिल्लायाः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! उस आदमी को दया आ गई। उसने कहाः बेचारा तोता! कितनी स्वतंत्रता की मांग कर रहा है। दिन भर चिल्लाता रहा है, कोई इस पर ध्यान भी नहीं देता। उठा वह। कोई था भी नहीं, एकांत में तोता लटका था। मालिक अपने काम में सराय के भीतर लगा था। उसने धीरे से जाकर तोते का दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खोल कर अपने कमरे में चल गया कि तोता उड़ जाएगा, लेकिन घड़ी दो घड़ी बाद उसने फिर आवाज सुनी, स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!
तो वह बाहर आया, उसने कहा यह जरा अजीब स्वतंत्रता है। दरवाजा खुला है,
यह तोता उड़ क्यों नहीं जाता? वह तोता अभी भी पकड़े हुए है सींखचों को भीतर और चिल्ला रहा है, स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! उसे बड़ी दया आई। अब तो रात हो गई थी, लोग सोने के करीब हो गए थे, मालिक भी जा चुका था, सो गया होगा। वह बाहर आया यात्री, उसने तोते को निकालने की कोशिश की। तोता उसके हाथ पर चोंचें मारने लगा। उसे लहूलुहान कर दिया। और चिल्लाता है, स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!
सभी सदगुरुओं के साथ तुमने ऐसा ही किया है। तुम्हें तुम्हारे पिंजड़े
से बाहर निकालना आसान बात नहीं है। तुम चिल्लाते हो, मोक्ष! आनंद! स्वतंत्रता! मगर कोई निकाले तो तुम लहूलुहान कर दोगे। नहीं तो तुमने जीसस को सूली क्यों दी? और तुमने सुकरात को जहर क्यों पिलाया? ये तुम्हारी आवाज के धोखे में आ गए। तुम चिल्लाते थे स्वतंत्रता, इन्होंने सोचा कि बेचारा... ।
फिर भी वह आदमी जिद्दी था; जैसे कि सदगुरु जिद्दी होते ही हैं। तुम लाख लहूलुहान करो, तुम फांसी लगाओ, वे फिर लौट-लौट कर आ जाते हैं। फिर-फिर अवतार हो जाता। तुम उन्हें मार-मार कर भी मार नहीं पाते। उस आदमी ने कोई फिकर न की तोते की, उसने तो उसे निकाल कर फेंक ही दिया बाहर। हाथ तो लहूलुहान हो गया था लेकिन फिर भी वह प्रसन्न था कि चलो, एक जीवन तो मुक्त हुआ। एक को तो स्वतंत्रता मिली।
वह आकर निश्चिंतता से सो गया। जब सुबह उसकी आंख खुली, वह बड़ा हैरान हुआ। तोता पिंजड़ें में बैठा था और चिल्ला रहा थाः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! और अभी पिंजड़ा खुला ही पड़ा था। क्योंकि रात से किसी ने उसे बंद नहीं किया था।
ऐसी दशा है आदमी की। तुम कहते हो सुख, तुम कहते हो स्वतंत्रता, तुम कहते हो स्वरूपानंद, बाकी तुम... तुम्हें देख कर बात कुछ और ही लगती है। तुम दुख से जकड़ते हो, तुम दुख को पकड़ते हो। तुम दुख को सब तरफ से सुरक्षित करते हो।

यह मुख्तसर सी है यह अश्क दास्ताने फिराक
रही है वख्व मेरी जां गमो मिहन के लिए
जैसे तुम्हारे प्राण दुख के लिए ही सुरक्षित हैं।
बिछाए जाल जो बैठे थे बन गए गुलचीं
यह उनकी फिक्र बड़ी फिक्र है चमन के लिए

और इसीलिए यह घटना घटती है कि जो जालसाज हैं, जो धोखेबाज हैं, जो धूर्त हैं वे समझ लेते हैं कि तुम्हारी असली आकांक्षा तो कारागृह में रहने की है। इसलिए वे तुमसे कहते हैं कि चलो, ये उपाय रहे स्वतंत्र होने के। और तुम्हें ऐसे उपाय देते हैं कि तुम्हारा कारागृह और बड़ा होता चला जाता है। और तुम उनसे बड़े राजी होते हो। तुम्हारी जंजीरों को वे और मजबूत कर देते हैं। तुम्हारे भय को और प्रगाढ़ कर देते हैं। तुम्हारे लोभ को और जलता हुआ बना देते हैं।
और तुम उनसे बड़े प्रसन्न होते हो। तुमने पंडितों-पुरोहितों की पूजा
की है। और सदगुरुओं को तुमने सदा गाली दी है। पंडित-पुरोहितों का तुम्हारे मन में इतना सम्मान क्यों है? और तुम भी भलीभांति जानते हो कि उनके पास कुछ भी नहीं है। न जानोगे कैसे? आंखें तुम्हारे पास भी हैं।

कितना ही झुठलाओ। तुम्हारे घर जो आदमी सत्यनारायण की कथा करने आ जाता है उसका सत्यनारायण से मिलना हुआ है? और सत्यनारायण से मिलना होता तो तुम्हारे घर आकर सत्यनारायण की कथा करता? उस सत्यनारायण की कथा में न तो सत्य है, न नारायण है, कुछ भी नहीं है।
तुम जिससे यज्ञ करवा लेते हो, हवन करवा लेते हो इससे जीवन में यज्ञ हुआ है? इसके जीवन में कहीं भी तो अग्नि का रंग दिखाई नहीं पड़ता। कहीं वह क्रांति दिखाई नहीं पड़ती। तुम मंदिर-मस्जिदों में जिनके द्वारा प्रार्थना में ले जाए जाते हो, तुमने कभी पूछा, इनकी प्रार्थना फली है? इनकी प्रार्थना हुई है? इन्होंने कभी प्रार्थना की है? तुम्हारा मौलवी कि तुम्हारा पंडित कि तुम्हारा पुरोहित नौकर-चाकर हैं तुम्हारे; परमात्मा से उन्हें कुछ भी लेना-देना नहीं है।
मगर उनसे तुम राजी हो। राजी तुम उनसे इसीलिए हो कि वे तुम्हारे करागृह को बढ़ाते हैं, घटाते नहीं। वे तुम्हें छेड़ते नहीं। तुम स्वतंत्रता की बातें करते रहते हो, वे भी तुम्हें स्वतंत्रता की बातें सुनाते रहते हैं। तुम भी अपना कारागृह बनाते रहते हो, वे भी तुम्हारे कारागृह में और चार ईंटें जोड़ते रहते हैं।
दरिया कहते हैंः पारस परसा जानिए।
पारस के पास आए, इसकी परख क्या? जो पलटे अंग-अंग। समग्ररूपेण क्रांति घटित हो। स्वतंत्रता तुम्हारे जीवन की चर्या बन जाए। जो पलटे अंग-अंग। बुद्धि ही न पलटे, कि खोपड़ी में विचार भर जाएं। अंग-अंग! तुम्हारा समग्र रूप बदल जाए। तुम्हारा आमूल व्यक्तित्व बदल जाए--पैर से लेकर सिर तक। शरीर से लेकर आत्मा तक एक ही धुन बजने लगे। एक ही इकतारा। एक ही गीत उमगे और एक ही नृत्य फैल जाए। तुम प्रभु के रंग में रंग जाओ--आमूल, अखंड।
पारस परसा जानिए, ...
क्या परख कि पारस के पास आए? लोहा सोना हो जाए। अगर लोहा सोना न होता
हो तो दो ही कारण हो सकते हैं। या तो जिसको तुमने पारस समझा वह पारस नहीं है या तुम पारस से दूर-दूर हो; पास नहीं आते। पारस भी हो तो तुम पास नहीं आते। दो ही कारण हो सकते हैं।
या तो तुमने जो खोजा लिया, सदगुरु नहीं है; तुम्हारे जैसा ही है। तुमसे कुछ भी भिन्न नहीं है। तुम जैसे गर्त में पड़े हो वैसे ही गर्त में पड़ा है। तुम जैसे मोह-माया में पड़े हो वैसा ही मोह-माया में पड़ा है। तुम्हारे जीवन में जितने जंजाल हैं वैसे ही उसके जीवन में जंजाल हैं।
तो या तो तुम जिसके पास आ गए हो वह सदगुरु नहीं है; तो तुम कितने ही पास
आ जाओ, कुछ फर्क न पड़ेगा। या फिर हो सकता है सदगुरु हो लेकिन तुम पास आने में डर रहे हो। पास आने में डर लगता है। पास आने में बड़ा भय लगता है। पंडित-पुरोहित के पास आने में कोई भय का कारण नहीं है। तुम जैसे ही लोग हैं। तुम उन्हें खरीद सकते हो। लेकिन सदगुरु के पास आने में खतरा है। सदगुरु तो मृत्यु है। तुम मरोगे। सदगुरु के पास आए तो तुम मरोगे।
गोरख ने कहा हैः
मरौ हे जोगी मरौ, मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मर गोरख दिठा।।
ऐसे मरो जैसे गोरख मर गया। ऐसे मर जाओ जैसे मर कर गोरख को दिखाई पड़ा।
मरौ, मरन है मीठा। मरने से बड़ी और कोई मीठी बात नहीं। यह तो गुरु का पूरा संदेश है कि आओ, मृत्यु में समा जाओ, कि आओ, डूबो, मिटो, गलो, खो जाओ।
मरौ हे जोगी मरौ, मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मर गोरख दिठा।।
और ऐसे मरने की कला गुरु सिखाता है जैसे मर कर उसने देखा है। जैसे वह मिटा और पाया, ऐसे वह तुम्हें कहता है, तुम भी मिट जाओ और पा लो।
जीसस ने कहा हैः जो बचाएगा वह खो देगा और जो खोने को राजी है उसने बचा लिया।
जीवन को पकड़े मत रहो। पकड़ने के कारण ही मौत पास आती है। मौत के साथ रास रचा लो। मौत को आलिंगन कर लो, फिर मौत नहीं आती, फिर अमृत ही आता है। फिर अमृत के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बचता है।

पारस परसा जानिए, जो पलटे अंग-अंग।
मगर अंग-अंग तो तभी पलटेगा जब तुम पूरे मर जाओ। तुम कुछ भी बचे तो उतना हिस्सा पुराना रहा। तुम जरा भी बचे तो उतना हिस्सा तो सड़ा-गला रहा, अतीत का रहा। तो पूरे न बदले।
तुम धीरे-धीरे... बड़ी मुश्किल से राजी होते हो। कहते हो, धीरे-धीरे, एक-
एक कदम, थोड़ा-थोड़ा बदलेंगे। मगर थोड़ा-थोड़ा बदलना ऐसा ही है, जैसे कोई सागर में चम्मच-चम्मच रंग डालता रहे। ऐसे कुछ होगा नहीं। हिम्मत करो। यह साहसियों का काम है। बात जंच गई हो तो फिर ठहरना क्या; फिर रुकना क्या? बात समझ में पड़ रही हो तो अवसर चूको मत।
पारस परसा जानिए जो पलटे अंग-अंग।
अंग-अंग पलटे नहीं, तो है झूठा संग।।
तो संग दो तरह से झूठा हो सकता है। एक तो जिसका संग किया वह झूठा हो तो झूठा हो जाएगा। और दूसरा जिसका संग किया वह तो सच्चा हो लेकिन संग ही नहीं किया। दूर खड़े रहे, दीवाल बना कर खड़े रहे। अपनी सुरक्षा कायम रखी। बीच में फासला रखा।
मेरे पास जो आते हैं और बिना संन्यस्त हुए चले जाते हैं उन्होंने फासला बचा लिया। आए भी और नहीं भी आए। आए भी और चूक भी गए। आए भी और दूर के दूर रहे। तो उन्हें मौका नहीं मिलेगा।
लोग मुझे लिखते हैं पत्र, मुझसे पूछते भी हैं आकर कि आप जो कहते हैं,
हम अगर वही करें और संन्यास न ले तो लाभ नहीं होगा? लाभ होगा मगर परम लाभ नहीं होगा। लाभ तो होगा। कुछ तो करोगे तो कुछ लाभ होगा। मगर अंग-अंग न पलटेगा। ऐसे थोड़े बहुत यहां-वहां पलस्तर ठीक हो जाएगा। दीवाल कहीं से गिरती थी तो थोड़ा उसमें टेका लगा देना। मगर नया भवन न बनेगा। मंदिर न उठेगा।
इधर नये मंदिर को बनाने की बात चल रही है। हां, तुम्हारे पुराने ही भवन में तुम थोड़ा सा सहारा लगा लोगे। मेरी बातों से कुछ चुन लोगे जो तुम्हारे मकान में सजावट के काम आ जाएंगे। दीवाल दरवाजों पर लिख दोगे वचन। और क्या करोगे? रंग-रोगन कर लोगे घर में। इससे नहीं होगा।
संन्यास का और कुछ अर्थ नहीं है, संन्यास का इतना ही अर्थ है कि तुमने अपनी तरफ से कहा कि मैं तो राजी हूं। जितने पास बुलाओ उतना राजी हूं। मुझे मारना हो तो मार डालो। यह रही गर्दन। यह झुकी गर्दन। उठा लो तलवार और मुझे काट दो। संन्यास का इतना ही अर्थ है कि मैं बेशर्त अपने को छोड़ता हूं।
पारस परसा जानिए, जो पलटे अंग-अंग।
अंग-अंग पलटे नहीं, तो है झूठा संग।।
पारस जाकर लाइए जाके अंग में आप।
क्या लावे पाषान को घस-घस होए संताप।।
पारस जाकर लाइए...
खोजो पारस को। पारस मिल जाए तो खोजो पारस के सत्संग को। पारस मिल जाए
तो भागो मत। तो करीब आओ, निकट आओ।
उपनिषद शब्द का यही अर्थ होता हैः गुरु के पास बैठना। गुरु के पास बैठना। उपासना शब्द का भी यही अर्थ होता हैः उप आसन। पास बैठ जाना। पास ही आसन जमा देता। उपासना, उपवास, उपनिषद तीनों का एक ही अर्थ होता है। इतना ही अर्थ होता है कि कहीं कोई दिख जाए पारस तो फिर दांव पर लगा देना।
पारस जाकर लाइए...
अगर खोजना ही है, अगर जिंदगी में कुछ सार ही पाना है तो पत्थरों से मत अपनी खोपड़ी घिसते रहो। पारस जाकर लाइए। खोजो पारस। और मिल जाए पारस तो छूने से डरो मत। स्पर्श हो जाने दो। मिटाएगा स्पर्श। उतनी सावधानी तो पहले से ही ख्याल में ले लेना।
पारस तुम्हें तो बिल्कुल मिटा देगा निश्चित ही। अगर लोहा डरता हो कि कहीं मैं मिट न जाऊं तो सोना नहीं बन सकेगा। पारस के पास आकर डरे कि कहीं मेरा लोहा होना न मिट जाए। और चाहे कि मैं सोना भी हो जाऊं और लोहा होना भी न मिटे तो फिर अड़चन है। फिर गणित तुमने बड़ा उलटा पकड़ लिया। लोहे को एक बात तो तय करनी ही होगी कि मैं तो मिटूंगा। लोहे की तरह तो मैं नहीं बचूंगा।

अंग-अंग पलट जाएगा। एक कण भी लोहे का नहीं बचेगा। एक अणु भी लोहे का नहीं बचेगा।
तो तुम्हें लोहे से तो मोह छोड़ ही देना होगा। और तुम अब तक जो हो, लोहे हो। मगर लोहे की भी तकलीफ तो समझो। तकलीफ उसकी भी बड़ी तार्किक है। लोहा कहता है, मैं इतना ही जानता हूं कि मैं लोहा हूं। इसको भी गंवा दूं! क्या पता सोने का, हो न हो! अब तक तो मुझे तो ऐसा घटा नहीं है। और-और लोग कहते हैं, सच कहते हों, झूठ कहते हों, क्या पता? भ्रम में पड़े हों क्या पता? मुझे तो घटा नहीं है अभी तक। मुझे तो पता नहीं। तो जो मुझे पता नहीं उसके लिए उसे छोड़ दूं जिसका मुझे पता है? तो समझदारी तो कुछ उलटी है। कहावतें कहती हैं कि समझदारी कहती है, हाथ की आधी रोटी बेहतर। आकाश की पूरी रोटी से हाथ की आधी रोटी बेहतर। अठन्नी हाथ की बेहतर, रुपया दूर दिखता है आकाश में उससे तो। क्योंकि जो हाथ में है उसका उपयोग हो सकता है। वह रुपया पता नहीं हो न हो। पता नहीं, तुम पहुंच सको, न पहुंच सको। पता नहीं, पहुंचकर पता चले कि रुपया था नहीं, केवल चमक मात्र थी, धोखा था। या टीन का ठीकरा चमक रहा था। समझदारी की कहावतें सारी दुनिया में हैं। वे कहती हैं, हाथ का मत गंवा देना। जो हाथ का है उसको तो सम्हाले रखना। उसको सम्हाल कर और जो दूर है उसको पाने की कोशिश करना। इस समझदारी से जो चला वह धार्मिक नहीं हो पाता। यह समझदारी बड़ी नासमझी भरी है। यह संसार में तो बड़े काम की है लेकिन सत्य के जगत के जरा भी काम की नहीं है, बड़ी बाधा है। वहां तो बड़ी नासमझी चाहिए। वहां तो बावलापन चाहिए, मस्ती चाहिए।
एक बात देख लो कि तुम्हारे हाथ में है जो, इसका मूल्य क्या है? इसको बचा कर भी क्या बचेगा? लोहा अगर बच भी रहा तो लोहा ही रहना है। बचकर भी तो कुछ न बचेगा। तो लो जोखम। लोहे से तो और बदतर क्या हो सकोगे? अगर पारस झूठा रहा तो तुम लोहा तो बचोगे ही, कोई हर्जा नहीं है। अगर पारस सच्चा हुआ तो सोना हो जाओगे। इसमें कठिनाई क्या है? पास जाने में भय क्या है?
और जो लोहे की अड़चन है वही तुम्हारी भी अड़चन है। वही सबकी अड़चन है। तुम चाहते हो, मैं जैसा हूं वैसा ही बचा रहूं और सदगुरु से मिलना भी हो जाए। यह नहीं हो सकता। यह नहीं हुआ कभी। यह नहीं होगा कभी। यह जीवन का नियम नहीं है।
पारस जाकर लाइए जाके अंग में आप।
जिसके अंग-अंग में आब है, जौहर है; जिसके अंग-अंग में ज्योति है, जिसका दीया जल गया है, जहां परम ज्योति ने निवास किया है, ऐसे जलते दीये को खोजो।
पारस जाकर लाइए जाके अंग में आप।
क्या लावे पाषान को घस-घस होए संताप।।
पत्थर को लेकर आ भी गए और खूब घिसा भी अपने लोहे पर तो भी कुछ न होगा, सिर्फ संताप होगा। यह बात भी बड़ी मीठी है। और बड़ी अर्थपूर्ण है।
तुम्हारे पंडित-पुरोहितों के कारण तुम्हारे जीवन में संताप बढ़ा है। घटा नहीं। तुम्हारी जिंदगी इनके बिना ज्यादा सुखद हो सकती है। इनके कारण तुम्हारी जिंदगी बड़ी उलझन से भर गई है, बड़े विषाद से भर गई है। ये किसी चीज में तुम्हें रस भी नहीं लेने देते। परम रस की तरफ तो जाने नहीं देते और यहां की किसी चीज में रस नहीं लेने देते। संसार की ये खिलाफत करते हैं और परमात्मा की तरफ जाने का न इनको कुछ रास्ता पता है, न ये गए हैं, न तुम्हें ले जा सकते हैं। ये तुम्हें बड़ी विडंबना में डाल जाते हैं। ये तुम्हें त्रिशंकु बना देते हैं।
ये संसार में तो तुम्हें खराब कर देते हैं। ये कहते हैं, पत्नी? इसमें क्या रखा है? मांस-मज्जा-हड्डी, कफ-वात-पित्त! पत्नी में कुछ रखा नहीं। परमात्मा का कुछ पता देते नहीं, पत्नी में कुछ रखा नहीं। पति में क्या रखा? मल-मूत्र की थैली है। पति मल-मूत्र की थैली हो गई और परमात्मा का कुछ पता नहीं। बेटे-बच्चे, इनमें क्या रखा है? यह तो दो दिन का खेल है। ये तो अभी हैं, अभी नहीं हैं। इनमें मोह मत लगाना।
मोह कहां लगाना? मोह को कोई दिशा चाहिए। मोह के लिए कोई मार्ग चाहिए। उसे कहां ले जाएं? परमात्मा की पूछो तो इनको भी पता नहीं है। ये सारे संसार की निंदा तो कर देते हैं। निषेध से तो भर देते हैं मन को, नकार से तो

भर देते हैं और अकार का कुछ हिसाब नहीं है। तुम जो भी करते हो, सब गलत है इनके हिसाब से। सही क्या है? तो गलत... गलत... गलत। सब गलत कर दिया।
तो तुम्हें सब जगह से मुश्किल में डाल दिया। भोजन करो तो दिक्कत क्योंकि स्वाद पाप है। गांधी जी के आश्रम में अस्वाद का व्रत दिलवाते थे कि भोजन तो करना लेकिन स्वाद नहीं लेना। आदमी को क्यों सताते हो? घस-घस होए संताप। अब महात्मा गांधी का पत्थर लेकर घिसते रहो अपनी खोपड़ी पर तो संताप पैदा होगा। मैंने तो एक गांधीवादी को आनंदमग्न नहीं देखा। घिसते रहो, संताप पैदा होगा। स्वाद में स्वाद मत लेना। अस्वाद का व्रत लो।
जो जानते हैं वे कहेंगे, स्वाद में इतना स्वाद लो कि परमात्मा का स्वाद बन जाए। अन्नम ब्रह्म--यह जानने वालों ने कहा है। यह ज्ञानियों ने कहा है। अन्न में ब्रह्म छिपा है। स्वाद मत लो... ये पत्थर मिल गए तुम्हें। अब इनसे घस-घस बहुत संताप होगा। ये हर चीज के खिलाफ हैं। ये किस चीज के पक्ष में हैं यह तो कुछ पता नहीं, मगर हर चीज के खिलाफ जरूर हैं। ये तुम्हें बड़ी दुविधा में छोड़ जाते हैं। जो जीवन के सामान्य सुख हैं उनके प्रति तुम्हें बड़ी तिक्तता से भर देते हैं। और जो जीवन का परम सुख है उसकी तरफ इशारा नहीं हो पाता। तो तुम हो गए धोबी के गधे--घर के न घाट के। अटक गए बीच में। ऐसी अटकी स्थिति तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी और महात्माओं की हैं।
एक जैन मुनि ने मुझे कहा कि मैं पचास साल से मुनि हूं--सत्तर साल के करीब उनकी उम्र है--और मुझे कोई आनंद वगैरह, आत्मानंद वगैरह तो मिला नहीं। अब मैं क्या करूं? और जो भी मुझे कहा गया... वे आदमी भले हैं। भले न होते तो वे इतनी ईमानदारी की बात नहीं कह सकते थे। प्रमाणिक हैं। सच में ही खोजी हैं, धोखेबाज नहीं हैं। धोखेबाज तो यह बात कहेंगे ही नहीं कि हमको नहीं मिला। यह कह कर और अपनी दुकान खराब करवानी है कि हमको नहीं मिला? ईमानदार आदमी हैं। सच्ची बात तो स्वीकार की।
पचास वर्ष से में जो भी उन्होंने किया उसे बड़ी निष्ठा से किया है इसलिए यह कोई भी नहीं कह सकता कि तुम्हारे करने में भूल है, इसलिए नहीं मिला आनंद। बड़ी निष्ठा से किया है। जिस संप्रदाय के वे माननेवाले हैं उस संप्रदाय की एक-एक बात नियम से पूरी की है, रत्ती-रत्ती पूरी की है। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। अब सत्तर साल की उम्र होते हुए जब मौत करीब आने लगी तो उनको भी तो अड़चन शुरू होती है। पचास साल गंवा दिए। सारी जिंदगी हाथ से बहा दी और सुख तो अभी तक जाना नहीं। और अब यह मौत करीब आ रही है।
तो एक संदेह भी मन में उठता है। उन्होंने मुझसे कहा कि और किसी से तो
कह नहीं सकता, आपसे कह सकता हूं। एक संदेह भी मन में उठता है कि कहीं मैंने भूल तो नहीं की? यह संन्यास लेकर मैंने भूल तो नहीं की? कभी-कभी मेरे मन में यह विचार उठने लगता है, रात पड़े पड़े एकांत में यह ख्याल आने लगता है कि कौन जाने, संसार में ही रहता तो ठीक होता। बीस साल का था तब घर छोड़ दिया था। तब जिंदगी बहुत कुछ जानी न थी। मां मर गई, पिता मुनि हो गए। अक्सर लोग ऐसे ही मुनि होते हैं। अब कुछ उपाय न रहा। एक ही बेटा थी बीस साल का। जब पिता मुनि हो गए और मां मर गई तो मां के मरने का दुख और पिता का तत्क्षण मुनि हो जाना... बेटे ने सोचा, अब मैं भी क्या करूं? वे भी दीक्षा ले लिए।
निष्ठा से पचास साल बिताए। जो भी कहा उसे किया। मैं उन्हें भलीभांति जानता हूं। उनकी निष्ठा पर मुझे भी जरा संदेह नहीं है। उन्होंने नियम में कोई उल्लंघन किया हो ऐसा मुझे भी नहीं लगता। इसलिए बात और मुद्दे की हो जाती है और महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि उनका गुरु भी उनसे नहीं कह सकता कि तुमने कुछ गलती की। गलती तो बता ही नहीं सकते। एक-एक बात को गणित के पूरे नियम को उन्होंने पालन किया है।
फिर कहां चूक हो गई? और अब पचास साल बीत जाने के बाद मन में यह शंका उठती है। तुम उनका कष्ट समझोगे? उनका संताप तुम्हें समझ में आता? घस-घस होए संताप। पचास साल घसे, अब संताप बहुत गहन हो रहा है। घाव ही घाव रह गए हैं मन पर। संसार तो गया, इसे भोगा नहीं। कौन जाने उसी भोग में असली बात थी। कौन जाने! कौन जाने दूसरे ही ज्यादा मजे में हैं, मैं ही नासमझ बन गया।

और अक्सर तुम पाओगे कि कभी-कभी संसारी तुम्हें मुस्कुराता मिल जाए। कभी-कभी संसारी के चेहरे पर तुम्हें थोड़ा ओज भी मिल जाए--कभी-कभी! लेकिन तुम्हारे तथाकथित महात्मा तो बिल्कुल मुर्दा हैं। संसारी के चेहरे पर भी कभी-कभी जो चमक आती है और कभी जो मुस्कुराहट के फूल खिलते हैं वे तुम्हारे महात्माओं के चेहरों पर कभी नहीं खिलते। वे कभी तुम्हारे महात्माओं के चेहरों पर नहीं दिखाई पड़ते। उनकी आंखें बिल्कुल बुझी हुई हैं। उनमें कोई भीतर ज्योति जलती नहीं दिखाई पड़ती। ये मंदिर बिल्कुल खाली पड़े हैं।
तो इनको भी तो दिखाई पड़ता होगा कि संसारी भी कभी-कभी प्रसन्न होते हैं। मान लिया उनकी प्रसन्नता क्षणभंगुर है; क्षणभंगुर ही सही, मगर कभी तो होती है। यहां तो कुछ भी नहीं हुआ। शाश्वत के पीछे क्षणभंगुर भी गया और शाश्वत हुआ नहीं; यह है संताप।
दरिया ठीक कहते हैंः
पारस जाकर लाइए जाके अंग में आप।
क्या लावे पाषान को घस-घस होए संताप।।
तो ऐसे व्यक्तियों से बचना, जो तुम्हारे जीवन को नकार से भरते हों, निषेध से भरते हों। जो कहते हों, यह गलत, यह गलत, यह गलत। ऐसे व्यक्तियों से बचना, ये सदगुरु नहीं हैं। सदगुरु गलत की तो बात ही नहीं करता। सदगुरु तो कहता है, यह सही। इसे कर। सदगुरु कहता है, अंधेरे से मत लड़ दीया जला। दीया जल गया, अंधेरा गया। सदगुरु कहता है, विधायक को पकड़। क्षणभंगुर को मत छोड़, शाश्वत को खोज। जैसे-जैसे शाश्वत हाथ में आने लगेगा, क्षणभंगुर अपने से छूटता जाता है। जिसे असली हीरे-जवाहरात मिल गए वह कंकड़-पत्थर लिए चलेगा अपनी झोली में? कौन वजन ढोता फिर? उतना ही वजन ढोना है तो उतने वजन में तो हीरे-जवाहरात का वजन ढो लेंगे। जब वजन ही ढोना है तो हीरे-जवाहरात का ढोएंगे। कंकड़-पत्थर का कौन ढोएगा?
छोड़ना नहीं पड़ता संसार। सदगुरु के साथ संसार छोड़ना नहीं पड़ता। सदगुरु
के साथ संसार छूटता है। असदगुरु के साथ संसार छोड़ना पड़ता है और परमात्मा कभी मिलता नहीं। अंधेरे से लड़ाई बहुत होती है और आखिर में चारों खाने चित्त पड़े पाए जाते हो। घस-घस होए संताप। दीया कभी जलता नहीं। यह दीया जलाने का कोई ढंग ही नहीं।
दरिया बिल्ली गुरु किया उज्जल बगु को देख।
जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरु भेख।।
कहते हैं, बिल्ली ने गुरु किया। अब बिल्ली गुरु करे! कहते हैं न कि सौ-
सौ चूहे खाए बिल्ली हज को चली! मगर सौ चूहे खाकर जो बिल्ली हज को जाएगी उसकी हज भी चूहों की ही तलाश होगी। शायद वहां हजी चूहे मिल जाएं, बड़े चूहे मिल जाएं, धार्मिक चूहे मिल जाएं।
मैंने सुना है, एक बिल्ली... अभी-अभी इंग्लैंड की महारानी का जलसा हुआ
न! तो एक बिल्ली भी हिंदुस्तान से गई जलसा देखने। बिल्लियों ने भेजा। आदमी भी भेज रहे हैं अपने प्रतिनिधि, मोरार जी देसाई गए, बिल्लियों ने कहा कि हम भी अपना प्रतिनिधि भेजेंगी। तो उन्होंने अपने प्रधानमंत्री को भेज दिया होगा।
स्वागत-समारंभ में सम्मिलित हुई। जब लौट कर आई और लोगों ने पूछा क्या देखा? उसने कहाः गजब की बात देखी। रानी की कुर्सी के ठीक नीचे बड़ा चूहा बैठा था। बिल्ली को और दिखाई भी क्या पड़े? रानी में क्या रस बिल्ली को! रानी में क्या रखा! सिंहासन के ठीक नीचे एक चूहा बैठा है। बड़ा चूहा। शाही चूहा! दिल प्रसन्न हो गया। हज को भी जाएगी बिल्ली तो हजी चूहों को खोजने जाएगी। और क्या करेगी?
कहते हैं दरियाः दरिया बिल्ली गुरु किया।
तो उसने अपनी ही बुद्धि से तो करेगी न! और तो बुद्धि लाए भी कहां से? समझना थोड़ा क्योंकि तुम्हारे जिंदगी का ही यह सवाल है। यह बिल्ली का सवाल नहीं है। यह तुम्हारी बुद्धि का ही सवाल है। तुम्हारी बुद्धि जब गुरु करेगी तो तुम भूल में पड़ोगे। क्यों भूल में पड़ोगे? क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ही तुम्हें भटकाती रही है अब तक। उसी बुद्धि से गुरु करोगे; और कहां से लाओगे?

तुम्हें बड़ी अड़चन मालूम होगी कि यह तो बड़ी झंझट की बात है। इसी बुद्धि
ने भटकाया जन्मों-जन्मों तक। इसी बुद्धि ने संसार में भटकाया। इसी बुद्धि ने धन में भटकाया, पद में भटकाया, लोभ, मोह, तृष्णा सबमें भटकाया। अब यही बुद्धि तुम्हारे पास है। और तो तुम्हारे पास कोई बुद्धि है नहीं। इसी बुद्धि से तुम गुरु करोगे। इसी बुद्धि से तो परखोगे न! और यह बुद्धि ही तुम्हारा सारा जाल है। यही तुम्हारा उपद्रव है। इसी बुद्धि ने तो तुम्हें सारे भ्रम खड़े करवाए। तो अब यह तुम्हें आखिरी भ्रम भी करवाएगी। तुम गलत गुरु को ही चुनोगे।
समझो, कैसे घटना घटती है। तुम धन के पीछे दीवाने हो। तुमने धन के पीछे
सब कुछ जिंदगी लगा दी। अब तुम धन से ऊब गए हो, धन से परेशान हो गए हो। तो तुम कैसा गुरु चुनोगे? अब तुम ऐसा गुरु चुनोगे जो पैसा भी न छूता हो। जिसके पास पैसा ले जाओ तो सांप-बिच्छू की तरह उचक कर खड़ा हो जाए कि यह तुमने क्या किया? कामिनी-कांचन! पैसा मेरे पास ले आए?
तुम स्त्री के पीछे दीवाने रहे हो। अब तुम ऐसा गुरु चुनोगे जो स्त्री
को देखता ही न हो। तुम स्वामी नारायण संप्रदाय के गुरु के शिष्य हो जाओगे। चालीस साल से स्त्री नहीं देखी उन्होंने। ये जंचते हैं। यह बात जंचती है। अभी वे भी इंग्लैंड गए तो हवाई जहाज पर विशेष इंतजाम करना पड़ा। पर्दे लगाए गए उनकी कुर्सी के चारों तरफ। एअर होस्टेसेस, अप्सराएं, कोई दिखाई पड़ जाए तो झंझट खड़ी हो जाए। चालीस साल से उन्होंने स्त्री नहीं देखी। लंदन एअरपोर्ट पर बंद गाड़ी में उनको निकाला गया। एअरपोर्ट पर थोड़ी देर रुकना पड़ा सामान इत्यादि की जांच-परख के लिए तो वहां भी पर्दा लगा कर एक कुर्सी पर उनको बिठाया गया।
इस मूढ़ता पर सारी दुनिया हंसती है। जुबली समारोह चल रहा था महारानी का--जिसमें बिल्ली भाग लेने गई थी--मगर वे तो देख नहीं सकते क्योंकि रानी स्त्री है। टी.वी. पर भी नहीं देख सके। मगर मन तो आदमी का ही, बिल्ली का मन, देखने को मन तो था ही। मगर रानी है स्त्री इसलिए देख तो सकते नहीं टी.वी. पर। तो क्या किया उन्होंने? एक कमरे में बैठ गए, दूसरे कमरे में टी.वी. लगा और वहां से एक आदमी जोर-जोर से बोलता जाए--क्धया-क्या हो रहा है। वे दूसरे कमरे में बैठे सुन रहे हैं। मन तो बिल्ली का ही है। मगर देख भी नहीं सकते। तस्वीर भी नहीं देख सकते।
यह कैसा भय? यह कोई मुक्ति हुई? यह तो महाबंधन हो गया। यह तो रुग्णता
हो गई। यह तो चित्त विषाक्त हो गया। स्त्री में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे यह तो समझ में आने वाली बात है। लेकिन स्त्री में ऐसा भय समा जाए तो इसका एक ही अर्थ होता है कि काम-विकार बहुत बढ़ गया। इन सज्जन को मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। इनका इलाज होना चाहिए। इन पर कोई दया करे। इनकी खोपड़ी अत्यंत विकार से भरी है।
मगर तुम जिंदगी भर अगर स्त्री के पीछे दीवाने रह हो और स्त्री से परेशान हुए हो--कौन नहीं परेशान होता स्त्री से? परेशान तुम होते हो यह सच है। स्त्री की झंझट उठाई वह भी सच है। स्त्री तुमसे परेशान हो चुकी है; उसने भी झंझट उठा ली है। तो ऐसे गुरु को तुम जल्दी चुन लोगे कि हां, यह रहा गुरु। यह तुम्हारे जिंदगी भर की जिस बुद्धि ने तुमको भटकाया है वही बुद्धि चुनने का रास्ता बता रही है। वह कह रही है, यह है गुरु। इसको चुन लो। अब तुम एक बड़ी भूल में पड़ रहे हो। तुम्हारा संसार भी भ्रांति से भर गया, अब यह गुरु भी तुम्हारी भ्रांति का ही हिस्सा है। उलटा, मगर है तुम्हारी भ्रांति का ही हिस्सा।
दरिया बिल्ली गुरु किया तो स्वभावतः बिल्ली ने सोचा, बिल्ली रही होगी काली। तो उसने सोचा कि उज्जवल बगु को देख... देखा बगुले को शुभ्र, उसने कहा यह है गुरु के योग्य। काली बिल्ली, कालेपन से थक गई और अब जानने लगी कि कालापन तो सिर्फ चूहों को पकड़ता है और कुछ करता नहीं। सफेद! यह शुभ्र बगुला खड़ा था, यह जंचा। मगर उसको पता नहीं कि यह बगला भी वहां जो खड़ा हुआ है ध्यानस्थ, ये मछलियों को पकड़ने खड़े हुए है। ये बिल्ली से भी पहुंचे हुए पुरुष हैं। इनका जो ध्यान इत्यादि लगाए खड़े हैं, यह कोई ध्यान वगैरह नहीं है। ये जो एक पैर पर खड़े हुए हैं यह कोई योगासन वगैरह नहीं है। ये जो

बिल्कुल बिना हिले-हुले खड़े हैं कि इनकी तस्वीर भी पानी में नहीं हिलती। यह जो खड़ेश्री महाराज, यह बिल्ली से ज्यादा पहुंचे हुए हैं। यह मछली की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह निष्कंप खड़े हैं सिर्फ इसीलिए कि पानी की मछली जरा भी हलन-चलन हो जाए तो भाग जाती है। नजर मछली पर गड़ी है। मगर इनको देखकर बिल्ली को धोखा आ जाए तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
तुम्हारे मन की बिल्ली भी ऐसे ही बगुलों के धोखे में आ जाती है।
दरिया बिल्ली गुरु किया उज्जल बगु को देख।
जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरु भेख।।
फिर जैसे को तैसा ही मिल जाता है। जैसा भक्त वैसा गुरु। फिर तो बड़ी अड़चन की बात उठी। फिर तो बड़ा सवाल उठेगा तो फिर चुनना कैसे? चुनने को तो एक ही उपाय है तुम्हारे पास तुम्हारी बुद्धि। और वह काम की नहीं है। फिर चुनना कैसे?
इसलिए समस्त जगत के जो गहरे शास्त्र हैं वे कहते हैं, शिष्य गुरु को नहीं चुनता, गुरु शिष्य को चुनता है। गुरु ही चुन सकता है। शिष्य कैसे चुनेगा। शिष्य तो अपने को सिर्फ समर्पण कर सकता है, कह सकता है, मैं मौजूद हूं। अगर आपकी मर्जी हो तो मुझे चुन लें। अगर मुझे योग्य पाएं तो मुझे चुन लें। अगर मुझमें कुछ दिखाई पड़ता हो तो मुझे कुछ रास्ता सुझा दें। अगर मुझमें कोई भी कहीं फीकी सी भी संभावना हो तो उसे जगा दें। यह रहा मैं मौजूद। मेरा जो करना हो, कर लें। मैं तो यह भी नहीं कह सकता कि मुझे चुन लें। मैं तो आपको चुनूं यह बात भी कैसे कर सकता हूं? यह भी दंभ की बात होगी।
इसलिए मेरे पास दो तरह के लोग संन्यास लेते हैं एक संन्यास लेने वाला
वह होता है, जो कहता है मैं सोचूंगा। सोच-विचार कर कि आपसे संन्यास लेना, दीक्षा लेनी की नहीं? फिर निर्णय करूंगा। यह आदमी जिस दिन निर्णय करेगा वह निर्णय इसी का होगा। और इसके निर्णय में बुनियादी भूल रह जाने वाली है। अगर यह तय करेगा कि संन्यास लेना तो किसी गलत कारण से तय करेगा। अगर यह तय करेगा कि संन्यास नहीं लेना तो भी गलत कारण से तय करेगा। यह गलत कारण से ही तय कर सकता है। इसके सभी निश्चय और निष्पत्तियां गलत होंगे। इसकी बुद्धि से सही तो उमगता ही नहीं। उमग ही नहीं सकता। नहीं तो कभी का यह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता। इसी बुद्धि पर इसका अभी भी भरोसा है। यह कहता हैं मैं तो इसी बुद्धि... यही है मेरे पास। मैं सोचूंगा, विचारूंगा।
जब तुम कहते हो, मैं सोचूंगा, विचारूंगा, क्या कहते हो तुम? किससे सोचोगे? किससे विचारोगे? तुम्हारे पास क्या है? जो परम संन्यासी है वह दूसरे ढंग से... । वह आकर कहता है कि मैं यह रहा। अगर आप स्वीकार कर लें तो स्वीकार कर लें। आप इनकार कर दें तो रोता हुआ लौट जाऊंगा। मुझे दे दें अगर लगता हो कि मैं योग्य हूं। लगता हो कि कभी योग्य बन सकता हूं तो मुझे दे दें। यह परम संन्यासी है।
तुम गुरु को चुन नहीं सकते। तुम सिर्फ गुरु को मौका दे सकते हो कि तुम्हें चुन ले। इस भेद को खूब समझ लेना। यह भेद बड़े अर्थ का है। सदा सदगुरु चुनता है। जब शिष्य तैयार होता तो सदगुरु मौजूद हो जाता है।
और तुम यह दंभ करना मत कि मैं चुनूंगा। मैंने चुना तो मैं बना रहा।
तुमने अगर यह भी कहा कि मैं समर्पण करता हूं तो समर्पण नहीं है यह। क्योंकि मैं कैसे समर्पण करेगा? समर्पण का तो अर्थ होता है, मैं नहीं रहा।
यह रहा मेरा होना, आप कुछ कर लें। कुछ उपाय हो सके तो लगा दें। आप जहां जाएं, जहां ले जाए, चलूंगा। आपकी मर्जी अब से मेरी मर्जी होगी। अब तक मैंने अपनी बुद्धि पर भरोसा किया, आज से आपके विवेक पर भरोसा करता हूं; आज से आपकी जागरूकता पर भरोसा करता हूं। इसका नाम श्रद्धा।
श्रद्धा तुम्हारी बुद्धि की निष्पत्ति नहीं है। श्रद्धा का अर्थ है, तुम अपनी बुद्धि से थक गए। और तुमने कहा, हाथ जोड़े, नमस्कार। अपनी बुद्धि को नमस्कार कर लिया, उस दिन श्रद्धा का जन्म होता है। और श्रद्धा ही सदगुरु को चुन पाती है।
जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरु भेख।
साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरु सांच।।

मोती-मोती फेर बहु इक कंचन इक कांच।
कहते हैं दरियाः साध स्वांग अस आंतरा।
असली साधु में और स्वांगी साधु में बड़ा अंतर है। साध स्वांग अस आंतरा। बहुत अंतर है। ऐसा अंतर है--जेता झूठ अरु सांच। जितना झूठ और सच में अंतर है, इतना ही अंतर है।
असली साधु कौन है? असली साधु वह, जिसने जाना, जिसने अनुभव किया, जो प्रभु में डूबा और पगा, जो अपने भीतर शून्य हुआ और शून्य होकर जिसने पूर्ण को अपने भीतर विराजमान होने के लिए जगह दी। सत्य जिसके भीतर आ गया वही साधु। सत्य जिसके भीतर जीवंत हो उठा वही संत। इसलिए तो संत कहते हैं उसको। उसके भीतर सत प्राणवान हो उठा।
लेकिन बाहर से साधु बनना भी बड़ा आसान है; सच में तो वही आसान है। महावीर नग्न खड़े हैं, इसलिए नहीं कि नग्न होने से कोई साधु होता है। नहीं तो सभी साधु नग्न होते। फिर राम भी नग्न होते, कृष्ण भी नग्न होते और क्राइस्ट भी और मोहम्मद भी और बुद्ध और कपिल भी और कणाद भी। मगर ये कोई नग्न नहीं हैं, महावीर नग्न खड़े हैं।
तो नग्न होने से कोई साधु नहीं होता। जब महावीर साधु हुए तो उन्हें सहज ही नग्नता उत्पन्न हुई। वे निर्दोष हो गए बच्चे की भांति। जिन्होंने महावीर को माना उन्होंने बड़ी भूल कर ली। भूल कहां कर ली? अगर उन्होंने महावीर को अपनी बुद्धि से माना तो वे यह निष्पत्ति लेंगे कि नग्न होने से महावीर को ज्ञान उत्पन्न हुआ, हम भी नंगे ही जाएं।
यह तो बुद्धि की बात हुई। सीधा गणित हो गया। देखा, जांचा, परखा कि महावीर नग्न हो गए हैं, ज्ञान को उपलब्ध हो गए; मौन रहते हैं, ज्ञान को उपलब्ध हो गए; मुश्किल से कभी-कभी भोजन लेने जाते हैं, ज्ञान को उपलब्ध हो गए। गणित बिठा लिया पूरा। तो अब हम भी कभी-कभी भोजन लेंगे, ज्यादा उपवास करेंगे, चुप रहेंगे, बोलेंगे नहीं, नंगे रहेंगे, धूप-ताप सहेंगे। खड़े रहेंगे जंगलों में।
खड़े हो जाओ। भूखे रहो, उपवास करो, नंगे रहो, कुछ भी न होगा। सिर्फ घस-घस होए संताप। और महावीर सदगुरु थे। मगर तुम चूक गए। तुमने अपनी बुद्धि से निष्कर्ष लिया। तुमने समर्पण न किया। तुमने अगर समर्पण किया होता तो तुम्हें एक बात दिखाई पड़ती, महावीर का बहिरंग न दिखाई पड़ता, महावीर के अंतरंग से जोड़ हो जाता।
तुम अपनी बुद्धि से जैसे ही टूटे कि तुम्हारे भीतर एक और छिपी हुई गहन बुद्धि, प्रज्ञा जिसको कहते हैं, उसका आविर्भाव होता है। तुम्हारे भीतर एक अंतर्दृष्टि का जन्म होता है। तब तुम देखते कि महावीर के भीतर कुछ घटा है। समाधि घटी है, सत्य घटा है। उस घटने के कारण बाहर की घटनाएं आई हैं? बाहर की घटनाओं के कारण भीतर की घटना नहीं घटी है, भीतर की घटना के कारण बाहर की घटना घटी है।
और प्रत्येक को बाहर की घटना अलग-अलग घटती है। भीतर की घटना तो एक है। भीतर का तो प्राण एक है। भीतर का सत्य तो एक है लेकिन बाहर अलग-अलग होगा। मीरा गाई और नाची। अब महावीर न नाचे और न गाए। वह उनके व्यक्तित्व का अंग न था। घटना तो एक ही घटी। भीतर तो एक ही सत्य उमगा, एक ही कमल खिला। लेकिन जब मीरा के भीतर खिला तो मीरा स्त्री थी। नाच उसे सुगम था। जब भीतर का कमल खिला तो अब कैसे प्रकट करें? उसने नाच कर प्रकट किया। वह मदमस्त होकर नाची। लोकलाज छोड़ी। दीवानी हो गई।
सत्य तो वही महावीर को भी घटा लेकिन महावीर पुरुष हैं, क्षत्रिय हैं।
एक अलग ढंग की व्यवस्था में उनका व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। उसमें नाच-गान की कोई सुविधा नहीं है। उनके व्यक्तित्व में नाच-गान का अंग नहीं है। महावीर के लिए नाच-गान नहीं घटा। जीसस एक ढंग से, मोहम्मद और ढंग से, कृष्ण और तीसरे ढंग से।
जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है, इसे स्मरण रखना, दो सत्य को उपलब्ध व्यक्तियों का बहिरंग एक सा नहीं होता; सिर्फ असत्यवादियों का बहिरंग एक सा होता है। तुम पांच सौ जैन मुनि एक से पा सकते हो, मगर पांच सौ महावीर एक से पाओगे? तुम हजार हिंदू संन्यासी एक से पा सकते हो लेकिन हजार

शंकराचार्य एक से पाओगे? दो तो पा लो। इन शंकराचार्यों की बात नहीं कर रहा हूं--पुरी के और द्वारका के, इनकी बात नहीं कर रहा हूं। इनको तो तुम हजार पा सकते हो। मैं आदि शंकराचार्य की बात कर रहा हूं। वे शंकर तो एक ही बार होते हैं। वह घटना तो एक ही बार घटती है।
और फिर भी स्मरण रखना कि जो शंकर के भीतर घटता, बुद्ध के, महावीर के, वह
एक ही है। घटना एक ही है। ऐसा ही समझो कि तुमने बहुत ढंग के पात्र फैला कर बगीचे में रख दिए और वर्षा हुए। पानी सब पात्रों में गिरा, एक ही गिरा लेकिन कोई पात्र एक ढंग था तो पानी ने वही ढंग उसमें ले लिया। गिलास का था तो गिलास के रूप का हो गया। घड़ा था तो घड़े के रूप का हो गया। थाली थी तो पानी थाली के रूप का हो गया। पानी तो एक बरसा लेकिन जिसमें बरसा वे व्यक्तित्व के पात्र अलग-अलग थे।
महावीर के पास एक पात्र था, कृष्ण के पास दूसरा पात्र था। और परमात्मा
एक जैसे पात्र दो बार बनाता नहीं। परमात्मा कोई फोर्ड कंपनी थोड़े ही है कि एक सी कारें बनाता ही चला जाए। परमात्मा प्रत्येक बार नया अनूठा निर्मित करता है। परमात्मा अद्वितीय है, मौलिक है, सदा मौलिक है। तुम जैसा व्यक्ति न तो पहले उसने बनाया न फिर कभी बनाएगा। सांचे उसके पास हैं ही नहीं। बिना सांचे के बनाता है। इसलिए हर व्यक्ति अनूठा है।
लेकिन जब तुम बाहर से निर्णय लोगे तो अड़चन में पड़ जाओगे क्योंकि बहिरंग तो अलग-अलग है। तुमने महावीर को बाहर से देखा तो नंगे खड़े हो जाओगे। बुद्ध को देखा तो एक चादर लपेट कर बैठ जाओगे। कृष्ण को देखा तो बांसुरी लगाकर मोरमुकुट बांध कर खड़े हो जाओगे। वह नाटक होगा--रासलीला। कुछ अर्थ नहीं होने वाला उससे। झूठा होगा सब। राम को देखा, लेकर धनुषबाण खड़े हो गए। तो रामलीला शुरू होगी, राम का असली जीवन नहीं। यह नाटकीय होगा। इससे सावधान रहना।
जब तुम गुरु के पास जाओ तो अपनी बुद्धि से निर्णय मत करना। अपनी बुद्धि को उससे चरणों में रख देना। उस पर छोड़ देना निर्णय कि अब तू कह; अब तू चला। और बेशर्त छोड़ देना। ऐसा नहीं कि फिर हम सोचेंगे कि करना कि नहीं।
तुम कहोगे वह तो ठीक, सुन लेंगे, फिर हम सोचेंगे कि करना कि नहीं। अगर सोचना तुम्हीं को है तो निणार्यक तुम्हीं रहोगे।
साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरु सांच।
मोती-मोती फेर बहु इक कंचन इक कांच।।
मोती-मोती एक जैसे ऊपर से दिखाई भी पड़ें तो भी धोखे में मत पड़ना।
उसमें कोई कांच का टुकड़ा होता है, कोई असली होता है।
पांच-सात साखी कही पद गाया दस दोए।
दरिया कारज ना सरै पेट-भराई होए।।
और यह मत समझ लेना कि पांच-सात साखी कह दी तो संत हो गए; कि पांच-सात पद बना लिए तो संत हो गए। पद गाया दस दोए--कि भजन बना लिए दो-चार और समझे कि संत हो गए।
दरिया कारज ना सरै...
ऐसे तो कुछ होगा नहीं। ऐसे ऊपर-ऊपर की बातों से कुछ न होगा। पेट-भराई
हो सकती है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा पेट-भराई ही करते हैं और कुछ भी नहीं करते। तुम एक ढंग से करते हो पेट-भराई, वे दूसरे ढंग से करते हैं, बस।
बड़ के बड़ लागे नहीं बड़ के लागे बीज।
दरिया नान्हा होयकर रामनाम गह चीज।।
प्यारा वचन है। बड़ा मधुसिक्त। कंठ अमृत से भर जाए ऐसा वचन है।
बड़ के बड़ लागे नहीं...
तुमने कभी बड़ में बड़ को लगते देखा? बड़ में तो बीज लगता है, फिर बीज से
बड़ होता।
तो तुम अगर गुरु के पास गुरु होकर गए तो संग-साथ नहीं हो पाएगा। गुरु
के पास तो बीज होकर गए तो लगोगे। बड़ी अदभुत बात है; बड़ के बड़ लागे नहीं बड़ के लागे बीज। गुरु के पास तो छोटे होकर जाना। निर-अहंकार शून्य भाव से जाना। बीज जैसे होकर जाना तो गुरु सब तुममें उंड़ेल देगा। लेकिन अगर तुम

अकड़ कर गए, बड़े होकर गए, गुरु होकर गए, अपना ज्ञान लेकर गए, अपनी संपदा दिखाते हुए गए, अपनी अकड़ खोई नहीं तो चूक जाओगे।
बड़ के बड़ लागे नहीं बड़ के लागे बीज।
दरिया नान्हा होयकर रामनाम गह चीज।।
यह जो रामनाम की चीज है, यह जो बहुमूल्य सत्व है, यह जो रामनाम की सुरति है, अगर गुरु से लेनी हो तो बीज बन जाओ, छोटे हो जाओ; तुममें पोर देगा। फिर तुमसे भी वृक्ष उठेगा तुम भी बड़वृक्ष बनोगे। जो एक बार ठीक से सदशिष्य बन गया वह किसी दिन सदगुरु बनेगा। लेकिन जो सदशिष्य नहीं बना, जो शिष्य होते समय भी गुरुता का बोझ लिए रहा वह तो शिष्य ही नहीं बना; गुरु तो कैसे बन पाएगा?
माया-माया सब कहै चीन्हे नाहीं कोए।
जन दरिया निज नाम बिन सब ही माया होए।।
दरिया कहते हैंः बहुत लोग माया-माया कहते हैं। यह भी माया, वह भी माया,
सब माया।
मगर दरिया कहते हैंः जन दरिया निज नाम बिन सब ही माया होए।
सिर्फ राम के नाम को छोड़ कर बाकी सब माया है।
इसलिए अलग-अलग गिनाने की कोई जरूरत नहीं है कि धन माया कि पद माया कि ईर्ष्या कि लोभ कि मोह, कुछ गिनाने की जरूरत नहीं। सिर्फ परमात्मा के अतिरिक्त सब माया है। तो अगर परमात्मा को पा लिया तो कुछ पाया। नहीं तो माया के जादू में भटके रहे।

प्रभो, तुम्हारा नाम बाती है
शरीर दीया है, वेदना तेल है
तीनों का कितना अच्छा मेल है!
शीतलता बढ़ती है, आंखें जब नम होती हैं
नाम जितना ही उजलता है
वेदना उतनी ही कम होती है
प्रभु तुम्हारा नाम बाती है
शरीर दीया है, वेदना तेल है
तीनों का कितना अच्छा मेल है!

वह जो प्रभु का स्मरण है, जैसे-जैसे बढ़ने लगेगा, वैसे-वैसे तुम्हारे जीवन का दुख कम होने लगेगा। इधर प्रभु की याद बढ़ी, उधर जीवन का दुख कम हुआ। इधर प्रभु की याद आई, उधर जीवन का दुख गया। इधर से प्रभु आया द्वार, प्रविष्ट हुआ, दूसरे द्वार से कब अंधेरा निकल जाता है--वैसा ही दुख, वेदना, संताप निकल जाता है।

शीतलता बढ़ती है, आंखें जब नम होती हैं
नाम जितना ही उजलता है
वेदना उतनी ही कम होती है

जिस दिन नाम पूरा उज्जवल होकर भीतर बैठ जाता है, जिस दिन सुरति पूरी
हो जाती है, उसकी स्मृति पूरी हो जाती है, उसी दिन सब हो गया। उसी दिन सत्य हुआ। उसके पहले सब माया है।
है को संत राम अनुरागी जाकी सुरत साहब से लागी।
कहते हैं दरियाः वही है प्रभु का असली प्रेमी, जिसने अपनी सुरत को साहब से लगा दिया है। जिसने अपनी याद, जिसने अपनी स्मृति प्रभु से जोड़ दी। कल मैं एक किताब देखता था। अमरीका के एक मनोवैज्ञानिक ने मनुष्यों के
मन में कितने काम-विचार चलते हैं, उसकी बड़ी खोज-बीन की है बड़ा विश्लेषण किया है। और चकित करने वाली बात है। उसने लिखा है कि अठारह साल की उम्र में--हजारों युवकों का उसने अध्ययन किया, उनसे। पूछा, सब जांच-पड़ताल की। हर दो मिनट में एक बार आदमी कामवासना की याद करता है। हर दो मिनट में अठारह साल की उम्र में। छत्तीस साल की उम्र में हर चार मिनट में। इसी तरह पचास के

करीब पहुंचते-पहुंचते हर छह मिनट में। सत्तर साल की उम्र तक पहुंचते- पहुंचते हर आठ मिनट में, दस मिनट में कामवासना की याद करता है।
जरा जांचना अपने भीतर तो अभी तुम्हारी सुरति काम से लगी है। जब ऐसी ही याद राम की आने लगती है तो सुरति राम से लगी। काम में लगी सुरति राम में लग जाए तो क्रांति घट जाती है।
सदगुरु का इतना ही अर्थ है कि वह राम की सुरति में जी रहा है। सुरति साहब से लागी। उसके पास बैठे-बैठे उसकी सुरति की तरंगें तुम्हारे हृदय को भी आंदोलित करेंगी। उसकी सुरति धीरे-धीरे तुम्हें भी संक्रामक हो जाएगी। यह संक्रामक बात है। यह छूत की बीमारी है। इसलिए सत्संग का पूरब में इतना मूल्य है। इसलिए सदियों से हमने सत्संग की इतनी महिमा गाई है और सदगुरु की इतनी महिमा गाई है। इस महिमा का कारण है, बड़ा कारण है।
तुमने देखा? एक स्त्री राह से निकली, एक सुंदर स्त्री राह से निकली, तत्क्षण तुम्हारी सुरति काम में लग जाती है। देखा तुमने यह। मगर इससे तुमने कुछ सीखा? खाक कुछ नहीं सीखा। एक सुंदर स्त्री राह से निकली, तत्क्षण तुम्हारी सुरति सौंदर्य में लग गई।
ऐसे ही तुम जब सदगुरु के पास बैठोगे, सदगुरु को निहारोगे तो बार-बार... बार-बार तुम्हारी सुरति राम में लगने लगेगी। और धीरे-धीरे जब राम में लगने लगेगी और रसमग्न होने लगोगे राम में डूब कर तो अपने आप काम में न लगेगी। फिर तुम्हें स्वामी नारायण-संप्रदाय के गुरु की भांति चालीस साल एक स्त्रियों से बचने की जरूरत न रहेगी। स्त्री निकले कि पुरुष निकले, एक दफा सदगुरु का साथ हो गया और सदगुरु की तरंग तुम्हारे भीतर राम की स्मृति को जगा दी, जलने लगा वह दिया, फिर तो तुम जिसको देखोगे उसी के देख कर राम की स्मृति आएगी। स्त्री को देखोगे तो स्त्री का सौंदर्य तुम्हें परमात्मा के सौंदर्य की याद दिलाएगा। पुरुष को देखोगे तो पुरुष का बलिष्ठ शरीर, बल, शौर्य तुम्हें परमात्मा के बल की याद दिलाएगा। फूल देखोगे तो परमात्मा को खिला हुआ पाओगे। पक्षी गुनगुनाएंगे गीत तो तुम परमात्मा को गीत गाता पाओगे। झरनों में और सागर में और पहाड़ों में और रेत में, हर जगह तुम पाओगे। अनेक-अनेक रूपों में परमात्मा की याद छिपी पड़ी है। एक बार तुम्हारे भीतर सूत्र बैठ जाए, सब तरफ उसी के दर्शन होने शुरू हो जाते हैं। सारा संसार परमात्मा से भरा पड़ा है, ब्रह्म से भरपूर पड़ा है।
है को संत राम अनुरागी जाकी सुरत साहिब से लागी।
अरस-परस पिव के संग राती होए रही पतिबरता।।
और एक दफा यह बात लग जाए, एक बार यह सुरति जगने लगे, यह याद जगने लगे भीतर, जैसे अभी काम की याद जगती है, ऐसी राम की जगने लगे--अरस-परस पिव के संग राती। फिर तो बार-बार प्रभु सामने आने लगे स्मरण के, बार-बार पर्दे पर झलक मारने लगे। अरस-परस! फिर तो आमने-सामने मिलन होने लगता है, अरस-परस होने लगता है।
अरस-परस पिव में संग राती...
फिर तो उस प्यारे का रंग तुम्हें रंगने लगता है; फिर तो तुम डोलने लगते हो।
अरस-परस पिव के संग राती होए रही पतिबरता।
और तब वह घटना घटती है भक्ति की कि प्रभु के अतिरिक्त कोई याद नहीं आता, तब पतिव्रता। तब तुम पतिव्रत्य को उपलब्ध हो गए। अब एक ही मालिक रहा, एक ही पति रहा। अब परमात्मा ही पति रहा।
सुरति घनी होते-होते... घनी होते-होते एक दिन तुम्हारे भीतर उस एक में ही, बस एक में ही लौ लग जाती है। उठते-बैठते उसी की याद आती है, सोते-जागते उसी की याद आती है, सुख-दुख में उसी की याद आती है, हर पल उसी की याद आती है। यह जिस मनोवैज्ञानिक ने खोज की है कि हर दो मिनट में अठारह साल का युवक एक बार कामवासना की बात को सोच लेता है, यह तो दो मिनट में सोचता है; जब राम की याद बैठनी शुरू होती है तो एक पल बिना उसकी याद के नहीं बीतता।
उसकी धुन बजती ही रहती है। वह तो श्वास-प्रश्वास जैसा हो जाता है।
अरस-परस पिव के संग राती होए रही पतिबरता।

पैहम मुसीबतों से मिले तो करार लें
यादों के बुतकदों को जरा फिर सम्हाल लें

जरा फुरसत मिले संसार की झंझटों से, जरा बेचैनी कम हो।

पैहम मुसीबतों से मिले तो करार लें

तो जरा चैन हो।

यादों के बुतकदों को जरा फिर सम्हाल लें

तो फिर यादों के जो मंदिर हैं उनकी थोड़ी देखभाल कर ली जाए।

दिन थे फलक सिगाफ थे जब अपने कहकहे
फिर मिल सकें तो दिन वे कहीं से उधार लें

कभी तो तुम परमात्मा में थे। कभी! हरेक वहीं से आया है।

दिन थे फलक सिगाफ थे जब अपने कहकहे

कभी ऐसे भी दिन थे जब हमारे आनंद की गूंज आकाश तक उठती थी। ऐसे कहकहे उठते थे।

दिन थे फलक सिगाफ थे जब अपने कहकहे
फिर मिल सकें तो दिन वे कहीं से उधार लें

अब तो किसी सदगुरु के चरणों में बैठो तो वे दिन उधार मिल जाएं। तुम्हारे थे कभी, लेकिन चूक गए हो। चूकना पड़ा है। चूकना पड़ता ही है। अब तो फिर कोई उस याद को जगाए, उस सो गई याद को, उन खंडहरों को कोई फिर से सम्हाले।

यादों के बुतकदों को जरा फिर से सम्हाल लें
पैहम मुसीबतों से मिले तो करार लें

सदगुरु के पास बैठ कर तुम थोड़ी देर को संसार की झंझटों से मुक्त हो जाते हो। थोड़ी देर को संसार मिट जाता है। थोड़ी देर को सदगुरु की छाया में संसार विस्मरण हो जाता है। वही विस्मरण प्रभु का स्मरण बन जाता है।

हमने बसाईं बस्तियां तुमने उजाड़ दीं
कुछ पल तो इन खराबगाहों में गुजार लें

तुमने जो-जो बनाया है वह सब तो परमात्मा उजाड़ता जाता है। तुम्हारा बना हुआ बचता नहीं। मगर फिर भी मन है कि मन कहता है, कुछ पल तो इन खराबगाहो में गुजार लें। ये खंडहर अपने बनाए हुए ही हैं, कुछ पल तो इनमें गुजार लें। तुम्हारा मन यही कहे जाता है। इस मन से जरा सावधान रहना। पहले बनाने में लगा रहता है फिर जब बन गए भवन तो उनमें रहने लगता है। फिर जब भवन खंडहर हो गए तो भी मोह नहीं छूटता। खंडहरों से भी मोह नहीं छूटता। लौट-लौट कर... ।

हमने बसाईं बस्तियां तुमने उजाड़ दीं
कुछ पल तो इन खराबगाहों में गुजार लें
साकी से गर नजर न मिले हम न जाम लें
और जब मिले तो दौड़ कर दीवाना वार लें

प्यारा वचन है।
साकी से गर नजर न मिले हम न जाम लें

यही दरिया का मतलब हैः अरस-परस पिव के संग राती। परमात्मा आमने-सामने खड़ा हो तभी कुछ होगा। अरस-परस हो।
अरत-परत पिव के संग राती...
मूर्तियों से नहीं चलेगा काम। मूर्तियों से चलता तो मंदिरों में जाने
से बात हो जाती। शास्त्रों से नहीं चलेगा काम। शब्द भी कागज पर खींची गई स्याही से बनाई गई मूर्तियां हैं। इनसे भी नहीं काम चलेगा। अरस-परस पिव के संग राती। यह तो जीता-जागता परमात्मा सामने खड़ा हो।
कहां खोजे जीते-जागते परमात्मा को? कहीं अगर किसी में उतरा हो तो उससे थोड़े से क्षण उधार ले लो। उसके पास थोड़े डूबो। पिव के संग राती।

साकी से गर नजर न मिले हम न जाम लें।

परमात्मा से आंख से आंख मिले तभी जाम लेने का मजा है, नहीं तो सब जाम पानी ही समझना। वहां शराब नहीं। वहां मस्ती नहीं।
मंदिरों में जाओगे और खाली लौट आओगे। शास्त्रों में जाओगे और खाली लौट आओगे। वहां मस्ती नहीं पाओगे। वहां डूब नहीं सकोगे। कोई शास्त्रों में डूबा? किताबों में कोई डूबा?

साकी से गर नजर न मिले हम न जाम लें
और जब मिले तो दौड़ कर दीवाना वार लें

और जैसे ही परमात्मा से नजर मिल गई--अरस-परस पिव के संग राती। वैसे ही डूब गए उसके रंग में। और जब उससे आंख मिल जाती है। तो दौड़ कर आदमी जाम ले लेता है।

एक आग है कि दिल में सुलगती है हर घड़ी
चाहो तो उसको गीत-गजल में उतार लें

यह जो आग है अभी, तब गीत-गजल बनने लगती है। ऐसी ही गीत-गजल तो ये दरिया
के शब्द हैं।

एक आग है कि दिल में सुलगती है हर घड़ी
चाहो तो उसको गीत-गजल में उतार लें
गम के लिए लिए पड़ी है अभी एक उम्र अश्क
आओ ये चंद लमहे तो हंस कर गुजार लें

गम को इतना मत पकड़ो। दुख को इतना मत जकड़ो। सींखचों को इस तरह मत अपना बनाओ। सदगुरु के पास चलो, कुछ लमहे ही सही! कुछ क्षण ही सही!

गम के लिए पड़ी है अभी एक उम्र अश्क
आओ ये चंद लमहे तो हंस कर गुजार लें

अगर कहीं कोई मिल जाए जीवन का स्रोत तो उसके पास बैठ कर कुछ लमहे, कुछ क्षण हंस कर गुजार लेना। अगर एक बार हंसी का राज सीख गए तो हंसी फिर जाती नहीं। फिर तुम जहां भी रहोगे, हंसते रहोगे। फिर तुम जहां भी रहोगे, वहां आनंद का झरना बहता रहता है।
यही अर्थ हैः अरस-परस पिव के संग राती। डूब गए उसी के रंग में। हो गए उसी के रंग। पतंगा डूब गया अग्नि के रंग में। हो गया अग्नि का रंग। ये गैरिक वस्त्र उसी अग्नि के रंग हैं।
... होए रही पतिबरता।

दुनिया भाव कछू नहीं समझे...
अब कुछ समझ में नहीं आता कि दुनिया क्या कहती है। अब दुनिया से कुछ प्रयोजन भी नहीं है।
... ज्यों समुंद समानी सरिता।
जैसे सागर में उतर गई नदी को अब क्या फिकर किनारों की और घाटों की? चाहे घाट बनारस के हों कि प्रयाग के। फिर क्या मतलब उन सब लोगों से, जो राह में मिले थे और जिन्होंने तरह-तरह की बातें कहीं थीं? किसी ने अच्छा कहा, किसी ने बुरा कहा, किसी ने दुर्जन, सज्जन कहा।
दुनिया भाव कछू नहिं समझें समुंद समानी सरिता।
मीन जायकर समुंद समानी जहं देखे तहं पानी।
और जैसे मछली तड़फ-तड़फ कर किनारे से वापस कूद गई सागर में, अब तो जहां देखती है वहीं सागर है। ऐसी ही दशा भक्त की है। ऐसी ही दशा पतिव्रता की है।
अब एक ही दिखाई पड़ता है। अब उस एक के अतिरिक्त कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। कहते हैं, मीरा जब वृंदावन गई तो वहां वृंदावन में जो कृष्ण का बड़ा मंदिर था, उसका पुजारी किसी स्त्री को भीतर प्रवेश नहीं करने देता था। रहा होगा स्वामी नारायण संप्रदाय के गुरु जैसा। वर्षों से कोई स्त्री प्रविष्ट न हुई थी। मीरा को तो कौन रोके? मीरा तो नाचती हुई मंदिर में प्रविष्ट हो गई। उसके नाच की मस्ती ऐसी थी कि द्वारपाल भी अवाक खड़े रह गए। रोकना भी चाहा तो न रोक सके। यह बात ही कुछ और थी। यह कोई स्त्री थोड़े ही थी। यहां कहां स्त्री और पुरुष! वे ऐसे मस्त हो गए उसकी मस्ती में। उसके वीणा के स्वर उन्हें डुबा लिए।
भीड़ खड़ी थी। अनेकों के मन में ख्याल उठा कि यह झंझट हुई जा रही है। वह
जो पुरोहित है, बहुत नाराज हो जाएगा। मगर मीरा तो चली ही गई। मीरा तो भीतर पहुंच गई जहां कोई स्त्री वर्षों से नहीं गई थी। वहां जाकर वह नाचने लगी कृष्ण की मूर्ति के सामने। प्रधान परोहित बहुत नाराज हुआ। आया। उसने कहाः तुझे मालूम नहीं है स्त्री, कि इस कृष्ण के मंदिर में किसी स्त्री के लिए कोई प्रवेश नहीं है? यह तूने जघन्य पाप किया है।
पता है मीरा ने क्या कहा? मीरा खूब हंसी और उसने कहाः मैं तो सोचती थी कृष्ण के अतिरिक्त कोई पुरुष ही नहीं है। तो एक आप भी पुरुष हैं? जो अभी तक पतिव्रता नहीं हुए!
पानी पड़ गया होगा उस पुरोहित पर। खूब बात कही। जो कहनी थी वही बात कही। और फिर मीरा नाचने लगी। फिर किसी की हिम्मत न पड़ी उससे कुछ कहने की। उसने यह कहाः कृष्ण के अतिरिक्त और कौन पुरुष है, जरा मैं भी देखूं। आप भी पुरुष हैं? तुम्हारा यह भ्रम अभी मिटा नहीं? हम सब उसी एक प्यारे के प्रेमी हैं।
मीन जायकर समुंद समानी जहं देखे तहं पानी।
अब तो एक ही दिखाई पड़ता है सब तरफ। एक ही पुरुष दिखाई पड़ता है। एक ही अविनाशी।
काल-कीर का जाल न पहुंचे निर्भय ठौर लुभानी।
और अब समय का और मृत्यु का जाल इस मछली को पकड़ नहीं सकता।
काल-कीर का जाल न पहुंचे निर्भय ठौर लुभानी।
अब तो आ गई अभय पद में। अब कहां, अब कैसी मृत्यु! परम से मिलन हो गया।
अमृत में डुबकी लग गई।
बावन चंदन भंवरा पहुंचा जहं बैठे तहं गंधा।
खोद लेना सोने के अक्षरों में अपने हृदय पर ये शब्द बावन चंदन भंवरा पहुंचा... चंदन के बगीचे में आ गया। चंदन के वन में आ गया भंवरा।
बावन चंदन भंवरा पहुंचा जहं बैठे तहं गंधा।
अब तो जहां बैठ जाता है वहीं गंध है। इधर बैठे इधर, उधर बैठे उधर, इस वृक्ष पर तो, उस वृक्ष पर तो। यह चंदन का वन है। भंवरा बड़ा चकराया होगा।
क्योंकि भंवरा तो बेचारा खोजता-फिरता है। जहां गंध होती है वहां जाता है।
इधर बैठा, गंध पी ली। गंध समाप्त हो गई, दूसरे फूल पर गया। कई फूलों में गंध होती ही नहीं, सिर्फ धोखा होता है। साध स्वांग अस आंतरा। कई फूल तो सिर्फ

कागजी होते हैं। स्वांग भर होता है। फूल में कोई गंध नहीं होती। मौसमी फूल होते हैं। नाम मात्र को फूल होते हैं। कहने भर को फूल होते हैं।
तो भंवरे को खोजना पड़ता है। इस फूल जाता, उस फूल जाता। कभी लाख में खोजते को एक मिलता है, जिसकी गंध में डूबता है। मगर वह भी चुक जाती है। थोड़ी बहुत देर में वह गंध भी उड़ जाती है। फिर खोज शुरू हो जाती है।
संसार में आदमी ऐसा ही खोजता है भंवरे की तरह। एक स्त्री सुंदर दिखाई पड़ती है। मगर कितनी देर सुंदर रहेगी? अगर मिल गई तो जल्दी ही साधारण हो जाएगी। दो-चार दिन सौंदर्य चलता है। चमड़ी कितने दिन आकर्षण में रखती है? सुंदर कार दिखाई पड़ गई, खरीद लिया। कितनी देर सुंदर रहेगी? दस-पांच दिन। खड़ी-खड़ी पोर्च में साधारण हो जाती है। तुमने कितनी ही चीजों पर तो बैठ कर देख लिया। गंध कितनी देर टिकती है? तुम बैठे नहीं कि गंध गई नहीं।
इस संसार में तो हम भंवरे की तरह हैं। और यहां हजार फूलों में कभी कोई एकाध फूल है जिसमें थोड़ी-बहुत गंध होती है। वह भी क्षणभंगुर होती है। वह भी टिकती नहीं। वह भी दूर से बड़ी लुभावनी, पास आने पर बिल्कुल समाप्त हो जाती है। बड़ी मृग-तृष्णा जैसी।
बावन चंदन भंवरा पहुंचा...
दरिया कहते हैंः जब गुरु के द्वार से प्रवेश करके कोई परमात्मा के सागर में उतर जाता है तो ऐसी घटना घटती है जैसे भंवरा चंदन के वन में पहुंच गया।
बावन चंदन भंवरा पहुंचा जहं बैठे तहं गंधा।
बड़ी बेबूझ बात। गंध ही गंध है। गंध का सागर है। जहां बैठो तहां है। अब कहीं चुनने की जरूरत नहीं है। जहां हो वहीं। यहां बैठो तो, वहां बैठो तो।
और एक ही गंध है। और एकरस। जहं बैठे तहं गंधा।
उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा...
अब क्या फायदा उड़ने से? उड़ता था संसार में क्योंकि गंध क्षणभंगुर थी। मिली-मिली, गई। सुख क्षणभंगुर था। आया नहीं कि गया। और हर सुख के पीछे दुख छिपा था। और हर फूल के पीछे कांटे छिपे थे।
उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा...
अब क्या चलना, अब क्या फिरना! अब कहां जाना, अब कहां आना!
इस स्थिरता का नाम समाधि है। इसके कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा। जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गई, स्थिरधी कहा, जिसकी धी स्थिर हो गई, निष्कंप हो गई। मगर यह निष्कंप होती तभी है--बावन चंदन भंवरा पहुंचा... जब भंवरा चंदन के वन में पहुंच जाता है। उसके पहले नहीं होती।
उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा निस दिन करत अनंदा।
अब तो दिन हो कि रात, आनंद ही आनंद है। जागे कि सोए, गंध ही गंध में डूबा रहता है।
जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोई।
ऐसी ही घटना घट जाती है राम-भजन में डूबने वाले को। धीरे-धीर-धीरे द्वार खुलता है। चंदन का वन प्रकट हो जाता है।
जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोई।
समझना इस सूत्र को। जिसने जाना है वह सदा यही कहेगा, राम को पहले बुला लो, भरम-वासना खो जाएगी। जिसने नहीं जाना है वह कहेगा, भरम-वासना पहले खोओ तब राम आएगा। इसे कसौटी समझो। कसौटीः साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरु सांच। यह अंतर इतना है जितना झूठ और सच का; जितना पृथ्वी और आकाश का।
जो तुमसे कहे, पहले गलत को छोड़ दो फिर ठीक मिलेगा; गलत को छोड़ोगे तो ही ठीक मिलेगा, समझ लेना कि उसे अभी कुछ भी पता नहीं है। जो तुमसे कहे, ठीक की तरफ लगो, गलत से क्या उलझते हो? गलत से उलझ कर क्या मिलेगा? गलत को पाकर भी कुछ नहीं मिलता, गलत से उलझ कर भी कुछ नहीं मिलता। गलत में कुछ है ही नहीं तो मिलेगा कैसे?
धन को इकट्ठा कर लो तो कुछ नहीं मिलता। यह तो तुमसे कहा, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने। तुम धन को छोड़ भी दो तो भी कुछ नहीं मिलता। धन में कुछ है ही नहीं। मिलेगा कैसे? अब यह बड़े मजे की बात है कि जो लोग कहते हैं धन में कुछ नहीं मिलता, वे भी कहते हैं कि धन छोड़ो तो कुछ मिलता है। तब तो

फिर धन में कुछ मिलता है। तब तो बात... धन छोड़ने से मिलता है तो भी मिलता तो धन से ही है। तो जिनके पास धन नहीं है। उनको मिलेगा या नहीं? उनके पास तो छोड़ने को कुछ नहीं है।
कबीर को मिला कि नहीं? महावीर को मिल गया धन छोड़ने से। और बुद्ध को मिल गया राज्य छोड़ने से। कबीर को कैसे मिला? दरिया को कैसे मिला? इस गरीब दरिया को कैसे मिला? ये दरिया तो धुनिया थे। लेकिन दरिया ने कहा हैः जो मैं धुनिया तो भी राम तुम्हारा। माना कि धुनिया हूं, इससे क्या फर्क पड़ता है? हूं तो तुम्हारा ही। इसमें तो कोई कमी नहीं। बुद्ध होंगे राजा के बेटे होंगे, रहे होंगे। मैं धुनिया का बेटा हूं। जो मैं धुनिया तो भी राम तुम्हारा। इससे क्या फर्क पड़ता है? हूं तो तुम्हारा ही। गरीब धुनिया सही! धन के होने से भी नहीं मिलता, धन के छोड़ने से भी नहीं मिलता। हां, जब मिल जाता है तो धन पर पकड़ छूट जाती है। और जब धन पर पकड़ छूट जाती है तो दोनों पकड़ छूट जाती हैं--भोग की भी और त्याग की भी। दोनों पकड़ हैं। और तब यह भी अकड़ नहीं रह जाती कि मेरे पास धन है और यह भी अकड़ नहीं रह जाती कि मैंने लाखों पर लात मार दी। ये दोनों अकड़ धन की ही अकड़ हैं।
जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोई।
सब खो गया। एक राम की सुरति... सुरति गहरी होती गई, भजन बन गया। राम ही श्वास-श्वास में समा गया। अपने आप भ्रम-वासना का जगत शांत होता गया, शून्य हो गया।
पारस-परस भया लोह कंचन बहुर न लोहा होई।
और एक बार पारस के परस से सोना हो जाए लोहा, तो फिर कोई उपाय नहीं उसे लोहा बनाने का। जो पाया जाता है वह कभी फिर खोता नहीं। ज्ञान के इस अभियान में तुम जहां पहुंच जाते हो वहां से नीचे नहीं गिर सकते।
पारस-परस भया लोह कंचन बहुर न लोहा होई।
बस एक बार यह क्रांति घट जाए, तुम किसी अग्नि के पास आ जाओ, तुम किसी गुरु नाम की महामृत्यु के पास आ जाओ। एक बार तुम अपने लोहे होने का मोह छोड़ दो और एक बार तुम मिटने को तैयार हो जाओ--
पारस-परस भया लोह कंचन बहुर न लोहा होइ।
पारस परसा जानिए जो पलटे अंग-अंग।
अंग-अंग पलटे नहीं, तो है झूठा संग।।

आज इतना ही।

कानों सुनी सो झूठ सब
दसवां प्रवचन

मीन जायकर समुंद समानी

पहला प्रश्नः संन्यास मनुष्य की संभावना है या कि आत्यंतिक नियति? कृपा करके कहिए।

नियति की भाषा खतरनाक है। नियति की भाषा का उपयोग आदमी सिर्फ जीवन को स्थगित करने के लिए करता रहा है। जैसे ही तुमने कहा, नियति है फिर तुम्हें कुछ भी नहीं करना। होगा, अपने से होगा, जब होना है तब होगा।
संभावना है संन्यास, नियति नहीं। नियति का अर्थ है, होगा ही। संभावना
का अर्थ है, चाहो तो होगा; न चाहा तो न होगा। बीज का वृक्ष होना नियति नहीं है, संभावना है। बीज बिना वृक्ष हुए भी रह जा सकता है। सभी बीज वृक्ष नहीं होते, बहुत से बीज तो बीज ही रह कर मर जाते हैं। फिर सभी वृक्षों में फूल नहीं आते, बहुत से वृक्ष रह कर मर जाते हैं।
नियति का अर्थ होता है, अनिवार्य। होगा ही। टलेगी नहीं बात। चाहे कुछ
हो लेकिन यह घटना होकर रहेगी। जैसे मृत्यु नियति है। तुम कुछ करो, न करो, मृत्यु घटेगी। जन्म के साथ ही घट गई। देर-अबेर होने ही वाली है। इस जीवन में मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी नियति नहीं है। और सब हो सकता है, न भी हो। हो भी सके, न भी हो। तुम पर निर्भर है। तुम्हारे भीतर परम काव्य पैदा होगा या नहीं होगा, बस संभावना मात्र है, बीज मात्र है। बीज तो तुम लेकर आए हो। गीत का झरना फूट सकता है। वीणा तुम्हारे हृदय में पड़ी है, झंकार उठ सकता है। मगर उठेगा ही, ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है।
अनिवार्यता तो यांत्रिकता है। और जहां अनिवार्यता है वहां स्वतंत्रता भी नहीं है। अगर संन्यास होना है कि फिर तुम्हारे स्वतंत्रता क्या रही? फिर तुम्हारी मालकियत क्या रही? फिर तो एक मजबूरी हुई। स्वामित्व न हुआ, एक तरह की यांत्रिक गुलामी हुई।
नहीं, संन्यास नियति नहीं है; बीज-रूप संभावना है। सम्हालोगे, सम्हल जाएगी बात। ठीक भूमि दोगे, पानी जुटाओगे, सूरज की धूप आने दोगे, श्रम करोगे तो घटेगी। नहीं तो बीज कंकड़ की तरह पड़ा रह जाएगा। और जो बीज बीज ही रह गया, उसमें और कंकड़ में कोई भेद थोड़े ही है! भेद तो तभी होता जब बीज वृक्ष बनता। भेद तो तभी पता चलता वृक्ष बन कर, आकाश में उठ कर, हजार ढंग से प्रकट होकर। प्रकट होता तो भेद पता चलता। बीज बीज ही रह गया तो कंकड़ और बीज में क्या फर्क है? कंकड़ भी वृक्ष नहीं हुआ, बीज भी वृक्ष नहीं हुआ। बीज वृक्ष हो सकता है लेकिन तुम्हारे बड़े सहयोग की जरूरत होगी।
तुम उलटे विरोध करते हो। तुम्हारे जीवन में परम घटे, इसके लिए तुम सहयोग तो करते नहीं, तुम हजार तरह की बाधाएं खड़ी करते हो। तुम बीज को जमीन दो ऐसा तो नहीं, बीज के आस-पास पत्थर जुटाते हो। तुम उलटा ही करते हो। प्रेम का बीज खिलना चाहिए, तुम धन इकट्ठा करते हो। धन पत्थर की तरह प्रेम के आस-पास इकट्ठा हो जाएगा। समर्पण की घटना घटनी चाहिए, समर्पण की जगह तुम अहंकार की शिलाएं इकट्ठी करते हो, चट्टानें इकट्ठी करते हो।
तुम जैसे जीते हो, उस ढंग से तो संभावना मर जाएगी, गर्भपात हो जाएगा। संन्यास का कभी जन्म न होगा। और मैं न कहूंगा कि नियति है क्योंकि नियति कहते ही तुम निश्चिंत हो जाते हो। तुम कहते हो, चलो बोझ उतरा। होना ही है, बात गई।
अब यह भी समझ लेना कि आदमी कितना बेईमान है। जीवन के परम सिद्धांतों
का भी बड़ा दुरुपयोग कर लेता है। आदमी ऐसा है कि उसके हाथ में जो पड़ जाता है उसका गलत उपयोग करता है। देने वाले जो भी देते हैं, इसलिए देते हैं कि ठीक उपयोग हो सके। जिन्होंने नियति की भाषा बोली, परम ज्ञानी थे। उनका क्या प्रयोजन था?
ऐसे लोग हैं, जिन्होंने कहा नियति है। और उन्होंने क्यों कहा है? उन्होंने कहा है कि तुम्हें यह भरोसा आ जाए कि नियति है तो शायद तुम श्रम करने में लग जाओ। जो होने ही वाला है, फिर हो ही जाने दो। जरूर किसी ने कहा

है कि नियति है; बहुतों ने कहा है नियति है। बहुतों ने कहा है, जो होना है वह भाग्य है; होकर रहेगा। मगर उनका प्रयोजन क्या था?
उन महाज्ञानियों ने इसलिए कहा था कि होकर रहेगा, होने ही वाला है। यह इतना जोर इसलिए था ताकि तुम उठ आओ नींद से कि जो होने ही वाला है फिर उसे हो ही जाने दो। फिर देर क्यों? फिर कल के लिए क्यों टालना? जो कल होने वाला है, आज हो जाए। फिर कल तक क्यों दुख पाना। फिर कल तक क्यों संताप झेलना? फिर आज ही हो जाने दें। फिर आज ही उसे स्वीकार कर लें। होगा ही तो फिर हम बाधाएं क्यों खड़ी करें? हमारी बाधाएं तो सब टूट जाएंगी और घटना घटेगी। ज्ञानियों ने कहा था कि तुम बाधा मत खड़ी करना--यह प्रयोजन था जब उन्होंने कहा कि संन्यास नियति है। और ज्ञानियों ने इसलिए कहा था कि अगर तुम्हें नियति की समझ आ जाए तो तुम अतीत से मुक्त हो जाओ। जैसे ही तुम्हें यह समझ में आ जाता है कि कल किसीने गाली दी, वह होने ही वाली ही थी तो गाली देने वाले का कोई दायित्व नहीं रहा। होना ही था। यह गाली तुम्हें मिलनी ही थी। यह तुम्हारा भाग्य था। तो तुम्हारे मन में वैमनस्य नहीं उठता, क्रोध नहीं उठता, प्रतिशोध नहीं उठता क्योंकि जो होना था, हुआ। राह से तुम निकलते थे और एक वृक्ष की शाखा टूट गई और तुम्हारे सिर पर गिर पड़ी और खून निकल आया तो तुम वृक्ष पर मुकदमा नहीं चलाते, न गालियां देते हो, न वृक्ष को लेकर कुल्हाड़ी पहुंच कर काट देते हो। तुम कहते हो यह होना था। संयोग की बात थी कि मैं वृक्ष के नीचे था और वृक्ष की डाल टूट गई।
जब कोई आदमी तुम्हें गाली देता है तब तुम नहीं कहते कि संयोग की बात थी। कि मैं पास था और आदमी को क्रोध आ गया और उसने मुझे गाली दे दी उसकी डाली टूट कर मेरे सिर पर लग गई।
ज्ञानियों ने कहा है, जो होना था, हुआ। क्यों? इसलिए की तुम्हें अगर यह बात ठीक से बैठ जाए कि जो होना था वही हुआ है तो फिर क्या शिकायत है? फिर किससे शिकायत? फिर कैसा क्रोध? फिर यह गांठ बांध कर कौन चलेगा बदला लेने की, प्रतिशोध की? फिर तुम्हारे जीवन में गांठें न होगी। तुम सरल हो जाओगे। जो होना था वही हुआ है। तुम्हारे भीतर परम स्वीकार होगा। और जो होनेवाला है वही होगा तो अन्यथा मत करो। अन्यथा किया गया श्रम व्यर्थ जाएगा।
तो जरूर ज्ञानियों ने कहा है कि नियति है। मगर उनका प्रयोजन और था। तुमने जब पकड़ा इस शब्द को, तुमने प्रयोजन बदल दिया। तुमने उलटी ही कर दी बात। उन्होंने कहा था, जो कल होनेवाला है, होने ही वाला है, उसे आज हो जाने दो। तुमने कहा, जो होने ही वाला है, उसकी हम फिकर ही क्यों करें? जब होना होगा, हो जाएगा।
तुमने अर्थ बदल दिए। अर्थ विपरीत हो गए। उन्होंने कहा था, कल पर मत टालो अब। आज ही ले लो। आज ही उठ जाने दो। आज ही क्रांति घट जाने दो। तुमने कहा, जब होने ही वाला है तो जल्दी क्या है। फिर जल्दी क्यों करें? कल तक मजा-मौज कर लें, फिर कल तो होगा ही। इतनी देर तो मजा-मौज कर लें। इतनी देर तो संसार का सुख ले लें। फिर तो होने ही वाला है। फिर होने ही वाला है तो फिर जल्दी क्या? जितनी देर तक टाल सकें, टालें। जब न टाला जा सकेगा, जब होना ही होगा तो हो ही जाएगा। तुमने यह अर्थ लिया।
ज्ञानियों ने कहा था कि कल तक हो गया है अतीत, उसे स्वीकार लेना ताकि तुम्हारे मन पर उसका कोई बोझ न रह जाए। इस महाकुंजी को ख्याल में रखो। अगर तुम स्वीकार कर लो तो फिर बोझ कहां है? तुम अस्वीकार करते हो, उसी से बोझ है। तुम कहते हो, ऐसा न होता तो अच्छा था। ऐसा हो जाता तो अच्छा था। मैंने यह धंधा किया होता, यह नहीं किया होता तो लाभ हो जाता। इस वक्त खरीद कर ली होती, इस वक्त बेच कर दी होती तो लाभ हो जाता। ऐसा न किया उलटा कर बैठा, हानि में पड़ गया। ऐसा करता तो लाभ, ऐसा कर बैठा तो नुकसान।
तो तुम बड़ी चिंताएं लेते हो। अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए, जो होना था, वही हुआ है, वही हो सकता था; अन्यथा का कोई उपाय नहीं है तो तुम्हारे भीतर तथाता का जन्म होगा। तुम कहोगे, ठीक। कैसी चिंता! तुम पीछे लौट-लौट कर नहीं देखोगे। जब अन्यथा हो ही न सकता था तो चिंता कहां? लौट कर देखना कहां? प्रयोजन क्या? जो हो गया, हो गया। होते ही समाप्त हो गया।

ज्ञानियों ने कहा था कि जो होता है वही होता है, ताकि तुम निर्भार हो जाओ अतीत से। तुमने क्या किया? तुम अतीत से तो निर्भार नहीं हुए, तुमने यह प्रयोग तो नहीं किया इस नियति के शब्द का, तुम उलटे अकर्मण्य हो गए। तुमने कहा जो होता है वह होता है। तो हमारे किए क्या होगा? तुम बैठ गए।
यह देश अकर्मण्य हुआ। यह देश निष्क्रिय हुआ। यह देश महाआलसी हो गया।
आज जमीन पर इस देश के भिखमंगे और गरीब होने का और क्या कारण है? सारी दुनिया धीरे-धीरे संपन्न होती चली गई। यह देश कभी सबसे ज्यादा संपन्न देश था। सोने की चिड़िया था कभी। यही सोने की चिड़िया आज मिट्टी होकर पड़ी है, मिट्टी की चिड़ियाएं सोने की होकर उड़ रही हैं।
क्या हुआ इस देश को? कौन सा दुर्भांग्य आया इस पर? यह बहुमूल्य शब्दों
का दुरुपयोग हुआ। जिन्होंने कहा नियति, उन्होंने कहा था तथाता पैदा हो। तुम्हारे भीतर तथाता तो पैदा न हुई, अकर्मण्यता पैदा हुई। तुमने कहा, फिर ठीक है, फिर बैठे रहो। बाबा मलूकदास तो कह गए न!
अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।
तो बैठो। जब दाता राम ही है तो फिर क्या चिंता। फिर देगा जब देना है। नहीं देना तो नहीं देगा।
मलूकदास का यह अर्थ नहीं है। और मलूकदास की पंक्ति में तुमने गलत अर्थ पढ़ लिए। तुम सदा ही संतों में गलत अर्थ पढ़ते रहे इसीलिए तो तुम भटके हो। अगर एक भी बार तुम्हारे जीवन में सही अर्थ की किरण उतर गई होती तो तुम कहीं और होते। तुम उत्तुंग शिखरों पर होते। तुम स्वर्ण शिखरों को छू लेते। तुम कहीं दूर विराट आकाश में उड़ते होते। जमीन पर कीड़ों की तरह न घसिटते।
मगर तुम हर जगह गलत को पढ़ने के आदी हो। मैं समझता हूं कि अड़चन कहां से आती है। तुम गलत हो। जो भी तुम्हारे हाथ पड़ता उससे तुम गलत अर्थ निकाल लेते हो। जो भी तुम्हारे हाथ में पड़ता है, तिरछा हो जाता है। तुम्हारा हाथ छुआ नहीं कि तिरछा हो जाता है। तुम्हारे हाथ लगा नहीं कि तुम उसमें हजार तरह के उपद्रव खड़े कर देते हो। तुम ठीक को पकड़ने में असमर्थ ही मालूम पड़ते हो।
इसलिए दरिया जैसे गुरु कहते हैं, सत्संग। तुम तो गलत ही कर लोगे। जिसको ठीक मिल गया गया हो उसके पास बैठ कर समझना; उससे समझना। और वह जैसा कहे वैसा समझना। और अपनी समझ बीच-बीच में मत लाना। अपनी समझ को हटा ही देनाः अपनी बुद्धि को दर-किनार रख देना। जहां जूते उतार कर आते हो वहीं बुद्धि को भी उतार कर रख आना। यहां मेरे पास आओ तो बिल्कुल ही छोटे बच्चों की तरह अज्ञानी होकर आ जाना। धन्यभागी हैं अज्ञानी क्योंकि कम से कम एक बात उनमें खूबी की है, वे बिगाड़ेंगे नहीं। जो दिया उसको वैसा ही ग्रहण करेंगे। उनके पास व्याख्या करने के लिए कोई स्मृति नहीं, कोई शास्त्र नहीं है। उनके पास शास्त्र की धूल नहीं है। उनका दर्पण विशुद्ध है।
यह शब्द तो महत्वपूर्ण है। तुम्हें मेरी बात समझ में आई? नियति शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। लेकिन आदमी ने जो उसका उपयोग किया है वह इतना गलत हो गया है कि मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि संन्यास अपने आप नहीं घटेगा। जानते हुए कि अपने आप घटता है, मैं तुमसे यह कहता हूं कि संन्यास अपने आप नहीं घटेगा। भलीभांति जानते हुए कि जो घटता है वह अपने आप ही घटता है, फिर भी तुमसे मैं कहता हूं कि तुम नियति के शब्द में मत पड़ना। तुम्हें उससे लाभ नहीं होगा। नियति शब्द बहुत बड़ा है। तुम अभी उतने बड़े शब्द तक न उठ पाओगे। तुम उस शब्द को खींच लोगे अपने गड्ढे में और उसको छोटा कर लोगे।
भाग्य शब्द बहुत बड़ा है। भाग्यशाली ही भाग्य शब्द को समझने में समर्थ
हो पाते हैं। अधिक अभागे तो भाग्य शब्द का जहर बना लेते हैं। इसलिए कहता हूं, समझ सको तो जो होता है वही होता है। मगर अभी समझ कहां? किसी दिन समझोगे। ज्ञानियों की भाषा ज्ञानी होकर ही समझोगे। तब कोई अड़चन न रहेगी। तब तुम्हें दोनों बातें समझ में आ जाएंगी कि मैंने क्यों कहा कि संभावना है, और क्यों साथ ही यह भी जोड़ दिया कि है तो नियति ही। ये दोनों बातें

तुम्हें विरोधी लगती हैं अभी। क्योंकि तुम जहां खड़े हो, वहां से इन दोनों में सामंजस्य और समन्वय देखना कठिन है।
वह भी तुम्हें मैं कहूं कि क्यों इनमें सामंजस्य है। जैसे तुम हो, वहां तो संभावना शब्द ही सार्थक है। जैसा मैं हूं वहां नियति शब्द सार्थक है। तुम जिस तल पर खड़े होकर देखते हो जीवन को, वहां से तो संभावना ही तुम्हें आगे ले जाएगी। मुझे अब कहीं आगे जाना नहीं है इसलिए अब संभावना शब्द का कोई अर्थ नहीं है मेरे लिए। फूल खिल गए हैं। अब मैं जानता हूं फूल के खिलने की वजह से कि जो हुआ, अपने से हुआ है। आदमी के किए क्या कुछ होता है? अहंकार जिस दिन मिट जाएगा, उस दिन तुम भी यही जानोगे कि आदमी के किए क्या कुछ हो सकता है?
सबके दाता राम, दास मलूका कह गए।
मगर यह आखिरी बात है। यह शिखर पर पहुंचे हुए आदमी की बात है। यह मलूकदास अदभुत आदमी है। ये संतों में भी विरले संत हैं। यह तो बड़ी ऊंचाई की बात है। उस ऊंचाई के तल पर जब तुम्हारी चेतना पंख मारेगी तो ही तुम समझोगे। जहां तुम अभी खड़े हो, वहां संभावना शब्द को पकड़ो। ताकि किसी दिन तुम उस जगह पहुंच सको, जहां नियति शब्द समझ में आ जाए।
मेरी नजर तुम पर है। तो कई बार मैं वह बात भी तुमसे कहूंगा जो तुम्हारे लिए कल्याणकारी है--चाहे सौ प्रतिशत सच न भी हो। निन्यानबे प्रतिशत सच हो, चलेगा; तुम्हारे लिए कल्याणकारी हो, वह जो एक प्रतिशत उसमें असच है, जिस दिन तुम जानोगे उस दिन छोड़ दोगे, उसमें कुछ अड़चन नहीं है बहुत। लेकिन सौ प्रतिशत सच बात तुमसे कह दूं और तुम इंच भर भी आगे न बढ़ो तो वह सत्य तुम्हारे लिए महाअसत्य हो गया।

दूसरा प्रश्नः झूठ इतना प्रभावी क्यों है?

झूठ राजनीतिज्ञ है। झूठ कूटनीतिज्ञ है। झूठ प्रलोभन देने में कुशल है। झूठ कुशल विक्रेता है। होना ही पड़ेगा झूठ को। सत्य चुपचाप आकर खड़ा हो जाता है बिना विज्ञापन के। झूठ हजार तरह के विज्ञापन करता है, क्योंकि झूठ को अपने पर तो भरोसा नहीं है। उसे तो पता है, विज्ञापन के सहारे चल जाए तो चल जाए। झूठ के पास अपने पैर नहीं है। झूठ अगर थोड़ी-बहुत यात्रा भी करता है तो बैसाखियों के सहारे करता है। बैसाखियां... सत्य को तो जरूरत नहीं है उनकी।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम्हें झूठ तो समझ में आ जाता है क्योंकि विज्ञापन करता है, प्रलोभन देता है, आश्वासन देता है। बड़े बुलावे खड़े करता है, बड़े सब्जबाग दिखलाता है। बड़ी कल्पनाओं और सपनों में तुम्हें ले जाता है।
और सत्य निपट खड़ा हो जाता है। पुकारता भी नहीं द्वार पर दस्तक भी नहीं देता, शोरगुल भी नहीं मचाता, बैंडबाजे भी नहीं बजाता। विज्ञापन करता ही नहीं, प्रलोभन भी नहीं देता, बस सामने आकर खड़ा हो जाता है। और जब सत्य कुछ भी नहीं बोलता, सत्य चुप है, मौन है तो तुम प्रभावित नहीं होते।
तुम्हें तो चाहिए कोई तुम्हें फुसलाए, कोई तुम्हें समझाए, कोई तुम्हें लुभाए। झूठ ये सब उपाय करता है। सत्य कोई उपाय नहीं करता। सत्य उपाय ही नहीं करता। और सदियों तक झूठ ने हमें अपनी व्यवस्था में पारंगत कर दिया है।
तुम ऐसा ही समझो... बर्ट्रेंड रसल ने अपनी किताब में उल्लेख किया है कि
एक बार एक प्रयोग किया गया। एक टुथपेस्ट के पक्ष में दस वैज्ञानिकों ने अपने दस्तखत किए लेकिन उसकी बिक्री नहीं बढ़ी। वैज्ञानिकों के नाम ही कोई नहीं जानता था। रहे होंगे बड़े वैज्ञानिक, मगर उनके नाम कौन जानता था? लोगों ने देख लिए मगर कोई प्रभावित नहीं हुआ। और यह टुथपेस्ट सच में वैज्ञानिक विधि से बनाया गया था।
फिर एक दूसरे टुथपेस्ट पर, जो कि बिल्कुल ही झूठ था, जिसमें कुछ भी सार नहीं था, यह तो प्रयोग ही किया गया था, दस अभिनेता-अभिनेत्रियों ने दस्तखत किए और कहा कि उनके दांतों का सौंदर्य इसी टुथपेस्ट के कारण है। उसकी खूब

बिक्री होने लगी। वैज्ञानिक की बात पर किसी को भरोसा नहीं है। वैज्ञानिक ने सीधा-सादा कह दिया। और वैज्ञानिक ने अपने ढंग से कहा। उसने कहाः इसमें इतना फलां तत्व है, इसमें इतना फलां तत्व है। दांतों को मजबूत करने की इसमें इतनी संभावना है, मसूड़ों को मजबूत करने की ऐसी संभावना है। वह विज्ञान की भाषा बोला, मगर विज्ञान की भाषा किसको समझ में आती है? उसने रसायन की बात कही।
अभिनेत्री ने वह भाषा बोली, जो तुम समझते हो। अभिनेत्री खिलखिला कर खड़ी हो गई। नग्न खड़ी अभिनेत्री। खिलखिलाती हुई अभिनेत्री। उसके मोतियों जैसे चमकते दांत। वह भाषा तुम्हें समझ में आ जाती है। तुम बच्चे हो। तुम्हें चित्र समझ में आते हैं, प्रत्यय समझ में नहीं आते। फिर तुम्हें यह समझ में थोड़े ही आया कि यह टुथपेस्ट खरीदना है। तुम जब इस टुथपेस्ट को खरीदे तो इस नंगी औरत को खरीदे। यह जो नग्न औरत खिलखिला कर हंसी थी इसकी हंसी बिकी। तुम्हें इसकी फिकर भी नहीं कि इसकी हंसी से टुथपेस्ट का कोई भी संबंध है।
मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया तो पत्रकार उसको मिलने आए और उन्होंने कहा कि तुम्हारी मजबूती, स्वास्थ्य, इस सबका राज क्या है? उसने कहाः जरा दो-चार दिन ठहरो, अभी राज नहीं बता सकता। चार-पांच दिन बाद बता सकता हूं। उन्होंने कहा कि हद की बात हो गई। चार-पांच दिन में ऐसा क्या हो जाएगा, जो तुम अपना राज बता सकोगे? और अभी क्यों नहीं बता सकते? सौ साल जी लिए हो तो राज तो तुम्हें पता होगा ही। उसने कहाः भई राज अभी मुझे भी पता नहीं। कई कंपनियों से बातचीत चल रही है। कोई कहता है मेरी विटामिन की गोली बिकवा दो। कोई कहता है कि मेरी डबलरोटी बिकवा दो, कोई कहता है मेरे बिस्कुट। अभी जरा दो-चार दिन रुको। जो सबसे ज्यादा दाम देगा वही मेरा राज है।
तुम कुछ एक भाषा समझते हो। तुम धोखे की भाषा समझते हो क्योंकि तुम धोखे की भाषा में ही जिये हो। झूठ तुम्हारे बहुत करीब पड़ता है। क्योंकि झूठ तुम्हारी उस रग को छूता है जिससे तुम प्रभावित होते हो।
इसलिए तुमने देखा? तुम जरा अपने विज्ञापन उठा कर देखो अखबारों के। तुम चकित होओगे कि क्या मामला है? कार बेचनी हो तो नग्न स्त्री को खड़ी करो... या अर्धनग्न; और अर्धनग्न नग्न से ज्यादा सुंदर होती है, ख्याल रखना। अर्धनग्न यह मत सोचना कि शिष्टाचार के कारण अर्धनग्न खड़ी की गई है। अर्धनग्न स्त्री नग्न स्त्री से ज्यादा सुंदर होती है। कुछ छिपा रहे तो उघाड़ने की संभावना रहती है। कुछ छिपा रहे तो कल्पना में तुम उघाड़ सकते हो। एकदम उघाड़ कर ही खड़ा कर दो तो कल्पना ठप्प हो जाती है। एकदम नग्न स्त्री सामने खड़ी हो तो कुछ करने को बचता नहीं। तो थोड़ी-थोड़ी छिपा कर खड़ा कर देते हो।
कार बेचनी हो तो नग्न स्त्री खड़ी करो, टुथपेस्ट बेचना हो तो नग्न स्त्री खड़ी करो। कुछ भी बेचना हो। जिससे कुछ भी संबंध नहीं... मैंने एक विज्ञापन देखा पार्कर फाउंटेन पेन एक नग्न स्त्री कंधे पर लिए खड़ी है। अब पार्कर फाउंटेन पेन को नग्न स्त्री से बेचने का क्या संबंध हो सकता है? मगर है, संबंध विज्ञापनदाता जानता है, संबंध है। पार्कर थोड़े ही खरीदते हो तुम, तस्वीर खरीदोगे।
और अगर नग्न स्त्री तुम्हें जंच गई... जो कि तुम्हें जंचती ही है। वही
तो भरोसा है विज्ञापनदाता का। तुम्हें जो जंचता है उसके साथ उसको जोड़ देता है जो बिकता है। जो बेचना है, तुम्हें जो जचता है उसके साथ उसका साहचर्य जोड़ देना है, एसोसिएशन जोड़ देना है, जो बेचना है।
सत्य सीधा-साधा आता है, निपट आता है। बिना विज्ञापन के आता है। तुम्हारी कमजोरियों को छूता नहीं, सीधा आकर खड़ा हो जाता है। सत्य तुम्हें नहीं जंचता। सत्य धार्मिक है। झूठ राजनीतिज्ञ है।
इसलिए राजनीतिज्ञ कितने आश्वासन देते हैं। और एक दफा चुनाव हो गया, फिर न लोग पूछते हैं कि उन आश्वासनों का क्या हुआ? और न राजनीतिज्ञ पूछते कि उन आश्वासनों का क्या हुआ! फिर बात खत्म हो गई। और आदमी कुछ ऐसा है कि सदियों से धोखा दिया जाए तो भी धोखा खाता चला जाता है। ज्यादा से ज्यादा

इतना होगा कि इस राजनीतिज्ञ के धोखे में अगले इलेक्शन में न आएगा तो दूसरे राजनीतिज्ञ के धोखे में आएगा।
और राजनीतिज्ञ शडयंत्र में हैं। एक जब असफल हो जाता है, दूसरा सफल हो जाता है। जब तक दूसरा असफल होगा तब तक पहला वाला तुम फिर भूल चुके होओगे कि इसने पहले क्या किया था। तब तक तुम फिर स्मृति तुम्हारी साफ हो गई; फिर विस्मरण हो गया। और लोगों की स्मृति बड़ी कमजोर है, दिन दो दिन चल जाए तो बहुत। तब तक तुम फिर राजी हो गए।
ऐसे सदियों से आदमी का शोषण हुआ है। इसलिए संत शायद तुम्हें न भी जंचे, पंडित-पुरोहित खूब जंचता है। क्योंकि पंडित-पुरोहित तुम्हारी भाषा बोलता है। संत अपनी भाषा बोलता है... सधुक्कड़ी। उसने कुछ जाना है, उस जानने को तुम्हारे सामने रख देता है। जंचे तो ठीक, न जंचे तो ठीक। जबरदस्ती जंचाने की चेष्टा नहीं होती। कोई आग्रह नहीं होता। कुछ बेचना थोड़े ही है। तुम खरीद ही लो, ऐसी कोई चेष्टा नहीं है। तभी चूक हो जाती है।
पश्चिम की दुकानों में सेल्समैन की जगह सेल्सवुमन आ गई है। पश्चिम की दुकानों में अब तुम्हें आदमी नहीं मिलता चीजें बेचता हुआ, स्त्रियां आ गई हैं। क्योंकि एक बात समझ में पड़ चुकी है कि स्त्री ज्यादा कुशलता से बेच देती है। उसमें भी सुंदर स्त्री की फिकर की जाती है।
अब एक जूता खरीदने गए हो तुम, अब इससे कोई संबंध नहीं है कि कौन बेचे। तुम्हें जूता देखना चाहिए कि कौन सा जूता कम काटता है, कौन सा जूता ज्यादा मुलायम है, कौन सा ज्यादा मजबूत है, कौन सा चलेगा, किसका तल्ला टिकेगा।
तुम्हें जूते पर ध्यान देना चाहिए। लेकिन तुम्हारा ध्यान चुकाना है।
जूते पर ध्यान गया तो जूते को बेचना मुश्किल हो जाएगा। तुम्हारा ध्यान चुकाने का सबसे ठीक उपाय एक सुंदर स्त्री को खड़ा कर दिया। वह जल्दी से तुम्हारा पांव पोंछने लगी।
अब तुम भूल गए जूता इत्यादि। अब तुम... जूते-वूते से कोई संबंध नहीं रहा। आए थे जूता पैर में पहनने, पड़ेंगे सिर पर अब। तुम भूल ही गए। अब तुम्हें होश ही नहीं है। और यह सुंदर स्त्री तुम्हारा पैर पोंछ रही है। और उसने तुम्हें एक जूता पहना दिया और वह दूर खड़ी होकर कहती है, कितना सुंदर लगता! आपके पैर पर बिल्कुल फबता। बहुत लोगों को इस जूते को पहने देखा मगर किसी के पैर पर ऐसा नहीं फबता। अब तुम्हें भीतर काट भी रहा है मगर अब तुम कुछ कह भी नहीं सकते। अब इस सुंदर स्त्री को कौन इनकार करे? अब कौन इनकार करे! तुम कहते हो, खूब! अच्छा तो लग रहा है, सुंदर है। जैसे-जैसे वह सुंदर स्त्री देखती है, तुम्हें जंचने लगा, दाम भी उसके भीतर बढ़ने लगे। बीस रुपये से तीस हुए, पैंतीस हुए, चालीस हुए। जब उसने देख लिया कि अब चालीस भी मांगे जा सकते हैं और तुम दोगे... ।
झूठ सब तरह की व्यवस्था करके आता है। सेना अपने चारों तरफ आयोजन करके आता है। सत्य ऐसे ही आकर खड़ा हो जाता है इसलिए तुम्हें जंचता नहीं। तुम्हें अगर परमात्मा मिल जाए तो शायद ही जंचे। शायद मिलता भी है। शायद कभी-कभी रास्ते पर तुम्हारा मिलन भी हो जाता है लेकिन तुम पहचान ही नहीं पाते। तुम्हारी आंखें जिसको पहचान सकती है उस ढंग से परमात्मा नहीं आता। तुम्हारी आंखों ने जो पहचान के रास्ते बनाए हैं उस तरह तो चोर-लफंगे ही आते हैं। उस तरह तो धोखेबाज, पाखंडी ही आते हैं।
प्रश्न महत्वपूर्ण है। तुम पूछते हो, झूठ इतना प्रभावी क्यों है? क्योंकि तुम्हें सत्य की पहले तो खोज नहीं। तुम्हें खोज कुछ और बात की है। तुम जब सत्य की भी बात करते हो तब भी तुम्हें सत्य की खोज नहीं है, तुम्हें खोज किसी और बात की है। तुम्हें जिसकी खोज है, झूठ उसका तुम्हें आश्वासन दिलवाता है।
समझो। सत्य को पाने से सुख मिलता है लेकिन सत्य तुम्हारे द्वार पर आकर यह नहीं कहेगा कि मैं तुम्हें सुख दूंगा। सत्य कहेगा, मैं सत्य हूंः आओ, डूब जाओ मुझमें। सुख मिलता है, यह दूसरी बात है। यह तो अनायास घट जाता है सत्य में प्रवेश करने से। लेकिन झूठ आकर यह नहीं कहता कि मैं सत्य हूं, झूठ आकर कहता है, मुझमें डूबो, सुख मिलेगा। फर्क समझना तुम। सत्य कहता है, मैं सत्य; इतना ही बिना किसी और प्रलोभन के। झूठ यह नहीं कहता कि मैं कौन

हूं। झूठ कहता है, मुझमें डूबो, सुख मिलेगा। खूब सुख मिलेगा। महास्वर्ग तुम्हें ले चलूंगा।
तुम्हारी आकांक्षा सत्य की तो है भी नहीं, तुम्हारी आकांक्षा सुख की है। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करेंगे, लाभ क्या होगा? ध्यान में भी लाभ? तो तुम गलत ही बात पूछ रहे हो। ध्यान में तो लाभ-लोभ छोड़ कर जाओगे तो पहुंचोगे। और ऐसा नहीं है कि ध्यान में लाभ नहीं है, परम लाभ है। लेकिन तुम लाभ-लोभ की भाषा से गए तो ध्यान में जा ही न सकोगे। तब तो तुम किसी से गंडे-ताबीज लोगे, किसी से कान फुंकवाओगे। किसी मदारी के चक्कर में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हें लोभ और लाभ पकड़ा हुआ है।
ध्यान के जगत में लोभ और लाभ की बात लानी होती है? ध्यान के जगत में तो वही प्रविष्ट होता है, जो कहता है खूब लोभ करके देख लिया और कुछ भी न पाया। आश्वासन बहुत मिले, पूरे कभी न हुए। बहुत झूठों के साथ चल कर देख लिया, कुछ भी नहीं पाया। पाने की दौड़ ही व्यर्थ हो गई है। इतने विषाद से भर गया है, कोई इतना हार गया है तो वह कहता है, कि अब नहीं दौड़ना लोभ में। अब मुझे कोई ऐसी दशा में पहुंचा दें जहां कोई लोभ न रह जाए, कोई लाभ न रह जाए। कोई दौड़ न रह जाए, कोई वासना, कोई तृष्णा न रह जाए। मुझे ऐसे चित्त की दशा की थोड़ी सी झलक दिला देना, जहां मैं अपने में तृप्त हो जाऊं; जहां मेरी कोई मांग न रह जाए।
तब तो शायद तुम ध्यान में जा सको। लेकिन तुम गलत ही सवाल पूछते हो। तुमने गलत सवाल पूछा, कोई न कोई गलत जवाब देकर तुम्हें प्रलोभित कर लेगा। तुम्हें मिल जाएगा कोई न कोई कहीं न कहीं तुम्हारी गर्दन को फांसी लगा देने वाला। वह कहेगा कि ठीक है, तुम्हें लाभ चाहिए? हम लाभ देंगे। तुम्हें व्यवसाय में, रोजगारी में बढ़ती होगी, जल्दी ही पदोन्नति होगी अगर ध्यान करोगे। ये फिजूल की बातें हैं लेकिन इनको भी बताने वाले लोग हैं।
महर्षि महेश योगी लोगों से यही कहते हैं, पदोन्नति भी होगी ट्रासेंडेंटल मेडिटेशन करने से। रोजगार भी अच्छा चलेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी। सफलता मिलेगी जीवन में। अगर अमरीका में उनके भावातीत ध्यान का इतना प्रभाव है तो उसका कोई और कारण नहीं है क्योंकि अमरीका बड़ा लोभी है।
भयंकर लोभ है। हर चीज को जांचने का एक ही उपाय हैः सफलता। क्या मिलेगा, इसका ठीक-ठीक हो तो कोई भी जाने को, किसी भी बात के साथ जाने को तैयार है। भारत में बहुत प्रभाव नहीं पड़ा; जरा भी नहीं पड़ा, लकीर भी नहीं खिंची। लेकिन अमरीका में बहुत प्रभाव पड़ा। क्योंकि अमरीका इस भाषा को समझा। अमरीकन मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि भारत और पूरब से जितने गुरु अमरीका आए उन्होंने अमरीका को बदला ऐसा तो नहीं दिखता, अमरीका ने उन्हें बदल दिया इतना साफ है। और यह बात साफ दिखती है। भारत से जितने गुरु अमरीका गए उनमें से किसी ने भी अमरीका को जरा नहीं बदला। मगर अगर तुम विश्लेषण करके गौर से देखो तो अमरीका ने उन्हें बिल्कुल बदल दिया। वे ऐसी भाषा बोलने लगे जो ज्ञानियों की भाषा ही नहीं है। वे ऐसी बातें करने लगे जो कि सिद्धों के जगत में कभी नहीं की गई। वे ऐसी चीजों के पीछे दौड़ने लगे, जिनमें संतों का कोई रस नहीं होना चाहिए। मगर यह होता है।
अमरीका बहुत बलशाली है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा अमरीका पहुंच कर बड़े कमजोर सिद्ध होते हैं। अमरीका जीत जाता है। और कैसे जीत जाता है? बात सीधी-साफ है। अमरीकन आदमी को प्रभावित करना हो तो लोभ की बात करो। और तुमने लोभ की बात कि तो फिर सत्य की बात हो ही नहीं सकती। लोभ के पीछे झूठ जाता है। लोभ की भाषा झूठ को भाषा है। और तुम लोभ समझते हो इसलिए झूठ प्रभावी हो जाती है।
और फिर एक-एक इंच दूसरी चीजें सरकती आती हैं। हर चीज एक-दूसरे से जुड़ी है। और मजा यह है कि चूंकि ये बातें झूठ भी नहीं हैं इसलिए इनको बोलने वाला सोचता है, कोई झूठ तो नहीं बोल रहा है। जैसे परोक्ष परिणाम होते हैं, मगर सीधा उन्हें ध्यान से जोड़ना नहीं चाहिए। जैसे, यह बात सच है, अगर तुम ध्यानी हो जाओ तो तुम्हारे जीवन में ज्यादा सफलता घटित होगी, इसमें कोई शक नहीं है। इसलिए नहीं कि ध्यान से सफलता का कोई संबंध है बल्कि इसलिए कि ध्यान तुम्हें शांत कर देगा। और शांत आदमी जो करेगा, जैसा करेगा उसमें

भूल-चूक कम होगी। ध्यान शांति देगा, सफलता नहीं देगा, नौकरी में तरक्की नहीं देगा। ध्यान शांति देगा, परम विश्राम देगा। इसके परिणाम होंगे। इसके परिणाम तुम्हारे सारे जीवन पर होंगे।
तुम अगर चित्रकार हो तो तुम बेहतर चित्रकार हो जाओगे। तुम अगर मूर्तिकार हो तो तुम्हारी मूर्ति अब नये रंग-रूप में उभरेगी। तुम अगर संगीतज्ञ हो तो तुम्हारे संगीत में नये प्राण आ जाएंगे। तुम अगर दुकानदार हो तो तुम्हारे ग्राहक से संबंध बड़े मधुर हो जाएंगे। तुम अगर मालिक हो तो नौकर और तुम्हारे बीच एक भाईचारा खड़ा होगा, जो कभी भी नहीं था। तुम अगर शिक्षक हो तो इन बच्चों जिनको तुम पढ़ाते हो और तुम्हारे बीच एक नया संबंध जुड़ेगा, एक नया प्रेम।
इस प्रेम के माध्यम से बहुत कुछ घटित होगा मगर ये सब परोक्ष परिणाम हैं, इनको सीधे जोड़ना गलत है। क्योंकि जोड़ा कि भूल हुई। जो आदमी मुझसे आकर पूछता है कि ध्यान से लाभ क्या होगा? मैं उससे कहता हूं, कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि अगर यह लाभ की बात पूछ रहा है तो ध्यान तो यह कभी करेगा ही नहीं। लाभ की चिंता से डूबा हुआ आदमी ध्यान ही नहीं करेगा। और ध्यान ही नहीं करेगा तो लाभ कैसे होगा?
अब यह बड़ी... बेबूझ मत समझ लेना इस बात को, यह सीधी-साफ है। विरोधाभासी जरूर है। जो आदमी लाभ की भाषा छोड़ कर आता है उसको ध्यान से लाभ होता है। इसलिए ध्यानियों ने कभी नहीं कहा कि लाभ होगा; वे चुप रहे। वे बोले कि लाभ की भाषा छोड़ दो तो ध्यान होगा। फिर ध्यान हो गया तो सब हो जाएगा। वह तुम पीछे जानना।
जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः सीक यी फर्स्ट दि किंग्डम ऑफ गॉड, देन
ऑल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। तुम और मत पूछो दूसरी बातें। तुम पहले परमात्मा का राज्य खोजो, फिर सब उसके पीछे अपने से आ जाएगा--ऑल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। वह आ ही जाता है, उसकी बात ही मत उठाओ। उसकी चर्चा ही मत छेड़ो।
जरूर जब उन्होंने यह वचन कहा तो किसी ऐसे आदमी से कहा होगा, जिसने आकर पूछा होगा, ध्यान से लाभ होगा? परमात्मा को पाने से धन बढ़ेगा, पद बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी? उससे कहा होगा कि तू ये फिजूल की बातें न कर। तू सिर्फ परमात्मा को खोज ले फिर शेष सब अपने से हो जाता है। इसकी बात ही मत उठा। इसकी बात ही क्षुद्र है। और अगर इसकी बात उठाई तो तू परमात्मा को खोज ही नहीं सकेगा क्योंकि तेरी नजर तो इन चीजों पर लगी रहेगी।
जिसकी नजर धन पर लगी है वह ध्यान कैसे खोजेगा? जो अभी धन से उकताया नहीं वह ध्यान कैसे खोजेगा? हालांकि यह सच है कि जो ध्यान को उपलब्ध होगा उसके समस्त जीवन-व्यवहार में बड़ी आभा आ जाएगी। वह जो करेगा, जैसे करेगा, उसमें कुशलता आ जाएगी। चित्त जब शांत होता है, तो उसकी छाया जीवन के सभी व्यवहार पर पड़ती है। समस्त व्यवहार में रूपांतरण होता है। लेकिन वह बात करने की नहीं है। वह बात की कि ध्यान ही नहीं होगा।
झूठ होशियार है। झूठ कहता है, आओ मेरे पास। धन बढ़ेगा, पद बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी, दौलत मिलेगी; स्वर्ग, बहिश्त सब मिलेंगे। परमात्मा भी मिलेगा। और तुम इन चीजों को चाहते हो। तुम्हारी चाहत बड़ी गहरी है। तुम्हारी चाहत का शोषण हो जाता है।
तुम्हारे मन में जब तक चाहत है तब तक जिसको दरिया ने झूठा साधु कहा, स्वांग कहा, उसी से तुम्हारा मिलन होगा। तुम किसी स्वांग के ही चक्कर में पड़ोगे। देखा नहीं? बिल्ली ने गुरु किया तो बिल्ली को बगुला मिल गया। वह जंचा। वह बिल्ली को जंचा होगा। वही भाषा, जो बिल्ली की, वही बगुले की। बिल्ली को देखा तुमने कभी, जब चूहे को पकड़ने को बैठती है? कैसी शांत हो जाती है। स्थिर, स्थिरधी। बिल्कुल शांत हो जाती है। हिलती भी नहीं, डोलती भी नहीं। चूहे को पता ही नहीं चलता कि कोई आस-पास है। श्वास भी रोक लेती है।
यह बिल्ली की भाषा है। बगुला इसी भाषा के जगत में और भी आगे है। वह बिल्ली से भी ज्यादा निष्णात है। एक ही टांग पर खड़ा हो जाता है। और बिल्कुल अडिग हो जाता है। स्वभावतः उसको ज्यादा अडिग होना पड़ता है।

क्योंकि वह जिस माध्यम में खड़ा है--पानी में, वह जरा से कंपन को पकड़ लेगा। बिल्ली का माध्यम इतना कंपित होने वाला नहीं है, जमीन पर बैठी है। तो अगर थोड़ी बहुत कंपेगी भी तो कोई हर्जा नहीं है। चलना नहीं चाहिए, आवाज नहीं होनी चाहिए, बस। क्योंकि चूहा आवाज से डर जाएगा और अपने बिल में वापस चला जाएगा।
तो बिल्ली तो जमीन के माध्यम पर बैठी है। थिर होना इतनी कुशलता की बात नहीं है। लेकिन जल में खड़े होना, जहां जरा सा कंपन जल में लहरें उठा देगा, लहरें उठीं कि मछलियां नदारद हो जाएंगी। मछलियां पास ही न आएंगी। तो जब बिल्ली बगुले को देखती है तो उसको समझ में आता है कि यह है गुरु। महागुरु मिले, धन्यभाग। इनके चरण गहूं। इनकी शरण रहूं।
तुम झूठे हो इसलिए झूठ प्रभावी होता है, यह मेरा उत्तर है। तुम झूठे हो। तुम्हारा झूठ में लगाव है इसलिए झूठ प्रभावी होता है। झूठ तुम्हारी भाषा बोलता है, तुम्हारे अंतरंग की भाषा बोलता है। झूठ के साथ तुम्हारे हृदय की कली खुलने लगती है।
जरा देखो, जीवन को परखो। रास्ते पर तुम एक भिखारी को मरता हुआ देखते हो, तुम्हारी आंखों में आंसू नहीं आते। यह तुमने कभी ख्याल किया? फिल्म में तुम देखते हो भिखारी को मरते हुए, तुम्हारी आंख में आंसू आ जाते हैं। लोग रूमाल निकाल कर आंसू पोंछ लेते हैं। लोगों को आंसू थिएटर में ही आते हैं। वह बड़ी आश्चर्य की बात है। असली भिखमंगा मरता हो, किसी को आंसू नहीं आते। तुम मुंह फेर कर और घृणा से, कि यह भिखमंगों से कब छुटकारा होगा, कि यह भिखमंगों को क्यों सरकार सड़क पर छोड़ देती है? इन सबको समाप्त किया जाना चाहिए। इनको निकाल हटा कर अलग किया जाना चाहिए। इनको काम-धंधे में लगाया जाना चाहिए। तुम्हें हजार तर्क खड़े होते हैं असली भिखमंगे को देख कर। फिल्म में कोई दांव पर तो लगी नहीं है बात। खाली खेल चल रहा है। झूठ का जाल है। परदे पर कोई है तो नहीं। तुम्हें पता है भलीभांति कि परदा खाली है। परदे पर केवल रोशनी है, अंधेरे और प्रकाश का जाल है। वहां कोई भी नहीं है, मगर आंखें तर हो जाती है। मैं जानता हूं लोगों को, जो दो और तीन रूमाल लेकर जाते हैं। क्योंकि एक-एक रूमाल भीग जाता है, रखते जाते... । तुम उसी फिल्म को कहते हो गजब की थी, लाजवाब थी कि कोई उत्तर नहीं, जिसमें तुम्हारे सब रूमाल भीग जाते हैं, जिससे तुम रोते निकलते हो।
झूठ से तुम इतने प्रभावित होते हो क्योंकि झूठ की तुम भाषा समझते हो।
सच की भाषा तुम नहीं समझते।
टाल्सटाय ने लिखा है कि उसकी मां इतनी दयालु थी कि थियेटर में देख कर रोने लगती थी, आंसू पोंछने लगती थी। कभी-कभी गश खा जाती थी। अगर थियेटर में कोई ऐसा दृश्य आ जाए तो गश खा जाती थी। कई दफा उसे बेहोश घर में लाना पड़ता था। और बड़ी दीवानी थी देखने की। तो थियेटर में रोज ही जाती थी।
और अक्सर ऐसा होता, टाल्सटाय ने लिखा है, जब मैं छोटा था तब तो मुझे समझ में नहीं आया, जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो मैं बड़ा हैरान हुआ। अक्सर ऐसा होता था--क्योंकि टाल्सटाय शाही घराने का था। धनपति लोग थे, बड़ी जमींदारी थी। तो वह जो... जिस गाड़ी पर बैठ कर आती थी, जिस बग्घी पर बैठ कर आती थी, वह बग्घी बाहर तैयार खड़ी रहती थी क्योंकि कब उसको गश आ जाए, और कब उसका मन उखड़ जाए, कब उसको नाटक न जंचे तो वह उसी क्षण उठ कर आ जाती थी। तो ड्राइवर को बैठा ही रहना पड़ता था, कोचवान को बैठा ही रहना पड़ता था गाड़ी में। और रूस... ठंडी रातें, बर्फ पड़ती।
अक्सर ऐसा होता कि कोचवान बैठे-बैठे मर जाता। और उसकी मां थियेटर से रोती हुई बाहर आती। और कोचमैन मरा हुआ बैठा है, उसको धक्के देकर अलग कर दिया जाता, दूसरे आदमी को पकड़ कर बिठाया जाता, और गाड़ी चल पड़ती। लेकिन इस मरे हुए कोचमैन के लिए टाल्सटाय ने लिखा है कि मैंने कभी एक आंसू टपकते नहीं देखा। यह असली आदमी मर गया, इसकी गाड़ी के लिए, इसकी ही प्रतीक्षा करते-करते मर गया, इसके ही कारण मर गया, और इसके मन में कोई दया का भाव नहीं उठता? यह असली आदमी है। असली आदमी के प्रति किसी को दया का भाव नहीं उठता। तुमने देखा? फिल्म में कोई आदमी किसी के प्रेम में पड़ जाए तो तुम्हारी कितनी सहानुभूति होती है। मगर तुमने असली प्रेमी को कभी सहानुभूति दिखाई?

बस, वहां तो तुम एकदम जहर हो जाते हो। असली प्रेमी बड़ा खतरनाक आदमी है, लफंगा है, लुच्चा है। असली प्रेमी को कोई अच्छी भाषा भी नहीं बोलता। लेकिन फिल्म के प्रेमी को तुम बड़ी सहानुभूति देते हो।
अगर फिल्म में कोई पत्नी किसी पति को सता रही तो तुम्हारी बड़ी सहानुभूति पति के प्रति होती है। और अगर पति किसी के प्रेम में पड़ जाए, किसी दूसरी स्त्री के तो तुम्हारे मन में ऐसा नहीं उठता कि अनीति हो; रही है, मगर असली जिंदगी में? असली जिंदगी में अनीति हो रही है; सहानुभूति उठती ही नहीं, दया उठती ही नहीं। नरक में जाएंगे ये लोग।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम झूठ से प्रभावित होते हो और सच का तुम
पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मजनू जब जिंदा था तब कोई उससे प्रभावित नहीं था। गांव भर उसको लानत देता था। गांव भर उसके खिलाफ था। उसे गांव से निकाल दिया गया था। सबकी सहानुभूति लैला के बाप के साथ थी। अगर उस दिन वोट लिए गए होते तो सबके वोट लैला के बाप को पड़ते, जो कि बाधा डाल रहा था।
लेकिन फिल्म में? जब तुम लैला-मजनू फिल्म देखते हो, तो तुम्हारी सारी सहानुभूति मजनू के साथ है। तुम मजनू के बाप को तो समझते हो कि यह दुष्ट कहां से बीच में सब कहानी को खराब कर रहा है।
तुम जरा गौर करना, उपन्यास पढ़ते-पढ़ते रो लेते हो और जिंदगी... जिंदगी बहुत ज्यादा दुखों से भरी है। क्या उपन्यासों में होगा! उपन्यासों में तो सिर्फ छोटी-मोटी छायाएं बनती हैं। जिंदगी बहुत दुख से भरी है। लेकिन जिंदगी देख कर तुम्हें कुछ दुख नहीं होता, न कोई पीड़ा होती है, न कोई सहानुभूति उठती है। क्योंकि जिंदगी सच है और तुम झूठ की भाषा समझते हो। जिस व्यक्ति को सत्य की दिशा में जाना हो उसे झूठ की भाषा को गिराना पड़ता है। उसे धीरे-धीरे झूठ की भाषा काटनी पड़ती है। उसे जीवन में तथ्यों की भाषा सीखनी पड़ती है। वह कविताओं से फिर कम प्रभावित होता है। वह जीवन का जो महाकाव्य है, उसमें उसकी आंख गहरी जाती है। वह वहां देखता है। तथ्यों की खोज शुरू करो तो सत्य को तुम पहचान पाओगे। उपन्यासों में
मत डूबे रहो। तुम्हारा दिमाग फिल्मी हो जाए तो बहुत खतरा है। खतरा यही है कि तुम्हारी आंखें धीरे-धीरे धीरे उन बातों से प्रभावित हो जाएंगी, जो बातें नहीं हैं।
अभी एक मनोवैज्ञानिक ने अमरीका में एक खोज-बीन की है। बड़ी हैरानी की है, दुखद है। ऐसी कई घटनाएं अमरीका में पिछले पांच-सात सालों में घटी हैं, जो चौंकाने वाली हैं।
न्यूयार्क में एक स्त्री को--बूढ़ी स्त्री को--किसी ने छुरा मार कर मार डाला। किसी और बड़े कारण से नहीं, सिर्फ उसका मनीबैग छीन लेने को; उसका बटुआ छीन लेने को। जब वह मारी गई, भरी दुपहरी थी। रास्ता चल रहा था। अनेक लोग रास्ते पर थे। कम से कम दो सौ लोगों ने देखा लेकिन किसी ने रुकावट न डाली। लोगों ने अपनी खिड़कियां बंद कर लीं। कौन झंझट में पड़े! क्योंकि यह झंझट की बात है। पुलिस को गवाही न मिले। दो सौ लोग मौजूद थे लेकिन कोई गवाही देने को राजी नहीं। क्योंकि फिर अदालत जाना पड़े और फिर... और कौन झंझट में पड़े? यह आदमी खतरनाक है, जिसने छुरा मारा इसके संगी-साथी होंगे। माफिया पीछे होगा, पता नहीं। कौन झंझट में जाए।
लोग अपना मुंह फेर कर चले गए। एक बूढ़ी औरत, एक कमजोर बूढ़ी औरत एक जवान आदमी ने छुरा मार कर मार डाली। सिर्फ बटुआ छीन लेने को; किसी और कारण से नहीं। लेकिन कोई रोका नहीं। दो सौ आदमी थे, चाहते तो इस जवान को वहीं के वहीं रोक सकते थे। सिर्फ जोर से चिल्ला दिए होते तो इस जवान के हाथ से छुरी छूट गई होती। इतने लोग मौजूद थे। दुकानें खुली थीं, मकानों पर लोग थे। लोगों ने खिड़कियां बंद कर लीं।
ऐसी कई घटनाएं पांच-सात सालों में घटी हैं। तो वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक बड़े चिंतित हुए कि बात क्या हो रही है? आदमी क्या जड़ होता जा रहा है? क्या करुणा सूखती जा रही है? लेकिन जो कारण मिला, वह बहुत हैरानी का है। कारण है--टेलीविजन। तुम चकित होओगे कि टेलीविजन और कारण?
अमरीका में करीब-करीब प्रत्येक आदमी चार घंटे, पांच घंटे, छह घंटे रोज टेलीविजन देख रहा है। जिंदगी का बड़े से बड़ा हिस्सा टेलीविजन पर जा रहा है।

लोग अपनी कुर्सियों से बिल्कुल जैसे गोंद से जोड़ दिए गए हों, ऐसे बैठ जाते हैं। टेलीविजन से फिर हटते नहीं।
टेलीविजन क्यों कारण है इसका? टेलीविजन इसका कारण है। टेलीविजन पर लोग देखते हैं, हत्या की जा रही है। देखते हैं सिर्फ। टेलीविजन पर क्या करोगे? देख ही सकते हो। हत्या होती, चोरी होती, डाके डाले जाते, युद्ध होते, वियतनाम होता। निरीह, निहत्थे लोगों पर बम गिराए जाते, छोटे बच्चे- स्त्रियां जलते हैं बमों में। यह सब देख सब देख रहे हैं पांच-छह घंटे। तो धीरे-धीरे एक भाव पैदा हो गया है कि सब चीजें देखने की हैं। पढ़ने की नहीं हैं, देखने की हैं। तो लोग तमाशबीन हो गए हैं। जब पांच-छह घंटे कोई टेलीविजन को देखता रहेगा, यह झूठ जो सामने चल रहा है इसको देखता रहेगा तो इस झूठ की भाषा इसके पकड़ में आ गई। वह तमाशबीन हो गया। अब रास्ते पर किसी को छुरा मारा जा रहा है तो इसको ख्याल ही नहीं आता कि मुझे कुछ करना है। करने का सवाल ही क्या है? रोज तो दिन में तो देखता है छह-छह घंटे--छुरा मारा जाता है, गोली चलाई जाती है, यह सब तो होता रहता। उसे ख्याल ही नहीं आता। लोग तमाशबीन हो गए हैं। लोग अब भागीदार नहीं होते।
जब मैं यह सर्वे पढ़ रहा था तो मुझे एक याद आई। बंगाल में घटी यह घटना। विद्यासागर के जीवन में घटी यह घटना। विद्यासागर बड़े महापंडित थे। एक नाटक देखने गए थे। और नाटक में एक आदमी है जो एक स्त्री को सता रहा है। सब तरह से सता रहा है और विद्यासागर क्रोध से भरते जा रहे हैं। ऐसी घड़ी आ गई कि वे भूल ही गए कि यह नाटक है। और वह आदमी आखिरी शिखर पर आ गया अपनी चालबाजियों के। उसने उस स्त्री को एक रात अंधेरे में पकड़ लिया, वह व्यभिचार ही करने जा रहा है।
फिर तो विद्यासागर उचक कर अंदर पहुंच गए। चढ़ गए मंच पर और लगे उस आदमी
को निकाल कर जूता मारने। सारे लोग चकित हो गए कि यह क्या मामला है। यह कैसा नाटक हो रहा है? उनको पकड़ा गया कि आप यह क्या करते हैं पंडित होकर? तब उन्हें होश आया। मगर वे तो पसीने से लथपथ, आंखें उनकी खून से लाल, जूता हाथ में।
लेकिन वह अभिनेता भी बड़ा कुशल अभिनेता था। उसने कहाः जूता मुझे दे दें। जूता उसने ले लिया। उसने कहा, यह मेरे जीवन का सब से बड़ा पुरस्कार है। अभिनेता के लिए और क्या बड़ा पुरस्कार हो सकता है कि कोई यह भूल ही जाए कि यह अभिनय है?
कहते हैं, वह जूता उस अभिनेता के घर में अब भी है। अभिनेता तो मर गया लेकिन उसके बच्चों ने सम्हाल कर रखा है। वह पुरस्कार है विद्यासागर का। क्योंकि उस अभिनेता ने इतनी कुशलता से अभिनय किया कि विद्यासागर भूल गए कि अभिनय है।
एक विद्यासागर, कि अभिनय को देख कर भूल गए कि अभिनय है; सोचा असली जिंदगी है। और एक अमरीका में आदमियों के संबंध में की गई खोज-बीन कि असली औरत मारी जा रही है तो लोग समझते हैं टी.वी. के पर्दे पर हो रहा है, चलो होने दो। तमाशबीन हो गए हैं।
तुम्हारी जिंदगी अगर झूठी बातों में बहुत रस लेने लगी है तो झूठ प्रभावी होगा। अगर झूठ से मुक्त होना हो और झूठ के प्रभाव से मुक्त होना हो, और झूठ की चालबाजियों से मुक्त होना हो तो धीरे-धीरे इस बात को समझने की कोशिश करो, तथ्यों में डूबो। जीवन चारों तरफ खड़ा है नग्न, निर्वस्त्र। वृक्षों को देखो, फूलों को देखो, चांद-तारों को देखो, स्त्री-पुरुषों को देखो, गरीब-अमीर को देखो, राह चलते भिखमंगे को, छोटे बच्चे की किलकारी को, रोते हुए आदमी को, टपकते हुए आंसुओं को, मुस्कुराहटों को, जिंदगी के तथ्यों को देखो। इन्हीं तथ्यों में कहीं तुम्हें सत्य की झलक मिलेगी। और इसी में कहीं परमात्मा छिपा है।
लेकिन तुम किताबों में खोज रहे हो। इसलिए तो दरिया कहते हैंः रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय। सारा दर्पण शास्त्र की किताबी, थोथी, काल्पनिक बातों से, उनकी धूल से ढंक गया है। इस ढंके दर्पण में परमात्मा की तस्वीर बने तो कैसे बने?

तीसरा प्रश्नः आप कहते हैं, प्रार्थना सम्राट की तरह करो, भिखारी की तरह नहीं। आप कहते हैं, प्रार्थना अहेतु की हो तो ही प्रार्थना है। लेकिन सम्राट से प्रार्थना की जाती है; उसे प्रार्थना करने की क्या जरूरत है? या क्या प्रार्थना प्रेम-गीत है?

पहली बातः जब तक प्रार्थना करने की जरूरत है तब तक प्रार्थना न हो सकेगी। जरूरत का मतलब है मांग। जरूरत का मतलब है, परमात्मा के अतिरिक्त कोई और चीज की चाह।
तुम मंदिर गए और तुमने मांगा कि हे प्रभु मेरी पत्नी बीमार है, उसे ठीक कर दे। या तुमने मांगा कि मेरा बेटा नौकरी तलाश कर रहा है? मिलती नहीं। नौकरी दफ्तरों के सामने खड़े-खड़े महीनों बीत गए, अब उसको ध्यान कर। तुमने कुछ भी मांगा तो प्रार्थना रही कहां, बची कहां? या तुमने सोचा, नहीं मांगी इस संसार की कोई बात। तुम गए और तुमने कहा कि प्रभु, अब मर कर इस जगत में नहीं आना। अब तो मुझे स्वर्ग में बुला ले, अपने पास बुला ले। अब दुबारा आवागमन न हो। यह भी प्रार्थना है लेकिन क्या यह मांग से मुक्त है? यह भी मांग से ही भरी है।
प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांग होता है असल में। इसलिए मांगने वाले
को प्रार्थी कहते हैं। लोगों ने प्रार्थना मांगने के लिए ही की है इसलिए धीरे-धीरे प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना हो गया। और प्रार्थना करने वाले का नाम प्रार्थी हो गया। प्रार्थना तो तभी होती है जब कोई जरूरत न रह गई।
तुम्हारा प्रश्न भी ठीक है कि जब जरूरत ही न होगी तो प्रार्थना किस लिए करेंगे? जब जरूरत ही न होगी तभी प्रार्थना होती है। मेरे प्रार्थना का अर्थ है, धन्यवाद। प्रार्थना का अर्थ होता है, कृतज्ञता का भाव। प्रार्थना का अर्थ होता है अहोभाव, प्रार्थना का अर्थ होता है जो तूने दिया है, इतना ज्यादा दिया है कि मैं धन्यवाद देने आया हूं।
मांग का अर्थ होता है, जो तूने दिया है, कम है। मैं शिकायत करने आया हूं। फर्क दोनों में समझ लेना, जमीन-आसमान का है। मांग का अर्थ होता है कि कैसा तू दाता है! लोग कहते हैं बड़ा दाता है, मगर क्या खाक दाता है! लड़के को नौकरी नहीं मिलती, मेरी दुकान नहीं चलती। कुछ ख्याल कर। सुनते हैं कि तेरे दरबार में देर है, अंधेर नहीं है लेकिन देर भी हो रही है और अंधेर भी हो रहा है। पापी आगे बढ़े जा रहे हैं, मैं पुण्यात्मा पीछे पड़ा जा रहा हूं। भले लोग तो कहीं भी नहीं हैं, बुरे लोग सिर पर चढ़ बैठे हैं। और यह अंधेर चल ही रहा है। देर भी बहुत हो गई है और अंधेर भी खूब हो रहा है। अब इसे रोक।
जब तुम मांगते हो तो शिकायत अनिवार्य है। नहीं तो मांगोगे क्या? मांग
का अर्थ ही होता है, कुछ गलत हो रहा है जो नहीं होना चाहिए था। और कुछ जो होना चाहिए था, नहीं हो रहा है। तो जो होना चाहिए वह कर। मांग का अर्थ होता है, मैं तुझे सलाह देने आ रहा हूं। तेरी बुद्धि ठीक से काम नहीं कर रही है, मेरी सलाह मान। मांग का अर्थ होता है, मैं ज्यादा समझदार हूं, तू कम समझदार है। ये सब बातें छिपी हैं मांग में। मांग बड़ी अपमानजनक है, अधार्मिक है। जीसस सूली पर जब लटकाए गए तो आखिरी क्षण में उनके मुंह से आवाज निकली
कि हे प्रभु, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? शिकायत तो आ गई। शक तो आ गया। यह बात तो हो गई साफ न कि तू कुछ गलत कर रहा है। यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? यह जैसे जीसस की अपेक्षा के अनुकूल नहीं था, जो हो रहा था। शायद जीसस ने कुछ और अपेक्षा की थी ऐसा होगा, ऐसा होगा। सूली पर लटकाया जाऊंगा तो यह चमत्कार होगा, या कुछ सोचा होगा। मन ही तो है आदमी का! वह कुछ भी नहीं हो रहा है, उलटा सूली लगी जा रही है, हाथ में खीले ठोके जा रहे हैं, कंठ प्यास से मरा जा रहा है और कुछ घट नहीं रहा। परमात्मा की कोई दया नहीं बरस रही। और मैं परमात्मा का बेटा और मेरी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। यह हो क्या रहा है? यह अन्याय हो रहा है। यह जरा ज्यादती हो रही है। अब बहुत हो गई। अब मुझे कहना ही पड़ेगा।
तो निकल गई आवाज कि हे प्रभु यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? लेकिन जीसस बड़े संवेदनशील व्यक्ति थे। किसी अचेतन में दबी हुई यह बात प्रकट हो गई।

शायद और किसी क्षण में प्रकट होती भी न। फांसी पर ही प्रकट हो सकी। शायद फांसी ही उतना दुख ले आई कि आखिरी तलहटी में पड़ी हुई बात जो बहुत गहरे में थी... कभी जीसस ने ऐसी बात न कही थी।
कभी-कभी दुख तुम्हारी असलियत को प्रकट कर जाता है। इसलिए दुख मांजता है; इसलिए दुख निखारता है। कभी-कभी दुख की घड़ी में ही तुम्हें अपनी सचाई का पता चलता है। सुख की घड़ी में सचाई का पता नहीं चलता। सुख की घड़ी में आदमी सतह पर तैरता है। दुख का घड़ी में तलहटी में उतरता है, खाइयों में उतरता है, खड्डों में जाता है। अपने भीतर के कुएं में डूबता है, अंधेरे में जाता है। जीसस ने कभी भी शिकायत न की थी। इसके पहले सदा धन्यवाद दिया था। प्रभु
की तरफ सदा कृतज्ञता से भरी आंखें उठाई थीं। लेकिन सूली लगी। आखिरी दम तक सम्हाले रहे लेकिन जब खीले ही ठुकने लगे और जब लगा कि बात हुई जा रही है और कोई चमत्कार नहीं घट रहा तो अचेतन में, किसी गहरे अचेतन में दबा हुआ भाव प्रकट हो आया।
जैसे पानी में बबूला उठता है, उठता तो रेत से है, नीचे की रेत से उठता है। फिर उठता है... उठता है, नीचे तो बड़ा छोटा होता है जब रेत से निकलता है, जरा सा होता है। फिर जैसे-जैसे ऊपर उठने लगता है, बड़ा होने लगता है। क्योंकि वजन पानी का कम होने लगता है, वह बबूला बड़ा होने लगता है, क्योंकि दबाव कम हो जाता है। फिर और ऊपर आता है तो और बड़ा हो जाता है। फिर सतह पर आता है तो पूरा प्रकट हो जाता है क्योंकि दबाव बिल्कुल नहीं रह जाता।
ऐसा कोई बबूला एक ही पड़ा रह गया था। मेरे देखे वही जीसस के क्राइस्ट होने में बाधा थी। मेरे हिसाब से जीसस सूली पर क्राइस्ट हुए। जरा सी कमी रह गई थी। जरा सी खोट रह गई थी। बड़ी छोटी खोट थी। अगर बिना सूली के मर गए होते तो शायद किसी को पता ही न चलता कि खोट थी। सूली ने बड़ी सफाई कर दी। सूली बड़ा प्रयोग सिद्ध हुई। सूली ने साधक को सिद्ध बना दिया।
जीसस उस घड़ी बुद्ध हो गए। दिखाई पड़ गया जीसस को। आदमी तो बड़ी गहराई, संवेदना के थे, बड़े बोध के थे। जरा सी खोट रह गई थी कहीं पड़ी। वह आखिरी खोट भी छूट गई। तत्क्षण जीसस को दिखाई पड़ गया, यह शिकायत हो गई। मेरे मुंह से शिकायत? प्रार्थना चूक गई। इस आखिरी घड़ी में प्रार्थना चूकी जा रही है? जीवन भर प्रार्थना की, यह घड़ी में प्रार्थना चूकी जा रही है, जब कि प्रार्थना होनी चाहिए। लोग तो कहते हैं न कि चाहे जिंदगी भर याद न की हो, मरते वक्त अगर याद कर लो तो भी काम सर जाए। यह उलटा हुआ जा रहा है कि जिंदगी भर तो याद की और मरते वक्त बात खराब कर ली।
और ऐसा ही होगा, ध्यान रखना। जीसस ने जिंदगी भर याद की तो भी मरते वक्त भूल हुई जा रही थी। तो तुम यह तो सोचना ही मत कि तुम जिंदगी भर भूल करोगे और मरते वक्त ठीक हो जाएगा। इस पागलपन में पड़ना ही मत। यह बिल्कुल गणित के बाहर है। यह होने वाला नहीं है।
तुम यह मत सोचना कि जैसे अजामिल को हुआ कि मर रहे थे, जिंदगी भर पाप किए थे... हत्यारा, डाकू, सब तरह के पाप। कभी भगवान के मंदिर में नहीं गए, कभी नाम नहीं लिया भगवान का। मगर किसी भूल-चूक में अपने बेटे का नाम नारायण रख लिया था।
असल बात यह है कि उन दिनों भगवान के ही नाम कुल नाम थे। तो पापी को भी रखना हो तो और तो नाम उपलब्ध ही न थे। राम रखो कि नारायण कि विष्णु कि पुरुषोत्तम--कुछ भी करो, नाम ही सब भगवान के थे। अभी भी मुसलमानों में जितने नाम हैं, करीब-करीब सब भगवान के हैं। हिंदुओं का एक शास्त्र है न विष्णु सहस्रनाम! उसमें भगवान के हजार नाम गिराए हैं। मुसलमानों के जितने नाम हैं, सब भगवान के नाम हैं।
मजबूरी थी, कोई और नाम उपलब्ध नहीं थे तो नारायण नाम रख लिया होगा। कुछ तो रखना ही पड़े नाम। अब जब नाम ही भगवान के थे तो उसने रख लिया होगा कुछ भी एक। इस ख्याल से नहीं कि यह भगवान का नाम है।
मरते वक्त अपने बेटे को बुलाया, नारायण। घबड़ा रहा होगा। बेटे को बुलाया होगा कि कुछ आखिरी बात कह दूं कि कहां धन गड़ा रखा है। जिंदगी भर चोरी की, बेईमानी की, धोखाधड़ी की तो कहीं तो गड़ा कर रखा होगा। उन दिनों

बैंक तो होते नहीं थे। तो बेटे को बता दूं कि कहां छिपा है, नहीं तो जिंदगी भर की मेहनत बेकार गई।
लेकिन कहानी कहती है कि ऊपर बैठे नारायण ने सुना कि बुला रहा है, नारायण। बड़े प्रसन्न हो गए ऊपर के नारायण और उन्होंने तत्क्षण उसके मरने पर उसे स्वर्ग बुला लिया। अजामिल स्वर्ग गया।
यह बात फिजूल है। यह बात दो कौड़ी की है। यह कहानी किन्हीं जाल-साजों
ने गढ़ी है। यह तरकीब की बात है। यह उन पंडितों ने गढ़ी है, जो तुमसे कहते हैं रहे आओ जिंदगी भर चोर-बेईमान, कोई हर्जा नहीं। मरते वक्त एक दफा नाम ले लेना। और उन्होंने तो बात यहां तक बढ़ा दी कि तुमसे भी नाम लेते न बने... क्योंकि कब मौत आएगी कुछ पक्का तो है नहीं। जबान लड़खड़ा जाए, बोलते न बने, तो पंडित तुम्हारे कान में दोहरा देगा नाम तो भी चल जाएगा।
मरते आदमी के मुंह में गंगाजल डालते हैं। वह मरे जा रहे हैं। अब उनको कोई फर्क नहीं कि कौन सा जल क्या है। उनको कुछ होश भी नहीं है। उनके दांत बंद हुए जा रहे हैं और लोग चम्मच से दांत खोल कर और गंगाजल डालते हैं। जिंदगी पड़ी थी, तब गंगा न गए। अब यह बोतल में भरी गंगा इनके पास लाई गई है। जिंदगी पड़ी थी, तब कभी प्रभु को न पुकारा, अब कोई पंडित फीस लेकर इनके कान में रामनाम जप रहा है। ये मूढ़ताएं इसलिए चलती हैं कि तुम्हारे झूठ के अनुकूल हैं।
लेकिन जीसस को दिखाई पड़ गया। और जीसस ने तत्क्षण जो दूसरा वचन कहा... पहला वचन कि हे प्रभु, यह मुझे क्या दिखला रहा है? एक क्षण का सन्नाटा--और वही सन्नाटा क्रांति का सन्नाटा था। उसी क्षण में रूपांतरण हुआ। उसी क्षण में जो अब तक जोसेफ का बेटा जीसस था, अब परमात्मा का बेटा क्राइस्ट हो गया।
उस एक क्षण के सन्नाटे में जीसस ने अपने भीतर देख लिया वह बबूला उठता हुआ। शिकायत अभी भी है। तत्क्षण कहा कि हे प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो, मेरी नहीं। दाय विल बी डन, नाट माइन।
--प्रार्थना हो गई।
शिकायत प्रार्थना बन गई। वही ऊर्जा जो शिकायत बन रही थी, प्रार्थना
बन गई। बबूला फूट गया शिकायत का। कृतज्ञता का भाव फैल गया सारे प्राणों के रोएं-रोएं में--तेरी मर्जी पूरी हो। दाय, किंगडम कम दाय विल बी डन। तेरा राज्य उतरे। मैं कौन हूं? तू जो चाहे वैसा हो। फांसी तो फांसी। मैं कौन हूं? तेरी मर्जी ही ठीक मर्जी है। मेरी मर्जी गलत हो जाएगी। मैं आया कि गलती हो जाएगी।
इसको मैं प्रार्थना कहता हूं। प्रार्थना का अर्थ है, स्वीकार। तू ठीक है। तू जैसा है, ठीक है। और तूने जो किया, ठीक है और तू जैसा कर रहा है, ठीक है। और तू जैसा करेगा, ठीक है। तू गलत होता ही नहीं। तू सदा ठीक है। कभी-कभी मुझे अगर गलती दिखाई पड़ता है तो वह मेरी गलती है।
प्रार्थना का अर्थ है--अहोभाव। प्रार्थना महोत्सव है। धन्यवाद का नृत्य है। मेरे लिए प्रार्थना का अर्थ है--जब कभी तुम्हारे मन में कृतज्ञता का भाव उठे, नाच लेना; प्रभु को धन्यवाद दे देना कि हे प्रभु तूने श्वास दीं, आंखें दीं, कान दिए। आंखों से हरियाली देखी किसी वृक्ष की। देखते इन वृक्षों को? ये अशोक और सरू के वृक्ष! इनको देख कर कभी तुम्हें कभी धन्यवाद देने का मन नहीं उठता? कि आंखें न होतीं, अगर अंधे होते तो? यह हरियाली से तुम चूक जाते। यह महाकाव्य हरियाली का तुम अंधे नहीं हो इसलिए देख पाए। यह पक्षियों की चहचहाहट, यह कोयल की कुहू-कुहू तुम बहरे नहीं हो इसलिए सुन पाए।
तो कभी कोयल को सुन कर तुमने भगवान को धन्यवाद दिया कि हे प्रभु, तूने मुझे कान दिए! कभी सागर की उत्तुंग लहरों को देख कर तुम नाचे और तुमने कहा, हे प्रभु तूने मुझे जीवन दिया कि मैं यह नृत्य देख सका अपूर्व! कभी हिमालय के उत्तुंग शिखर को, हिमाच्छादित उन शिखरों को देख कर तुम्हारे मन में यह भाव उठा कि झुक जाएं, सिर रख दें परमात्मा के चरणों में कि तेरी लीला अपरंपार है! तो प्रार्थना।
मेरे लिए प्रार्थना का अर्थ है--धन्यवाद। धन्यवाद कैसे उठे, यह सवाल नहीं है। किस कारण उठे, यह सवाल नहीं है। इसलिए मैं तुमसे यह भी नहीं कहता,

तुम कोई औपचारिक प्रार्थना करो कि तुम मंदिर जाओ, मस्जिद जाओ। मस्जिद-मंदिर की प्रार्थना तो झूठी ही होगी। अरे प्रार्थना के लिए मस्जिद-मंदिर जाने की जरूरत है? उसका मंदिर चारों तरफ मौजूद है। तुम जहां बैठे वहीं मौजूद है। जरा आंख खोलो। जरा कान खोलो। सब तरफ वही मौजूद है। और तुम्हारे रोएं-रोएं में और तुम्हारे पल-पल में और क्षण-क्षण में कृतज्ञता का भाव समा जाए। तुम्हारी हर घड़ी कहने लगे, तेरी मर्जी पूरी हो। इसको मैं कहता हूं सम्राट।
तुम पूछते होः ‘आप कहते हैं, प्रार्थना सम्राट की तरह करो, भिखारी की तरह नहीं।’
भिखारी की तरह तो कैसे करोगे? भिखारी का तो मन भीख में होता है।’
एक भिखारी तुम्हें रास्ते पर पकड़ लेता है। कहता है, दाता कुछ दे जाओ। कहता है, आप बड़े दानी। कहता है, आप बड़े पावन; कि आप बड़े सज्जन। मगर उसे इन बातों से मतलब? वह सिर्फ खुशामद कर रहा है। उसे मतलब तुम्हारी जेब से है। ये सब बातें तो तरकीबें हैं तुम्हारी जेब से पैसे निकाल लेने की। नजर पैसे पर लगी है। दोगे तो धन्यवाद दे देगा। नहीं दोगे, गालियां देगा। याद रखना, भिखमंगे गालियां देते हैं, जब तुम नहीं देते तो। अधिक लोग तो उसी डर से देते हैं कि वे गालियां देंगे।
मगर तुम यह भी समझना, दूसरी बात शायद तुम्हें ख्याल में न हो। अगर दो
तो वे समझते हैं, तुम बुद्धू हो। न दो तो गाली देते हैं कि दुष्ट, दो पैसे न निकले! अरे महाकंजूस! मारवाड़ी! दो पैसे न निकले? दो, तो समझते हैं खूब बनाया। बड़ा बुद्धू है। देखने में तो बड़ा होशियार दिखता था। एक मिनट में पछाड़ा। पैसे निकलवा लिए।
तुमसे तो मतलब ही नहीं है। ख्याल रखो, भिखारी को तुमसे क्या मतलब? तुमसे क्या लेना-देना? कोई तुम्हारे लिए बैठा था वहां कि राह देखता था कि आप आएंगे महापुरुष, और आपके चरणों में सिर रखेगा और धन्यभाग होगा, बड़ा धन्यभागी होगा। ऐसे थोड़े ही बैठा था! देखता था कि कोई गरम जेब वाला आदमी निकले। भिखमंगे भी सभी से थोड़े ही मांगते हैं।
तुम जरा ऐसा करो एक दिन, एक दिन जरा गरीब के दीन-हीन वस्त्र पहन कर निकलो। जूते टूटे-फूटे, सड़े-गले, टोपी सदियों पुरानी, बाप-दादों का पड़ा हुआ कोई कोट-मोट हो वह पहन कर जरा निकलो, वही भिखमंगा ऐसा मुंह फेर लेगा। इससे मांगना और झंझट। अपने से न छीन ले। यह खुद हालत में है कि किसी से झपट ले। कि निकल जा भाई, जल्दी कर, और दूसरे ग्राहक आते होंगे।
और तुम अच्छे चमकते हुए जूते पहन कर निकले, और तुम्हारे कपड़े-लत्ते और तुम्हारी कार। और भिखमंगा खड़ा है सामने प्रार्थना कर रहा है कि दाता, मुझ याचक पर ख्याल करो। आप जैसा बड़ा दाता रहे और मैं भूखा मर जाऊं। आज मुझे खाना न मिले... ।
भिखमंगे की जो भाषा है वह प्रार्थना नहीं है, वह चालबाजी है। और जब तुम भिखमंगे की तरह परमात्मा के द्वार में खड़े होते हो तब वह भी चालबाजी है। तब तुम कहते हो, हे पतितपावन! आप महान, मैं क्षुद्र। मैं पापी, तुम परमात्मा। मगर वह सब चालबाजी है। वह बात सच नहीं है।
एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि वह... लाज रह गई। मैंने कहाः क्या हुआ? एकदम ऐसे ही शुरू किया उसने कि लाज रह गई। मैंने कहाः हुआ क्या? उसने कहाः मैं भक्त हूं हनुमान जी का और हनुमान जी की मढ़िया पर जाता हूं। लड़के की नौकरी नहीं लग रही थी मैंने बिल्कुल अल्टीमेटम दे दिया। मैंने कह दिया, पंद्रह दिन के भीतर लगवा दो महाराज। नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं। पंद्रह दिन के भीतर लग गई। क्या... हनुमान जी की भी कैसी कृपा!
मैंने कहाः लाज तेरी रह गई कि हनुमान जी की रह गई? लाज किसकी रह गई? तो मैंने कहाः संयोग की बात कि तेरे लड़के की नौकरी लग गई। अब भूल कर ऐसा अल्टीमेटम मत देनाः यह संयोग की बात है। दुबारा मत करना कोशिश जांच-परख की, नहीं तो हनुमान जी की लुटिया डूब जाएगी।
उसने कहाः क्या मतलब? मैंने कहाः तू अगर मानता नहीं तो जरा करके देख ले। कल फिर जाकर कुछ और मांग ले। पंद्रह दिन का अल्टीमेटम फिर दे आ। दो-चार दफे करके देख क्योंकि एक दफा से कुछ सिद्ध नहीं होता। एक दफा तो संयोग भी

हो सकता है। वह बोला कि आपकी बात भी ठीक होती है। मैं करके देखूंगा। उसने दो-चार बार प्रयोग करके देखा, कुछ न हुआ। वह मेरे पास आया और उसने कहाः आप ठीक कहते थे। लाज उन्हीं की बची थी। कुछ नहीं निकला। फोकट। सब बेकार की बातें हैं। हनुमान चालीसा रट रहा हूं आज महीने भर से। चार दफे अल्टीमेटम दिया, कोई सार नहीं निकला। मेरी सब श्रद्धा उठ गई।
मगर वह मुझ पर भी नाराज था। कहने लगा, आपने ठीक नहीं किया। ऐसा नहीं करना चाहिए। मेरी बड़ी श्रद्धा थी। मैंने कहाः वह कोई खाक श्रद्धा थी! श्रद्धा थी ही नहीं इसलिए उठ गई। श्रद्धा को कभी उठते देखा है? श्रद्धा आई तो आई; फिर जाती नहीं। ये सब झूठी श्रद्धाएं हैं।
तुम जब प्रार्थना करते हो भिखमंगे की तरह तो प्रार्थना ही नहीं है। तुम जब भिखमंगे की तरह प्रार्थना करते हो तो श्रद्धा ही नहीं है। यह तो अश्रद्धा की सूचना है। तुम भगवान से भी बड़ा सांसारिक संबंध बना रहे हो कि लेने-देने का संबंध, दुकानदारी का संबंध, सौदागिरी। तुम सौदा कर रहे हो।
प्रार्थना कहां होगी सौदे में? सौदे में प्रार्थना दब जाएगी, मर जाएगी। उसके प्राण नष्ट हो जाएंगे।
रामकृष्ण ने विवेकानंद को कहा... विवेकानंद के पिता मर गए तो बड़े कर्ज में छोड़ गए। मस्तमौला आदमी थे। तो ही तो विवेकानंद जैसा बेटा हो सका कुछ जोड़-जाड़ कर नहीं रख गए थे। दिल खोल कर जीए थे। उलटी उधारी छोड़ गए थे। सभी भले आदमी छोड़ जाते हैं।
तो विवेकानंद जरा मुश्किल में थे। वह उधारी भी चुकानी है। एक ही बेटे
और मां भी थी। कभी-कभी तो ऐसी हालत हो जाती कि घर में खाने को भी न होता। कभी-कभी ऐसा हो जाता कि घर में इतना ही खाने को होता कि या तो मां खा ले या बेटा खा ले। तो विवेकानंद कहते कि मुझे आज जरा किसी मित्र ने भोज दिया है, मैं जरा मित्र के यहां भोजन कर आऊं। तब तक तू भोजन इत्यादि कर ले। और जाकर सड़कों पर घूमते रहते। घूम-घाम कर घर आते। बड़ी प्रसन्नता से घर लौटते। दरवाजे पर ही आकर प्रसन्नता बनानी पड़ती। भूख तो पेट में सुलगती, दरवाजे पर बड़े प्रसन्न होकर आकर लौटते पेट पर हाथ फेरते हुए। डकार भी लेते ताकि मां को भरोसा आ जाए। क्योंकि मां को भी शंका होती थी कि बार-बार कौन मित्र इसको देने लगे निमंत्रण? कभी दिखाई नहीं पड़ते। कोई निमंत्रण देने आता भी नहीं। रामकृष्ण को पता लगा तो रामकृष्ण ने कहाः तू भी खूब पागल है अरे मां
से मांग क्यों नहीं लेता? जा अंदर। आखिर मां किसलिए है? तू काली से मांग क्यों नहीं लेता? क्या चाहिए तुझे? जा मांग ले। मैं बाहर बैठा, तू भीतर जा। अब जब रामकृष्ण कहें तो विवेकानंद भीतर गए। घंटा भर लगा दिया लौटे वहां से आंसुओं से गदगद। बड़े प्रसन्न। रामकृष्ण ने कहाः तो मिल गया न? मांग लिया न? विवेकानंद ने कहाः क्या कह रहे हैं? कौन सी चीज मांगनी है? रामकृष्ण ने कहाः तू गया किसलिए था? तब उन्हें याद आई। उन्होंने कहाः क्षमा करें, वह तो मैं भूल ही गया। वहां जब सामने पहुंचता हूं तो धन्यवाद का ऐसा भाव उठता है कि मांगने की इच्छा, मांगने का ख्याल ही मिट जाता है। जो दिया है वह कोई कम है? मुझे मुझको दिया, इससे अब और क्या देने को हो सकता है?
रामकृष्ण ने कहाः तू फिर जा। ऐसे नहीं चलेगा। ऐसे पेट नहीं भरेगा। मांग ले। ऐसा तीन बार भेजा। और तीन बार विवेकानंद बाहर आए--बड़े गदगद और भूल-भूल कर। फिर रामकृष्ण खूब हंसे और उन्होंने कहाः आज तेरी परीक्षा थी। अगर मांगता तो मुझसे फिर तेरा कोई संबंध न रह जाता। आज तू जीत गया। तू परीक्षा में पूरा उतरा। तीन बार तुझे भेजा धक्के दे-दे कर और तीन बार ही तू बिना मांगे आ गया। तो तुझे प्रार्थना का राज मिल गया।
प्रार्थना मांग नहीं है। प्रार्थना भिखमंगापन नहीं है। प्रार्थना सम्राट का धन्यवाद है। तुम्हें इतना दिया है कि तुम सम्राट हो। और क्या होगा जिससे तुम सम्राट हो जाओगे? कमी क्या है? धार्मिक व्यक्ति वही है जो अपने भीतर खोजता है और कोई कमी नहीं पाता। जो कहता है, और क्या इससे ज्यादा हो सकता है! इससे ज्यादा हो ही नहीं सकता। जितना दिया है, अपरंपार है।
और इस भाव के पीछे ही आती है कृतज्ञता, छाया की तरह। एक परम धन्यभाग का भाव, एक अहोभाव उठता है--सुगंध की तरह। दूर आकाश तक उठता चला जाता है। जैसे दीये से ज्योति उठती है, जैसे अगरबत्तियों से गंध उठती है, जैसे फूलों से

सुवास उठती है, ऐसी ही सुवास प्रार्थना है। सम्राट ही कर सकते हैं। अहेतु की ही होती है प्रार्थना। हेतु आया, प्रार्थना नष्ट हो गई। हेतु आया, व्यवसाय आया। हेतु गया, प्रेम आया।
प्रार्थना प्रेम है। अहैतुक ही होता है प्रेम। तुमने किसी से प्रेम किया तो तुम क्या कारण बता सकते हो कि किस कारण? अगर तुम कारण बताओ तो प्रेम नहीं।
जैसे तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गए और किसी ने पूछा कि क्या कारण है? तो तुमने कहा कि बड़ी जायदाद है और लड़की एक ही है बाप की। सब अपना ही हो जाने वाला है। तो यह प्रेम हुआ? हेतु तो हुआ लेकिन प्रेम नहीं हुआ। तुमने अगर कहा कि शरीर सुंदर है इसलिए; तो भी हेतु हो गया। तो तुम चमड़े के पारखी हो। तुम चमड़े के दुकानदार हो--अष्टावक्र ने जिनको चमार कहा है; तुम चमार हो।
अष्टावक्र ने तो जनक के दरबार में लोगों को कह दिया था कि सब चमारों
को यहां किसलिए इकट्ठा किया है? जनक ने बुलाया है दरबार, सारे पंडित राज्य के इकट्ठे हुए हैं। अष्टावक्र के पिता भी महापंडित थे, वे भी गए हैं। वहां बड़ा विवाद हो रहा है। जनक ने कुछ जीवन की गुत्थियां सुलझानी चाहीं। अष्टावक्र घर आए तो मां ने कहा कि पिता को गए बहुत देर हो गई, अब तक लौटे नहीं। वहां विवाद चल रहा था तो वे उलझ गए। पंडित आदमी थे। जब तक जीतें न, हटें कैसे?
तो अष्टावक्र उनको लेने गए। वे आठ जगह से टेढ़े थे इसलिए उनका नाम अष्टावक्र। उनको देख कर पंडितों की सभा हंसने लगीं। पंडितों को हंसते देख कर अष्टावक्र ने और जोर का ठहाका मारा। एक सन्नाटा हो गया। लोग जो हंसते थे, एकदम चुप हो गए कि बात क्या है? यह आदमी आठ अंग से टेढ़ा भी है और पागल भी मालूम होता है। ठहाका इतने जोर से मारा कि जनक भी सहम गए। और जनक ने पूछा कि भई, ये हंसते हैं वह तो मेरी समझ में आ गया कि क्यों हंसते हैं। ऊंट की तरह चलते थे वे। आठ अंग टेढ़े हों तो ऊंट से भी खराब हालत हो जाए। तो उनको देख कर हंसी आ गई होगी लोगों को। और पंडितों से ज्यादा नासमझ लोग तो कहीं होते भी नहीं। तो नासमझों को हंसी आ गई होगी। दया आनी थी तो हंसी आ गई उलटी।
जो जनक ने कहाः ये क्यों हंसते हैं यह तो मेरी समझ में आ गया, बाकी तू क्यों हंसता है? उसने कहाः मैं इसलिए हंसता हूं कि इन चमारों को यहां किसलिए इकट्ठा किया? ये चमार यहां किसलिए भीड़ लगाए बैठे हैं? जनक थोड़े हैरान हुए। उन्होंने कहाः तू इन्हें चमार कहता है? सोच-विचार कर कह, ये मेरे राज्य के बड़े पंडित हैं। उन्होंने कहाः होंगे; लेकिन चमड़ी को ही जानते हैं, भीतर को नहीं। मैं बाहर से टेढ़ा-मेढ़ा हूं, भीतर तो देखो। मुझसे ज्यादा सीधी चेतना तुम्हें खोजने से न मिलेगी।
और यही घटना जनक के जीवन में क्रांति की घटना बन गई। जनक ने उठ कर चरण छुए अष्टावक्र के। अष्टावक्र बिना विवाद में पड़े जीत गए। अष्टावक्र गुरु हो गए और महागीता का जन्म हुआ।
तुमने अगर कहा कि मैं इस स्त्री को इसलिए प्रेम करता हूं कि इसकी चमड़ी सुंदर, कि इसका चेहरा सुंदर, कि शरीर बिल्कुल ठीक अनुपात में है तो तुम चमार हो, प्रेमी नहीं। तुमने अगर कहा कि यह बड़ी बुद्धिमान है, बड़ी विचारशील है, तो भी यह प्रेम नहीं है। इसमें हेतु हो गया।
प्रेम तो अहैतुक होता है। तुम कहते हो, मुझे पता नहीं, बस प्रेम है; अकारण है। कारण खोजने जाता हूं तो नहीं पाता, कोई कारण नहीं पाता। बस, इसकी सन्निधि में मेरे हृदय में तरंगें उठने लगती हैं। बस, इसकी मौजूदगी में सब मुझे भूल जाता। बस, इसके पास ही मुझे परमात्मा का बोध होता है। इसके पास होते ही मुझे लगता है कि जीवन में कुछ अर्थ है। और कोई कारण नहीं है, मेरे जीवन की सारी अर्थवत्ता इसकी मौजूदगी से मिलती है--तो प्रेम।
जिस दिन तुम्हारे जीवन में सब हेतु गिर जाते हैं उस दिन प्रार्थना। अगर दो व्यक्तियों के बीच हेतु गिर जाता है तो प्रेम। अगर एक व्यक्ति और विराट के बीच हेतु गिर जाता है तो प्रार्थना। और जिस दिन कोई हेतु न रहा उस दिन तुम सम्राट हो गए।

सम्राट का मतलब क्या होता है?
स्वामी रामतीर्थ अपने को सम्राट कहते थे, बादशाह कहते थे। उन्होंने किताब लिखी हैः राम बादशाह के छह हुक्मनामे। फकीर थे। लोग उनसे पूछते कि अपने को बादशाह क्यों कहते हो? तो उन्होंने कहाः बादशाह न कहूं तो क्या कहूं? पर लोगों ने कहाः आपके पास कुछ है तो है नहीं। उन्होंने कहाः इसीलिए तो बादशाह कहता हूं। मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। मेरी सब जरूरतें पूरी हैं। परमात्मा के साथ जुड़ गया उसी दिन मेरी सब जरूरतें पूरी हो गईं। अब मेरी कोई जरूरत नहीं है। अब मेरी कोई मांग नहीं है, कोई आवश्यकता नहीं है। अब मैं कुछ खोज नहीं रहा हूं, तलाश नहीं रहा हूं, सब दौड़-धूप चल गई। यही तो मेरा सम्राट होना है। यह मेरी बादशाहत है।
इसलिए तो हमने महावीर को सम्मान दिया, जिन्होंने सिंहासन छोड़ दिया और भिखमंगे हो गए। क्योंकि हमने देखा, भिखमंगे होकर इनके भीतर असली बादशाहत प्रकट हुई। और हमने यह भी देखा कि जो सिंहासनों पर बैठे हैं, भिखमंगे हैं। नाममात्र को बादशाह हैं। मांग तो अभी जारी है। मांगते ही चले जाते हैं... मांगते ही चले जाते हैं। मांग का कोई अंत नहीं। और राज्य बड़ा हो, और बड़ा राज्य हो।
प्रार्थना उठती ही तभी है, जब तुम्हें यह भाव समझ में आ जाता है। कि जैसा मैं हूं... प्रभु ने बनाया है तो गलती तो होगी कैसे? भूल तो होगी कैसे? प्रभु का निर्माण हूं, तो भूल-चूक कहां, भूल-चूक कैसी?
मैं अपने संन्यासियों को एक ही बात निरंतर कहता हूं, रोज-रोज कहता हूं, बार-बार कहता हूं कि तुम जैसे हो, परम सुंदर हो। तुम जहां हो वहीं मुकाम है। तुम जैसे हो वैसे ही होने में सारा रहस्य छिपा है। दौड़-धूप छोड़ो। धन तो मांगो ही मत, मोक्ष भी मत मांगो। मांगो ही मत। मांगना ही जाने दो। तुम जैसे हो, परिपूर्ण हो। तुम जैसे हो, सर्वांग-सुंदर हो।
इस भाव-दशा को जो उपलब्ध हो जाता है उसके जीवन में प्रार्थना की सुगंध, सुवास उठती है।

आखिरी प्रश्नः अथातो प्रेम जिज्ञासा। अब प्रेम की जिज्ञासा। क्या प्रेम की जिज्ञासा ही अनत्व प्रेम के अनुभव में रूपांतरित हो जाती है? कृपा करके समझाएं।

अथातो जिज्ञासा, अथातो प्रेम जिज्ञासा। इससे ही हमने दरिया के सूत्र शुरू किए थे। अच्छा है, इसी पर पूरे करें। क्योंकि प्रेम ही शुरुआत है और प्रेम ही अंत है। क्योंकि प्रेम ही बीज है और प्रेम ही फल है। क्योंकि प्रेम ही प्रारंभ है और प्रेम ही अंतिम अभिव्यक्ति।
अथातो प्रेम जिज्ञासा।
हमने जीवन में सब खोजा है... धन खोजा, पद खोजा, मान-मर्यादा खोजी, प्रेम नहीं खोजा है; इसलिए हम अपंग मालूम होते हैं, दीन-हीन मालूम होते हैं। प्रेम में जिज्ञासा, प्रेम की खोज ही अंततः परमात्मा की खोज बन जाती है।
क्यों? क्योंकि प्रेम में अहंकार मिटता है, पिघलता है। प्रेम का अर्थ है, तुम्हारी मृत्यु। प्रेम का अर्थ है, तुम गए; तुम न रहे। और जहां तुम न रहे वहीं प्रभु है। तुम्हारी मौजूदगी बाधा है। तुम्हारी गैर-मौजूदगी द्वार बन जाएगी।
मरौ हे जोगी मरौ, मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मर गोरख दीठा।
मिटो। शून्य हो जाओ। जाने दो इस अस्मिता को, इस अहंकार को, इस मैं भाव को। यह मैं भाव गया कि समाधि आई। यह मैं भाव ऐसे है जैसे बरफ। इसे पिघलने दो प्रेम में। यह पिघल जाए तो सरिता बन जाए।
तुमने देखा? पानी की तीन दशाएं हैं; ऐसी ही मनुष्य के चेतना की तीन दशाएं हैं। पानी पत्थर की तरह हो सकता है इसलिए, बरफ को हम पत्थर की बरफ कहते हैं। पानी की बरफ को पत्थर की बरफ कहते हैं। पत्थर जैसा हो सकता है कठोर, जड़। जरा भी हलन-चलन नहीं। बहाव सब अवरुद्ध।

फिर पिघले तो पानी बन जाता। पानी बनता तो गति आती। गत्यात्मकता पैदा होती। बहाव शुरू होता, जीवन आता। फिर पानी भाप भी बन सकता है। भाप बन जाए तो आकाश में उड़ने लगता है। और परम जीवन मिलता, पंख लग जाते हैं।
पत्थर कहीं नहीं जाता। बरफ जमा रहता पत्थर की तरह--कोई आना नहीं, कोई जाना नहीं। कोई गति नहीं, कोई विकास नहीं। कोई उत्क्रांति नहीं। जहां है वहीं के वहीं पड़ा रहता है, मुर्दा जड़।
पानी में गति है। सागर की खोज शुरू हो गई। पानी चला। तुमने कभी देखा? अपने आंगन में पानी डाल दो तो वह भी चल पड़ता है सागर की तरफ। इतना थोड़ा सा पानी है, इतनी लंबी यात्रा की अभिलाषा करता है। चला सागर की तरफ। खोजने लगा, कैसे जाऊं। खोजने लगा मार्ग। चुल्लू भर पानी भी सागर की तरफ जाने की आकांक्षा से गतिमान होता है। और खोज लेता अंत में। किसी नाली का सहारा लेकर नाले तक पहुंच जाएगा। किसी नाले का सहारा लेकर नदी तक पहुंच जाएगा। किसी नदी का सहारा लेकर महानद तक पहुंच जाएगा। महानद का सहारा लेकर सागर में उतर जाएगा, पहुंच जाएगा। एक-एक बूंद पानी की सागर में पहुंचने में समर्थ है।
बूंद को देखो तो भरोसा नहीं आता कि हजारों मील की यात्रा यह बूंद कैसे करेगी? कहीं भी खो जाएगी रास्ते में। कहीं भी कोई दबा देगा, मर जाएगी। लेकिन नहीं, गति आ गई तो सागर कितने ही दूर हो, लाखों मील दूर हो तो भी दूर नहीं--गति आ गई तो। और पत्थर का बरफ सागर में भी पड़ा रहे तो भी सागर करोड़ों मील दूर है क्योंकि पत्थर के बरफ में कोई गति नहीं। किनारे बैठा रहे पत्थर का बरफ तो भी दूर है। क्योंकि जब तक पिघले नहीं, सागर में बहे नहीं, मिले नहीं।
और फिर एक और दशा है अनिर्वचनीय। पानी तो सागर को खोजता है, भाप आकाश
को खोजती है; और भी विराट को खोजती है। सागर की फिर भी सीमा है। होगा बड़ा, बहुत बड़ा, नदियों से बहुत बड़ा; लेकिन अंतर जो है नदी में और सागर में, वह परिमाण का है, क्वांटिटी का है, मात्रा का है; गुण का नहीं है। सागर में गुणात्मक भेद है। अनंत आकाश, कोई सीमा नहीं। कोई तट नहीं, कोई किनारा नहीं। न कहीं शुरू होता, न कहीं अंत होता।
जैसे ही पानी सागर में गिरा कि आकाश की यात्रा शुरू हो जाती है। चढ़ने लगता किरणों का सहारा पकड़ कर। जैसे नदियों का सहारा पकड़ कर सागर तक आया, किरणों का सहारा पकड़ कर चढ़ने लगता आकाश की तरफ। किरणों की सीढ़ियां बना लेता। किरणों के धागों के सहारे, अदृश्य किरणों के सहारे आकाश की यात्रा शुरू हो जाती।
ये तीन ही दशाएं चेतना की भी हैं। जब तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं तो तुम बरफ की तरह जमे हुए हो। जब प्रेम आएगा तो तुम पिघलोगे। इसलिए मैं प्रेम के नितांत पक्ष में हूं कि कम से कम पिघलो तो। प्रार्थना दूर की बात है अभी, कम से कम प्रेम तो हो। चलो किसी के पास पिघलो--किसी स्त्री, किसी पुरुष, किसी मित्र, किसी बेटे, किसी मां, किसी पिता, किसी के पास पिघलो। कहीं तो पिघलने का पाठ सीखो। पिघले तो सागर की तरफ चले। तो प्रेम पिघलाता है।
फिर जिस दिन तुम सागर में पहुंच कर आकाश की तरफ चलोगे उस दिन प्रार्थना। प्रेम का मतलब हुआ, दो व्यक्तियों के बीच पिघलो। और प्रार्थना का अर्थ हुआ, व्यक्ति और समष्टि के बीच पिघलो। मगर पाठ तो दो व्यक्तियों के बीच ही सीखने पड़ेंगे।
इसलिए जिसने प्रेम जाना है वही कभी प्रार्थना जान सकता है। जिसने प्रेम ही नहीं जाना वह प्रार्थना नहीं जान सकेगा। इसलिए मैं प्रेम का पक्षपाती हूं। क्योंकि मैं देखता हूं, प्रेम ही अंततः प्रार्थना बनती है। तो ये तीन तल हैं। कामः पत्थर। जमे हैं। मगर काम में ही छिपा है प्रेम जैसे पत्थर में, बरफ में छिपा है जल। इसलिए मैं काम-विरोधी भी नहीं हूं। मैं बरफ का विरोधी नहीं हूं। कैसे हो सकता हूं? क्योंकि बरफ का अगर विरोध करो तो जल कहां से लाओगे? फिर तुम्हारे पास जल न बचेगा। पत्थर के बरफ से ऊपर जाना है लेकिन दुश्मनी नहीं है कोई; मैत्री साधनी है।

काम से मैत्री साधो। काम में भी परमात्मा की ही झलक खोजो। संभोग में
भी समाधि की किरण को पकड़ो। पिघलाओ। काम पिघल जाए, प्रेम बन जाए। प्रेम बनते ही रूपांतरण हो गया। बर्फ पड़ा था, कहीं नहीं जाता था। प्रेम जाने लगा। गति आ गई। चहल-पहल आई, तरंग उठी, जीवन उभरा।
फिर प्रेम में ही मत रुक जाओ। फिर प्रार्थना बनने दो। अभी व्यक्ति के पास पिघले, अब समष्टि के पास पिघलो। जब एक से मिल कर इतना रस मिलता है तो अनंत से मिल कर कितना न मिलेगा! जब एक स्त्री और पुरुष के बीच इतने प्रेम के गीत उठ सकते हैं, तुम जरा सोचो तो उन रहस्यवादियों की--दरिया की, कबीर की, दादू की, नानक की। जरा सोचो उनकी जो ऐसे ही संभोग में विराट के साथ रत हो गए हैं। समाधि विराट के साथ संभोग है।
दो शरीर के बीच संभोग हो तो काम।
दो आत्माओं के बीच संभोग हो तो प्रेम।
दो आत्माओं के बीच, दो शून्यों के बीच संभोग हो तो समाधि।
दो शरीर थोड़ी देर को ही मिल सकते हैं। ज्यादा देर को नहीं, क्षण भर को, फिर बिलगाव। शरीर की हर दोस्ती दुश्मनी में टूट जाती है। शरीर का हर विवाह तलाक बन जाता है।
मन जरा ज्यादा देर को मिल सकते हैं, मगर बहुत ज्यादा देर को नहीं। एक जनम ज्यादा से ज्यादा मिल सकते हैं, लेकिन दूसरे जन्मों में फिर बिछड़न पैदा हो जाती है।
लेकिन जब दो आत्माएं मिलती हैं, जब दो शून्य करीब आते हैं तो एक ही शून्य हो जाता है। फिर कोई बिछड़न नहीं है, फिर कोई वियोग नहीं है।
तो काम तो बनाओ प्रेम, प्रेम को बनाओ प्रार्थना। ऐसे काम में छिपा हुआ राम प्रेम में बहेगा, गतिमान होगा, प्रार्थना में उठेगा, विराट आकाश बनेगा।
इसलिए दरिया के इन वचनों को शुरू करते समय मैंने कहाः अथातो प्रेम जिज्ञासा। अब प्रेम की जिज्ञासा।

आज इतना ही।